

# The Panchang Committee's Report.

Embodying mathematical research and the deliberations of the Committee's sittings including tables to guide accurate preparation of Panchang.

Higher astronomical formulae made easy and corrected up to date

## शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इन्दौर की सम्पूर्ण रिपोर्ट.

शास्त्र शुद्ध पंचांगोपयोगी शास्त्रार्थ व ग्रहलाघव की  
चालन देकर, दृक्प्रत्यक्ष युक्त सूक्ष्म गणित से

पंचांग बनाने की पद्धति और कोष्टक  
अर्थात्

## सूक्ष्म पञ्चाङ्ग गणित का यथार्थ तत्त्व

सम्पादकः कमेटी के अध्यक्ष  
ज्योतिषाचार्य और वेदार्थ-तत्त्व प्रतिष्ठापनाचार्य  
विद्याभूषण

पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट

प्रकाशक,

माननीय श्रीमन्त हुलधर गवर्नमेन्ट की आज्ञा से

मुद्रक

होउकर गवर्नमेन्ट प्रेस, इन्दौर.

—000—

[ मूल्य २ रुपये ]

५ अत्रिन्न वेद गणितं यदि वेत्ति शुल्ब ।  
शुल्बन्न वेद यदि वेत्स्य परोङ्क् कस्तामिम् ॥  
विद्वान्द्वयं न विविधागम पण्डितोऽन्य ।  
स्तज्ज्ञानवानपि सुपर्णचित्तौ पटु कः ॥ १ ॥

कुडगम याजपेय

कलिः शयानो भवति सजिह्वानस्तु द्वापरः ।  
उत्तिष्ठेता भवति कृत सम्पन्ने चरंश्चरैवचरैव ॥  
ऐतरेय ब्राह्मण ३३ ३

स्मृति प्रत्यक्षमैतिह्यम् । अनुमानश्चतुष्टयम् ॥  
एतैरादित्य मण्डलम् । संघैरेव विधास्यते ॥ १ ॥  
तैत्तिरीय आरण्यक १०२०१.

## पंचांग शोधन कमेटी की रिपोर्ट में प्रेक्षणीय विषय.

### विभाग १ ग्रन्थारम्भ

- १ न्याय मंडल द्वारा दी पंचांगवाद मिटसकता है ( भूमिका पृ. १३ )
- २ पंचांग का उपयोग और महत्व .... ( प्रस्तावना पृ. १-२ )
- ३ प्रकरणानुक्रमणिका और विषय सूची .... ( पृ. १-२५ )
- ४ पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी अनुवाद .... ( पृ. २६-३१ )
- ५ सभा की स्थापना ( ता. १०-८-२२ ) .... ( रि. पृ. १-२ )
- ६ सभापति [ दीनानाथ शास्त्री चुडेट ] का मंतव्य और मापण ( पृ. ३-२३ )
- ७ प्रश्नों का चुनाव [ ५ मुद्दे निश्चित हुए ] .... ( पृ. २३-२४ )  
[ १ अर्थ अनापवाद- २ दृक्कल्पवाद ३ बाणवृद्धि रत क्षय=वर्मशास्त्र वाद  
के ऊपर शास्त्रार्थ का अरम्भ ]
- ८ पं. नलकंठजी जोतिष तीर्थ का अभिप्राय .... ( पृ. ६२ )
- ९ उक्त वाद निर्णय में सभापति का संस्कृत पत्र .... ( पृ. ९४-१०९ )
- १० सूर्य सिद्धान्त में चालन .... ( १०६-११४ )
- ११ ग्रहलाघन में चालन .... ( ११५-१३० )
- १२ रवि उदयास्त की स्टैंडर्ड टाइम लग्न और भाव सारणी .... ( १३४ १४१ )
- १३ द्वागणितैक्य शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वीकृत नमूना .... ( १४४ ४५ )
- १४ सोलर सभाओं की रिपोर्ट [ कार्य विवरण ] .... ( १४७-१५३ )
- १५ प्रोफेसर विश्वनाथ गोपाल गोले एम. ए. प्रधान गणितध्यापक होलरर कॉलेज  
का अंतिम पत्र और सभापति का अंतिम निर्णय .... १५२-१५४
- विभाग २ [ अयनांशवाद निर्णय ] ... .. पृ. १-३०
- १६ पचसिद्धान्तिका प्रोक्त नक्षत्र भोगों का आज तक सुसंगत अर्थ नहीं लगा था  
उसका कोष्टक द्वारा स्पष्टीकरण .... ३०-३१
- १७ परम्परा में सिद्धान्त सभा के प्रमाण [ सर्व सिद्धान्तैक्य गणित से  
अयनांश निर्णय में ] .... पृ. ५८  
शाके ८५४ से १५८० तक के १० ग्रंथों में लिखे संक्रमण काल एवं अयनांशों  
की सर्व सिद्धान्त ग्रंथों के मानों से शुद्ध सूक्ष्म गणितगत मान से एक वाक्यता  
दर्शक ११ कोष्टक .... ३०-३०७
- १८ अयनांश सम्बन्ध में जानक ग्रंथों के प्रमाणों की एक वाक्यता १०९-११०
- १९ शुद्ध परिमाणों की तुलना में शीतापीथियम की अशुद्धता .... ११८-१९ १३५-४०  
१४४-१४९
- २० प्रि. आपटे साहब को उनका गुरु उयो. केतकर का दिया हुआ अभिप्राय १४७-१४९

२१	तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रंथोक्त चित्रा का गहत्व	....	१५१-१५२
२२	वे गूढ मंत्र जिनका आज तक अर्थ नहीं लगा उनका वास्तविक अर्थ		१६१-१६२
२३	शतपथ ब्राह्मण में कृतिकायुति के अर्थका ( ज्यो. केतकर आदि विद्वानों के कहे ) श. पू. ३११० वर्ष के काल का खंडन	....	१६३-१७०
२४	शतपथ के अन्य प्रमाणों से उसका प्राचीनत्व	....	१७१-१७८
२५	पाश्चात्य विद्वानों की कहीं परमप्राप्ति गति बोटों से साधित विपुत्रांशप्राप्ति से श. पू. ५४६९८ वर्ष में शतपथ ब्राह्मण का काल निश्चय		१७३-१७८
२६	उक्त काल की पुष्टि में महाभारत के स्कन्दाख्यान के प्रमाण		१७८-१८९
२७	खगोलिक ऐतिहासिक पद्धति से प्राचीन काल का शोध	....	१८९-१९३
२८	डो. सिलक व अन्य ऐतिहासिकों का उत्तर देते हुए यह साबित किया गया है कि मानव जाति की उत्पत्ति उत्तर ध्रुव में नहीं हुई बल्कि भारतवर्ष में हुई यहीं वेद बने और संसार के समस्त धर्म वैदिक धर्म के सम्प्रदाय भेद हैं १९४-१९७		
२९	श. पू. ७५०९४ वर्ष में ययाति के स्वर्ग से पतन कालीन प्रमाण के.एक १९८-२०७		
३०	परमप्राप्ति की आन्दोलन गति न होकर चक्रगति है		२०७-२१३
३१	वेदों के निर्माण स्थल का निर्णय	....	पृ. २१३-२१५
३२	संसार के धर्म ग्रन्थ वैदिक धर्म के सम्प्रदाय भेद हैं	....	२१५-२१६
३३	मानवेतिहास का आरंभिक काल दर्शक प्रमाण	...	२१७-२२०
३४	उपसंहार में सुख वृष्टपर दिये हुए प्रमेयों का अर्थ	....	२२१-२२२
३५	युग प्रमाण [ मनुस्मृति प्रोक्तयुग ]	....	२२२
३६	शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान आदि	....	२२२
३७	वेदोक्त नक्षत्र विज्ञान	....	२२३
३८	वेदोक्त राशि विज्ञान	....	२३१
३९	समर्पण और अंतिम निवेदन	....	२३४



# इन्दौर पंचांग प्रवर्तक कमेटी की संपूर्ण रिपोर्ट.

शुद्ध पंचांगोपयोगी शास्त्रार्थ सहित ग्रहलाघवकों चालन  
देकर उसी के गणित से शास्त्रशुद्ध सूक्ष्म पंचांग  
बनाने की पद्धति व कोष्टक.

## भूमिका.

लेखक—विद्याभूषण दिनानाथ शास्त्री चुलेट.

१ बहुत प्राचीन वैदिक कालसे मंत्र द्रष्टा ऋषियोंने ज्योतिःशास्त्र के मूलतत्वों का ज्योतिष का उद्भव और शोध लगा लिया था; यज्ञ प्रयोग उस समय की वेध किया थी और सुपर्ण चित्र आदि के चित्र में देवत चिन्हांकित इष्टकाएँ (इंटे) रखकर उसका लेखन किया जाता था। जिसके द्वारा आज के पंचांगों के गणक उस समय में (और आज) भी तिथि, नक्षत्र, कृष्ण, दिन प्र ग, रात्रि प्रमाण, मास, पक्ष, अयन (विषुव दिन), तोयन (पर्जन्यारंभ नक्षत्र), क्र संवत्सर और युगों का परिमाण आदि यथार्थ रीतिसे मात्तूम होते थे। उसके द्वारा एक मास का भी पता लग जाता था। इसी कारण वैदिक मंत्रों में उपासना के रूपमें ज्योतिर्गोत्र का ही वर्णन है। क्योंकि उस समय ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्र का एक ही रूप था।

२ आगे जब वेदांग काल में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और छंदग्रंथों का अलग अलग निर्माण होने लगा तब ज्योतिष का भी वेदांग ज्योतिष नामक ग्रंथों द्वारा अलग निर्माण हुआ; और धर्म शास्त्र के स्मारक स्मृतिग्रंथ भी अलग अलग बनते गये। अब तक तंत्र (ग्रहगणित) संहिता व जातक भेद से ज्योतिष के १८ ग्रंथ और मानवादि स्मृति (धर्मशास्त्र) के २६ ग्रंथ बने इनके द्वारा और भी कई उपांगरूप ग्रंथों की रचना हुई।

३ इनका परस्पर में अंगांगी भाव का संबंध होने से ज्योतिःशास्त्र में स्मृति ग्रंथोक्त युग पद्धति आदि बातों का और धर्म शास्त्र में व्यवहारोपयोगी ज्योतिष की बातों का समावेश किया गया। इसी कारण हमारे ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्र परस्पर में एक दूसरे के समर्थक हैं।

४. इसलिये हमारे-मत, उपवास देवपूजा व आदि संकल्पादि धर्मशास्त्रोक्त संपूर्ण शास्त्र शुद्ध पंचांग का कार्य तथा मुहूर्त जन्मपत्र वर्ष फल, प्रश्नफल, आदि फल ज्योतिष स्वरूप और उपयोग के कार्य और कृषि, व्यापार, इतिहास ( प्राचीन वस्तु संशोधन ), व गणित शास्त्रों आदि व्यावहारिक कार्य; धर्म शास्त्रानुसार ( श्रुतिसम्मत ) प्रणाली से बने हुए दृक्प्रत्यय युक्त, शुद्ध व सूक्ष्म गणित के पंचांग से ही किये जाते हैं । और यही शास्त्रशुद्ध पंचांग कहलाता है ।

५. आकाशस्थ ज्योतियों की यथार्थ स्थितिको बतलानेवाला पंचांग है । वह स्थिति वेधद्वारा पंचांगको प्रत्यक्ष वेध लेनेसे ही निश्चित हो सकता है । इसलिये जिन ग्रंथों के आधार पर पंचांग बनते आए वे उस कालमें उपलब्ध वेधक्रियाके साधनों से बने हुए होने से तत्कालीन दृक्प्रत्यय युक्त ही रहते थे । किंतु कुछ वर्षों के बाद जब जब उसके गणित में अंतर पड़ने लगता था तब तत्कालीन ज्योतिर्विद लोग उसमें बीज संस्कार [ चालन ] देकर करणग्रंथ तथा नये सिद्धान्त ग्रंथ बनाकर शास्त्रानुसार उसे शुद्ध कर दिया करते थे । तभी आज ज्योतिष के अनेक सिद्धान्त और करण ग्रंथ उपलब्ध हैं ।

६. भिन्न भिन्न कालमें उक्त ग्रंथोंका निर्माण हुआ है इसलिये उनमें कुछ भिन्नता दिखती है । किंतु यही भिन्नता मानवीय ज्ञानोन्नतिके साथ साथ वैधकिया प्रचलित रहने से विभिन्न ग्रंथोंकी एक वाक्यता, ज्योतिःशास्त्री नई नई खोजोंके कारण, वैधकिया और ज्योतिः शास्त्रके प्रागतिक रूपको दर्शाती है । यदि हम उच्च और संपात के समिश्र गतिप्रमाणों को साधन व केंद्रीय वास्तविक रूप के बनाकर अलग अलग कर दें तो आजतक के बने हुए सभी सिद्धान्त ग्रंथोंकी आपस में एक वाक्यता हो जाती है । अर्थात् सभी के भगणपरिमाण सूक्ष्म गणित के परिमाणों में एक रूप होकर मिल जाते हैं । यह ( हमारे ग्रंथोंके शुद्धताकी ) हमारे लिये कितने गौरव की बात है ।

७. इस प्रकार स्वतंत्र वेध लेने की प्रणाली [ परंपरा ] ग्रहलाध्वन करण ग्रंथके निर्माण काल शाके १४४२ तक प्रचलित थी । किंतु उसके बाद भारतीय वेध प्रक्रिया लुप्त हो जानेसे प्राचीन ग्रंथों के वेध-सिद्ध परिमाणों की तत्त्ववेधणता भी लुप्तप्राय होगई । इसी कारण नया सिद्धान्त ग्रंथ या करण ग्रंथ बनाने की प्रतिभाशक्तिका न्हास होगया । और ऐसे ग्रंथों के निर्माण के बदले ( १ ) आर्य अनार्य वाद, ( २ ) सायण निरयण वाद, ( और शुद्ध निरयण मान में ) ( ३ ) आरंभ स्थान वाद तथा [ ४ ] अयनांश वाद खड़े होगये हैं । इतनाही नहीं तो वर्तमान कालिक पंचांगों के निर्माण में भी तीन पक्ष पैदा होगये हैं जो इस प्रकार है ।

८ ग्रहों की गति स्थितिमें दृग्गणितैक्यताके लिये दिये जानेवाले कालान्तर जन्य संस्कार और स्मृति ग्रंथोक्त युग परिमाण का उपयोग छोड़कर ग्रहलाघवीय (अ) पक्ष. प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के केवल नाम धारी ( शके ४२१ ) के पथात् जिनकी रचना की गई है ऐमे ) सिद्धान्त ग्रंथों को अप्रमथ मानकर उनके आधारपर बने हुए मकरंद, करण प्रकाश, करण कुतूहल, रामविनोद और ग्रहलाघव तिथिचिंतामणि आदि से पंचाग बनाने वाला पहिला ग्रहलाघवीय पक्ष है ।

९ ग्रहलाघव पक्ष के सिवाय शक १७५९ ( सन १८२८ ई. ) से एक दूसरा आंग्ल विद्या विशारदोंका पक्ष खड़ा होगया है. यह पक्ष श्रुति, स्मृति नूतन पक्ष में दो भेद व वेदांग प्रोक्त ज्योतिष और तंत्र, होरा, संहिता आदि ज्योतिष के मूलतत्वों को जाने बिना ही केवल प्रो० कोल ब्रूक, प्रो० वेण्टली, प्रो० विट्टने, प्रो० वर्नेस आदि के बनाए हुए सूर्य सिद्धान्त आदि नव्य ग्रंथों के अंग्रेजी भाषान्तर के तथा पाश्चात्यों के सूक्ष्म गणित के पंचागों के आधारपर प्रो० बापू देव शास्त्री, प्रो० छत्रे, और ज्योतिषविद् केतकर आदिने पंचाग प्रणालीका रूपान्तर करने के लिये राशि चक्र के आरम्भस्थान दर्शक तारकाओं में विभिन्न नूतनरूप देकर अयनाशों का और मद्र, कैट्रीय वर्षमान को प्रचलित रखकर शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान का बाद उत्पन्न कर नक्षत्रों से गणना की जानेवाली वेध पद्धति के स्थल में आंग्लपंचागोक्त सायन परिमाणों को ही दृक्प्रत्यय मानकर उसीपर से पंचाग बनानेवाले नूतन पक्ष में भी ( व ) और ( क ) दो भेद हो गए हैं । वह इस प्रकार हैं ।

१० गणपत कृष्णाजी मुर्ई के छापवाने से प्रकाशित शके १७८२ के ग्रहलाघवीय पंचाग में लिखे मेघ संक्रमण काल से ही सूर्यसिद्धांतोक्त (मद्रकैट्रीय) पूना कमेटी पक्ष ( व ) वर्षमान लेकर प्रो R. S. के इ. स. १९०८ में पाश्चात्य ग्रंथों के आधार से प्रो. केरो लक्ष्मण नाना साहब छत्रे के बनाए हुए ग्रहसाधन कोष्ठकोक्त क्षिटापिथियम तारे को आरंभस्थानीय मानकर (१८°-१९°) अयनाशों का शक १७८७ से थोड़े ही यथोक्त " पटवर्धनी " पंचाग बनानेवाला, आगे लोकमान्य तिलक महोदय के समक्ष में शास्त्र शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान लेकर नाटिकल आत्मनाक के आभय से शक १८४० से ठीक २२° अयनाशों का आरंभ कर " टिलक पंचाग " बनाने वाला, बाद में प्रो० छत्रे के कहें हुए सूर्यसिद्धांतोक्त वर्षमान छोड़कर उन्हीं छत्रे के बताए हुए अयनाश (१८°-१९°) का वही पंचाग बनानेवाला पूना कमेटी पक्ष या क्षिटापक्ष= ( व ) है.

११. उपरोक्त [ व ] पक्ष को महत्व देने के लिये ज्यो. वि. बेंकटेश त्रापुजी केतकर ने शक १८२० के ज्योतिर्गणित नामक ग्रंथमें अयनाश [ १८-१९ ] केनकी पक्ष= [ क ] को अग्रस्थान देकर चित्राभिमुख आरंभस्थान के अयनाश (१२-१३) के प्रचलन रहित बतलाया व शक १८२२ में क्षिटापक्षकाही पंचाग बनाया लेकिन अब

ज्यो. वि. शंकर बाळकृष्ण दीक्षित के भारतीय ज्योतिः शास्त्र में क्षिटा की निराधारता व चित्रा की साधारता सिद्ध हुई देखकर निरभिमानसे क्षिटा पक्षको त्याग कर स्वयं केतकजीने पूना केमरी पत्र ( तारीख २-२-१९२१ ) आदि जेखोंमें अपनी गल्ती सुधारी है और शास्त्रशुद्ध चित्राभिमुख विन्दु को आरंभ स्थान में मानकर ग्रहगणित, वैजयन्ती व नक्षत्र विज्ञानादि पाश्चात्य सरणी के सूक्ष्म गणित के ग्रंथ बनाये हैं तदनुसार अयनांश ( २२-२३ ) का स्वयं पंचांग बनानेवाला केतकी पक्ष या दीक्षित पक्ष = ( क ) है ।

१२. इन तीनों पक्षों का उद्देश भारतीय पंचांग प्रणालीको उन्नत करने का है किन्तु इनमें से ( अ ) पक्ष प्राचीन ग्रंथ व प्राचीन शोधों को विकास में लाकर तीनों पक्षों के गुणोंकी और नूतन सफ़ाओं से शुद्धकर उसे वास्तविक स्वरूप देने में, ( ब ) प्रशस्त पक्ष उसके स्थल में खोखले विद्यमानियों की कड़ी बातों को प्रचलित कराने में और [ क ] पक्ष प्राचीन तथा अर्वाचीन शोधों को उपयोगमें लाकर दोनों की संमति लगाने में; उसकी उन्नति सम्मता है ।

१३. तदनुसार ग्रहलाघन, महासिद्धान्त दि प्रयोगोंकी टीका व कई प्रयोगोंकी टिप्पणी कर उनको प्रकाशित कराना, सुचरचार व चठन कलनादि कई और विद्वानों के विषय प्रयोगोंको बनाकर उनमें मास्तराचार्यादि के शोधोंकी सूक्ष्मता व हुए महत्वपूर्ण कार्य. उपयोगिता बतड़ाकर म. म. प सुधारकर द्विवेदाने, पाश्चात्य गणित पद्धतिका मोल प्रकाश ग्रंथ बनाकर प्रो० नीलाधर हाने, सूर्य सिद्धांत सिद्धांतशिरोमणि आदि की नव्यपद्धतिपुक्त हिन्दी टीका बनाकर ज्यो. वि. प दुर्गाप्रसादने, पंचमिद्धाति ५००० अक्षर टीकाके साथ इमर्जी टीका बनाकर प्रसिद्ध शोधों सादबने, इन शास्त्रोंकी उन्नति करने के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये हैं ।

१४. इसी प्रकार कई प्रयोग और पंचांगसारोने हमारे धर्मशास्त्र व ज्योतिः शास्त्रकी जोड़ कायम रखने हुए निरवयव मानके पंचांगों को शनैः शनैः तीनों पक्षों के प्रशस्त-सूक्ष्मगणित के करने जाने का श्रेय ग्रहलाघन पक्ष को है । उक्त ग्रंथ साहेब ने ग्रंथ बनाकर तथा प्रो० पिटक व सर भास्करचंद्र भाटवदेकर आदि ने सुंरुई, पूना, मांगली में सम्मेलन कराकर उसमें सूक्ष्मगणित के पंचांग की प्रचार में लाने का और ५००० अक्षरों का नगर पुराणार देकर मि. दफ्तरी फकील द्वारा नूतन यन्त्र ग्रंथ बनवाने का औदार्य प्रकट करने का श्रेय पूना कमेटी पक्ष को है । और व्यासराय-रामधेनु, तैत्तिरीय ब्राह्मण, व वेदमहिला में जिनके हुए राशिपक्ष के आरंभ स्थान दर्शक चित्रा को का अन्वेषण करने के बिना ही वेयल अर्वाचीन सिद्धान्त सारित ग्रंथों की तुलना साधन के उद्देश में क्यों न हो दीक्षितजी के सूचित किये हुए चित्रा सार को अपनाई दर्शक मानकर; पूना कमेटी पक्ष के तर्फी से दिया



१८ किंतु भारतीय ज्योतिःशास्त्रमें सायनमान को समर्थित करने वाले ज्यो. वि. दोक्षित के लेखों को और सांगली संमेलन के इतिहास को तथा प्रच्छन्न सायन वादियों के प्रयत्न. उसके बाद केसरी व स्वराज्य नामक पत्रोंमें प्रसिद्ध हुए पंचांग वाद संबंधी लेखों को देखने से पता चलता है कि आंग्ल विद्या विशारदों में से कतिपय महानुभावों ने प्रचलित नाक्षत्र प्रणाली को धीरे धीरे नामेट करने के लिये ही हमारे में कई विसंवाद ( झगड़े ) खड़े किये हैं यह इस प्रकार से हैं ।

१९. आरंभस्थान दर्शक, देदीप्यमान, एकतारा वाले, निजकी अत्यल्प गतिमान्, निःसंदेह योग तारावाले चित्रा नक्षत्र की जगह—आरंभस्थानसे इनकी पहिली चालबाजी. चार अंश पहिले के, नेत्रोंसे स्पष्ट नहीं दिखने वाले, छोटे १ वत्तीस ताराओं में से छोटे से एक तारे को योग तारा पहिचानने में संदेहोत्पादक तारावाले शिष्टापिथियम को रेवती की योग तारा बता कर ' नक्षत्राणि रूपं अश्विनौ व्यात्तम् ' इस प्रकार की धुतियों को गलत करने के लिये आरंभ स्थान दर्शक ताराका विसंवाद, और

२०. छायांक से करणागत स्पष्ट रवि का अंतर रूप के अयनांशों का अपलंब करने में प्राचीन मंदबल की स्थूलता के कारण प्रतिदिन के प्रति ग्रंथ के भिन्न भिन्न अयनांशों का बतलाते हुए मायन मेघ संक्रमण के समय के ही अयनांश करणागत में गिनकर छायांक से उसे गलत करने के लिये और स्थिर तारासे अयनांश गणना पद्धति को नामेट करने के लिये उपर्युक्त सिद्धान्त व कारण ग्रंथों की स्थूलता व विभिन्नता बतलाने का विसंवाद—पटा कर देते हैं ।

२१. और यह ऐसा कहते हैं कि—“ देखिये अनेक कारण ग्रंथों के अनेक अयनांश आते हैं वह भी सिर्फ मायन मेघांक के समय के हैं । अन्य दिनों चाल बाजा का भांडा के मंत्रके सूर्यादि में छायाकादि का भेद नहीं मिलना दे । इसी कारण अधिक माम आदि में भिन्नता होती है । इस प्रकार के नाक्षत्र मान में तो कई झगड़े हैं । ” वंच्यावा विधवा नारी मुश्तिनी चेपि मे मतिः ॥ १ ॥ ऐसा एक प्राचीन पुनर्कानुसार आर्य उद्देविय के नाक्षत्र मान के झगड़े छोड़कर सायन मानका प्रचार करना अग्राह्य है । हमने भी प्रमाणधन के ग्रंथ सायन मान के ही बनाये हैं । इस मायन मान से न तो अयनांशों का झगडा और जनवरी, फरवरी माम लेने में न अधिक माम का झगडा पड़सकता है । नसीकें तारीख की गिनती से कसौट्टर के मासक मढ़ाने व दिन रहने में

तिथि महीनों के वृद्धिस्थय का भी झगडा कतै छोप होजाना है । फिर वस एक राफेल का पंचाग या नाटिकल आत्मनाक प्रतिवर्ष बुल्य लेने पर आकाश में ग्रहों के स्थान टटोलने के झगडे को छोडकर उन पंचागों से तमाम भारत वर्षीय पंचाग और ग्रंथों को गलत बतला कर सूक्ष्म मत का डंका बजा सकते हैं ।

२२. ऐसा कहनेवाले स्पष्ट सायन वादियों के और कृतिसे प्रदर्शित करनेवाले प्रच्छन्न नाक्षत्र मान को हटाने सायन वादियों के प्रति मेरा नम्र निवेदन है कि यद्यपि आप तो वालों के प्रति मेरे प्रभ. ऐसा सायन मानको एवं तारीख व महीनों को रुडकर सकोगे किन्तु निम्नांकित समस्याओं को हल कैसे कर सकोगे ? वह यह है कि " चांद्रमास के अनुसार होनेवाला समुद्र का उजार भाटा और स्त्रियों का मासिक धर्म तीन वर्ष में ३७ बार व्यक्त होकर अमावास्या पौर्णिमा के आकर्षण शास्त्रानुसार कई निर्जीव व सजीव पदार्थ चांद्रमास की ही गवाही देते रहेंगे नकि क्यालेंडर में लिखे महीनों से (  $12 \times 3$  ) = ३६ बार होकर फिर अधिक मास का नामोनिशान आपके सायन मास से कैसे भिटेगा ?

२३. फल ज्योतिष के लघ नौच व स्वगृही राशि आदि तारका पुंजाकृति के ग्रह यह शास्त्रशुद्धी के सादृश्य वर्णोंपर निश्चित किये गये हैं; और जातक में कहीं हुई यद्यपि शास्त्रशुद्धी के पृष्टोदय क्षीर्षोदय, बहुप्रसव, अल्पप्रसव, स्वभाव, वर्ण, तथा स्थल उपाय नहीं हैं. आदि धार्ते स्थिरप्राय राशि व नक्षत्रों के दृश्य आकृति विशेषपर कहीं गयी हैं; तब वह सायन संपात प्रतिवर्ष अयनगति से हटवा जाने के कारण इस वर्ष के ज्योतिःपुंज के स्थान में दूसरे वर्ण के ताराओं का नक्षत्र भाग आजाने में वर्णान्तर व आकृति में भेद हो जानेपर प्रकाश छात्र और आकर्षण शास्त्रानुसार फल ज्योतिष में उसका समर्थन कैसे किया जायगा ?

२४. सायन वर्षमान वर्तमानमें ३६५,२४२२१६ दिन का है किंतु यही एक हजार वर्ष के पहिले ३६५,२४२२४८ दिन का था इस तरह चलत्रिन्दुसे चलग्रहों चल वर्ष मान के आधार पर बनाए हुए ग्रहों में प्रतिवर्ष के की दीर्घ गणना करना कालान्तर संस्कार दिये बिना सूक्ष्मता का डंका कैसे बजसकेगा कठिन है । इतना ही नहीं तो चल संपात को अचल मानने में अचल ताराओं को वार्षिक और दैनिक अयनगति देकर जो सायन मान बनाने में कितना प्रयास पड रहा है यह नाटिकल आत्मनाक ( सन १९३१ ) के पृष्ठ २९२ से ५१६ तक के सवा दो सौ पेजों को देखने से ज्ञात होगा । किंतु वर्तमान कालिक परावलंबी भारतमें न तो कोई इतना प्रयत्न करेगा तब रही सही तारोंसे भेजान- कर देखने की क्रिया भी क्या नामोशेष नहीं होगी ?

२९. इसी तरह ग्रह लाघव पक्षमें भी कतिपय विद्वान् उच्च संमिश्र मंद केंद्रीय वर्षमान को लेकर अन्यान्य सिद्धांत ग्रंथों की भिन्नता व स्थूलता केंद्रीय और सांपातिक को प्रदर्शित करते हैं और आपके गणित का सूक्ष्ममान से मेल वर्षमान शास्त्र शुद्ध करने के लिये नाटिकल आत्मनाक आदि सायन पंचांगोंमें मंद नहीं है। केंद्रीय भाग व अयनगति कम करके सूक्ष्म मान के पंचांग बनाते हैं। किंतु शास्त्रीय रीतिसे देखा जाय तो यह दोनों प्रकार के वर्षमान अशुद्ध हैं।

३०. अशुद्ध कहने का कारण यह है कि जैसे रविमध्यगणित और भूमध्यगणित के केंद्रीय मान से मंदफल, मंदकर्ण, दिनगति, आदि भगोल अशुद्धता के कारण हैं। विशेष बातें तथा सूर्य से पृथ्वी के अंतर में कम ज्यादा होने का परिमाण ज्ञात होने से; थोड़े प्रमाण की क्यों न हो; सर्दी गर्मी का भी परिवर्तन माद्धम होता है। और तदनुसार शीघ्रकूल, शीघ्रकर्ण व शर आदि के गणित की भूगर्भीय बातें भी मद्धम होसकती हैं। ऐसा ही सायनमान से भूपृष्ठीय गणित की खगोलीय-लंबन विशेष बातें=अयन, ऋतु के अनुसार दिनमान के बड़े छोटे होने से सर्दी गर्मी का परिवर्तन आदि घातें माद्धम होती हैं। और उसका भगोलीय गणित में तथा खगोलीय गणित में उपयोग करने के लिये शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष से उच्च नीच स्थान और अयनांशों की योजना की गई है। सौरगणित शास्त्र से शुद्ध है। किंतु इस पद्धति को त्याग कर वैदिक से'या संपात'से राशि चक्र का आरम्भ मार्मकर केंद्र वर्ष को या सायन वर्ष को जो आप सौर वर्ष कहते हैं सो स्थिरताराओं से सूर्य के चक्र भोग में ज्यादा कम दिखते हुए विचार युक्त को भी सौर वर्ष मानने में गणित शास्त्रानुसार (३६०÷उच्चगति)=केंद्रीय वर्ष (३६०-अयन गति)=सायन वर्ष इस प्रकार रवि के चक्र भोग में अशुद्धता होती है।

३१. इसादि कारणों से कह सकते हैं कि ऐसे अशुद्ध वर्षमान को चलाकर केवल प्राचीन ग्रंथों के वर्षमान को स्वीकार करने की ओट में बाकी ग्रंथ शास्त्र शुद्धि की प्राचीन शास्त्रीय सभी मूर्तों को त्याग कर पाश्चात्य के पंचांगों से अपने पंचांग बनाते हैं। इससे ग्रंथों की निरूपयोगिता प्रदर्शित करना है। किंतु यह भारतीय शास्त्र शुद्धि का उपाय नहीं है। बरन उसे अशुद्ध करना है। इतना ही नहीं तो मंदकेंद्र या अयन संपात से गिने जाने वाले (३०) या (३३-२०) अंशों के विभागों को आकृति विशिष्ट न होते हुए भी मेष वृषभादि राशि के या चित्रा नक्षत्र के अकृति वाले वर्णमा युक्त नक्षत्र के बिना ही चैतथि मासों के अनन्वर्थक नाम कहना भ्रान्ति किंवा शास्त्र का छल करना है।



२८. यदि उनको इस प्रकार करने की आवश्यकता ही प्रतीत होती होवे तो औधिक या केंद्रीय और साम्प्रतिक पहिली दूसरी राशि; या पहिला दूसरा यह तो पंचांग को महीना व आगे तारीख वार आदि लिख कर जैसे कि और भी बहुत क्वालेंडर का रूप देना है। से केलेंडर मिलते हैं; उस प्रकार से यह भी क्वालेंडर [ जंत्री ] कर सकते हैं। किंतु वैदिक काल से प्रचलित शुद्ध नाक्षत्र मानके पंचांग को उक्त क्वालेंडर का रूप देने की व राशि नक्षत्र तार का पुंजों के नामों को उपयोग में लाने की झूट फैलाने के अतिरिक्त आवश्यकता ही क्या है। ऐसे निष्कारण फायों को खड़ाकर के अपस में अनैक्यता ( झूट ) क्यों फैलाते हैं। इस तरह प्रचलित प्राचीन प्रणाली का जो यह महानुभाव छोप कर रहे हैं; सो ऐसे ही से क्या इसकी उन्नति हो सकती है ? कदापि नहीं !!

२९. वस्तुतः इस ज्ञानयुग में तो वयवेचा पुरुषों का कर्तव्य है कि जिन २ आकृति विशेष तारकापुंजों के नाम वैदिक काल से कैसे कैसे किस अर्थ से, उन्नति के कार्य में किस हेतु बदलते आए हैं। उनके संबंध के वर्णन से कौन २ ऐतिहासिक बातों का पता लगता है। इसकी खोज करनी चाहिये कि जिसकी शुद्धता उपयेगिता को देखकर संसार चकित होजाय; क्योंकि इसी के द्वारा भारत के इतिहास का हजारों ही नहीं लाखों वर्ष का पता लगकर उससे संसार का बहुत उपकार हो सकता है और ऐसा करने में इसकी उन्नति है न कि झगडे फैलाकर उसका नामशेष करने में है।

३०. इस प्रकार के वितंडावाद और व्यर्थ परिधम करने से पूर्व पुरुषों के किये हुए शोधों के ऊपर पानी तो फिर ही रहा है वरन् धर्मानुष्ठान व ब्रह्मस्पदों की श्रद्धा का कतरा छोप हो रहा है। उसमें भी अधिक और शाल्जी हासि।  
मास की भिन्नता से नितान्त ही विरोह फैल जाता है। वैसा ही अधिक मास का योग इस ( सं. १९८८ शके १८५१ ) वर्ष में भी आने वाला है। जिसके संबंध में उपरोक्त प्रहलाधर्माय पक्ष और केतकी पक्ष के पंचांगों में आपाद अधिक होने से धर्मप्रयोग मान से कोफिलावत का होना है। किंतु पूना कभेटी पक्ष के पंचांग में भाद्रपद की अधिक मास बतलाया है। इससे कोफिलावत का छोप होजाना संभव है इतनाही नहीं तो आपादी, नामपंचमी, ध्याणी, जन्माष्टमी और गलमान वर्ज्य की बातों के करने में उक्त द्वैविध्य से दो तीन महीनों तक फितने ही निराद होते ही रहेंगे।

३१. लेकिन वर्तमान स्थिति को देखने से पता चलता है कि-भारतीय ग्रंथों का अन्वयेकन करके उनके सत्त्वों का अन्वेषण और प्रत्यक्ष वेध लेने, वेध विधा के छेप से की क्रिया के छेप होने से ही भारत में ऐसे निष्कारण निराद खड़े हुए हैं। पाश्चात्य देशों की ओर देखिये वहां हर एक बात को प्रत्यक्ष वेध क्रिया से मिलाकर देखने की प्रणाली प्रचलित है; और वहां राष्ट्रे अंगीकृत

कर्तव्यों में से ज्योतिःशास्त्र, इतिहास और अपने धर्म की उन्नति करना आपका एक प्रधान कर्तव्य मानने से पुराण वस्तु संशोधन का कार्य दीर्घ समय से चल रहा है। उससे उधर इतिहास, ज्योतिःशास्त्र और आकर्षण शास्त्रादि की एवं धर्म की प्रतिवर्ष उन्नति हो रही है। और इधर उक्त दोनों शास्त्रों के उत्पादक भारतवर्ष में इसकी उन्नति करना तो दूर रहा "साधारण शंकु द्वारा ग्रहों की छाया छापकर-स्थूलमान से भी क्यों न हो उसके विपुलांश कांति के निश्चय को नहीं कर सकने वाले महानुभाव भी आकाश को और प्राचीन ग्रंथों को बिना देखे-भोले ही नाटिकल का आश्रय लेकर संस्कृत ग्रंथों को गलत कहने में तनिक संकोच नहीं कर सकते हैं यह भारतीय ज्योतिःशास्त्र के उन्नति की कितनी अवहेलना है।

१२. सूर्य का उदयास्त और दाय्योत्तर लंघन काल देखे कौन ? क्योंकि टेलिग्राफ ऑफिस द्वारा स्टैंडर्ड टाइम् मालूम हो ही जाता है। ग्रह गणित परावलंबित्व से सूक्ष्मता करे कौन ? राकेट के पंचांग से या नाटिकल आत्मनाक से ५॥ का अभाव।

ह्राक का चालन देकर भारत के ग्रह और ग्रहों की युति आदि बातें बिना परिश्रम के मालूम हो ही जाती हैं। किंतु इस प्रकार की परावलंबी बातों से सूक्ष्मता नहीं मिल सकती है। जब आप पांच दस घड़ी (बॉच) को एकत्रित करके देखेंगे तो उन सब की एक टाइम नहीं मिलेगा। यानी-कम से कम दो चार दिनमें दो चार मिनिट का तो फर्क पड़ ही जायगा।

१३. इसी तरह पञ्चांगों के ग्रहों के अन्दर परस्पर के आकर्षण संस्कार दिये हुए रहने से अयनांश घटाकर शुद्ध नाक्षत्र मान नहीं बना सकता है। अयनांश वर्तमान व पंचांग शैली को बदलने में और हमारे कर्तव्य।

बाएं हाथ का खेळ समझनेवाले एक पंचांग में लिखे हुए ग्रह तो एक तरफ जा रहे हैं किंतु माटिकल में लिखी युतिकाळ के घंटों में स्ट. टा. के लिये ५।३० मिलाने पर कुछ युति कालादि के मिनिट १०।३० बहाल हैं। और जहां जहां इसमें युति के १२।२० व अन्य फलाक लिखे हों तो एक तारीख बदलने की तकलीफ कौन करे ? उनी तारीख में (१२।३०) और (१।३० तथा (५।३०) के आगे "पहाटे" (प्रातःकाल) लिख दिया कि बस है। जिसका अर्थ आगे पीछे की दोनों तारीखों पर लगा सकते हैं। ऐसी बातों को देख कहना पड़ता है कि क्या क्रिया से शास्त्र शुद्धता लाना तो दूर रहा ऐसे पंचांगों में नाटिकल शुद्धता भी नहीं रहती है।

इस लिये माह्यो ! अब ऐसे परावलंबित्व से काम नहीं चलेगा अब तो हमें स्वयंलम्बन करके सब विवादों की आलोचना समालोचना करके विवादों के कारणों को दूर कर देना चाहिये।

३४. उक्त विवादों को मिटाने के लिये अनेक प्रयत्न हुए हैं कई कमेटियां स्थापित होकर उनके द्वारा कई लेख और अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। विवाद मिटाने के लिये किये हुए प्रयत्न। इसके संबंध में कई बड़ी २ सभाएं हुई; जिनमें पहिली श्रीम-जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा का मठ के सभापतित्व में (शाके १८९६) बंबई में पंचांग शोधन महापरिषद् आगे शाके १८३९ पूनामें लो. तिळक महोदय के सभापतित्वमें पंचांग शोधन परिषद् हुई। तथा कई छोटी सभाएं होकर अंतिम सभा श्रीमन्त पन्त प्रतिनिधि औष नरेश के सभापतित्वमें शाके १८४८ में पंचांगकय मंडल द्वारा पूनामें की गई। जिसमें तानू पक्ष के दो दो पंच निर्वाचित हुए थे। इसीमें केतकी पक्ष के तरफ से एक पंच में भी नियुक्त किया गया था।

३५. इस प्रकार अनेक सज्जनों के दीर्घ प्रयत्न एवं उद्योग से बहुतसा कार्य हो गया है। कई विवाद मिट गए हैं कई एक विवादों के कारण पंचांग शोधन का अपने स्वार्थ से संबंध रखते हैं वह अभी मिटने के हैं। जटिल प्रश्नभी धीरे धीरे सुलझ रहे हैं। क्योंकि अपने २ पक्ष के समर्थन के लिये जो खंडन मंडनात्मक लेख व सभाओं की रिपोर्ट प्रकाशित होती हैं। उनके द्वारा सत्यांश निकल रहा है। अन्यान्य विवादों के मूल कारण खुल रहे हैं। अतएव उनकी जब ऊपर आ रही है।

३६. ऐसी अनुकूल स्थिति में उन सबको एकात्रित करके सूझ पाठकों की सेवामें निवेदन करने का कार्य यह इन्दोर पंचांग प्रवर्तक कमेटी कर रही है। ईश्वरसंस्कारकी निपुण है। क्योंकि शंका कुशंका ही विवादों की जड़ हैं। इसीके कमेटी शेष कार्य कर रही कारण पंचांग शोधन सरीखे पवित्र कार्य में कई पक्ष पैदा होगए हैं। उनका समाधान करते हुए इस विवरण में यथावकाश

सर्वसाधारण विषयों के ऊपर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है। कई महत्वपूर्ण विषयों को निर्णित करने के लिये तो कई प्रश्न खड़े करके उनको हल कर दिया है। तो भी यह कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। क्योंकि कई ऐसे जटिल कार्य व कठिन समस्या हैं कि प्रस्तुत रिपोर्ट के दिग्दर्शन मात्र लेख से सभी पक्ष के महानुभावों का समाधान न होगा वरन वह इसे पक्षपात कहेंगे। लेकिन हमने पक्षपात बिल्कुल नहीं किया है। क्योंकि यह सभा “सत्यमेव जयते नानृतम्” सत्य की सदाजय होती है असत्य को नहीं। इसतत्त्वको पूर्ण जानती है। इसलिये आगे किये जानेवाले प्रश्नों का उत्तर देने परही यह सभा अपने कार्य को पूर्ण किया समझेगी। वस्तुतः वाद प्रतिवाद होने परही सत्या सत्यका निर्णय हो सकता है। अभी तो पंचांग शोधन कार्य के हितैषी महानुभावों की सेवामें प्रस्तुत रिपोर्ट का निवेदन कर्तव्य कार्य की रूपरेखा का निदर्शन मात्र है।

३७. इस के सिवाय पचांग शोधन से सम्बन्ध रखनेवाले कई महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय मैंने वेदकाल निर्णय के अन्दर विशेषतः परिभाषा प्रकरण में किया है। \* जैसा कि राशिचक्र के आरम्भ स्थान का निर्णय ( पृ ७० ११० ) महीनों के नामों की अव्यक्तता, नक्षत्रों की योग ताराओं के भोगशर, और महापात व सप्त त द्वारा आज से

१० हजार वर्ष पूर्व तक के कोष्टक {—८ तथा १ लाख वर्ष तक का स्थिति को दर्शाने वाला कोष्टक ग्रन्थ के उपसंहार में दिया है। इतनाही नहीं तो पोलिश सिद्धांतादि प्राचीन सिद्धांतों के काल तथा वेदांग व्योतिष के कूट स्थलों का सूत्रार्थ बतलाया है। ऐसे ही पचांगों में लिखे जानेवाले युगों का निर्णय जो कि सन् १९८१ सन् १८२४ से २८ युग का कलियुग समाप्त होकर मतयुग का आरम्भ होगया ऐसा युगपरिवर्तन नामक पुस्तक में चिरजीव गोपीनाथशास्त्री चुलेटन सिद्ध कर दिया है। ताकि पचांगों में कलियुग प्रथम चरण के स्थल में कृतयुग कृत प्रथम चरणे लिख सकते हैं। तसरे, अयनाश वाद के सम्बन्ध में श्रीमत् होम मिनिस्टर साहब के प्रवचन से श्रीमान् प्रिंसिपल आपटे साहब अक्षरवेदी उज्जैन ने कृपा करके झोटा पक्ष का समर्थन और ग्रहलक्षण व चित्रापक्ष का पराक्षण किया तथा इसके उत्तर में मेरे विज्ञान व अन्तिम समाधानयुक्त पुस्तक तैयार हुआ है। यह भी थोड़ेही दिनों में हमारी सरकार का औदार्यतासे उपर प्रकाशित होकर जिज्ञासु महोदयों की सेवा में भेजा जासकता है।

१८ हमें विश्वास है कि प्रस्तुत एपेंडिक्स उन तीन पुस्तकों के अन्वेषक से पचांग शोधन कार्य में राधा डालन वाले कुछ विषयों का समुदाय मूलन होजायगा, किन्तु समझ है कि कई पक्षपाता लोग इतने पर भा निश्चित सिद्धांतों को मान्य नहीं करेंगे। और इसकी महोत्तरी आलोचना व समालोचना होने लगेंगी। ऐसी अवस्था में सर्व सज्जन महानुभावों से मेरी अपील है कि आप दक्षचित होकर इस जटिल समस्या का निर्णय कराइें और यह इस तरह होसकता है कि, एक महती सभा करें, उसमें सर्व पक्षियोंके तर्क में चुनौति होकर कार्य कारिणी एव वाद निर्णायक मध्यस्थ मंडल की स्थापना करें। उसमें निर्वाचित सदस्यों लेखी या जयानी वाद प्रतिवाद कराने मध्यस्थ मंडल द्वारा वाय करा लेना चाहिये।

\* 'वेदकाल निर्णय' नामक पुस्तक को वैदिकरिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा प्राप्त किया और श्रीमत् होलकर सरकार की हिन्दी साहित्य समिति के एक हजार नगद पुरस्कार व श्रीमत् सरकार के आभय से दी प्रकाशित किया गया है।

ई युग परिवर्तन नामक पुस्तक श्रीमान् गेड साहब किसनलाल मोहताजा के स्वयं से अकोला में उनकर एल्चपुर में प्रकाशित हुआ है। यह दोनों पुस्तक इन्दौर में हमारे पते पर भी मिल सकते हैं।

१९. इस प्रकार का सम्मेलन जबकि इन्दौर में ही किया जायगा तो मैं आशा करता हूँ कि; यहां की विद्यानुरागी न्यायप्रिय दयालु सरकार इस कार्यको पूर्ण करने में नरेश और विद्वानों से योग्य रीति से पूर्ण करने के लिये पर्याप्त सहायता प्रदान करेंगी। तदनुसार अन्यान्य रियासतों से भी सहायता वाठनीय है। किंतु संपूर्ण महानुभावों ने भी इस छो़रु हितकारी, अत्यंत आवश्यक और पवित्र कार्य में वन, मन धन, व विद्वत्ता के परिचय से यथा योग्य सहायता प्रदान करने का औदार्य प्रकट करना चाहिये। तथा इस रिपोर्ट के पहुंचने पर आप अपना अभिप्राय प्रकट करके उक्त कार्य करने में हमें उत्साहित करें। अथवा और जो कुछ योग्य उप.य दिखे कृपया उसकी सूचना भी देनी चाहिये।

४०. संसार न्याय प्रिय है। न्यायाधीश के द्वारा संसार के बड़े २ आपसी झगड़े तय हो जाते हैं। उसमें भी योग्य न्याय मंडल के सामने पंचाग की उत्पत्ति के ही सभी विवादों का यथार्थ निर्णय सुचारु रूप से होकर सत्य सत्य बातों का अन्वेषण हो सकता है। इतनाही नहीं तो उक्त सम्मेलनमें पंचाग शोधन के मूठ सिद्धांतों का निश्चय हो जाने से तदनुसार आगे सिद्धांत, धरण, और सारणी ग्रंथों की रचना भी कोई जामरूनी है कि जिसके द्वारा भारत के सभी पंचाग कारोंको गणित करने की कठिनाई न होते हुए; थोड़े ही समय में सरल व सुगमता से यह स्पष्ट ग्रह और पंचाग बना सकें।

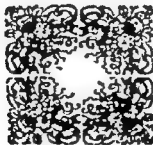
४१. ऐसा करने से ही सभी पंचागों की एकवचनता हो सकती है। ऐसे ही शुद्ध पंचाग से आकाश का मेल हो सकता है। इसीके अनुसार यही अत्यंत आवश्यक किंय हुए संकल्प सत्य ही होना चाहिये। एककाळाचण्डेद से फर्नान कर्म है। किये हुए भर्भर्तुमान का कितना प्रमाण प्रउ सङ्ग है यह विद्वानों से कुछ छुपा नहीं है। पंचाग का उपयोग आबाध वृद्ध सभी करते हैं। पंचाग के ही द्वारा तिथि मुहूर्तादि का निश्चय होकर विवाहादि मागलिक कार्य किये जाते हैं। प्रश्न व जन्म पत्री आदि पंचाग से ही बनाई जाती हैं। और पंचाग के ही अन्वय से उनके फला देश कहे जाते हैं। जब कि ऐमे अत्यंतोपयोगी पंचागों में से (अ) पक्षके पंचाग की अष्टमी निकटकी भद्रोंमें १५ घड़ी का और रवि संक्रमण में १ दिन तक का फरक तथा (ब) पक्ष व (क) पक्ष के परस्पर नक्षत्रों में १८ घड़ी का व्यतीपातादि में ३६ घड़ी का व रवि संक्रमण में ४ दिन तक का फरक रहता है यह सब निराड जाने से शुद्ध पंचाग प्रचार का भेष आपको प्राप्त होगा।

४२. अब मैं हमारी श्रीमन्त सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि भारत के अत्यंत ही आवश्यक इस कार्य को आज ३० वर्ष हुए तबसे श्रीमन्त इन्दौर सरकारसे अंतिम महाराजाधिराज सर तुकोजीराव महाराजा ने सुसंपन्न करने के लिये प्रार्थना । हातमें लिया है और उसी कार्य की पूर्ती के लिये इन्दौर गव्हर्नमेन्ट

के द्वारा प्रस्तुत पंचांग कमेटी स्थापित की गई है कि जिसके रिपोर्ट की यह भूमिका लिखी गयी है । और यहां के पंचांग को शास्त्र शुद्ध सूक्ष्म गणित का करने के लिये सुचारु प्रयत्न हो रहा है । यह कार्य पूर्ण तभी होगा कि (१) सिद्धांत, (२) करण, और (३) सारणी ग्रंथों को तयार कराकर सर्व पक्षियों का एक सम्मेलन कराके कथम ३९-४० में सूचित न्याय मंडल के द्वारा उक्त ग्रंथोंको पास कराएँ । इससे श्रीमन्त के हाथमें लिया हुआ काम एक आदर्शरूप सुसंपन्न होकर भारतके ही नहीं संसार के इतिहासमें इन्दौर स्टेट की सुकीर्ति सुवर्णाक्षरोंमें अंकित होकर अजर अमररूप से सदा कायम रहेगी । ईश्वर से भी मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमन्त महाराजाधिराज श्री यशवंतराव महाराज की सदा अभ्युदय एवं विजय हो ।

तारीख ६-४-३१ ई.  
यशवंतराज घर नंबर ८८  
इन्दौर.

महदीय कृपाभिभाषी,  
दीनानाथ शास्त्री चुलेट,  
अध्यक्ष पंचांग कमेटी  
इन्दौर.



श्री.



## इन्दोर पंचांग प्रवर्तक कमेटी के रिपोर्ट की प्रस्तावना.



पंचांग; मानव जातिमात्र के लिये अत्यन्तही उपयोगकी वस्तु है। इसी के आधार पर ठीक समय धार्मिक और व्यावहारिक सम्पूर्ण कार्य किये जाते हैं। वर्तमान में विविध प्रकार के पंचांग छपकर प्रकाशित होते रहते हैं, किंतु जिन पंचांगों का हम उपयोग करते हैं उनमें लिखे अनुसार आकाश के ग्रहनक्षत्रादि दृष्टिगोचर होते हैं या नहीं, तथा वह पंचांग के नियम के अनुसार हैं या नहीं, — ऐसे मिलान में हमारी दृष्टि होनी चाहिये। घड़ी (घोंच्) का उपयोग करने वाले ने घड़ी ठीक चल रही है या नहीं, इस बात की परीक्षा प्रतिदिन करते रहना चाहिये और जिस दुमरे काल दर्शक यंत्र से हम उसकी परीक्षा करते हैं वह किस नियम के अनुसार बना है उसका भी विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार की परीक्षा न की जाय तो निश्चय ही वर्षभर चाबी देते जाने बाद घड़ी में प्रातः काल के ६ बजने पर वास्तविक मध्याह्नकाल का समय दृष्टिगोचर होने का प्रसंग आ सकने की सम्भावना है। यदि नाक्षत्र काल दर्शक घड़ी से मिलाते जाओगे तो एक दिन का फरक पड़ जायगा ॥

पंचांग के संबन्ध में हमारी ऐसी ही स्थिति होगई है। अज्ञान आलस्य और ग्रह गणित परिवर्तित करते रहने के रहस्यों की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण हमने गत ४०० वर्षों में आकाश की तरफ मानो बिलकुट देखा ही नहीं है। हमारा जो कुछ आधार है सो पंचांग है। जैसा कोई आकाश और पंचांग का परस्पर में बिलकुट ही संबन्ध न हो, ऐसा मानने वाले हम गंदबुद्धि या नाटिकल आत्मनाम आदि श्रेणी जंत्रों को ही आकाश मानने योग्य परावर्तकी होगए हैं। ऐसा करने से हमारी ऐतिहासिक, धार्मिक,

नैतिक, औद्योगिक तथा व्यवहारिक कितनी ही क्षति होगई और होरही है। एवं वेधक्रिया का तो सर्वथा लोप होगया है।

इस महत्व के विषय की ओर दूरदर्शी विद्वानों की दृष्टि नहीं पहुँची ऐसी बात भी नहीं है। वर्तमान में पंचांग शोधन के लिये सभा आदि के अच्छे २ प्रयत्न भी किये जा रहे हैं किन्तु कार्यकर्ताओं में नीचे लिखे अनुसार कुछ शास्त्रीय बातों की न्यूनता प्रतीत होती है। यही कारण है कि अभी तक इस कार्य में हमें पूर्ण सफलता नहीं मिली। धर्मशास्त्र और ज्योतिः शास्त्र के कई विद्वान यद्यपि संस्कृत या अंग्रेजी भाषा में उत्तमा परीक्षा तक के धार्मिक, सिद्धान्तिक और गणिता के अनेक ग्रंथ पढ़कर उसमें प्रवीणता सम्पादन कर लेते हैं परन्तु वह पंचांग के तिथि नक्षत्रादि पाँचों अंगों के मूल तथ्यों को समझने की एवं पंचांग बनाने का अल्प सामर्थ्य रखते हैं। जो विद्वान पंचांगों को बनाते आए हैं वह धर्मशास्त्रीय और ज्योतिः शास्त्रीय शास्त्रार्थ साग समझने में तथा दृक्प्रत्ययोपपत्ति बतलाने में बहुत ही असमर्थ देखे गये हैं।

इस तरह के भिन्न मत के विद्वानों ने उक्त दोनों शास्त्रों के कार्य कारण सम्बन्ध को न पहिचान कर आपस में विवाद करते हुये अपना अपना पक्ष बना लिया है। यदि किसी ने किसी प्रकार कुछ कार्य किया भी तो वह चाहे ग्रंथ हो या पंचांग, उक्त न्यूनता के कारण असंगत और अपूर्ण होता है। यदि किसी ने क्रमबद्ध पूर्ण कार्य किया भी तो उसे भिन्न पक्ष का कहकर सत्यासत्य निर्णय तक उस बात को पहुँचने नहीं दिया जाता। तथा स्थूल हो या नाटिकाल की नकल हो अपने अपने पक्ष के पचांग बनाकर बिना सुधार किये ही प्रतिवर्ष प्रकाशित करते हुये दूसरे पक्ष को गिराने का धुन में लगे रहते हैं। इससे न तो उनकी आपस में एकताव्यता होती है न वह पंचांग का सुधार करने पाते हैं।

विषय द्वैत और अद्वैत याद का सा बना दिया गया है. परन्तु ज्योतिर्गणित शास्त्र ऐसा है नहीं, वो और दो मिल कर ही चार होते हैं। किसी भी पक्ष में इसके विपरीत नहीं हो सकता।

बड़े सौभाग्य एवं आनंद की बात है कि उक्त न्यूनता को दूर करने के लिये श्रीमंत होलकर राज्य की ओर से प्रकाशित होने वाले पंचांग को अमिळ भारतवर्षोपयोगी मूल्या गणित का अद्वितीय आदर्श रूप करने के उद्देश्य में उत्थान में पड़े हुए इस पंचांगयाद के सत्यामन्य निर्णय को प्रकाशित करने के लिये विद्वानुगमो धीमंत होलकर सरकार ने "सुन्द पंचांग मर्नक कमेटी" की स्थापना की है; उनी का प्रथम कार्य यह है कि सभाओं की रिपोर्ट है।



पचाग शोधन सभासा के अन्यान्य रिपोर्टों के साथ इस [रिपोर्ट] की तुलना करके देखने पर आप कहेंगे कि यह केवल रिपोर्ट ही नहीं प्रत्युत ऊपर बताई हुई न्यूनता की पूर्ति करने वाला, भारत वर्ष में अद्वितीय सर्वोत्कृष्ट, तुलनात्मक पद्धति से धर्म शास्त्र और ज्योतिःशास्त्र की एकवक्त्यता दिखाने वाला सिद्धान्त रूप-मौलिक ग्रन्थ है।

क्योंकि हमने विवरण [रिपोर्ट] विभाग (१) के साथ—(१) शास्त्रार्थ विभाग को जोड़ कर इस विषय की समस्त शकाओं का समाधान कर दिया है, तथा—(२) गणित विभाग को जोड़कर सूर्य सिद्धांत और ग्रह लाघव को चालन दिया है। उसी गणित की पद्धति में दृक्प्रत्यययुक्त ग्रहों का साधन एवं शुद्ध पचाग ज्ञान के प्रकार बनवा दिया है। और पचाग गणित के उपयोगी अनेक कोष्टक—वर्ष सारणी, दिनमान व इ-दौर के सूर्योदयास्त का स्टैंडर्ड टाइम दर्शक सारणी तथा भावनारणा आदि दे दिये हैं। कि दो सौ वर्ष तक चालन दिये गिना ही उक्त कोष्टकों द्वारा साधारण ज्योतिषी भी सरलता व सुगमता से सूक्ष्म गणित के शुद्ध पचागों को निर्माण करने में समर्थ हो सकेंगे।

य. विषय इतना उलझा पड़ा है कि उसको सुलझाने में हमें इस रिपोर्ट के (१६०+४०) = २०० पृष्ठ लिखने पड़े हैं। तो भी यह संक्षेप रूप है। आशा है इसका निस्तृत वर्णन भी शीघ्र ही प्रथम रूप में प्रकाशित होगा।

सर्व साधारण विद्वानों को भी उक्त विषय का सरलतासे थोड़े से में आकलन हो इसलिये विभाग और प्रकरण डाऊनर प्रकरणों की संक्षिप्त सूची तथा विषयों की अनुक्रमणिका जना दी है, और यह ऐसी बनाई है कि रिपोर्ट के बिना पढ़े ही इस अनुक्रमणिका को पढ़न से प्रथम संक्षेप के स्पष्ट रिपोर्ट का रेखाचित्र आप को मालूम हो सकेगा।

ज्योतिष के मशहूर पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी शब्दों के उपर सहित शब्द कोष भी परिशिष्ट में जोड़ दिया है ताकि आगल विद्याविचारद भी इसके भागों को समझ सकेंगे। अनुवाद करने में तो इसका विशेष ही उपयोग होगा। अतः प्रस्तुत लेख को स्पष्ट बताने वाले चित्र (आकृति) व नक्शे दे दिये हैं ताकि सब लोग उक्त विषय को अच्छी तरह समझ सकें।

हम समझते हैं कि भूमिका में बतलाए हुए चार प्रकार के पचाग वादों में से दो तीन वाद तो इस रिपोर्ट से मिट जावेंगे किंतु एक अपमानादा वाद नहीं मिटेगा। क्योंकि शुद्ध पचाग के प्रचार के प्रवाह को रोककर दूसरी ओर हटा देने वाला यही बड़ा भारी रोड़ा पड़ा हुआ है। यद्यपि हमने वेदकालनिर्णय की परिभाषा प्रकरण में, युगपरिवर्तन के

चारों युगों के आरम्भकालदर्शक कोष्टक आदि में एवं प्रस्तुत रिपोर्ट के संस्कृत पत्र के अन्दर आरम्भ स्थान निर्णय में अयनाशों का प्रयोग आने पर इस विषय के ऊपर प्रकाश डाल कर इस रोडे के आधार को स्पष्ट बना दिया है।

और भी इसे स्पष्ट करने के लिये विद्वद्भ्यः श्रीमन्त होम मिनिस्टर एवं डेप्युटी प्राइम मिनिस्टर साहेब सरदार किवे महोदय ने बड़े प्रयत्न और परिश्रम से श्रीमान प्रिंसिपल गोविंद सदाशिव आपटे साहब उच्चैन का और मेरा अयनाश और आरम्भस्थान निर्णय इस विषय के ऊपर देखी शाल्कार्य करीब २०० पृष्ठों का ( १ ) विधान, ( २ ) परीक्षण और ( ३ ) समाधान विभागों में तयार कराया है। वह प्रकाशित होने पर आशा है कि सभी विद्वान् लोग इसका विचार करके पक्षपात को त्याग कर संपूर्ण विवाद रूपी रोडों को उलझ कर फेर देंगे अर्थात् सत्य वस्तु के स्वीकार करने में मतेक्य सपादन कर लेंगे।

अब इस पवित्र और लोक हितकारी कार्य को हात में लेने वाले श्रीमन्त महाराजा धिराज राज राजेश्वर सवाई श्री यशवन्तराज होलकर बहादुर को शतशः धन्यवाद देता हूँ कि; पूज्य पिता श्री के आरम्भ किये कार्य को पूर्ण करने के लिये प्रस्तुत रोगेटी की स्थापना आपकी सदिच्छा होने से ही सम्पादित की गई है। इससे यह रिपोर्ट का लिखना श्रीमन्त महोदय के श्रुपा प्रसाद का ही फल है। इसलिये हमारी सर्वान्तर्गामी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि श्रीमन्त महाराजा साहब की सदा विजय हो और आप दीर्घायु, सुखी एव आनन्दित रहें।

श्रीमन्त महाराजा साहब सर तुलसीजीराव होलकर बहादुर तृतीय महोदय को अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ कि आपन सबत् १९५९ में स्थूठपचांग क अतिरिक्त सूक्ष्म गणित का दूसरा पंचांग बनवाने की सहायता के ही पचांग बनाने की आज्ञा प्रदान की। सुंवाई, पूना आदि पचांग शाधन सभाओं में स्टे के तरफ स विद्वानों को भेजकर द्रव्य की भी बहुत सी सहायता प्रदान की तभी मे वेषलेने के कार्य में अनेक व्योतिपियों को श्रीमन्त के तरफ से सहायता मिलने लगी है। इतना ही नहीं तो प्रचलित पचांग वाद को मिटाने के लिये आप दत्तचित्त हैं। ईश्वर श्रुपा में आप दीर्घायु सुखी आनन्दित रहें।

श्रीमान् माननीय विद्यानुरागी राय बहादुर, बजीरहोडा, सिरिधरजी वापना जी. ए., बी. एम. सी., एल. एल. बी., एम. आर्. ए. काश्मारी साहब महोदय को सन्नेम धन्यवाद है कि श्रीमान् ने अपने करकमल से इस कमेटी को नियुक्त करके उनके कार्य को सर्वोत्तम पूर्ण करने के लिये सब रीति में हमें सहायता पहुंचाते रहे।

श्रीमान् माननीय विद्याप्रिय पन्तुडहोडा, गवबहादुर सरदार मानवरावजी किवे एम. ए., एम. अर्थ. ए. एम. ए., एफ. आर. एम. ए. जेनमिनिस्टर साहब महोदय को सन्नेम धन्यवाद है कि श्रीमान् ने अपने करकमल में धरान्त यंत्र की स्थापना करके वेषलेने के लिये हमें तुरीयपत्र आदि यंत्र बनवा दिये हैं।

श्रीमन्त होलकर सरकार के मंत्रि मंडल को हार्दिक धन्यवाद है कि; जो बड़े सुचारु रूप से इस कार्य का संचालन कर रहे हैं। उक्त कार्य को सांगोपाग पूर्ण करने के लिये हम लोगों को प्रोत्साहित करते हुए वेधक्रिया के समय स्वयं आप उपस्थित होकर हमें पूर्ण सहयोग देते रहे और दे रहे हैं।

श्रीमन्त के स्टेट प्रेस के सुपरिण्टेन्डेन्ट श्रीमत् पं. हरिश्चंद्र जी शर्मा साहव को सहर्ष धन्यवाद है कि इस रिपोर्ट को अच्छे स्वरूप में शीघ्र ही प्रकाशित करने में सहायता दी।

भाद्रपद संवत् १९८७

सन् १९३१

सम्पादक

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

( अघ्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर )



# प्रकरणों की-संक्षिप्त-सूची.

## पंचांग शोधन संवन्धी-शास्त्रार्थ विभाग-१

[ भूमिका ]-ज्योतिः शास्त्र का स्वरूप और पंचांगवाद मिटाने के उपाय-पृ. १-१६  
 [ १ ] सभा की स्थापना-पृ. १-३, [ २ ] पंचांग शुद्ध करने की प्रणाली और सभापति का मन्तव्य पृ. ३-१८, [ ३ ] सभापति का भाषण पृ. १९-२३, [ ४ ] पक्षों का चुनाव और उनका विवरण-पृ. २३-२४, [ ५ ] ज्योतिः शास्त्रीय लेखी-प्रश्नोत्तर-पृ. २४-३१  
 [ ६ ] धर्मशास्त्रार्थ लेखी-प्रश्नोत्तर-पृ. ३२-५४, [ ७ ] प्राथमिक अनुगति पृ. ५४-६२, [ ८ ] सभापति का साकून पत्र " [ अ ] सिद्धान्त ग्रन्थों का इतिहास पृ. ६३-६९, [ आ ] पंचांग शोधन के विषे आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न-पृ. ६९-७२, [ इ ] श्रौत काल में दृश्यगणित के पंचांग-पृ. ७३ ७७, [ ई ] स्मार्त काल में दृश्य गणित के पंचांग-पृ. ७७-८०, [ उ ] शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वरूप पृ. ८१-८४ [ ऊ ] तिथि का नृद्विषय ५, ६ घड़ी का शुद्ध है या ९, १० घड़ी का पृ. ८४ ८७, [ ए ] शुद्ध गणित के पंचांग पर आक्षेप और आक्षेपों का खंडन पृ. ८७-९२, [ ऐ ] दृक्प्रत्ययगणित का; शुद्ध नाक्षत्र और (निरयण) पंचांग बनाना योग्य है-पृ. ९२ ९३ "

## पंचांग शोधन के मूलतत्त्व-गणित विभाग-२

[ ९ ] वर्तमान शोधन पृ. ९४ १०१, [ १० ] शुद्ध निरयण मान की प्रामाण्यता और शुद्धता-पृ. १०१ १०६, [ ११ ] सूर्य सिद्धान्त में चालन-" [ अ ] प्रयोज्य में हमारे कहे हुए बीज की शुद्धता-पृ. १०६ १०८, [ आ ] सिद्धान्त प्रभाषित शुद्ध मध्यम गति "-पृ. १०८-१०९ [ १२ ] सूर्य सिद्धान्तोक्त बीज शुद्ध मध्यम गति पृ. १०९ ११४, [ १३ ] ग्रह लाघन की चालन-पृ. ११४-१२९, [ १४ ] ग्रहल घन से सूक्ष्मगणित का पंचांग साधन पद्धति-" [ इ ] मध्यम और शीघ्रगणित पृ. १२९ १३८, [ ई ] सूक्ष्म और स्थूल मानसे भूमध्यगणित " पृ. १२८ १३२, [ १५ ] पान हुए प्रयोगों के अनुसार पंचांग साधन प्रारंभ पृ. १३२-१४१,

## प्रस्ताविक-विवरण विभाग-३

[ १६ ] स्थूल व सूक्ष्म पंचांग के मध्य में समानता के अभिप्राय पृ. १४२ १४६, [ १७ ] सभाओं में पान हुए प्रस्तावों की रिपोर्ट १४७ १५३ [ १८ ] प्रोफेसर गोठ साहब का निवेदन-पृ. १५३-१५८, [ १९ ] कमेटी के कार्य कर्त्ताओं का अभिनन्दन पृ. १५४-१५६, श्रीमंत होलर मरकार की सभापति का निवेदन पृ. १५७-१६० ।

सूचना-काम ( पत्र प्राप्त ) के अंतर्गत आदि में आर रिपोर्ट के पृष्ठों की अलमें लिखे हैं।

मुद्रादक,  
 दीनानाथ शास्त्री चुल्लट.

# पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर की

—)0(—

## रिपोर्ट.

### विस्तृत अनुक्रमणिका.

—)0(—

**ज्योतिषशास्त्र का स्वरूप और पंचांगवाद मिटाने के उपाय-पृ. १-१६**

१-वेदकाल में ज्योतिष का धार्मिक स्वरूप. २-वेदकाल के इधर ज्योतिष का स्वतंत्र स्वरूप. ३-ज्योतिष शास्त्र और धर्मशास्त्र का परस्पर संबंध. ४ शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वरूप और उपयोग. ५-वेध द्वारा पंचांग को शोधन करने की प्रणाली. ६-वेधक्रिया प्रचलित रहने से विभिन्न प्रर्थों की एक नाक्यता. ७ वेधक्रिया के लोप से पंचांगवाद की उत्पत्ति. ८ प्रह्लादपरीय-(अ) पक्ष. ९ नूतन (आल विद्या निशारदों के) पक्ष में दो भेद. १० पूना कमेटी [ब]-पक्ष ११ केतकी-[क]-पक्ष १२ तीनों पक्षों के गुणों की प्रशंसा. १३-और भी विद्वानों के किये हुए महत्वपूर्ण कार्य. १४-तीनों पक्षों के प्रशसनीय कार्य. १५-उन्नति के मार्ग का दिग्दर्शन. १६-आकाशीय दृश्यों से ज्योतिष की सार्थकता. १७-प्राचीनों के किये हुए शोध हमारे लिये पर्याप्त हैं. १८ प्रच्छन्न सायनवादियों के प्रयत्न. १९-इनका पहिला प्रयत्न. २० दूसरा प्रयत्न २१ प्रयत्नों की दिशामूल. २२-नाक्षत्रमान को हटानेवालों के प्रति मेरे प्रश्न. २३-शास्त्र शुद्धि के यह उपाय नहीं हैं २४ चलीबिन्दु से चतुर्ग्रहों की दीर्घगणना करना कठिन है. २५-केंद्रीय और साम्प्रदायिक वर्तमान शास्त्रशुद्ध नहीं है २६-अशुद्धता के कारण ये हैं. २७-न्यूटन शास्त्रशुद्धि के उपाय नहीं, अति किंचित छूट हैं. २८-न्यूटन तो पंचांग को क्वालेण्डर का रूप देना है. २९-सच्चे उन्नति के कार्य. ३०-निरर्थक प्रितडावाद से धर्म और शास्त्र की हानि. ३१-वेधक्रिया के लोप से हानि. ३२-परायणवित्त से सूक्ष्मता का अभाव. ३३-परायणवित्त की पराकाष्ठा और हमारे कर्तव्य. ३४-पितृद मिटाने के लिये किये हुए प्रयत्न. ३५-पंचांग शोधनका उद्भुतमा काय हो गया है ३६-श्री इन्दौर सरकार की नियुक्त कमेटी शोध कार्य कर रही है. ३७-पंचांग शोधन के उपयोगी और तौन प्रयत्न तैयार हुए हैं. ३८-सम्प्रेषण करना अतिम उपाय है. ३९-इस कार्य को पूर्ण करने में मोक्ष और और विद्वानों की सहायता चाहिये. ४०-पंचांग की उन्नति के मुख्य उपाय. ४१-यही अत्यंत आवश्यक कर्तव्य कर्म है. ४२-श्रीमंत होल्कर सरकार से प्रार्थना.

## पहला प्रकरण—सभा की स्थापना—पृ० १—३

१:-सभा स्थापन का हेतु. ( २-४ ):-प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा. ५:-श्रीमंत होलकर सरकार का पत्र १. ६:-उद्देश व समासदों की नियुक्ति. ७:-समय. ८:-सभास्थान व व्यवस्था. ९:-समासदों को सूचना २. १०:-श्रीमन्त सरकारको ब्योरा. ११:-निर्दिष्ट एक सभासद साम्मिलित न होसके. १२:-निर्दिष्ट सभासदों का संघटन १३:-एक सेक्रेटरी की सहायता लीगई-३.

## दूसरा प्रकरण—पंचांग शुद्ध करने की प्रणाली और सभापतिका मंतव्य—पृ० ३—१८

१:-पंचांग शोधन सम्बंध का आरम्भिक कथन. २:-गणेश देवज्ञ कथित शुद्धि परंपरा-४. ३:-सिद्धान्त ग्रंथों में भी कालांतर जन्य अन्तर. ४:-करण ग्रंथोंमें भी कालान्तर जन्य अन्तर. ५:-गणेश देवज्ञ की सूचना व शुद्धि परंपरका इतिहास-५. ६:-पंचांग शोधनमें वेधका प्राधान्य. ७:-प्रत्यक्ष से अंतर का निश्चय व केशव देवज्ञका कथन. ८:-ग्रहलाघव के समय कितना अन्तर था. ( क ) तीनों सिद्धांतों में अंतर. ( ख ) करण ग्रंथोंमें अंतर-१. ( ग ) सिद्धांत ग्रंथोंमें कितना अन्तर था. ( घ ) नये सिद्धांत ग्रंथ बनाने की सूचना. ( च ) करण ग्रंथोंके सुधार की सूचना. ( छ ) ग्रहलाघव के पूर्व कितना अन्तर था-७. ( ज ) वेधका वर्णन. ( झ ) चंद्र चंद्रोच्चमें अन्तर. ( ट ) सूर्यमें अंतर. ( ठ ) ग्रहोंमें अंतर. ( ड ) चाँदन की सूचना. ९:-ग्रहलाघवोक्त बीज-८. १०:-वेधतुल्य पंचांग का धर्मानुष्ठान में उपयोग. ११:-वसिष्ठ ऋषि का प्रमाण. १२:-विधि चिंतामणिमें कही हुई वेधतुल्यता में प्राचीन सम्मति. १३:-भास्कराचार्य का कथन-९. १४:-वर्तमान शंकराचार्य द्वाराका मठकी सम्मति. १५:-तै० आरण्यक का आर्ष प्रमाण-१०. १६:-वर्तमान के सिद्धांत ग्रंथ आर्ष ग्रंथ नहीं हैं. १७:-सिद्धांत ग्रंथका स्वरूप और लक्षण. १८:-करण ग्रंथ का स्वरूप और लक्षण. १९:-सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथों की उपयुक्तता उनके निर्माण काष्ठमें विशेषणी-११. २०:-शुद्ध पंचांगसे तिथ्यादि निर्णय में सिद्ध सिद्धांतका प्रमाण. २१:-केशव और गणेश देवज्ञ के कथन से ग्रहलाघव के समय में ही दो अंशका अन्तर था-१२. २२:-ग्रहलाघव के बाद पंचांगशोधन क्यों न होसका. २३:-वेधक्रिया के लगानेसे भारत में ज्योतिष का अपकर्ष. २४:-वेधक्रिया के द्वारा पाश्चात्य देशों में ज्योतिष का उत्कर्ष-१३. २५:-वेध द्वारा रिस्कंध ज्योतिष का विकास. २६:-पंचांग साधन के लिये ऊंचा गणित चाहिये. २७:-याथार्थों के तुल्य हमें भी शुद्ध पंचांग बनाना चाहिये-१४. २८:-उपर ज्योतिष की उन्नति राजाश्रयसे हुई है. २९:-भारत के राजा लोग भी इसे शुद्ध कराते आए हैं. ३०:-वेधशुद्ध पंचांग बनाने में भारतीय विद्वानों की प्रशंसा (नोट) ज्योतिष की उन्नति के लिये फ्रेंच सरकार के उद्गार-१५, ३१ वेधशुद्ध पंचांग बनाने में

भारतीय राजाओं की प्रवृत्ति ३२-वैधकिया को उन्नत करने के लिये होलकर सरकार की कृपा-दृष्टि-१६, ३३-श्रीमंत सर तुकोजीराय मठागजा की दृक्प्रत्यक्ष शुद्ध पंचांग बनाने की आज्ञा ३४-संवत् १९६० के पंचांग की प्रस्तावना से प्रसिद्ध हाई है। आप दृक्प्रत्यक्ष शुद्ध पंचांग का प्रचार चाहते थे। ३५-वैधशुद्ध पंचांग बनाने में हमारे सरकार की मनीश। ३६-यहां के पंचांग शोधन के लिये ग्रहलाघन को ही चालन देकर शुद्ध करना चाहिये-१७, (अ) इसकी आवश्यकता बतानेवाले कारण (ब) इससे यह पंचांग सर्व सम्मत हो जायगा। इसी से बनाने में भी सुभीता होगा। अब हम सब समासदेने एक मतसे काम करना चाहिये-१८.

### तीसरा प्रकरण—समापति का भाषण—पृष्ठ १९-३२

१:-पंचांग को शुद्ध करने का हेतु २-पंचांग शोधन संबंधी प्रस्ताविक बातें ३:-केवल प्राचीन मताभिमानियों का पंचांग शोधन संबंध में विरोध-१९, और इनके अ, आ, ई, ऊ व ए आक्षेप-२०, ४:-केवल नव्य गणितज्ञों का आँगल पद्धति के पंचांग बनवाने में अनुरोध-२१, ५:-दूरदर्शी विद्वानों का सिद्धांत रूप उपदेश ६:-सूर्यसिद्धान्तादि ग्रंथोंकी अपेक्षा ग्रहलाघन के ग्रह शुद्ध हैं ७:-चालन देने पर ग्रहलाघनय गणित से ही दृक्प्रत्यक्ष पंचांग बन सकता है-२२, ८:-श्रीमंत सरकार की आज्ञा-शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने के लिये है. ९:-दृश्य गणित के पंचांग का स्वरूप १०:- शुद्ध पंचांग का सब लोग आदर करेंगे-२३.

### चौथा प्रकरण—प्रश्नों का चुनाव और विषयोंका विवरण पृ. २३-२४

१:-यहां के सूर्योदयास्त की स्टैंडर्ड टाइम और दिनमान सूक्ष्म गणित से करना चाहिये या नहीं वर्षसारणी लग्न व भावसारणी पंचांग में सूक्ष्म गणित की चाहिये या नहीं ३:- हमारे सिद्धांत ग्रंथोक्त मूलाङ्कों में कितना बीजसंस्कार दिया जाय जिससे कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुए दृग्गणित की ऐक्यता होजाय 'व स्पष्टग्रह सूक्ष्म गणित' किये जाय या नहीं ४:-पंचागीय तिथ्यादि विभागों का साधन सूक्ष्म गणित से किया जाय या नहीं ५:- सूक्ष्म तिथिका ९, १० घड़ी का वृद्धिक्षय होने से धर्मशास्त्र से बाधा आसकती है या नहीं अथवा तिथिका ९, ६ घड़ी का परम वृद्धिक्षय धर्मशास्त्र से सिद्ध होता है या ९, १० घड़ी का ?

### पाँचवाँ प्रकरण—ज्योतिः शास्त्रीय लेखी प्रश्नोत्तर पृ. २४-३६

( प्रश्न कर्ता=ज्यो. पं. रामसुचित त्रिपाठी, उत्तरदाता वि. भू. दीनानाथशास्त्री चुलेट )

#### भाग १

प्रश्न-१:-अस्वस्थता के कारण अभी ( ता. २५-९-२९ से १६-११-२९ ) तक मैं उपस्थित न हो सका था सो कमेटीने अभीतक कितना कार्य किया है'-२४, २:- पंचांग

को यदि सभी विभाग दृक्प्रत्यय से बनाना चाहते हैं तो ( वह ) अर्पसिद्धांत व धर्मशास्त्र से विरुद्ध होनेसे मुझे मान्य नहीं है ३:-केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पंचांग नहीं है ४:-इन प्रश्नों का लेखी उत्तर मिलने से ( बाद में आपका ( यह ) प्रश्न—“ मूलांकों में क्या संस्कार देना चाहिये जिससे दृक्प्रत्यय सिद्ध हो ” — उपस्थित हो सकता है ?

उत्तर-१:-यहाँ के पंचांग में देने के लिये सूर्योदयास्त का स्टैंडर्ड टाईम, दिनमान, वर्षारणी लग्न व भावमारणी, तथा ग्रह स्पष्ट करने की पद्धति मैंने सूक्ष्म गणित से तथ्यार की थी कमेटी ने उसे देना स्वीकार कर लिया है-२५, २:-इस पंचांग के सभी विभागों का गणित दृक्प्रत्यय उपपत्ति से सिद्ध रहेगा इसमें अर्पसिद्धांत व धर्मशास्त्र से क्या विरुद्ध होता है इसका प्रमाण बतलवें-२६, ३:-पंचांग आकाशीय नाटक ही नहीं वस्तुतः आकाशीय प्रतिबिम्ब रूप नकशा है, ४:-ग्रहण इत्यादि में क्यों ? हो ? किंतु “ क्या बीजसंस्कार देने से सूक्ष्मग्रह बनतकते हैं ” इस प्रश्न का आपने अभी तक उत्तर नहीं दिया सो लिख दें-२७,

## भाग २

प्रश्न-९:-पंचांग शोधन का काम जगत के धर्मानुष्ठानोपयोगी होने से इस कार्य को काशी, फलकत्ता, लाहौर, दरभंगा, ग्वालियर, बरोदा, जैपुर, कानपुर व मैसूर कॉलेज के ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापकों का अभिप्राय सुलाया जाय कि; कितनी वस्तु पंचांग में दृक्प्रत्यय से है और कितनी अर्पसिद्धान्तानुसार हैं २८, १:-मूलांक में क्या बीज संस्कार देना-इस संबंध में सूर्यसिद्धांतीय सूर्य को चक्रफल-मंदफल सूक्ष्म रीति में देकर स्पष्ट सूर्य और चंद्र में चारों फल को सूक्ष्म बनाकर स्पष्ट चंद्र से ही पंचांग साधन करना योग्य है । मूलांक में संस्कार करने की आवश्यकता नहीं ७:-विवाह, यात्रा, जातकादि के अदृष्टफला देश में सूर्यसिद्धांतोक्त ही ग्रह लेवें-३०, ८:-दिनमान, सूर्योदयास्त चंद्रादि ग्रहों के उदय अस्त, ग्रहयुति, नक्षत्र ग्रहयुति, नृगेजति, ग्रहण इनके प्रमाकर सिद्धांत से, ज्योतिषांगित से या नाटिकाल से चाहे जिस सं संस्कार-करो सर्वथा मान्य है । -३२.

उत्तर-५:-वैदिककाल में ऋषि लोग सूर्य चंद्र के अंतर को प्रत्यक्ष देखकर सुपर्ण-चिति आदि ९ प्रकार के दृश्यगणित के ही पंचांग बनाते थे । अदृश्यगणित को नहीं-३३, १:-बोधापन ऋषि ने १३ व १७ दिन के पक्षका होना कहा है; तो तिथि के ९, १० घड़ी के श्रद्धिष्य बिना पंद्रह दिन में दो तिथि की घटाबढ़ी नहीं हो सकती ७:-तिथि के ९, ९ घड़ी के घटाबढ़ी करने आर्यभट्ट के बाद श्रुतगणित के पंचांग बनाने के प्रचार से हुई है जैसा कि माधवराय ने शुनिसम्मत सिद्धांतों को असंभाव्य बतलाते हुए १३ व १७ दिन के पक्ष के प्रमाणों को भी अशुद्ध बताया है यह माधवराय की ही गड़ती है- ३४, ८:-अर्प भट्टादि के बनाए हुए मंत्र आर्य नहीं, अर्प तत्वों का छेप करने वाटे हैं । अर्प-



सिद्धान्तों के अनुसार दृश्यगणित से बनाया हुआ हमारा सिद्धान्त प्रभाकर ग्रंथ है उसी पर से ज्यो. ती. नीलकण्ठ ने शुद्ध पंचांग बनाया है-३५,

### भाग ३

## ( ज्यो. पं. त्रिपाठी का दृश्य गणित के पंचांग का स्वीकाररूप निष्कर्ष )

१:-ग्रहलाघव शूल होने से उसपर से पंचांग बनाना योग्य नहीं १०:-पंचांगस्थ ग्रहों में उच्च, क्रांति, मंदफल, शीघ्रफल सूक्ष्मता से लेकर स्पष्ट ग्रह रखना योग्य है। वेध से उनको मिलाता रहे. ११:-सूक्ष्म शब्द से गणित का वास्तविक मान लिया जाय \*-३६.

छाठ प्रकरण- धर्म शास्त्रीय लेखी प्रश्नोत्तर-पृ० ३६-५४

( प्रश्न कर्ता=ध. पं. रामकृष्ण साठे शास्त्री, उत्तर-  
दाता वि. भू. दीनानाथ शास्त्री चुलेट )

### भाग १.

प्रश्न १:-जबकि शुद्ध पंचांग की तिथि का १० घड़ी तक क्षय होता है तब उससे श्राद्ध आदि कार्यों में बाधा आती है-३६, २:-“ शूलपाणिः..... कुतुपोप्राप्तः ” इत्यादि बचनों से जो व्यवस्था है। सो करें-३७.

\* विशेष सूचना—ज्यो. पं. त्रिपाठी के पत्रों को देखने से पता चलता है कि; किसी भी विषय को न तो उन्होंने समझा है, न उसके संबंध में कोई निश्चित मत दिया है और न पूर्ण विरोध किया है। केवल जो उन्होंने प्रमाण लिखे हैं वह उनके ही कथन के विरुद्ध होते हुए सूक्ष्म गणित के पंचांग की स्वीकृति दर्शाते हैं। वस्तुतः सूक्ष्म गणित से कोई भी विषय को हल नहीं कर सकने के कारण पंडितजी का प्रश्न व्यर्थ है। तथापि इनके पत्रों की विचित्र भाषा व परस्पर विरुद्ध शैली से जो बहुतसा निगर्धक भाग विरोधाभास रूप दिखता है वह उतना बिल्कुल निरर्थक नहीं है। वरुं विरक्त यथानुक्रम में बतलाते नहीं आया है क्योंकि इससे भी अधिक शुद्ध पंचांग के विरोध में मेरे प्रथम भाषण ( रिपोर्ट पृ. २०-२१ अ, आ, ई, ऊ, ए, ) में कहा गया है। और वह बड़े २ विद्वानों की टीका, टिप्पणी सहित लेखों द्वारा प्रसिद्ध हो चुका है। किन्तु अभी तक किसी विद्वान से उन सबका यथार्थ उत्तर दिया नहीं गया है। इसलिये उन सबका संग्रह करके “ समापति का संस्कृत पत्र ” नामक पत्र में पंचांग संबंधी कुछ शंकाओं का समाधान कर दिया गया है। उसी के अंतर्गत आप के भी प्रश्नों का उत्तर आजाने से यहां वह अलग नहीं लिखा है।

संपादक

चुलेट शास्त्री.

उत्तर—१—आपने जो निर्णयसिंधु (पृ. २ अक्षय तृतीया निर्णय) की पक्तियों उद्धृत की हैं; उसका निर्णय आपके कथन के विरुद्ध है. २—उसी से तिथि का क्षय १० घड़ी का सिद्ध होता है. ३ इसमें श्राद्ध का गौण काल १५ व मुख्य काल १० घड़ी का कहा है—३७ ४ इसलिय अद्ध आदि कार्य में बाधा नहीं आती है क्योंकि गौण काल में श्राद्ध का होना रुका गया है जिसके प्रमाण १ पञ्चपुराण, २ नारद, ३ दापिका, ४ स्मृत्यर्थ सार—३८, ५ दिवोदास, ६ गोविंदार्णव, ७ हेमाद्रि ८ गोभिल, ९ अनन्त भट्ट, १० माधवार्य, ११ निर्णयामृत, १२ शूलपाणि और १३ कालादर्श इन ग्रंथों के हैं—३९ ४०. ५—माध्याह्न से सायंकाल घटी १५ तक श्राद्ध का गौण काल है ६ ऊमला करने अंतिम निर्णय ऐसा ही किया है ७ मध्याह्न के पहिले विष्णु पूजन के बाद मध्याह्न में भा श्राद्ध हा सकता है—४० ८ दीपिका में भी ऐसा ही लिखा है ९—सूर्योदय से दिनार्ध तक पूर्वाह्न में देव कार्य, दिनार्ध से सूर्यास्त तक अपराह्न में पितृकार्य यह सामान्य काल है—४१ १० श्राद्ध में कुतुपादि ५ मुहूर्त कहे हैं सो १० घड़ी मुख्य काल है ११ दिनमान के तीन भाग पूर्वाह्न माध्याह्न व अपराह्न बाल कहलाते हैं. १२ ९, १० घड़ी का वृद्धि क्षय धर्मशास्त्र सम्मत है—४२, १३ और मनु कात्यायन, गोभिल, पारिजात, पद्मशर और लौगाक्षि के आर्य प्रमाण से सिद्ध है. १४ ५, ६ घड़ी का वृद्धि क्षय धर्मशास्त्र सम्मत नहीं है—४३.

### भाग २

प्रश्न—(सूरा ३ के संबंध में—) १—निर्णयसिंधु में अक्षय तृतीया के ऊपर जो एक दो वचन दिये पड़े वही हमारे छात्र खासदे शास्त्री जाने लिख दिया और हमको यह बाद सम्मत होने से हमने सही करके सभा में पेश किया (२) “कुतुपादि रोहिणातो मुख्य काल । दिन द्वये तद् व्याप्ति पूर्व” (अर्थ—कुतुप् ५ वें मुहूर्त से रोहिण ९ वें मुहूर्त तक की १० घड़ी मुख्य काल है । दो दिन के मुख्य काल में तिथि की व्याप्ति न हो तो पहिले दिन करना) ४४, ३ “कुतुपादारभ्य सायंकाल प्राक्तना नैमित्तिक श्राद्धस्य काल” (अर्थ—पानवें मुहूर्त से सायंकाल के पूर्व अनैमित्तिक श्राद्धका काल कहा है.) ४ श्राद्ध में पंचधाविभक्त अपराह्न को ही मुख्य माना है । उसके अभाव में रोहिणयुक्त कुतुप् ही मुख्य है ५ प्रदोषादि प्रती में भी दश घड़ी क्षय हान से बाधा आती है परंतु समयभाव से लिखना ठट्ट नहीं मानते—४५,

उत्तर—१—जब कि आपके जिगे २ रे व ५ वें काल में १० घड़ी का मुख्य काल कहा गया है तब १० घड़ी के क्षय हुए बिना दोनों दिन में तिथि की अन्वाप्ति हो नहीं सकता ! (काल ३ में) आठ मुहूर्त का अनैमित्तिक मामा य काल कहा होने में पांच मुहूर्त घट जाने पर पूर्ण तिथि में श्राद्ध करना कहा है २—इसमें दिन द्वये अन्वाप्ति के अर्थप्राप्ति न्याय से १० घड़ी का क्षय सिद्ध होता है, ६ घड़ी का नहीं ४६,

## भाग ३

प्रश्न—“ आपके मत से १४ घटी से २४ तक आदिकाल मुख्य माना जाता है और वह १० घटीमित होने से दिन का  $\frac{2}{3}$  रूप है लेकिन इसका आधा २ काल दूसरे तीसरे भाग में जाता है इससे यह नहीं सिद्ध होना कि १० घटी का क्षय करना सम्मत है-४६, २:-जैसे सप्तमी २४ व अष्टमी १४ घटी है। पहिले दिन अपराह्न काल में अष्टमी न होने से आद्व कर सकते नहीं दूसरे दिन गौण कुतुपयुक्त रोहिण काल में भी नहीं है इसलिये अष्टमी आद्व में आपत्ति आती है ३:-इसी रीति से ३६, २६ त्रयोदशी के प्रदोष में दोष आता है-४७,

उत्तर— दिनत्रिभाग के इधर उधर आधा २ भाग जाने से मुख्य काल के एक देश में व्याप्ति रहती है। और प्रकारान्तर से मुख्य काल भी रहता है इन प्रमाणों से बाधा न आते १० घटी का क्षय सिद्ध होता है-४७, २:-जैसे आपके उदाहरण में घटी २०-३० के अपराह्न काल में २४ घटी बाद अपराह्न के एक देश में अष्टमी में आद्व कर सकते हैं। अनैमित्तिक-दूसरे दिन १४ घटी कुतुपादि पांच मुहूर्त (८-१८ घटी) में होने से आद्व कर सकते हैं ३:-इसी तरह प्रदोष में भी दोष नहीं है।

## भाग ४ धर्म शास्त्रीय निर्णय ।

( प्रस्ताविक ) “ बाण ५ वृद्धिः, रम ६ क्षयः ” सत्य है या नहीं इस झगड़े को पूर्ण निपटाने के लिये ६ प्रश्नों को हल करने से इसका निर्णय होजाता है व६ यह है-४८, १:- धर्म के प्रमाण भूत कुल ग्रंथों में प्रस्तुत वचन कहा नहीं गया है-४९, २:-जबकि ६० घटी में १ तिथि के ४८ मिनिट बाद चंद्रोदय या अस्त में मध्यमान्तर होता है तब प्रत्यक्ष में ४० या ५६ मिनिट तक अंतर दिखने से स्पष्ट होजाता है कि तिथि का वृद्धिक्षय १० घटी तक दृक्प्रत्यय सिद्ध है। इसलिये ५,६ घटी वृद्धिक्षय का कथन भ्रान्ति मूलक है काल्यन स्मृति से १० घटी के वृद्धिक्षय के दो प्रमाण व उदाहरण-५०, ३:-चंद्र में ५ संस्कार करने पर वह दृक्प्रत्यय शुद्ध होता है। केवल मंदफल से स्पष्ट नहीं होता ५१, ४:-चंद्रोदयास्त की घंटा मिनिटों पर से तिथि की शुद्धता की परीक्षा होसकती है-५२, ऋषि लोग प्रत्यक्ष सूक्ष्ममान को मानते थे सिर्फ आर्यभट्ट के बाद स्थूलमन का धीरे धीरे प्रवेश होते हुए गत ४०० वर्षों में बढ़ गया है उन प्राचीन व सर्वाचीनों के कथन-५३, इन सबका विचार करते ९,१० घटी का वृद्धिक्षय निश्चित होता है। ५,६ घटी का नहीं ५४ \*

\* यद्यपि इस प्रकार धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के अनेकानेक प्रमाण देकर समझाने पर भी ध. पं. साठेशास्त्री ने न तो किसी नियम को हल किया न पुनरुक्त के सिवाय विरोध कर

## सातवाँ प्रकरण—(ज्यो. ती. नालकंठ की ) प्रासंगिक अनुमति- पृ. ५४-६२

१:-म. म. मुधाकर द्विवेदी कृत ग्रहलाघव की संस्कृत टीका में लिखे सिद्धांत ग्रंथाय प्रहों को वास्तविक समझकर दो कोष्टकों द्वारा ग्रहलाघव में स्थूलता है इस उद्देश से लिखा पत्र-५४-५६, २:-प्रचलित इन्दोर पंचांग पूर्ण ग्रहलाघवाय नहीं है क्योंकि इसमें के दिनमान रविको उदय अस्त का रैंटर्ड टाईम नव्य गणित के कोष्टक से बनाया गया है तब सभी पंचांग शुद्ध गणित से बर्याँ न किया जाय-५७, ३:-ग्रहलाघव के गणित में सूक्ष्मानसे बहुत अशुद्धी है-५८, ४:-पंचांग साधन सूक्ष्म वेधतुल्य गणितसे ही करना चाहिये-५९-६०, ५:-चराह मिहिर ने तिथि का वृद्धिक्षय ६ घड़ी तक का बताया है उसका तथा रवि चन्द्र की दिन गति दर्शक कोष्टकों को बताकर पंचांग दोषन के मूल प्रश्नों का उत्तर दिया है तथा विद्याभूषण दीनानाथशास्त्री चुलेट कृत सिद्धांतप्रभाकर और प्रभाकर पंचांग के महत्त्व को लोकमान्य तिलक व श्री. नाइक के अभिप्राय सह बताकर उसी के आधारपर सूक्ष्म गणित का संघट्ट १९८९ का यशवंत पंचांग तयार किया है सो सभा में पेश करता हूँ-६१-६२. ( अंतिम फाळम पांचों पत्रों में का सार है. )

## ( अ ) आठवाँ प्रकरण—सभापति का संस्कृत पत्र- पृ. ६३-९३ सिद्धान्त ग्रंथों का इतिहास पृ. ६३-६९

१:-हेतु=प्रस्तुत कमेटी के स्थापना का कारण शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनने का है २:-ग्रहलाघव गणित के पंचांग स्थूल हैं ३:-ज्योति. शास्त्र का मुख्य आधार वेध है क्योंकि यह दृश्य ज्योतिषों का ही शास्त्र है-६३, ४:-वेध ऐने की पद्धति की उपपत्ति दनप्रलय है इसके तब मैंने “वर्तमान कल्पना ( पृ. ५३ ) के अंत में उनके ही बंधन को पुष्ट करने वाले १-६ श्लोक लिखे भेजने पर भी आपका उसपर तनिक भी ध्यान नहीं पहुँचने में मौनवर्तन किया ऐसा है तो भी जब कि कमलाकर भट्ट भट्टराय भट्टा विद्वान ने दृष्ट व अदृष्ट कायोंके लिये दृष्ट व अदृष्ट गणित को लेना “तत्त्व विवेक ” ग्रंथ में लिखा है और आज तक किसी भी विद्वान से इसका योग्य समाधान न होकर सभी कायों में दृष्ट गणित के पंचांगकारों उपयोग करें ऐसा भिन्न न हुआ है इत्यादि कारण से तथा अनेक शंकाओं का समाधान करने के लिये ( रि. पृ. ५३-९३ के ) संस्कृत पत्र में विस्तृत रीति से योग्य निर्णय किया गया है । उसे मित्रावर इस धर्मशास्त्रीय निर्णय को पूर्ण समझे ।

५:-अंतर पडजाने पर उसे दूर करने के लिये बीज संस्कार किया जाता है ६:-शक १४४२ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव शुद्ध था ७:-वर्तमान में ग्रहलाघव को चालन देने की आवश्यकता है ८:-अर्वाचीन सिद्धांत ग्रंथों में स्थूलता रहने का मूल कारण वेध का अभाव है ९:-प्राचीन काल में दृश्यगणित से पंचांग बनाए जाते थे उसके प्रमाण-६४, उस काल में स्पष्ट ग्रह से मध्यम निश्चित करने से स्पष्ट शुद्ध रहता था ११:-शक ४२७ तक दृश्य गणित से पंचांग बनाए जाते थे १२:-प्राचीन आर्य सिद्धांत पर से शक ४२१ में आर्यभट्ट ने ग्रंथ बनाया । शक ५५० में ब्रह्मगुप्त ने आर्य सिद्धान्त की मूल निकाली १३:-हमारे सिद्धान्त प्रभाकर की पाँचों सिद्धांतों से तुलना-१५, बराहमिहिरोक्त नक्षत्रों के परिमाण सूक्ष्ममान के तुल्य हैं । सिद्धान्तोक्तमान सायनमिश्रित स्थूल हैं । इसका कोष्टक-६६, नव्य सूर्य सिद्धान्त यवननिर्मित न होकर आर्यभट्ट की रचना है १५:-ऐसा ग्रहगणित (पृ. १५५) में केतकर व दीक्षित ने कहा है १६:-उच्च तथा पातों का अन्वेषण सिद्धान्तकारों ने किया है १७:-प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के २० नाम; इनमें से १८ आर्य ग्रंथ हैं । ऋषि प्रणीत ग्रंथों के आधार व नाम पर नव्य ग्रंथ बनाए वह आर्य नहीं हैं-६७, १८:-इसीलिये इनके आपस में भिन्नता है । १९:-सूर्य सिद्धान्त में तो उसका कर्ता यवनाचार्य कहा है-६८, इसमें लिखे कृत युगान्त के २१६५०३० वर्षमान लेना असंभवित बात है । क्योंकि इसीमें रवि परम क्रांति (२३° ५८' ५") शक पूर्व २१४७ वर्ष की लिखी है २०:-रोमक और वसिष्ठ सिद्धांत श्रीपेण व विष्णुचंद्र ने शक ५०० के करीब बनाए हैं २१:-उक्त बातों से स्पष्ट है कि यह आर्य ग्रंथ नहीं हैं-६९.

### (आ) पंचांग शोधन के लिये आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न-पृ:-६९-७२

२२:-वेध द्वारा इनके गणित में कितना अंतर है सो केशव देवज्ञ ने बताया है २३:-गणेश देवज्ञ ने भी वेध लेकर उसे पुनः शुद्ध किया है २४:-भनिष्य में इसे चालन देकर शुद्ध करते जाँच ऐसा स्वयं गणेश देवज्ञ ने ग्रह लाघव में कहा है उसे अब ४०९ वर्ष हो गए हैं इसलिये अब चालन देना चाहिये-७०, २५:-वेध द्वारा चालन देते रहना ऐसा मास्कराचार्य ने भी कहा है. २६:-ग्रह लाघव को चालन देने से आर्यपरंपरा का छाप नहीं होता है; क्योंकि उसमें बहुत ही अंतर पड़ गया है. २७:-श्री बापूदेव शास्त्री आदि ने नूतन प्रणाली से पंचांग बनाए हैं-७१, २८:-लोकमन्य विलक ने शक १८४० से २३ व्ययनाशों के पंचांग बनवाये हैं. २९:-महाराष्ट्रीय पंचांग मंडळ में सभी पक्ष के सभासदों ने दृश्य गणित से पंचांग बनाना स्वीकृत किया है. ३०:-वर्तमान में सिद्धान्त ग्रंथ बनाने की आवश्यकता देख कर हमने "सिद्धान्त प्रभाकर" नामक ग्रंथ की रचना की है:-७२, उसीके आधारपर बनाई हुई सारणी से ज्यो. ती. नीलकंठ ने शक १८५२ का यशवंत पंचांग दृश्य गणित का बनाया है-७३.

## सातवाँ प्रकरण—(ज्यो. ती. नीलकंठ की ) प्रासंगिक अनुमति- पृ. ५४-६२

१:-म. म. सुधाकर द्विवेदी कृत ग्रहलाघव की संस्कृत टीका में लिखे सिद्धांत ग्रंथाय ग्रहों को वास्तविक समझकर दो कोष्ठकों द्वारा ग्रहलाघव में स्थूलता है इस उद्देश से लिखा पत्र-५४-५६, २:-प्रचलित इन्दोर पंचांग पूर्ण ग्रहलाघवाय नहीं है क्योंकि इसमें के दिनमान रविको उदय अस्त का स्टैंडर्ड टाईम नव्य गणित के कोष्ठक से बनाया गया है तब सभी पंचांग शुद्ध गणित से क्यों न किया जाय-५७, ३:-ग्रहलाघव के गणित में सूक्ष्मानुसे बहुत अशुद्धी है-५८, ४:-पंचांग साधन सूक्ष्म वेधतुल्य गणितसे ही करना चाहिये-५९-६०, ५:-बराह मिहिर ने तिथि का वृद्धिक्षय ६ घड़ी तक का बताया है उसका तथा रवि चंद्र की दिन गति दर्शक कोष्ठकों को बताकर पंचांग शोधन के मूल प्रश्नों का उल्लेख किया है तथा विद्याभूषण दीनानाथशास्त्री चुलेट कृत सिद्धांतप्रभाकर और प्रभाकर पंचांग के महत्व को लोकमान्य तिलक व प्रो. नाइक के अभिप्राय सह बताकर उसी के आधारपर सूक्ष्म गणित का संवत् १९८९ का यशवंत पंचांग तयार किया है सो सभा में पेश करता हूँ-६१-६२. ( अंतिम फालगुण पाचों पत्रों में का सार है. )

## ( अ ) आठवाँ प्रकरण—सभापति का संस्कृत पत्र- पृ. ६३-९३ सिद्धान्त ग्रंथों का इतिहास पृ. ६३-६९

१:-हेतु=प्रस्तुत कमेटी के स्थापना का कारण शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने का है २:-ग्रहलाघव गणित के पंचांग स्थूल हैं ३:-ज्योतिः शास्त्र का मुख्य आधार वेध है क्योंकि यह दृश्य ज्योतिषों का ही शास्त्र है-६३, ४:-वेध लेने की पद्धति की उपपत्ति दृष्टप्रत्यक्ष है सके तब मैंने “वर्तमान कल्पना ( पृ. ९१ ) के लेखमें उनके ही कथन को पुष्ट करने वाले १-६ श्लोक लिखे भेजने पर भी आपका उत्तरपर तनिक भी ध्यान नहीं पहुँचने से मौनानुबन्धन किया ऐसा है तो भी जब कि कमलाकर मठ सदस्य महा विद्वान् ने दृष्ट व अदृष्ट कार्यों के लिये दृष्ट व अदृष्ट गणित को लेना “ तत्त्व विवेक ” ग्रंथ में लिखा है और आज तक किसी भी विद्वान् से इसका योग्य समाधान न होकर सभी कार्यों में दृष्ट गणित के पंचांगकाही उपयोग करें ऐसा सिद्ध न हुआ है इत्यादि कारण से तथा अनेक शंकाओं का समाधान करने के लिये ( रि. पृ. ६३-९३ के ) संस्कृत पत्र में विस्तृत रीति से योग्य निर्णय किया गया है । उसे मिलाकर इस धर्मशास्त्रीय निर्णय की पूर्ण समझें ।

संपादक,  
चुलेटशास्त्री.

५:-अंतर पडजाने पर उसे दूर करने के लिये बीज संस्कार किया जाता है ६:-शक १४४२ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव शुद्ध था ७:-वर्तमान में ग्रहलाघव को चालन देने की आवश्यकता है ८:-अर्वाचीन सिद्धांत ग्रंथों में स्थूलता रहने का मूल कारण वेध का अभाव है ९:-प्राचीन काल में दृश्यगणित से पंचांग बनाए जाते थे उसके प्रमाण-६४, उस काल में स्पष्ट ग्रह से मध्यम निश्चित करने से स्पष्ट शुद्ध रहता था ११:-शक ४२७ तक दृश्य गणित से पंचांग बनाए जाते थे १२:-प्राचीन आर्य सिद्धान्त पर से शक ४२१ में आर्यभट्ट ने ग्रंथ बनाया । शक ५५० में ब्रह्मगुप्त ने आर्य सिद्धान्त की मूल निकाली १३:-हमारे सिद्धान्त प्रमाकर की पाँचों सिद्धांतों से तुलना-६५, बराहमिहिरोक्त नक्षत्रों के परिमाण सूक्ष्ममान के तुल्य हैं । सिद्धान्तोक्तमान सायनाभिहित स्थूल हैं । इसका कोष्टक-६६, नव्य सूर्य सिद्धान्त यवननिर्मित न होकर आर्यभट्ट की रचना है १५:-ऐसा ग्रहगणित (पृ. १५५) में केतकर व दीक्षित ने कहा है १६:-उच्च तथा पातों का अभ्येपण सिद्धान्तकारों ने किया है १७:-प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के २० नाम; इनमें से १८ आर्य ग्रंथ हैं । ऋषि प्रणीत ग्रंथों के आधार व नाम पर नव्य ग्रंथ बनाए वह आर्य नहीं हैं-६७, १८:-इसीलिये इनके आपस में भिन्नता है । १९:-सूर्य सिद्धान्त में तो उसका कर्ता यवनाचार्य कहा है-६८, इसमें लिखे कृत युगान्त के २१६५०३० वर्षमान लेना असंभवित बात है । क्योंकि इसीमें रावि परम क्रांति (२३° ५८' ५") शक पूर्व २१४७ वर्ष की लिखी है २०:-रोमक और वसिष्ठ सिद्धांत श्रीपेण व विष्णुचंद्र ने शक ५०० के करीब बनाए हैं २१:-उक्त बातों से स्पष्ट है कि यह आर्य ग्रंथ नहीं हैं-६९.

### (आ) पंचांग शोधन के लिये आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न-पृ:-६९-७२

२२:-वेध द्वारा इनके गणित में कितना अंतर है सो केशव दैवज्ञ ने बताया है २३:-गणेश दैवज्ञ ने भी वेध लेकर उसे पुनः शुद्ध किया है २४:-अभिष्य में इसे चालन देकर शुद्ध करते जाँच ऐसा स्वयं गणेश दैवज्ञ ने ग्रह लाघव में कहा है उसे अब ४०९ वर्ष हो गए हैं इसलिये अब चालन देना चाहिये-७०, २५:-वेध द्वारा चालन देते रहना ऐसा भास्कराचार्य ने भी कहा है. २६:-ग्रह लाघव को चालन देने से आर्यपरंपरा का छाप नहीं होता है; क्योंकि उसमें बहुत ही अंतर पड गया है. २७:-श्री बापूदेव शास्त्री आदि ने नूतन प्रणाली से पंचांग बनाए हैं-७१, २८:-लोकमान्य तिलक ने शक १८४० से २३ अघनाशों के पंचांग बनवाये हैं. २९:-महाराष्ट्रीय पंचांग मंडल में सभी पक्ष के समासदों ने दृष्य गणित से पंचांग बनाना स्वीकृत किया है. ३०:-वर्तमान में सिद्धान्त ग्रंथ बनाने की आवश्यकता देख कर हमने "सिद्धान्त प्रमाकर" नामक ग्रंथ की रचना की है-७२, उसीके आधारपर बनाई हुई सारणी से ज्यो. ती. नीलकंठ ने शक १८५२ का पशवंत पंचांग दृश्य गणित का बनाया है-७३.

## ( इ ) श्रौतकाल में दृश्यगणित के पंचांग-पृ. ७३-७७,

३२-वैदिककाल में भी दृश्यगणित के ही पंचांग बनाए जाते थे. ३३ प्रत्यक्ष में चंद्र की स्थिति को देखकर दिन नक्षत्र का निश्चय किया जाता था ७३, ३४ वैदिककाल में सुपर्णचिति नामक पंचांग बनाया जाता था, इसका अन्वेषण हमने ही किया है ३५-मह नक्षत्रों को देखकर कालमापन किया जाता था ३६ सूर्यचंद्रान्तर से तिथि बताई जाती थी-७४ ३७ सूर्यचंद्रान्तर १२ अशों का दृश्य होने पर १ तिथि होती है ३८-अमावास्या और पौर्णिमा भा दृश्यगणित से ही निश्चित की जाती थी. ३९ श्रौतयाग घेदकालीन वेध लेने के प्रयोग थे. ४० सूर्यास्तोत्तर चंद्रास्त के मुहूर्ता तारों से भी तिथियों को निश्चित करना कहा है ७५, ४१-एक बार तिथिक्षय या वृद्धि होने पर ६ दिनों तक वेध नहीं लिया जाता था इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिथि का वृद्धिक्षय १० घड़ी तक ही होता है. ४२-इतने प्राचीनकाल में ऋषियों ने सूक्ष्ममान को निश्चित कर लिया था यह कितने गौरवकी बात है-७६ ४३ ऋषियों ने तारका पुर्जों का जैसा वर्णन किया है वह सब ठीक मिलता है. ४४-यज्ञों में आवाश के दृश्य, भूमिपर बतलाए जाते थे क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगों की ही उस समय वस्तु सज्जा थी ४५ काल मापन भी यहाँ से किया जाता था ४६-नक्षत्र और राशि चक्र का आत्म स्थान अश्विनी के आरंभ से गिना जाता था ७७,

## ( ई ) स्मार्तकाल में दृश्यगणित के पंचांग-पृ. ७७-८०

४७-स्मार्त काल में भी दृश्यगणित से ही पंचांग साधन किया जाता था। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र तिथि, योग, कारण, चंद्रोदयास्तादि के पृथक् पृथक् प्रमाण ७०, ४८ इस प्रकार श्रौत और स्मार्त काल में दृश्यगणित ही प्रचलित था ४९-शक पूर्व ३७५१७ वर्ष से शकावत तक ३२ ग्रंथ और शक १४४० तक ७ ग्रंथ ऐसे ३८ ग्रंथ बने हैं उनके नाम और वर्ष ७९, यह दृश्यगणित के प्रतिपादक हैं ९०-उक्त आर्व ग्रंथों के आधार पर अर्थाचन ज्योतिष के ११ ग्रंथ कर्ता ( शक ४२१-१५८० तक ) हुए हैं, इनमें सिर्फ ६ वेधकर्ता थे-८०.

## ( उ ) शास्त्रशुद्ध पंचांग का स्वरूप और प्रणाली-पृ. ८१-८४

९१-ज्योतिष सूत्र शुद्ध पंचांग बनाने के और प्रवर्तित करने के प्रकार। निर्ग १ मद्राज से सूर्य स्पष्ट होता है ५२ चंद्र का। सूर्य, मद्राज, चंद्र, पार्श्व में ५ मद्राज देने से वह स्पष्ट होता है ५३-इस सूत्र चंद्र में तिथिका वृद्धिक्षय १० घड़ी तक होता है-८१ ५४-शुद्ध गणित पद्धति से तिथि का वृद्धिक्षय १० घड़ी तक ही होता है ५५-इस पद्धति का शोध



हमने लगाया है उस से वृद्धिक्षय का निर्णय करने का प्रकार और अंकों की संख्यादर्शक कोष्टक-८२, ५६:-स्मृति ग्रंथों में सत्रह दिन के पक्ष का वर्णन ५७:-इष्टि ग्रंथों में तेरह दिन के पक्ष का वर्णन ५८:-गर्गाचार्यादि के मतमें १३ दिन के पक्ष का उल्लेख ५९:-भारतीय युद्ध में १३ दिन का पक्ष आया था ६०:-ब्राह्म मिहर ने १७ दिन का पक्ष कहा है ६१:-वर्तमान मुहूर्त ग्रंथों में भी १३ दिन का पक्ष कहा है-८३, ६२:-बोधायन ऋषि ने १३ और १७ दिन के पक्षों का होना कहा है-८४.

## (क)-तिथि का वृद्धिक्षय ५।६ घड़ी का शुद्ध है या ९।१०

घड़ी का-पृ. ८४-८७

६३:-नौ, दश घड़ी के वृद्धिक्षय बिना १७ और १३ दिनों का पक्ष हो नहीं सकता इसी लिये हमने "अंक वृद्धिर्दश १० क्षयः" कहा है ६४:-सिद्धांत प्रभाकर के सूक्ष्म गणित से तिथि का ९।१० घड़ी का ही वृद्धिक्षय होता है ६५:-कालम ४९ में लिखे हुए आर्षग्रंथों में तिथि का वृद्धिक्षय ९, १० घड़ी का लिखा सूक्ष्म है। और कालम ५० में लिखे वर्तमान ग्रंथों में ९, ६ घड़ी का लिखा स्थूल है-८४, ६६:-उक्त ९, १० परमान है इस लिये मध्यम मान से वह ७।१ घड़ी का अर्षग्रंथों में कहा गया है. ६७:-चंद्र को केवल एकही मंदफल संस्कार देने से वह शुद्ध नहीं होता और न उससे १३, १७ दिन का पक्ष होता है। किंतु ५ संस्कारों से शुद्ध चंद्र होता है और उसी से १३, १७ दिन का पक्ष होता है ६८:-धर्म शास्त्रीय तिथि निर्णय भी सूक्ष्मतिथि के उपलक्ष्य में कहे गये हैं ८९, ९९:-माधवार्य व कमलाकरादि को चंद्र स्पष्ट के पांच संस्कार मालूम न हो सके थे. ७०:-आर्ष ग्रंथों में दिन के दो भाग का गौण काल और तीन विभाग का मुख्य काल कहा है ७१:-क्रौंच ग्रंथ व त्रिकाल संध्यादि कर्म में भी तीन भाग क्रौंच १०, १० घड़ी के कहे गए हैं. ७२:-तिथि की दो दिन के मुख्य काल में अव्याप्ति व सौम्यैकदेश. व्याप्ति ९, १० घड़ी के वृद्धि क्षय बिना हो नहीं सकती-८६, ७३:-इस प्रकार अंक ९ वृद्धि १० दश क्षय सिद्ध होता है-८७,

## (ख)-शुद्ध गणित के पंचांग पर आक्षेप और उनका

खंडन पृ. ८७-९५

७४:-'वाण ५ वृद्धि २३ ६ क्षय' संबंधी आक्षेप ७५:-श्रीज और संस्कार संबंधी आक्षेप ७६:-अट्टार्ष संबंधी आक्षेप ८७, ७७:-उपरोक्त आक्षेपों का खंडन ७८:-श्रीज और संस्कार देकर ही दक्षप्रत्यय शुद्ध पंचांग की संपूर्ण कार्यों में प्राप्ति होती है अशुद्ध की नहीं

इस विषय के प्रमाण-८८, ७९-सूर्य फल में कालान्तर जन्य संस्कार चाहिये-८०-चंद्रफल में वीज और संस्कार चाहिये ८१-तिथियों को भी वेध द्वारा शुद्ध करनी चाहिये-८९, ८२-तिथियों के लिये धर्म शास्त्रीय प्रमाण ८३-धर्मशास्त्र ग्रंथों में तिथि वृद्धिक्षय के परमान के प्रमाण ८४-पंचमी, दशमी, चतुर्दशी का सामान्य वृद्धिक्षय-९०, ८५-तिथि के वृद्धिक्षय का प्रमाण दर्शक कोष्टक-९१, ८६-इससे ९, १० घड़ी का वृद्धिक्षय सिद्ध होता है। ५, ९ घड़ी का असिद्ध व अशुद्ध है-९२

## (ऐ) दृक्प्रत्यय गणित का शुद्ध नाक्षत्र (निरयण) पंचांग बनाना योग्य है. पृ. ९२-९३

८७-वेद और ज्योतिष का एक स्वरूप और अंगगी भाव संबंध है ८८-चौदह विद्या और १४ धर्म प्रमाण का एक स्वरूप तथा अंगगी भाव संबंध है ८९-इस सिद्धान्त को नहीं समझनेवाले अर्वाचीन विद्वान उक्त शास्त्रशुद्ध प्रणाली को बदलना चाहते हैं तथा धर्म और शास्त्र को अलग २ बताते हैं- ९२, ९०-हमारे आपस में पक्ष भेद का झगडा खडा करके सापनवादी बीच में घुसना चाहते हैं ९१-किंतु इससे भारतीय ज्योतिः शास्त्र की उन्नति नहीं होगी, इसलिये शुद्ध नाक्षत्र (निरयण) मानके पंचांग को ही प्रचलित रखना चाहिये-९३,

## पंचांग शोधन के मूलतत्त्व=गणितविभाग २

### नवाँ प्रकरण-वर्ष मान शोधन पृ. ९४-१०१

१:-प्रस्ताविक निवेदन में पंचांग शुद्ध करने की पद्धति का दिग्दर्शन-९४, २:-ग्रहों का प्रदक्षिणा फल ( भगणादिन ) ही उन २ ग्रहों का वर्षमान कहलाता है उसे शोधने की आवश्यकता ३:-पंचांग गणित में वर्ष मान को शुद्ध रखना मुख्य कार्य है ४:-वर्ष मान के संबंध में भास्कराचार्यादि का कथन व उत्पत्ति निरूपण ५:-ग्रहों के उच्च स्थानों की गति का अभी तक पूरा पता नहीं लगा था-९९, ६:-इसलिये मध्यम गति में उच्च गति मिलने से मन्द केन्द्रासन्न भगण कहे गए हैं-७ ८:-आगे के कोष्टक १ में इस विषय का स्पष्टीकरण किया गया है ९:-अन्यान्य ग्रहों के भगणों में केन्द्रीयमान कितना और क्यों कर है-९६, १०:-संपूर्ण भारतीय ग्रंथों में नाक्षत्रमान ही कहा गया है ११:-नामायण आदि ग्रंथों में स्थिर ( तारका पुंज ) नाक्षत्र कहे गए हैं १२:-यदि हम नाक्षत्र मान को छोड़कर केन्द्राय या साम्प्रदायिक मान लें तो आज तक का भारतीय शोध व इतिहास का कोप होकर धर्म ग्रंथ

व्यर्थ हो जायगे-१७, ( कालम ७ के अंतर्गत ) सौर, आर्य, व ब्रह्म-सिद्धान्तोक्त भगणों के अंतर्गत शुद्ध-केंद्रीय व नाक्षत्र परिमाण दर्शक कोष्टक भाग १ - २८, इनके भगणों में मिश्रित भग को अलग अलग दर्शनेवाला भाग २ - ९९, १३-शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष के निर्णय में साम्प्रतिक वर्षमान का विवेचन ( कोष्टक २ अ ) केंद्रांतर व अयनान्तर के पृथक् पृथक् परिमाणों की एक वाक्यता दर्शकसमीकरण ( आ ) कल्प और सौर वर्ष में उच्च के भगण और उच्चगति की एक वाक्यता दर्शक समीकरण-१००, [३] सिद्धांत ग्रंथोंके अयन के भगण व अयनगति की शुद्ध मान से एक वाक्यता दर्शक समीकरण [३] वर्षमान, उच्च [ केंद्र ] गति व अयन गति की शुद्ध मान से एक वाक्यता दर्शक समीकरण

## दसवां प्रकरण-शुद्ध निरयणमान की प्रामाण्यता और शुद्धता

पृ १०१-१०६

१४:-सिद्धांत ग्रंथों के वर्षमान केंद्रासन्न हैं किंतु यह नाक्षत्रमान के उद्देश से कहे जाने के कारण नाक्षत्रमान ही मुख्य है-१०१, १५:-सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमानों से शुद्ध नाक्षत्र वर्ष और नाक्षत्र से सिद्धान्तोक्त वर्षमान साधन करने का कोष्टक नंबर ३, १६:-नाक्षत्र परिमाण का परंपरा प्रामाण्य-१०२, १७:-आकृति विशिष्ट अचल ताराओं से नाक्षत्र परिमाण शुद्ध रहते हैं १८:-गणित शास्त्र से-नाक्षत्र सौर वर्ष शुद्ध है; केंद्रीय +११."९ व साधन-५०."२ वर्षमान रवि के चक्र ( ३६० ) भोग से उपादा व कम होने से-अशुद्ध है १९:-ऋतु दिनगति आदि भूगर्भीय कार्य शुद्ध केंद्रीयमान से और ऋतु दिनमानादि भूपृष्ठीय कार्य शुद्ध सायनमान से करना योग्य है-१०३, १०:-किंतु यह चल होने के कारण इनसे दीर्घ काल का नाप ठीक नहीं हो सकता २१:-घड़ी ( वाच्-) के उदाहरण से नाक्षत्र मान की सिद्धता २२:-मध्यम सूर्य की समानता से वर्षमान की निश्चित करें स्पष्ट सूर्य से नहीं २३:-स्पष्ट सूर्य से वर्षमान भिन्न २ होते हैं । बारह राशि के १२ प्रकार के वर्षमान दर्शक कोष्टक नं. ४, २४:-इसलिये मध्यम सूर्य साधित नाक्षत्र वर्ष स्थिर व शुद्ध होता है, १०४, २५:-बराहमिहिर के कहे हुए पाँचों सिद्धान्तों में सूर्य सिद्धांत सूक्ष्ममान के तुल्य है २६:-प्राचीनग्रंथोंक युग परिमाण ९ वर्ष से बढ़ते हुए १८०००० वर्ष तक बढ़ते गए, २७:-नव्य सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथों से तो चारों युगों के लाखों वर्ष गिने जाने लगे-१०५, २८:-प्राचीन सूर्य सिद्धान्त के भगणों की वास्तविक (सूक्ष्म) मान से तुलना २९:-भगणों के मोटेपनको देखते उनमें कलाओंका अंतर होना स्वाभाविक बात है-१०६

## ग्यारहवां प्रकरण-सूर्य सिद्धान्त में चालन-(अ)-ग्रंथोक्त से हमारे कहे हुए बीज की शुद्धता पृ. १०६-१०८

३०:-ग्रंथोक्त बीज केंद्रीय भाग मिश्रित है-१०६, [कोष्टक] सूर्य सिद्धान्तोक्त शक ४२७ के क्षेपकों में बीज संस्कार और ग्रहों की शुद्ध वर्ष गति-१०७, म. पं. द्विवेदीका मत और छद्मसिद्धान्त का प्रमाण ३१:- शक ४२७ से आज तक के मध्यम ग्रह उक्त वर्षमान से शुद्ध बन सकते हैं। हजारों लाखों वर्ष के निम्न लिखित परिमाण से करें-१०८

### (आ)-सिद्धान्त प्रभाकरोक्त शुद्ध मध्यम गति-पृ. १०८-१०९

३२:- सूर्य चंद्र, चंद्रोच्च, राहु, भौम, बुध, गुरु, शुक व शनि के शुद्ध भगण दिवस १०८, शुद्ध मध्यम गति के ध्रुवक तथा अक्षात्मक दिन गति ३३:-उक्त क्षेपक व ध्रुव वर्तमानकालिक ग्रहसाधन परने की पद्धति ३४:-उक्त चालन देकर शुद्ध किये हुए सूर्य सिद्धान्त के मान प्रभाकर सिद्धान्त के तुल्य शुद्ध हैं-१०९,

### बारहवां प्रकरण-सूर्य सिद्धान्तोक्त बीज शुद्ध मध्यम गति-पृ. १०९-११४

३५:-बुधका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति ३६:-शुक का भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति ३७:-शनि का भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति प्रकार-ता म मध्यम रवि साधन ३८:-मंगलका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति-१११, ३९-गुरुका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति ४०:-शनि का भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति-११२, ४१:-चंद्र का भगण काल शोधन, शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति ४२:-चंद्रोच्च का भगण काल शोधन शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति-११३, ४३:-राहुका भगण काल शोधन शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति ४४-उक्त परिमाणों से द्वाप्रत्यय शुद्ध पंचांग (ग्रह) बनाने का दिग्दर्शन-११४

### तेरहवां प्रकरण-ग्रह लाघव को चालन-११४-११९

१:-अन्यान्य सिद्धान्त ग्रंथों के ग्रहों की अपेक्षा ग्रहलाघव के ग्रह शुद्ध हैं-११४, २:-भारत वर्ष में अभी तक ग्रहलाघव के ही आधार से बहुधा सर्वत्र पंचांग बनाए जाते हैं-इसलिये ग्रह लाघव को चालन देकर शुद्ध पंचांग साधन की इति बताते हैं,—

ग्रहलाघव के क्षेपको में बीज संस्कार-११५, ४ः-शक १४४२ आरंभ के ग्रहलाघवोक्त क्षेपक ( मध्यम ग्रह ) तानों सिद्धान्तोक्त मानों से किनेने शुद्ध हैं और उनकी परस्पर में शुद्ध मानसे तुलना दर्शक कोष्टक नं. १-११६, इसका अंकों द्वारा स्पष्टी करण ५ः-उल्ल व भास्कराचार्य के कहे बीजों से हमारा कहा बीज बहुत स्वल्प है. प्रयोक्त बीज और बीज संस्कृत शुद्ध क्षेपक तथा अंशात्मक क्षेपक का कोष्टक नं. २-११७, ग्रहलाघवोक्त ध्रुवकों में चालन ( बीज ) ११ वर्ष के चक्रकी मध्यम गति कोष्टक नं. ३-११८, ६ः-उक्त क्षेपक व ध्रुवक द्वारा ग्रहलाघव पद्धति से ही सूक्ष्म मान के मध्यम ग्रह बनाने का प्रकार ७ः-प्रा. सूर्य सिद्धान्तीय शुद्ध भगण व दिन गति से भी मध्यम ग्रह बनाने का प्रकार ८ः-प्रयोक्त साध व शौष्यके असकृत्कर्म के बिना वेध शुद्ध ग्रह बन नहीं सकते थे किंतु ९ः-हमने तुलनात्मक पद्धति से स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार के गणित कोष्टकों द्वारा बता दिया है-११९,

### चौदहवां प्रकरण-ग्रह लाघव से सूक्ष्म गणित के पंचांग साधन पद्धति और रवि मध्य-( अ ) मध्यम गणित- पृ. ११९-१२८

१०ः-मध्यम ग्रह बनाने की कृति-१२९, ११ः-शुद्ध मंदोच्च साधन, उच्च की चक्रगति और वर्ष गति दर्शक कोष्टक नं. ४-१२० ग्रह लाघवोक्त मंदफल की सूक्ष्म मान से तुलना दर्शक कोष्टक नं. ५-१२१, ग्रहलाघव के शीघ्र फल की सूक्ष्ममान से तुलना दर्शक कोष्टक नं. ६-१२२, शुद्ध मान के मंद कर्ण ( सूर्य से ग्रहतक रेखा फार अंतर ) कोष्टक नं. ७-ग्रहलाघवोक्त पातमें बीज देकर सूक्ष्म मानके पात और पात गति-कोष्टक नं. ८-१२३, ग्रहोंका कक्षा परिणति संस्कार कोष्टक ९, रविमध्यशर को. मं. १०-१२४, शीघ्र कर्ण ( ग्रहमे पृथ्वीतक रेखाकार अंतर ) कोष्टक नं. ११-१२५, पंच ताराग्रहों के दिन गति फल कोष्टक नं. १२, १२६ चंद्र के ५ संस्कार, शर, और रवि की दिन गति व रवि बिम्ब कोष्टक १३, १२७, चंद्र की दिन स्पष्ट गति, बिम्ब और क्षितिज लंबन कोष्टक १४, १२८, १२ः-रवि मध्य गणित ( मंदफल, परिणति संस्कार+ मध्यम ग्रह = रवि मध्यग्रह ) और रवि मध्यशर साधन प्रकार १३ः-मंद कर्ण साधन-१२८,

### ( आ ) सूक्ष्म और स्थूल मान से भूमध्य गणित-१२८-१३२.

१४ः-युध शक्र को स्पष्ट करने की पद्धति अंतर्ग्रहोंका शीघ्र फलका समोकाण-११९,  
१९ः-मंगल, गुरु, शनि को स्पष्ट करनेकी पद्धति १७ः-बहिर्ग्रहों के शीघ्रफल का समीकरण

१८:-कोष्ठकों द्वारा भूमध्य गणित (ग्रह स्पष्ट करने की विधि) १९:-शीघ्र कर्ण साधन  
 २०:-भूमध्य दृश्य शर साधन २१:-ग्रहों की दिन गति साधन-१२०, २२:-चंद्र गणित =  
 गति, तिथि, च्युति, मंदफलय परिणति संस्कार साधन, बीज और संस्कार का भेद दर्शक  
 समीकरण (कोष्ठक) २३:-ग्रहोंको दृक्प्रत्यय में लाने के लिये प्राचीन व अर्वाचीन बीज  
 और संस्कारों की तुलना-१३१ २४:-चंद्र को दृक्प्रत्यय में लाने के लिये बीज और संस्कारों  
 की तुलना २५:-चंद्र को स्पष्ट करने की पद्धति २६:-राहु और चंद्र शर साधन-०मुंजाल,  
 छद्ममानस व रामविमोद आदि में कहे हुए चंद्रको ५+६ प्रकार के बीज-१३२, २७:-शुद्ध  
 चंद्र के द्वारा ग्रहण और शुनि अदिका साधन-१३२,

---

पन्द्रहवां प्रकरण कमेटीमें पास हुए-प्रमेंयों के अनुसार पंचांग  
 साधन प्रकार-पृ. ११२-१४१

अनुमार मेग मत यह है कि २-अभी कुछ दिन तक स्थूल और सूक्ष्म मान के ( तिथि के ) दो कालम पंचांग में दिये जाय और शास्त्रार्थ निर्णय में उनका यथा योग्य उपयोग बतल दिया जाय । बायीं सब बातें कमेटी में पास किये प्रस्तावों के अनुसार हों ” १४२,

## २ रा. ज्यो. बालकृष्ण जोशी का अभिप्राय

१:-“ सिद्धान्तरीत्या मध्यमग्रह बने बाद उसमें संस्कार करना योग्य है । शुद्धफल संस्कृत खगोलशास्त्रों पर से पंचांग बनाना युक्त है । २: छायातुल्य ग्रहों पर से जो जो कार्य लेना सिद्धान्तकारों ने ठहराया है वही कार्य दृक्प्रत्यक्ष तुल्य ग्रहों से होना ठीक है किंतु वह सर्वमान्य होना चाहिये ३: सिद्धान्त ग्रह को हाथ लगाना याने मूलकों में चालन देना हमारे प्रकृति ( शक्ति ) के बाहर है । और ऐसा करने से उसका पठन पाठन व्यर्थ हो जायगा. वारंते सिद्धान्त के मध्यम ग्रह में ही बीज संस्कार देकर कौंस में बतल दिया जाय कि वह दृक्प्रत्यक्ष में ठीक आजाय”-१४३

## ३ ज्यो. ती. नीलकण्ठ जोशी का अभिप्राय

( रिपोर्ट पृष्ठ ६०, ६२ में ) प्रस्तुत अभिप्राय बताया गया है । और वि. भू. चुलेट शास्त्रीकृत सिद्धान्त प्रमाकर के आधार से बनाया हुआ सवत् १९८७ के पंचांग को सभा में पेश किया उसके चैत्रशुक्ल पक्ष का नमूना १४४-१४५, प्रस्तुत पंचांग के संबंध में भीमन्त सरकार की तपासने बाबत आज्ञा और इस पंचांग को प्रकाशित करने की कमेटी की सिफारिश-१४६

## सत्रहवां प्रकरण-सभाओं में पास हुए प्रस्तावों की रिपोर्ट.

पृ. १४७-१५४

दृक्प्रत्यक्ष शुद्ध पंचांग करने के लिये श्रीमान् ओनरोसल जनाब प्राइम् मिनिस्टर साहब ने यह कमेटी स्थापित करके अत्यन्त ही सर्वोपयोगी कार्य को हाथ में लिया इसका गौरव करते हुए ( रिपोर्ट पृष्ठ २४ में लिखे प्रकार ) मुझे का चुनव हुआ । तदनुसार तारीख २५-६-२९ से ९-१२-२९ तक पंद्रह सभा ( ता. १६-१-३० को श्रमन्त माननीय जनाब होम मिनिस्टर साहब के समक्ष सोलहवां सभा ) होकर निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये गए-१४७, १:-“पंचांग में जो सूर्य का उदय, अस्त और दिनमान उल्लिखित जाता है वह सूक्ष्म चर पटों से अतिपरिभ्रम के माध्यम्यक्ष द्वारा बनाया हुआ दिया जावे” २: “पंचांग में जो एगमारणी और भागमारणी दी जाती है; वह सूक्ष्म चर पटों से जोड़े १८५२ की

स्वयं अध्यक्षनिर्मित पत्र नंबर १६ ( रिपोर्ट पृ. १३८-१४१ ) में उपस्थित है उसी को कमेटी स्वीकार करती है और सिफारिश करती है कि प्रतिवर्ष के पंचांग में यही प्रसिद्ध होती रहे ”-१४८, ३:-“सूर्य चंद्रादि के ग्रहण, ग्रहों के उदय-अस्त, चंद्रशृंगोन्नति, ग्रहयुति, चतुर्थी एवं कालाष्टमी का चंद्रोदय इत्यादि कार्य सूक्ष्मपद्धति से किये जायें ” ४:-“पंचांग में दिये जाने वाले तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पाँचों अंगों का साधन सूक्ष्मगणित के प्रयोगों से भूमध्यदृश्य होना चाहिये जिससे पंचांग की बातें हवप्रत्यय युक्त हो सकें ”-१४९, “ जब कि सूक्ष्मगणित के पंचांग में तिथि का वृद्धिक्षय ९, १० घड़ी तक होता है तो क्या इसमें धर्मशास्त्र से बाधा आती है, ” इसके संबंध का प्रस्ताव समान मत से वैसा ही रह गया तब एक सूचना पास की गई कि शुद्ध गणित के पंचांग में एक कालम ग्रहलाघव के तिथि की भी दे दिया जाय ”-१५०, और आगे एक तिथि का क्यासेंहर बनवा लिया जाय कि वह तारीख के अनुसार निश्चित काम दे सके-१५१ सभापति का किया हुआ निर्णय, उक्त पास किये हुए प्रस्तावों के अनुसार शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मगणित का पंचांग प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाय १५२-१५३,

### अठारहवां प्रकरण-प्रोफेसर गोले साहब का निवेदन-

पृ. १५३-१५४

सभापति का अभिनंदन करते हुए आपने निवेदन किया कि; १“प्रत्येक शांका का समाधान करना, संक्षेप को अपना मत प्रतिपादन करने की संधि देना, उसमें एक वाक्यता करने का प्रयत्न करना इत्यादि गुणों को देखकर सभापति को मैं धन्यवाद देता हूँ-१५३ २:- किंतु वेद है कि- सब सभासद एक मत से रिपोर्ट पर सही न कर सके. अध्यक्षने समझाने में कोई बाकी न रखा; किन्तु बाकी के सभासदोंने न तो दिल चस्पी ने उनका मत समझा और न उनके मतका जोर से विरोध करके अपना कोई निश्चित मत प्रतिपादन न कर सके:-रिपोर्ट में बताई हुई यथा योग्य निर्णित शुद्धियों का उपयोग अब आगे पंचांग में सरकार मान्य करेगी. ४: शुद्ध और सूक्ष्म पंचांग बनाने का समस्त गणित अध्यक्ष महोदय ने अपने सुपुत्र पंडित गोपीनाथ शास्त्री की सहकारिता से स्वयं अपनी पद्धति से किया हुआ है उसमें बहुत से कोष्टक सारणी व आलेख्य ऐसे हैं कि केवल इंदौर के लिये ही नहीं बरन उसके छप जाने से वे समस्त भारत वर्ष में बहुत उपयोगी होंगे. ”-१५४,

### उन्नीसवां प्रकरण-कमेटी के कार्यकर्त्ताओं का अभिनन्दन

पृ. १५४-१५५

१:-श्रीमंत महाराजा होलकर को क्या दृष्टि पंचांग शोधन की ओर हुई है इसके लिये कमेटी मननीय होलकर सरकार को शकः धन्यवाद देती है २:-कमेटी के आरंभ से



अंतिम पत्र तक ज्योतिर्भूषण पंडित गोपीनाथ शास्त्री चुलेट ने सेक्रेटरी के भाति सुचारु रूप से काम किया इसलिये आपको धन्यवाद ३:-कमेटी को आवश्यक सामान आदि दिला देना वगैरे मदत रा. रा. श्रीयुत सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब रि-ए. व. चारिटेबल ने की इसलिये; आपको धन्यवाद ४:-कमेटी को गणित विषय में सहायता देना, नाटिकल आत्मनाम व चैम्बर्स टेबल आदि ले जाच करके योग्य सलाह देने आदि कार्य भीयुक्त प्रो. गोळे साहब ने किये हैं ( यदि आप इस कमेटी में नियुक्त न होते तो मैं अकेला ऐसे समासद महानुबों के साथ जो कि उनके लेखी पत्रों पर से ज्ञात हो सकता है इतने महत्व के काम को पूर्ण नहीं कर सकता था. ) इसलिये आपको धन्यवाद ५:-ज्योतिष संबंध के दुराग्रह को त्याग कर सूक्ष्मगणित की बातों को मान्य करने का कार्य ज्यो. पं. त्रिपाठीजी ने, रा. ज्यो. बालकृष्ण जोशी ने और ध. पं. साठे शास्त्री ने तथा हमारे सिद्धान्त प्रभाकर के आधार से एक सूक्ष्मगणित का पंचांग बनाकर देने का कार्य ज्यो. ता. नीलकंठ जोशी ने, कमेटी को लेखन आदि कार्य में मदत प. मूलचंदजी मऊ निवासी ने, और पं. हरिराम शर्मा ने की है तथा समाजों की संक्षिप्त रिपोर्ट की हिन्दी भाषा संशोधन पं. शिवमेवकजी दिवारी ने की है इसलिये उक्त महोदयों को धन्यवाद है १९९-१९६

## बसिबां प्रकरण श्रीमंत होलकर सरकार को सभापतिका

निवेदन-प. १५७-१६०

१:-श्रीमंत होलकर राज्य की विशेषनाएं समस्त जगत् में प्रसिद्ध हैं उसी तरह यहाँ शुद्ध पंचांग का होना भी एक विशेषता है आगे वेषशाला आदि स्थापन कर ज्योतिष के अदभुत शोधों से आपकी कीर्ति सदा वृद्धिगत होती रहेगी-१५७, २:-इस राज्य से प्रसिद्ध होने वाला पंचांग ग्रहलाघन से बनता है उस ग्रंथ को बने ४०९ वर्ष होकर उसके गणित में अंतर पडने लग गया है उसको दूर करने के लिये हमने पंद्रह सभाकर के पांच प्रस्ताव पास किये हैं और सूर्य सिद्धांत व ग्रहलाघन को चालन देकर शुद्ध गणित के कोष्ठकों द्वारा शुद्ध पंचांग बनाने की पद्धति बतायी है-१५८, ३:-उमके द्वारा साधारण ज्योतिषी भी शुद्ध पंचांग बना सकता है-१५९, ४:-किंतु इस पंचांग वाद को पूरा पूरा मिटाने के लिये १:-सिद्धांत २:-करण-और ३:-सारणी-ग्रंथों की अत्यंत आवश्यकता है यदि ये बनवालिये जायें तो यहाँ का पंचांग और समस्त भारत वर्ष के पंचांग-शुद्ध गणित के बन जाने से आप की कीर्ति दिगंत विख्यात होगी-१६०

परिशिष्ट नं० १

## पारिभाषिक शब्दोंका अंग्रेजी अनुवाद.

लेखक:—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

अग्रा	Sine of amplitude of a rising or setting body ( साइन ऑफ एम्प्लीट्यूड ऑफ ए राइडिंग आंर सेटिंग बॉडी )
अंकगणित	Arithmetic ( अरिथमेटिक )
अदर्शन	Immersion ( इमरशन )
अधिमास, अधिकमास	Intercalary month ( इन्टरकलरी मंथ )
अनन्त घृत्य	Indeterminate equations ( इन्डिटर मिनेट इक्वेशन्स )
अयन चलन	Precession of the equinoxes ( प्रिसेशन ऑफ दि इक्विनॉक्सेस )
अयन संधि	Solstitial point ( सोलस्टिशल पॉइन्ट )
अयन सूत्र	Solstitial colure ( सोलस्टिशल कोल्यूर )
अस्त	Setting, heliacal Setting ( सेटिंग, हेलियाकल सेटिंग )
अस्फुट क्रांति	Mean declination ( मीन डिक्लिनेशन )
अस्फुट शर	Mean latitude ( मीन लैटिट्यूड )
अहोरात्रघृत्त	Diurnal circle ( ड्युरनल सर्कल )
एलांतर	Elongation ( एलॉन्गेशन )
उच्च	Aphelion or the higher apsis of an orbit ( ऑफिलायन आर दी हायर अप्सिस ऑफ एन ओरबिट )
चंद्रोच्च	Apogee or the higher apsis of the moon's orbit ( अपोजी आर दी हायर अप्सिस ऑफ दी मूनस ओरबिट )
उत्तर	North point of the horizon ( नार्थ पॉइंट ऑफ दी होराइजन )
उत्तर ध्रुव	North pole ( नार्थ पोल )
उत्तर, दक्षिणध्रुव	Poles of a circle ( पोलस ऑफ ए सर्कल )
उदय	Rising, heliacal rising ( राइडिंग, हेलियाकल राइडिंग )
(कालांशात्मक) उदयानर+मंदफल	Equation of time ( इक्वेशन ऑफ टाइम )
उन्नतांश	Altitude ( ऑल्टिट्यूड )
उन्मण्डल	Six o'clock circle ( सीक्स ओक्लाक सर्कल )
उपकरण	Argument ( आर्ग्युमेंट )
कक्षा	Orbit ( ओरबिट )

कक्षाकेन्द्रच्युति	Eccentricity of an orbit ( एक्सेन्ट्रिसिटी ऑफ एन ऑरबिट )
कर्ध्व	Pole of the ecliptic ( पोल ऑफ दी एक्लिप्टिक् )
कर्ण	Hypoteneuse, radius vector ( हायपोटेन्यूस, रेडियस वेक्टर )
मंदकर्ण	Radius vector ( रेडियस वेक्टर )
शीघ्रकर्ण	Distance of a planet from the earth ( डिस्टन्स ऑफ प प्लैनेट फ्रॉम दी अर्थ )
कुट्टक गणित	Indeterminate equation of the first degree ( इन्डिटरमिनेट इक्वेशन ऑफ दी फर्स्ट डिग्री )
केतू	Descending node of the moon's orbit ( डिसेन्डिंग ऑफ दी मून्स आरबिट )
केन्द्र, मध्यम मंदकेन्द्र	Mean anomaly ( मीन एनॉमली )
स्पष्ट मंदकेन्द्र	True anomaly ( ट्रू एनॉमली )
कोटिज्या	Cosine ( कोसाइन )
क्रान्ति	Declination ( डिक्लिनेशन )
अस्फुट क्रान्ति	Mean declination. ( मीन डेक्लिनेशन )
परम क्रान्ति	Obliquity of the ecliptic ( ऑब्लिक्विटी ऑफ दी एक्लिप्टिक )
स्फुट क्रान्ति	True declination ( ट्रू डेक्लिनेशन )
क्रान्ति कोटि	Polar distance ( पोलर डिस्टन्स )
क्रान्ति पात	Equinoctial point, node of the equator ( इक्विनॉप्शन पॉइंट, नोड आफ दी इक्वेटर )
क्रान्ति वृत्त	Ecliptic ( एक्लिप्टिक् )
क्रान्ति सूत्र	Declination circle ( डेक्लिनेशन सर्कल )
क्षितिज	Horizon ( होराइज़न् )
क्षेप	Latitude ( लैटिट्यूड )
क्षेप पात	Node of an orbit ( नोड ऑफ एन आरबिट )
खग्रास ग्रहण	Total eclipse ( टोटल एक्लिप्स )
खस्वतिक	Zenith ( जेनिथ )
गोल	Sphere ( स्फीयर )
गोल संधि	Node of an orbit ( नोड ऑफ एन आर्थिट )
गोलीय त्रिकोण मिति	Spherical trigonometry ( स्फेरिकल ट्रिगोमेट्री )
ग्रह	Planet ( प्लैनेट )
मध्यम ग्रह	Mean heliocentric position of a planet ( मीन हेलिओ- सेंट्रिक पोझिशन ऑफ प प्लैनेट )
मंद स्पष्ट ग्रह	True heliocentric position of a planet ( ट्रू हेलिओसेंट्रिक पोझिशन ऑफ प प्लैनेट )

स्पष्ट ग्रह	Geocentric position of a planet ( जॉसेन्ट्रिक पोजिशन ऑफ प प्लैनेट )
ग्रहण	Eclipse ( ईक्लिप्स )
रूप्राप्त ग्रहण	Total eclipse ( टोटल ईक्लिप्स )
चन्द्र ग्रहण	Lunar eclipse ( ल्यूनर ईक्लिप्स )
सूर्य ग्रहण	Solar eclipse ( सोलर ईक्लिप्स )
ग्रहण संभव	Eclipse limits ( ईक्लिप्स लिमिट्स )
ग्रह युति	Conjunction of planets ( कंजंक्शन ऑफ प्लैनेट्स )
प्राप्त	Immersion, obscuration ( इमर्शन ओब्स्क्युरेशन )
चन्द्र नीच	Perigee ( पेरिजी )
चन्द्रोच्च	Apogee ( अपोजी )
चाप	Arc ( आर्क )
चापीय मापन	Circular measure ( सर्क्यूलर मेजर )
ज्या	Chord ( चार्ड )
तारतम्य	Differential coefficient ( डिफरन्शियल कोइफिशिएंट )
त्रिकोण मिति	Trigonometry ( ट्रिगोनमैट्री )
सरलरेपीय त्रिकोण मिति	Plane trigonometry ( प्लेन ट्रिगोनमैट्री )
त्रिज्यावृत्त	Great circle of a sphere ( ग्रेट सर्कल ऑफ प स्फियर )
त्रिभुज लङ्घन	Nonagesimal ( नोनजेसिमल )
दक्षिण	South point of the horizon ( साउथ प्वाइंट आफ दी होराइजन )
दक्षिण ध्रुव	South pole ( साउथ पोल )
दर्शन	Emergence ( एमर्शन )
दिगंश	Amplitude ( ऐम्प्लिट्यूड )
दिगंशकोटि	Azimuth ( ऐझिमुथ )
दृढमंडल	Vertical circle ( वर्टिकल सर्कल )
दृढमंडलस्य लेखन	Parallax in zenith distance ( पॅरलैक्स इन जेनिथ डिस्टन्स )
घुम्यावृत्त	Small circle of the celestial sphere parallel to the celestial equator ( स्मॉल सर्कल ऑफ दी सेलेस्टल स्फीयर पॅरेलल टू दी सेलेस्टल इक्वेटर )
ध्रुव	Pole ( पोल )
उत्तर ध्रुव	North pole ( नार्थ पोल )
नक्षत्रालंश	Hour angle ( आवर अंगल )
नक्षत्रांश	Zenith distance ( जेनिथ डिस्टन्स )
नति	Parallax in latitude ( पॅरलैक्स इन लैटिट्यूड )
नीच	Perihelion of the lower apsis of an orbit ( पेरिहेलियन आफ दी लोवर ऐप्सिस ऑफ एन ऑर्बिट )

चन्द्रनीच	Perigee or the lower apsis of the moon's orbit (पेरिजी आर दी लोवर अप्सिस ऑफ दी मूनस् आरबिट)
नीचोच्च वृत्त	Epicycle ( एपिसायकल )
पद	Quadrant ( क्वार्टर )
परम क्रान्ति	Obliquity of the ecliptic ( आन्लिक्विटी आफ दी एक्लिप्टिक )
परम मंद फलज्या	Eccentricity ( एक्सेन्ट्रिसिटी )
परम लंघन	Horizontal parallax ( हॉरिज़ॉन्टल पॅरलॅक्स )
परम परित	Factorial ( फक्टोरिअल )
पश्चिम	West point of the horizon ( वेस्ट पॉइंट ऑफ दी होरायझन )
पात	Node of an orbit ( नोड ऑफ ऑन आरबिट )
पूर्व	East point of the horizon ( ईस्ट पॉइंट ऑफ दी होरायझन )
प्रतिवृत्त	Eccentric ( एक्सेंट्रिक )
प्रपंच	Function ( फन्क्शन )
चिह्न	Disc ( डिस्क )
बीज गणित	Algebra ( ऑलजेब्रा )
भगण	Revolution ( रिव्होल्यूशन )
भुज्या	Sine ( साइन )
भूमिति	Geometry ( जैमेट्री )
गोलीय भूमिति	Spherical geometry ( स्फेरिकल जैमेट्री )
सरल रेखीय भूमिति	Plane geometry ( प्लेन जैमेट्री )
भूव्यास	Axis or diameter of the earth ( अक्सिस आर डायमिटर ऑफ दी अर्थ )
भेद युति	Occultation ( ऑकल्डेशन )
(-सायन) भोग	Celestial longitude ( सेलेशल लॉन्जिट्यूड )
मध्यम ग्रह	Mean heliocentric position of a planet ( मीन हेलिओ सेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लैनेट )
मध्यम मंदकेन्द्र	Mean anomaly ( मीन अॅनॉमली )
मध्यम शर	Heliocentric latitude ( हेलिओसेन्ट्रिक ल्याटिट्यूड )
मंद कर्ण	Radius vector ( रेडियस वेक्टर )
मंदकेंद्र	Anomaly ( अॅनॉमली )
स्पष्ट मंदकेंद्र	True anomaly ( ट्रू अॅनॉमली )
मंदफल	Equation of the centre ( इक्वेशन ऑफ दी सेंटर )
मंद स्पष्ट ग्रह	True heliocentric position of a planet ( ट्रू हेलिओसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लैनेट )
मोक्ष	Emersion ( एमर्शन )

याम्योत्तर लङ्ग	Culminating point of the ecliptic (कल्मिनेटिंग पॉइंट ऑफ दी एक्लिप्टिक)
याम्योत्तर वृत्त	Meridian circle (मेरिडियन सर्कल)
युति	Conjunction (कंजंक्शन)
ग्रह युति	Conjunction of planets (कंजंक्शन ऑफ प्लैनेट्स)
भेदयुति	Occultation (ऑकल्टेशन)
राहु	Ascending node of the moon's orbit (असेंडिंग नोड ऑफ दी मून'स् ऑर्बिट)
राशि	Zodiacal sign; quantity, function (झोडियाकल साइन क्वान्टिटि, फंक्शन)
लङ्ग	Ascending point of the ecliptic (असेंडिंग पॉइंट ऑफ दी एक्लिप्टिक)
लंघन	Parallax (पैरलैक्स)
दृढमंडलस्थलंघन	Parallax in zenith distance (पैरलैक्स इन झेनिथ डिस्टेंस)
पंथ लंघन	Horizontal parallax (होरिजॉन्टल पैरलैक्स)
स्पष्ट लंघन	Parallax in longitude (पैरलैक्स इन लॉन्जिट्यूड)
लोप	Immersion (इमर्शन)
धक्काति	Retrogression, retrograde motion (रिट्रोग्रेसन, रिट्रोग्रेड मोशन)
यर्गप्रकृति गणित	Indeterminate equation of the second degree (इन्डिटरमाइनेट इक्वेशन ऑफ दी सेकंड डिग्री)
घसंत संपात	Ascending node of the equator, first point of aries, vernal equinox (असेंडिंग नोड ऑफ दी इक्वेटर, फर्स्ट पॉइंट ऑफ दी एरिज, वर्नल इक्विनॉक्स)
विभिन्न	Nonagesimal (नैनिजेसिमल)
विभिन्न लङ्ग	
विपरीत राशि	Inverse function (इन्वर्स फंक्शन)
विमंडल	Orbit of a planet (ऑर्बिट ऑफ प्लैनेट)
विषुववृत्त	Celestial equator, equinoctial (सेलेशल इक्वाटर, इक्विनोक्स)
विषुवांश	Right ascension (राइट अस्सेन्शन)
विलार	Function (फंक्शन)
शर	Celestial latitude (सेलेशल लैटिट्यूड)
अस्फुट शर	
मध्यम शर	
स्फुट शर	
स्पष्ट शर	Geocentric latitude (जैसेन्ट्रिक लैटिट्यूड)

शारद सपात	Descending node of the equator, first point of libra autumnal equinox ( डेसिन्डिंग नोड आफ दी इन्वेटर, फर्स्ट पॉइंट ऑफ लिब्रा पदयूमनल इक्विनॉक्स )
शीघ्र कर्ण	Distance of a planet from the earth ( डिस्टन्स ऑफ ए प्लैनेट फ्रॉम दी अर्थ )
शून्यलब्धि	Differential calculus ( डिफरेंशियल कल्क्यूलस )
शीघ्रफल	Difference between the heliocentric and geocentric position of a planet ( डिफरेंस बिट्विन दी हेलिओसेंट्रिक एंड जेओसेंट्रिक पोजिशन ऑफ ए प्लैनेट )
शुगोभ्रति	Elevation of a cusp or horn of the crescent moon ( एलिवेशन आफ ए कस्प आर हॉर्न ऑफ दी क्रिसेन्ट मून )
सम बिन्दु	North point of the horizon ( नार्थ पॉइंट ऑफ दी हाराइजन )
सम वृत्त	Prime vertical ( प्राइम वर्टिकल )
सपात	Node of the equator, equinoctial point ( नोड ऑफ दी इक्वाटर, इक्विनाक्षल पॉइंट )
वसन्त संपात	Ascending node of the equator, first point of aries, vernal equinox ( असेन्डिंग नोड ऑफ दी इक्वाटर, फर्स्ट पॉइंट ऑफ एरीस, वर्नल इक्विनॉक्स )
साधन	Descending
नक्षत्र साधन, किंवा नाक्षत्र	Sidereal, ( सैडेरियल )
मध्यम साधन	Mean sidereal, mean solar ( मीन सैडेरियल, मीन सोलर )
सूर्य साधन	Solar ( सोलर )
स्पष्ट साधन	True sidereal, true solar ( टू सैडेरियल टू सोलर )
सूर्य ग्रहण	Solar eclipse ( सोलर एक्लिप्स )
स्पष्ट ग्रह	Geocentric position of a planet ( जेओसेंट्रिक पोजिशन ऑफ ए प्लैनेट )
स्पष्ट मंद केंद्र	True anomaly ( टू अनामली )
स्पष्ट लघन	Parallax in longitude ( पॅरलैक्स इन लॉन्जिट्यूड )
स्पष्ट शर	Geocentric latitude ( जेओसेंट्रिक लैटिट्यूड )
स्फुट कान्ति	True declination ( टू डेक्लिनेशन )
स्फुट शर	Rectified latitude ( रेक्टिफाइड लैटिट्यूड )



वेदार्थके कर्ता, सतयुग प्रवर्तक, विद्याभूषण  
पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट, अध्यक्ष, पंचांग शोधन समिती, इन्दौर.



श्री.

## पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर के

### सभा की स्थापना.

१ आजकल और शास्त्रों की मांति पंचांग संबंधी गणित शास्त्र के संबंध में भी मनमाने अनुमान किए जाते हैं। और बड़े खेद के साथ यह सभा स्थापन का हेतु. स्वाकार भी करना पड़ेगा, कि आधुनिक विद्वान इस ओर कुछ उपेक्षा भी करते हैं। पुराने समय में राजाजय प्राप्त रहने से जो सुविधार्थ थी वह यद्यपि इस समय प्राप्त नहीं है, तथापि यदि गणितज्ञ महानुभाव इस शास्त्र के प्राचीन वेदसिद्ध 'मूलाङ्गों' को अर्वाचीन वेद से मिलाकर ग्रह-गणित के शुद्ध मूलों को निश्चित कर लें, और उसकी जांच के लिये उपपत्ति में पश्चिमीय विद्वानों की शोध का समुचित उपयोग लेने की कृपा करें; तो मार्ग कुछ सरल हो सकता है।

२ इस ओर भारत के प्रसिद्ध विद्वानों का ध्यान कुछ वर्षों से आकर्षित हुआ और उसके अनुसार बंबई और पूना आदि नगरों में सभा आदि द्वारा कुछ काम भी किया गया परन्तु उसका प्रभाव समस्त देशपर अभी तक नहीं पड़ा।

३ उन्नतिशील इन्दौर राज्य से भी एक पंचांग प्रकाशित होता है। विद्यानुरागी होलकर सरकार की कुछ समय से यह आकांक्षा है कि इन्दौर से प्रकाशित होने वाले पंचांग सब प्रकार से शुद्ध और विद्वाननुमोदित हो।

४ इस उच्चाभिलाषा से होलकर राज्य के लोक प्रिय माननीय प्राइम मिनिस्टर साहब ने एक कमेटी स्थापन करने की कृपा की और उसके अनुसार विद्वान शिरोमणि माननीय होम मिनिस्टर साहब ने व्यवस्था कर दी.

५ तदनुसार श्रीमान् होम सेक्रेटरी साहब का पत्र नंबर ५५९७, ७०० एच २८ तारीख १०-८-२९ ई. का प्रभाकर सिद्धान्त और वेदकाल निर्णय श्रीमंत होलकर सरकार आदि ग्रंथों के संपादक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री जुलैट एलंघपुर वाले मुकाम इन्दौर की ओर प्रेषित किया गया जो धोडे में इस प्रकार है।

६ ' इस रियासत में अर्मा जो पंचांग बनाया जाता है, उसमें किस तन्हा की सुधारणा अवश्य होकर वो कैम्पि अमल में लाई जावे। वैसेही वो उद्देश. लाने में क्या साधन होना' वगैरा बातों का विचार करने वास्ते निम्न लिखित महाशयों की कमेटी सुकरर की—

सभासदों की नियुक्ति

( १ ) प्रिन्सीपाल संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर.

( २ ) स्टेट ज्योतिषी जो के फिल हाल पंचांग बनाते हैं.

( ३ ) प्रोफेसर गोळे एम. ए., होलकर कालेज इन्दौर.

( ४ ) संस्कृत महाविद्यालय में ज्योतिष और धर्मशास्त्र पढ़ाने वाले शिक्षक.

( ५ ) पंडित नालकठ मंगलजी जोशी.

( ६ ) और इस कमेटी के सभापति ' विद्याभूषण दानानाथ शास्त्री चुंटेड.

इनको सुपरर दिया। और कमेटी का काम दो माह के अन्दर एतम करके इसका रिपोर्ट यहाँ भेज दें.

७ इस प्रकार उक्त पंचांग शोधन कार्य करने के लिये इस कमेटी की स्थापना की गई।

८ इस पत्र में कमेटी का सब काम संस्कृत महा विद्यालय में होने की राजकीज की गई थी। किन्तु तारीख ३०-८-१९ को भीमान् होम सेक्रेटरी माहस का पत्र नंबर ६३१४, ८०० एच १५१९ आया कि

“ इस कार्य के लिये संस्कृत महा विद्यालय में कार्का जगह और व्यवस्था नहीं है” वगैरा रा. रा. प्रिन्सीपाल माहस सेन्ट्रल महाविद्यालय इन्हीं के तरफ से िया आने से कमेटी का काम भी गोपाळ मंदिर में जो के जुने राजवाड़े के दक्षिण तरफ है वहाँ आप करेंगे। आरसे इसके आने जा कुछ मदद उभगी ये देने वाले वहाँ से रा. रा. ' सुपरिन्टेन्डेन्ट माहस वि. ए. च चारिटेबल टिच ट्रेमेंट, इन्हीं के तरफ किया गया है.

१० और तदनुसार प्रत्येक सभासद को तारीख २५-९-२९ ई. को निश्चित स्थानपर एकत्रित होने के लिये विज्ञप्ति पत्र नंबर ९ के द्वारा कष्ट दिया गया जिसे प्रत्येक महानुभावने सहर्ष स्वीकार किया। और रा. रा. होम सेक्रेटरी साहब के ओर पत्र नंबर १० द्वारा इस कामकाब्योरा भेज दिया गया।

११ इसके पश्चात् रा. रा. होम सेक्रेटरी साहब के पत्र नं. ७०४०, ७०० एच २८ तारीख २३-९-२९ इ. से शत हुआ कि इस कमेटी के एक सदस्य निर्दिष्ट एक सभासद रा. रा. श्रीमान् प्रिंसिपॉल् साहब संस्कृत महा विद्यालयने 'काम नियुक्त न हो सके। श्री अधिकता व अवस्थता' के कारण इस कार्य में भाग लेनेमें छाचारी प्रगट की है और उसे माननीय श्रीमान् प्राइम मिनिस्टर साहबने स्वीकार करने की कृपा की है।

१२ सरकार की आज्ञानुसार संस्कृत महाविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक श्रीयुत पंडित रामकृष्णजी साठे को और उद्योतिप शास्त्र के निर्दिष्ट सभासदों का प्रधानाध्यापक श्रीयुत उद्योतिपाचार्य पंडित रामसुचित्र त्रिपाठी संबैठन। को इस कमेटी में काम करना था परन्तु उद्योतिपाचार्य उस समय गांव को गये थे इसलिये उनके आने तक दूसरे उद्योतिपशास्त्र के अध्यापक श्रीयुत उद्योतिप तीर्थ पंडित रामकृष्णजी शास्त्री को श्रीमान् प्रिंसिपॉल् साहबने कमेटी में भेजा इसलिये इन दो महाशयों की और पंचांग बनानेवाले श्रीयुत पंडित बालकृष्णजी उद्योतिपी की उक्त कमेटी में नियुक्ति की गई है।

१३ पंचांग शोधन का काम सूक्ष्म गणित का होनेसे इस महत्व के कार्य में गणित आदिकी सहायता करने एवं प्रोसिडिंग लिखने के लिये उद्योतिभूषण एक सेक्रेटरीकी सहायता गोपीनाथ शास्त्री चुलेट की सहायता ली गई। जो कार्यारंभ से अन्तिम रिपोर्ट लिखनेतक प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित रहने और कुल प्रोसिडिंग लिखनेका तथा गणित के अंक तयार कर देने का काम करने बरख नियुक्त किये गये।

## पंचांग शुद्ध करने की

पद्धति

और

## समापति का मन्तव्य.

इस विषय का पत्र तारीख २५-९-२९ की दूसरी सभामें समापतिद्वारा सुनाया गया सो पत्र—

प्रिय सभ्य महोदय जबकि माननीय श्रीमान् होम मिनिस्टर साहब का तारीख १०-८-१९ का पचांग शोधन के लिये कमेटी स्थापित करने बाबत पत्र आनेपर तारीख २५-९-१९ ई. की पहिली सभा होनेतक हमने संवत् १९८६ शाके १८५१ वर्तमान साल के छपे हुए इस राज्य के पंचांग की जाच की; कि इसमें कहा व कितनी अशुद्धियाँ हैं। और उनकी शुद्ध कैसे की जा सकती है? कि यह पचांग विद्वन्मान्य होजाय? तब

२ उक्त पंचांग के शोधन से हमें ज्ञात हुआ कि यह पंचांग 'महलाघव करण' ग्रन्थ के आधारपर बना हुआ है 'तिथिचिन्तामणि' की सारणी से बनाया गया है। इन ग्रन्थों को श्रियुक्त गणेश देवज्ञ ने शाके १४४२ में बनाया था और उसमें उक्त ग्रन्थोंकी शुद्धता व उपयुक्तता को बतलाते हुए इस व्योति.शास्त्रकी शुद्ध करने की प्रणाली का इस प्रकार उल्लेख किया है कि "ब्रह्माचार्य, वसिष्ठ, कश्यप आदि ऋषियोंने जो प्रदोक्षी स्थिति व गति बताई है; वह उस समय में ठीक मिलती थी। किन्तु कालांतर में जब उसमें अन्तर पड़ गया तब कृतयुग के अन्त में प्रमत्त हुए सूर्यके वरदान से मयामुखने (सूर्य सिद्धांत नामक ग्रन्थ बनाकर) उसकी शुद्धता की।

ॐ "ब्रह्माचार्य वसिष्ठ वश्यप सूर्यस्य रोद वमोदित, तत्कालजमेव तथ्यमथ तद्भूरीक्षणेऽ  
भूच्छल्यम् ॥ प्रापातोऽऽ मयामुख कृतयुगान्तेऽर्कस्तुष्ट तोषिता-स्तथास्ति रश्मिर्वा ह्यु सान्तर  
मथा भूजान् पाराशरम् ॥ १ ॥ तत्तत्त्वाऽऽर्यभट्ट लिख बहुविधे कालेऽर्कस्तुष्ट, तत्त्वात  
विल दुर्गोसिंहमिहिरसौस्तति द्व स्फुटम् ॥ तच्चाभूच्छिथल व जिण्युतनये नाकारि वेधास्तुष्ट,  
ब्रह्मोक्त्याऽऽश्रितमे तदप्यथ वही काले भवत्यान्तरम् ॥ २ ॥ श्री केचन स्फुटतर कृतवादि  
सौरार्यान्तमे तदपि पश्चिमिमे ६० गताऽहे ॥ दृष्ट्वा क्षयं किमपि तत्तनयो गणेशः स्पष्ट यथ, स्पष्टत  
दृग्गणितैवय मत्र ॥ ३ ॥ कथमपि यदिदेवेत् सूर्यकाले लक्षस्या-मुद्रुगि परिलक्ष्येन्दुमहा दृश्ययोगात् ॥  
सदमलमुत्तुल्य प्राप्तबोध प्रशयोः कथिन सनुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचारये ॥ ४ ॥ ( म. ला.  
उप. स. अ. )

३ किन्तु कलियुग में वहभी और पराशर ( ऋषि ) का भी ग्रह गणित जब अन्तर युक्त होगया तब आर्यभट्टने उसे ( आर्य सिद्धांत विद्वांत ग्रंथोंमेंभी कालांतर जन्म फर्क ।  
 † ग्रंथ बनाकर ) ठीक करदिया । आगे जब उसमेंभी फरक पडने लगा तब दुर्गासिंह और बराह मिहिर आदिने उसे ( पंच सिद्धान्तिका A आदि ग्रंथ बनाकर ) सुधारा । आगे जब उसमेंभी फरक आने लगा तब ब्रह्माचार्य ( ऋषि ) के बतलाए हुए प्राचीन ब्रह्म सिद्धांत के संशोधित ग्रह गणित के आधारपर जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्तने ( ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त B ग्रंथ बनाकर ) सुधार किया ।

४ आगे बहुत काल बीतने पर उसमें भी अन्तर पडने लगा तब श्री केशव दैवज्ञ ने उसे सौर तथा आर्य पक्षसे भिन्नकर वेधद्वारा हरग ग्रंथोंमें भी कालांतर जन्म फर्क ।  
 ( ग्रह कौतुक ग्रंथ बनाकर ) शुद्ध कर दिया । किन्तु इस सुधार को अब [ शाके १४४२ में ] ६० वर्ष होजाने से उस गणित में भी अन्तर पडना वेधद्वारा देखकर उन [ केशव दैवज्ञ ] के पुत्र गणेश दैवज्ञ ने यह दृगणितैक्य बतलानेवाला शुद्ध गणित का यह ( ग्रह लाघव व तदनुसार बना हुआ सिद्धि चिंतामणि ) ग्रंथ बनाया है ।

५ किन्तु भविष्य में अधिक समय बीतने पर इस ग्रहलाघव के गणित मेंभी अन्तर पडना संभव है इसलिये चंद्र और ग्रहोंकी नक्षत्रों से गणेश दैवज्ञ की सूचना । युति, ग्रहण तथा उनके उदय अस्त काल को बारंबार देखकर गणित के मर्मज्ञ विद्वानों के रचीकृत वेधोपलब्ध प्रमाणोंसे मिलाते हुए इस ग्रह गणित को ठीक ठीक करते जावें और शुद्धि तथा केंद्र को तो बीज संस्कार देकर अवश्यही शुद्ध करें ।'

---

† शाक ४२१ में आर्य भट्टने यह आर्यस्फुट सिद्धांत ग्रंथ बनाया उसमें पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है इस बात की घोष इधरि लगाई है ।

A. शाके ४२७ में बराह मिहिरने ( १ ) पितामह सिद्धांत, ( २ ) यष्टि सिद्धांत, ( ३ ) रोमक सिद्धांत, ( ४ ) यौलिय सिद्धांत और ( ५ ) सूर्य सिद्धांत इन पांचों प्राचीन ग्रंथोंका संग्रह रूप पंच सिद्धान्तिका नामक ग्रंथ और बृहत्संहिता नामका ग्रंथ बनाया है ।

B. शाके ५५० में ब्रह्मगुप्तने यह ग्रंथ बनाया, अब इधेरी ब्रह्म सिद्धांत करते हैं ।

६ इस गणेश दैवज्ञ के कथन से स्पष्ट रीतिसे ज्ञात होता है कि; ज्योतिष यह आकाशस्थ तेजो गोल ज्योतिषों को देखने का प्रत्यक्ष शास्त्र पंचांग शोधन में वेधका है। इसलिये रवि चंद्र आदि वी गति स्थिति को प्रत्यक्ष एवं प्राधान्य। यंत्र आदि की सहायता से (वेध द्वारा) देखकर प्राचीन तंत्रोक्त गणित को शुद्ध करने की पद्धति ऋषियोंनेही अपने अपने ग्रंथोंमें बताई है। उसी को सूक्ष्म करते हुए आगे विद्वानोंने सिद्धांत ग्रंथ बनाए, वह भी कालांतर में नए नए बनते हुए आजतक करीब १८ सिद्धांत ग्रंथ बन गए हैं। उनमें भी जब अन्तर पड़ने लगा तब बीज संस्कार देकर उसको शुद्ध करनेवाले कई कारण ग्रंथ बनाए गए हैं उन्हीं ग्रंथोंमेंसे बना हुआ यह ग्रह छाद्यव कारण ग्रंथ है। और इसके सिर्फ २४ वर्ष पहिले + यानी शके १४१८ में इनके पिता केशव दैवज्ञ ने ग्रह कौतुक नाम का कारण ग्रंथ बनाया था।

७ अब हमें यह देखना समुचित है कि उस समय उक्त ग्रह गणित में वास्तविक मान से कितना अंतर था और अब कितना है? किन्तु इसके प्रत्यक्ष से फर्क का निश्चय भी पहिले यह देख लेवें कि इसके संबंध में उक्त ग्रंथकारों ने क्या कहा है और अन्तर कितना बताया है :

८ इसके संबंध में केशव दैवज्ञ ने ग्रह कौतुक की स्वकृत मितश्रुता टीका में स्पष्ट लिखा है कि—

ग्रह छाद्यव के समय कितना फर्क था ?

फा प्रहार्थमद सौराधेयवि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रबोमहन्तरं - अंकुता दृश्यते । मन्दे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेस्तेच पंचमाया अधिनाः प्रत्यक्ष मन्तरं दृश्यते ।

अर्थात् -- ब्रह्मसिद्धान्त, आर्षसिद्धान्त और सूर्यसिद्धान्त आदि से ग्रहों के साधन करने के अङ्गों में बहुतही अन्तर बुध और शुक्र में दिव्यता है। जो कि स्वच्छ आकाश में इनका नक्षत्रों के साथ तथा ग्रहों के योग में और उदय अस्त के समय में पांच अंश अधिना का अन्तर प्रत्यक्षनया, यानी यंत्रों से वेध लेने से स्पष्ट रीति से दिव्यता है.

इयं पूर्व क्षेपेयन्तरं वर्ष भागेष्वपि अन्तर मस्ति । एवं बहुकाले यदहन्तरं भविष्यति ।

ऐसेही ग्रहों के क्षेपकों में अन्तर और ग्रहों की वर्ष गति में, अर्थात् उनके प्रदाक्षिणा काल के भगण के सावन दिनों में भी अन्तर है, आगे कुछ वर्ष होजाने पर यह अंतर बहुत बढ जायेगा.

+ ग्रह कौतुक ग्रंथ का लेखन शके १४१८ में पूर्ण हुआ लिखा है।

ग यतो ब्राह्मणेभ्यः भगणानां सावनादीनां च बह्वन्तरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वन्तरं भवत्येव ।

विद्वान्त ग्रंथों में  
कितना फर्क था.

जब कि उपरोक्त ब्रह्मसिद्धान्त आदि सिद्धान्त ग्रंथों में कहे ग्रहों के भगणों में और भगणों के सावन दिनों में बहुत अन्तर दिखता है तब बहुत काल होने से बहुत अन्तर पड़ना स्वाभाविक ही है.

विक ही है.

घ एवं बह्वन्तरं भविष्यः सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यग्रहगणितानि कार्याणि ।

नये सिद्धान्त ग्रंथ बनाने  
की सूचना.

इसलिये ज्योतिःशास्त्र के जानने वाले याने गणित के विद्वानों ने नक्षत्रों के ताराओं के साथ ग्रहों के मेल को, ग्रहों के साथ ग्रहों के मेल (ग्रह + ग्रहगति) को, उनके उदय अस्त के एवं याम्योत्तर दक्षिण काल को, ग्रह को, चंद्रशृंगोन्नति आदि ग्रहों के दृश्य चमत्कारों को देखकर वर्तमान स्थिति के गणित से उन्हें मिश्रकर जो कम या ज्यादा अन्तर निश्चित होवे तदनुसार प्राचीन सिद्धान्तोक्त भगणों को कम या ज्यादा करके नया सिद्धान्त ग्रंथ बनाकर उसके द्वारा ग्रहों का गणित करना चाहिये ।

च यद्वा तरकालक्षेपक वर्षे भोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि ।

कारण ग्रंथों के सुधार  
की सूचना.

अथवा यह नहीं बनसके तो तारकालिक क्षेपकों को अर्थात् आपके समय के ग्रहों के मूलाङ्गों को बनाकर उनके द्वारा ग्रहों की वर्ष गति एवं अहर्गणगति को निश्चित करके छोटे करण ग्रंथों का तो भी निर्माण करना चाहिये ।

छ एवं मया परमफलस्थाने चंद्रग्रहण तिथ्यान्तात्त्रिलोम त्रिधिता मध्यमन्द्रो ज्ञातः । तत्र फलहास शृष्यभावात् ।

ग्रहभापव के पूर्व कितना  
फर्क था.

इस प्रकार मैंने परमफल के स्थान में चंद्रग्रहण के तिथि के अन्त में त्रिलोम गणित द्वारा मध्यम चंद्र का निश्चय किया । क्योंकि उस स्थान में फल की हासशुद्धि नहीं रहती । अतएव उसमें अन्तर नहीं रहता ।

ज केन्द्र गोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यान्ता द्विलोमविधिना चन्द्रोच्चमाकलित तत्र फलस्य परमहास वृद्धित्वात् ।

केन्द्र गोलादि स्थान में ग्रहण के तिथ्यन्त से विलोम गणित द्वारा चद्राच्च का निश्चय किया क्योंकि वहा फल की हास वृद्धि पूरी (परम) रहती है ।

झ तत्र चद्र सूर्य पक्षात्पच कलोनो दृष्ट । उच्च ग्रह पक्षाधितम् ।

तब सूर्य सिद्धान्त के गणित से पाच कला कम चद्र, उक्त प्रत्यक्ष वेध द्वारा निश्चित हुआ । और चद्रोच्च ब्रह्मसिद्धान्त के समीप २ आजाता है ।

ट सूर्य सर्व पक्षे पीपदन्तर । स सारो गृहीत

किन्तु सूर्य तो सभी सिद्धान्त ग्रहों के गणित में थोड़ा अन्तर वाला होने से हमने सूर्य सिद्धान्त के गणित का प्रय में लिखा है ।

ठ अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोग, ग्रह ग्रह योग, अस्तादिपादिभि वर्तमान घटनामवलोक्य कम् कर्के पक्षे वाले तत्रेदानीं भौमैग्यौ मालापक्षाधितौ घटत ग्रहो बुध मालार्थ मध्ये शुक्र । शनि पक्षत्रपात्-पच भागाधिको दृष्ट ।  
तीन पक्ष के प्रा

और मंगल बुध आदि ग्रहों के वर्तमान कालिक नक्षत्र ग्रहयोग, ग्रह ग्रहों की परस्पर युति, उनके उदय अस्तादि की प्रत्यक्ष घटना से ग्रहों के गणित को मिलाकर उनके मानों का निश्चय निम्न लिखितानुसार किया गया है । वहा मंगल और गुरु ब्रह्म सिद्धान्त के गणित के आसन्न मिलते हैं । बुध भी उससे मिलता है । जल और अर्य सिद्धान्त के गणित के मध्य में शुक्र मिलता है । और तीनों सिद्धान्तों के गणित से पाच अश अधिक शनि दिखता है ।

ड पृथ वर्तमान घटना मरलोक्य दृष्टु कर्मणा ग्रह गणित कृतम् । "

उपर्युक्त शीति से वर्तमान कालिक घन्ता को प्रत्यक्ष में देखकर इस दृष्टुर्ग्य गणित द्वारा उक्त ग्रह गणित के मूलाङ्क निश्चित करने का गणित किया है ।

९ इसी प्रकार गणेश दैवज्ञ ने भी प्रद टाघत्र में प्रद गणित के अन्तर को बतलाते हुए वास्तविक मान के दृगणित शुद्ध पचांग का ही व्यवहार में उपयोग करना बताया है ।

" सारोकोऽपि विषूय माल कलिको नास्त्रो गुरु स्वायं जोऽग्रमालूच वज्रन केन्द्र कमपायैमिषु भाग शनि ॥ कौक केन्द्र मथार्थ मय्य गमिति मे यास्ति दनुस्त्वना, प्रद रापके कर्के सिद्धैस्तैरिह परं धर्म नयमन् कार्यादिर एवा दितेन् ॥ १ ॥



अर्थात्:—“सूर्य सिद्धान्त से सूर्य, चंद्रोच्च और ९ कला कम; चन्द्र आर्य सिद्धान्त से गुरु, मंगल, राहु और ५ अंश अधिक शनि, ब्रह्म सिद्धान्त से बुध केन्द्र तथा आर्य ब्रह्म सिद्धान्तों के मेल से शुक्र केन्द्र इनमें धीज संस्कार देकर एक प्रलय में आने लायक बनाए हैं।”

१०. इमलिये इन शुद्ध ग्रहों के वने पंचांग से—

वेध तुल्य पंचांगका धर्मानुष्ठान में उपयोग.  
सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतवन्ध विवाहादि। शुभ्यो ग्रहेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादिभिरेवादिशेत। अयं भावः। एकादश्यादि निर्णयोऽभस्मादेव तिथे कार्यः। जातकादियु सर्वत्र ग्रहा अत्रत्या एव ग्राह्याः।

[ यज्ञरि म. प्य ]

ग्रहणादि पर्व, यज्ञ, अनुष्ठान, एकादशी व्रत, आदि धर्म कार्य; राजा की दो हुई शिक्षा, सत्कर्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि मंगल कार्य, एकादशी आदि का तिथि निर्णय, जन्म पत्री, वर्षफल प्रश्न आदि फलित कार्य करना चाहिये।

११. क्योंकि वसिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों का यह सिद्धान्त है कि

“यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्य कृतदेव ग्राह्यं घट मानवात्”

जिस जिस समय में जिस गणित के कहे प्रकार प्रत्यक्ष में ग्रह गणित के बराबर मिलते हैं वही पंचांग लेना चाहिये। क्योंकि यह वास्तविक मान से शुद्ध है।

१२. इसी प्रकार तिथि चिन्तामणि में भी लिखा है कि:—

वेध तुल्य में. . . . . “तेभ्यः स्वाद्ग्रहणादि. हसममियं प्रोक्तं मया सां तिथिः ॥ ग्राह्या मंगल धर्म निर्णय विषा वेधायतो द्क्समा ॥ १ ॥”

[ ति. वि. श्लोक १८ ]

अर्थात्:—“ग्रहण, युति आदि को मैंने पूर्ण तया देकर मेरे वेध के खानुभव से दृक्तुल्य ग्रहों को निश्चित किया है। और उसी के आधार पर तिथि साधन किया है। इसलिये मंगलकार्य और धर्म निर्णय में वही तिथि लेना चाहिये क्योंकि यह प्रत्यक्ष में शुद्ध निश्चित होती है।”

१३. इस कथन से स्पष्ट ज्ञात होगया कि धर्म निर्णय आदि समस्त कार्यों में दृक्प्रत्यक्ष शुद्ध पंचांग की तिथि मानो जाती है। अतिपूर्ण मत की तिथि चाहे वह किसी भी सिद्धान्त से बनाई गई हो मानी नहीं जाती थी। \*

० यात्रा विवाहोत्सव जातकादौ सैटे: स्फुटैरेव फल स्फुटतरम् ॥. स्पष्टोच्यते तेन नमधराणां स्फुट क्रिया दृग्गणितैक्य कृत्या ॥.

धि. वि. प्र. ग. स्पष्टाधिकारे श्लोक १

१४ ज्योतिः शास्त्र सम्बन्धी एक लेख में जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा का मठ ने  
वेध तुल्य में भी कहा है कि:-  
अर्वाचीन संमति

ज्योतिः शास्त्र महा सात्त्विकदम्पर्यय विषयीभूतकालाययव याथात्म्य मनुभावय मानं विहित  
समस्त श्रौत स्मार्त क्रियाकलाप नियतकाल विभ्रमापनोद निभरं मनुकूलकृता शेष शेष भूत वस्तु  
स्वयंस्थाकृमपराकृष्टविषयं प्रतीति जननमविषयस्तावार्थितासंदिग्ध दृक्प्रतीति पर्याप्तमेव परि  
समाप्यते इत्येवमभिव्यक्तं गतेत इत्यादर गोचरं भवत्येवेति

[ भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ ४०९ ]

यह ज्योतिष शास्त्र शुद्ध समय को बतलाने वाला प्रत्यक्ष शास्त्र है क्योंकि इसकी  
एक एक बात कहीं रीतियों में प्रत्यक्ष हो सकती है। अतएव सम्पूर्ण श्रौत, विधि और मत  
निपम विवाहदि स्मार्त कर्म यथार्थ निश्चित समय में ही करने से फलद्रूप होते हैं।  
इसी से सुष संदेह दूर हो जाते हैं। ध्यान देकर देखने से इसकी सत्यता स्वयं सिद्ध  
हो जाती है। तब इसके समाभाविक धर्म से ही इसको समार में आदरणीय होना ही चाहिये।

१५ वेद में भी ज्योतिः शास्त्र एवं कालमापन के संबंध में कहा है कि:-

“ स्मृतिः प्रत्यक्षमिति चम् । अनुमानच गुटयम् ॥

वेध तुल्य रेना ही

एतदादित्य मण्डलम् । सर्वेषु विधास्यते ॥ १ ॥

आप प्रमाण है.

अनुभिध महजिध समान्द प्रदयते ॥

संस्तर. प्रत्यक्षेण नाधिव्ययः प्रदयते ॥ २ ॥

हिताय भवत्यर्थः [ १०२०१, २ ]

अर्थात्- १- प्राचीन स्थिति के स्मरण में, २- आकाश में दूरदर्शन त्रिकुण्ड  
[ तीन वांछ की दूरदर्शन ] अर्थात् नलिका, यष्टि व तुगीय यंत्रादि द्वारा प्रत्यक्ष देखने से;  
१- पूर्व प्रत्यक्षों की वही हुई पद्धति के ऐतिहासिक गणित में और २- ज्योतिषों की  
गो रश्मि के अनुमान; ( इन चार मापनों ) में नूरु कण्टक वा अर्थात् सूर्य के  
परिभ्रमण के काल का निश्चय होता है। क्योंकि ज्योतिः शास्त्र की छोटी बड़ी सब  
बातों में दृग्वा बनाविक रूप प्रत्यक्ष में दिखता है। और ऐसे ही सार सार का भी  
प्रत्यक्ष देखने आदि में निर्णय हो सकता है।

१६ इस कथन से और ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों की उपरोक्त वेव परम्परा से, बार बार अन्तर्ग दूर करने से स्पष्ट है, कि ऋषि प्रणीत ध्रुति सम्मत वर्तमान के सिद्धान्त प्रणाली के अनुसार अन्तर निकाल कर शुद्ध करने की प्रयत्न आप नहीं हैं। पद्धति को त्यागकर; ब्रह्मगुप्त, आर्यभट और मयासुर के बनाए हुए ग्रंथों के, ग्रह, आर्य और सूर्य, सिद्धान्त नाम रखकर एवं उनको ऋषियों के बनाए हुए कहकर तथा ये सब शके ४२१ के इधर के नए बने हुए होनेपर भी सूर्य सिद्धान्त जिसको घने आज २५,९७,०२२ वर्ष हो गए ऐसा उमके गणित का गौरव करके उसके अनुसार ही पंचांग बनाकर उमके बताए हुए नियम के सूर्योदय मूल्यांकन में एवं ग्रहण आदि में दो चार घड़ी का प्रत्यक्ष में अन्तर दिखते हुए भी; उसके अनुसार ही ग्रहमाधन एवं पंचांग करते रहना आर्य ग्रंथों के नाम लेकर बेवशक परम्परा एवं प्राचीन ऋषियों की आज्ञा का उलंघन करके उनका अपमान करने के समान है।

१७ ग्रंथों की कक्षा में जो सूक्ष्म अन्तर पड़ता जाता है वहाँ अन्तर से प्राचीन वैधमिद मानों से मिलाने पर, जब वह दृष्टिगोचर होता है, तब सिद्धान्त ग्रंथ का उस अन्तर को निकालकर दृक्प्रत्यक्ष शुद्ध ग्रंथ बनता है उसमें भी भारतीय ज्योतिर्विद, सिद्धान्त ग्रंथ उसे कहते हैं। जो ध्रुति, स्मृति ग्रंथों में बताए हुए ज्योतिष के तथ्यों के अनुसार बना हुआ हो, उसमें कहे हुए भगण व साधनदिन आदि से सृष्टि या वलय के आरम से वर्षगण और अर्द्धगण के द्वाय शून्य क्षेपक से ग्रहों की स्थिति और गति मिद की जाने पर वह प्रत्यक्ष में, गणित करने के सुलभ मिलते हैं।

१८ यह भी दत्त देना आवश्यक है, वरुणग्रंथ उमे कहते हैं जो सिद्धान्त आदि से बनाए हुए ग्रंथों में कम या अधिक अन्तर वेध से कारणग्रंथ का स्वरूप निश्चित करके उन बीज संस्कार से ग्रंथों की वास्तविक स्थिति व गति के क्षेपक व भ्रमक युक्त, सुष्ठु रीति के गणित का बना हुआ हो। तब, यहाँ विचार ने की बात है कि दृश्य चमकानों से दृग्गणितक्षय नहीं किया जाता तो इतने निद्वन्त और कारणग्रंथ नहीं बन जाते।

१९ हा यह बात तो आदर्य कहनी चाहिये कि उक्त ग्रंथकारों ने ज्योतिषशास्त्र की सूर्य सिद्धान्त ग्रंथों की बहुत कुछ प्रगति की है। और आरुपण शास्त्र, अनेक गणित के उपयुक्तता उनके निगम प्रसार व सूक्ष्मानि सूक्ष्म तथ्यों का देव लगाया है। ग्रंथ के अंतों व ल में विवेचनीय। को देवकार उनको सूक्ष्मता वाला बना हुआ बहुत बड़ी बात नहीं है। \*

\* "वर्षा भगण ग्रंथों यदि भुने कि ततो येषेदनेः ॥ अशुद्धये गणयति किं न गतिं तं देवमभि ॥ ३७ ॥ इति दिग्दर्शने वृत्ते रेखा पूर्वाया यदा छाया ॥ प्रविशति समन्त शब्दोः सम मण्डल गतस्तदा गते ॥ ३८ ॥

पंच सिद्धान्त का कारणवाद. ४

किन्तु आकाश में ग्रहों को देखकर यंत्रादि कों से घेघ्र लेकर उनकी स्थिति, गति, च्युति, उच्च, पात, फल और मङ्कर्ण आदि मानों को शोध कर उनका निश्चय करना बहुतही कठिन बात है इसलिए उनकी हम जितनी प्रशंसा करें उतनी थोड़ी है। कि तु केवल उनके स्तोत्र ही गाते रहना और उनके स्वीकृत शोधन कार्य को त्याग देना योग्य नहीं है।

२० दृश्य गणित की सूक्ष्मता के लिये, प्रथ से निश्चित किये हुए अकों में भी फलान्तर सस्कार दिया जाता है भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में इसे असङ्कर्कर्म × कहा है। अर्थात् प्रयोक्त ग्रह को बार बार फल सस्कार देकर वास्तविक मान के "दृश्य ग्रह के" तुल्य सूक्ष्म करके उम शुद्ध ग्रह का उपयोग करना हमारे संपूर्ण ग्रंथों का तार्थ्य है। जैसे केशव देवज्ञ ने कहा है कि-

"यस्मिन्देवो यत्र काले येन दृग्गणितक्यम् ॥

दृश्य गणित के पंचांग से  
तिथ्यादि निर्णय के प्रमाण  
केशव देवज्ञ का ( १ )

दृश्यते तेन पक्षेण क्षुर्यां सिध्यति निर्णयम् ॥ १ ॥ "

( ग्रह कैतुक में बसिष्ठ संहिता का बचन )

"जिस स्थल में जिस काल में जिस पक्ष से लाये हुए ग्रह की दृग्गणित से एकता मिलती हो उसी ग्रह से तिथि आदि का निर्णय करें।"

२१ इस प्रकार के दृश्य गणित से स्पष्ट मालूम होता है कि जिस समय में ग्रह लाघव प्रथ बनाया गया था उस समय में उसके गणित के २ प्रमाण गणेश देवज्ञक अनुसार ग्रहों की स्थिति, गति और कृति; प्राचीन ग्रंथों में बताई हुई ग्रहों की स्थिति की अपेक्षा अधिक शुद्ध थी। तौभी उसमें कुछ अन्तर होना गणेश देवज्ञ ने स्वयं कहा है, यथा -

"पूर्वोक्ता भृगुचन्द्रयो क्षणज्वा स्पष्टा भृगो ध्येयिता ॥ द्वाभ्यां ते रदयास्त दृष्टि समता स्या-  
त्तद्विषया मया ॥ २० ॥

ग्रह लाघव के समय में  
ही दो अंश का फर्क

( म० रा० उदयारताधिकार )

× "ग्राह् मध्यमे चलपलस्य दल प्रदद्या, तस्माच्च मान्दमरितल निदर्शय मये." "

ग्रह लाघव ( ३ १० )

"इति कृताभ्या प्रथम पलाभ्या ततो विलम्बाभ्यामस कृत्तुजस्तु ॥ नाशङ्कनीय न चले किमित्य  
यतो विचित्रा पल वाचनाऽन ॥ ३९ ॥ " "अत्र गणित स्वयं उपरात्तिमाने बागम प्रमाणम्।"

( सिद्धांत सिगमणि म ग स्पष्ट धिकारे पृ ७२ व गोळबन्धा धिकार )

“यद्यपि मैंने शुक्र और चंद्रके स्पष्ट कालांश लिखे हैं, किन्तु मुझे प्रत्यक्ष में उसमें दो अंश कम दिखते हैं। इसलिये इसमें दो दो अंश कम करना चाहिये।

२२ ऐसे विद्वान को धन्य है कि जिसने स्वयं अपनी बताई हुई प्रहस्यति में अंतर ज्ञात होने पर गलती का स्वीकार किया है। यह कितनी प्रह साधव के बाद ज्योतिष का शोधन क्यों न हो सका। सच्चाई पूर्ण और उच्च विचार की बात है। ऐसे निरभिमानी ज्योतिषिद की कही हुई बातें प्रमाणभूत क्यों न मानी जायें! किंतु हमारे दुर्भाग्य से उनके पश्चात् एक भी ऐसा ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र का ज्ञाता धुरंधर विद्वान भारत में नहीं हुआ कि जो भारतीय ज्योतिषशास्त्र का सिद्धांत ग्रंथ या करण ग्रंथ बनाकर भुति सृति प्रोक्त ज्योतिष शास्त्र का सुधार करता। क्योंकि इन ग्रंथों की आवश्यकता तो केशव देवज ने ही (कलम ८ ‘घ’ और ‘च’ में) बता दी है।

२३ किंतु साथ में यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि महाराज विक्रम और भोज के आश्रय की भांति न तो उन्हें पर्याप्त राजाश्रय ही मिले और न काल की अनुकूलता प्राप्त हुई। तब ज्योतिषी शास्त्रों का विचार क्या करते; जब उनको उदर भरण भी बड़ी कठिनाई के साथ करना पड़ता था; तब उन्हें यंत्र और मंत्रादि घेघ सामग्री के लिये द्रव्य कहाँ से मिलेंगे? फिर भी ऐसे कठिन काल में भी वे इस शास्त्र का थोड़ा बहुत शोधनादि कार्य तो करते ही रहे हैं। जैसे उनके १९९३ में विश्वनाथ देव-ज्ञाने प्रहलाधव की टीका में ‘बीज संस्कार’ देकर उक्त रवि चंद्र और चंद्रोच्च की शुद्धि बताई है।

२४ उर्वर पश्चात्य देशों में राजाश्रय होने से इस समय इस शास्त्र की बहुत ही उन्नति हुई है और हो रही है। एक समय यह था कि हमारे शोधन का उपयोग वे क्या करते थे और अब हमें उनके शोधका उपयोग करना पड़ता है। जैसा कि पोलिश सिद्धान्त के रचना काल के वसन्त संपत्त स्थानीय तारे को प्रक ज्योतिषी पोलक्स कहते थे और अलेग्सांड्रिया व कन्स्टान्टिनोपल के बीच के यन्नपुर नाम के नगर के उच्चरिनी से रेखांशान्तर ४६-५५ द्वारा पोलिशोक्तमान से अपने पंचांगों को ठीक करते थे और आज मिनिच के ७९-७ से उच्चरिनी इंदौर नगर की मध्य रेखा द्वारा नाटिकल अल्मनाक नामक अंग्रेजी पंचांग से काशी निवासी महामहोदयाय पंडित चापूरस शास्त्री आदि यहां काशी में शुद्ध पंचांग बनाने हैं।

२५ इस शास्त्र के तीन विभाग माने जाते हैं ।

- १ गणित स्कंध याने गोलीय ज्योतिष Spherical Astronomy  
वेद द्वारा प्रिस्कंध २ संहिता स्कंध याने प्रेरणात्मक ज्योतिष Gravitational  
ज्योतिष का विकास. Astronomy  
३ फलित स्कंध याने दिव्य परिणाम ज्योतिष Physical  
Astronomy  
Theoretical Astronomy, Celestial Mechanics.

(१) उसमें गोलीय ज्योतिष के लिये साधारण रेखा गणित के अतिरिक्त गोलीय त्रिकोण मिति, दीर्घ वर्तुलीय त्रिकोणमिति, कुट्टक, श्रेढी शून्य लब्धि, चलन कलन, व शून्य सूत्र ।

(२) प्रेरणात्मक ज्योतिष के लिये उच्च बीज गणित Higher Algebra समीकरणोपपत्ति Theory of Equations  
त्रैजिक भूमिति Analytical Geometry  
परमाणु गणित Differential Calculus  
पिंड गणित Integral Calculus  
परमाणु समीकरण गणित Differential Equations

(३) प्रकाश शास्त्र, आकर्षण शास्त्र, वर्ण तरंग शास्त्र, जीवनेन्द्रिय शास्त्र और विद्युत्मानस शास्त्र ।

२६ उक्त तीनों विभागों को पूर्णतया समझने के लिये उक्त विषयों का ज्ञान उत्तम प्रकार का होना चाहिये इन विषयों के मूलतत्त्व संहिता, तंत्र, सिद्धान्त ग्रंथों में उत्तम प्रकार से दर्शन दिये गये हैं; किन्तु यदा विचार करते की बात है कि एक समय यह था कि उक्त विषयों के मूलतत्त्वों को हमने शोधकर निश्चित किया और दूसरा आज समय यह है कि वैसे हम पूरा जानते भी नहीं हैं । फिर उसकी उत्पत्ति क्याकर सिद्ध करना तो दूर रहा । जिस धारा पद्धति से हम मुगलता से गणित कर सकते थे उसके रयान में लॉगरेथ्मस Logarithms ( घटाङ्क गणित ) के कोष्ठों से हमें काम करना पड़ता है ।

२७ किंतु इस समय में पाश्चात्यों ने इसे पूर्णतया हस्तगत कर लिया है ।

पाश्चात्यों के माफक हमें प्रेरणात्मक ज्योतिष ( Gravitational Astronomy ) में तो वे बहुत ही आगे बढ़ गये हैं । जैसे दिव्य, आकाश गंगा, नक्षत्र, सूर्यग्रह, उपग्रह धूमकेतु, और उल्काये पदार्थ कहां व कैसे हैं ? सूर्य, ग्रह, तथा उपग्रहों का परस्पर आकर्षण दाय्र में संवेग क्या है ? कीन ! किमने चारों ओर घूँसा है । इन की कक्षाओं के चित्र किम प्रकार के

हैं कक्षाओं का तब किस तरफ और कैसा झुका हुआ है। उर्जक परस्पर अंतर व प्रदक्षिणा काल कितना है ? इत्यादि अनेक प्रश्नों को हल करने में अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशवासियों ने आजन्म परिश्रम करके उनके उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हैं। और लिखते जा रहे हैं।

२८ इन बातों को देखकर ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है कि ऐसे परिवर्तन होने का मूल कारण क्या है ? उसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त है  
उधर उन्नति राजाश्रय से कि इस शास्त्र की उन्नति के लिये सहायता करना यह बात हुई है। हमारे राष्ट्रीय कर्तव्यों में से महत्त्व का कर्तव्य माना गया है।

ऐसी भावना संपूर्ण पाश्चात्य सभ्यता की राष्ट्रों की सुटव है।

२९ इधर हमारे भारत में हर नामवन्ध महाराजा जयसिंहजी जयपुर नरेश ने जयपुर, दिल्ली, उज्जयिनी, काशी, मथुरा आदि नगरों में, वेध इधर के राजाओं ने भी शालाएँ बनवाकर वहाँ योग्यतियोग्य ज्योतिषी रखकर शक १६५३ से शक १७०० में सिद्धान्त सम्राट नामक ग्रन्थ बनाकर इस शास्त्र की बड़ी उन्नति की। इसी प्रकार उन दिनों में करण कलत्रद्रुम सिद्धान्तराज, और तत्त्व विवेकादि करण ग्रंथ अन्यान्य विद्वानों द्वारा बनाए गए।

३० महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री म. पं. नीलांबर झा प्रो. नाता छत्रे, श्री. चिन्तामणी रघुनाथाचार्य, श्री. पं. कृष्ण शास्त्री गोडबोले, वेध शुद्ध पंचांग बनाने में भारतीय विद्वानों की प्रवृत्ति। ज्योतिषाचार्य चैकदेश बापूजी केतकर, प्रा.ः सरणीय साध्वी सूत्रधार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख के अनेक प्रकार से इस शास्त्र की उन्नति की। पूर्ण की पंचांग कमेटी ने तो रुपये ९००० पारितोषक देकर ज्योतिषिद श्रीयुग दपनरी मशील महोदय से करण कलत्रलता नामक पंचांग

\* मैच सरदार Annusire नाम की पुस्तक ईशवी सन १७९५ से प्रति वर्ष प्रसिद्ध करते हैं। उसकी प्रस्तावना में उनकी अंगरेज कर्मचारी निधित्त लिखे हुए रहते हैं। जैसे— II ( la Bureau des Longitudes) est institue en vue du perfectionnement de diverses branches de la Science astronomique et de leurs applications à la geographie, à la navigation et à la physique du globe, ce qui comprend..... 4° l'avancement des theories de la mécanique celeste et de leurs applications; le perfectionnement des Tables du Soleil, de la Lune et des planets; 5° .....

साधन का ग्रन्थ बनवाया, किन्तु उसमें शास्त्र शुद्ध-अयनांश नहीं होने से और उससे बने पंचांग का कोई भी सिद्धांत या कारण ग्रंथ से मेल नहीं है। क्योंकि शास्त्र शुद्ध निरयन मान से उसके ग्रह ३१५८.१ अधिक हैं।

३१ इस ओर महाराज जम्बू नरेश की भी कृपा हुई "आपने एक चंद्रमहण के गणित की प्रत्यक्ष प्रतीति करके प्रसन्न होकर म० प० वेध शुद्ध पंचांग बनाने में भारतीय राजाओं की प्रशंसा। वापुदेय शास्त्री को १००० रुपिया भेट में प्रदान किये" [ भारतीय ज्यो० शा० पृ. ३०० से उद्धृत ].

३२ हमारे सम्माननीय महाराजा होलकर सरकार की तो कई दफों से इसकी ओर कृपा दृष्टि हो रही है। शके १८१८ में धीयुत शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इस विषय में जो मराठी भाषा में लिखा है उसका उद्धरण निम्नलिखित है:—

"मी इन्दूर एथें गेलो होतों, तेव्हां तेथें सरकारवाड्यांत मुद्दाम वेधाकरितां दिशा साधन वगैरे सोय करून एक जागा केलेली आहे, इश ओर इन्दूर महा- आणि तुफोजी महाराजांच्या पदरचे ज्योतिषी तेथें कधी कधी वेध घेत असत असें संमजलें." ( भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३५९ )

महापुरुष नेपोलियन सम्राट जैसा रणधुरंधर था वैसाही वह शास्त्र और कलाओं का प्रसक्त भी था हमारी परमपूजनीय चमवर्तिनी महाराणी सारदा के उद्देश आशय से जैसे "हानसेन के चन्द्र कोटक" नामक पंचांग सारन ग्रंथ ( ई. स. १८५७ में ) प्रसिद्ध हुआ उसके संदेश "सुर्ग के चन्द्र कोटक" नेपोलियन बादशाह के औदार्य से ( ई. स. १८०६ में ) प्रसिद्ध हुए थे। उसकी प्रति बादशाह को नजर करते समय साम्राज, लाइन्स, एलन्ड और विलियम विन्सम सम्राट के बराबर भिदगदि-के गहव महा गणितज्ञ ( कोर्ट ऑफ सॉर्जेंट्स ) याने ज्योतिषशास्त्र प्रवर्तक मंडल के समावेश में। उनके अर्पणपत्र में नीचे लिखे अनुसार हृदयंगम स्वर प्रगट किए गए हैं।

.....ce n'est point au Vainqueur de Marengo et d'Austerlitz,..... que le Bureau des Longitude vient offrir le tribut de ses veilles C'est au Protecteur d'éclaire' des sciences et des arts, qui a ouvert de tant de gloire daignait entrer dans nos rangs, assister à nos conférences, animer encourager et diriger nos travaux.....



३३ इसी प्रकार इस राज्य से प्रति वर्ष जो पंचांग प्रकाशित होता है उसमें संवत् १९६० में दृश्य संवत् १९६० शके १८२९ के पंचांग की प्रस्तावना में लिखा गणित का पंचांग मजूर गया है कि:—  
होचुका है

“मालव देशांतील सर्वे लोकांस यथार्थ तिथ्यादि ज्ञानानें धर्मानुष्ठान क्रिया व विवाहादि सर्व मंगल कृत्यें उक्त मुहूर्तावर व्हावी म्हणून स्वदेश धर्माभिमानां श्रीमंत होलकरान्वय नृपचूडामणि राजाधिराज महाराज तुकोजीराय महाराज साहेब यांनी सिद्धान्तानुसारी, सूक्ष्म, प्रतीति कारक दृश्य गणितांश सहित पंचांग ..... प्रसिद्ध केले असे.”

३४ इससे श्रीमन्त महाराजाधिराज का विद्यानुराग, सद्धर्म प्रेम और उदारता का ता परिचय होता ही है। साथ ही ( १ ) सिद्धान्तानुसारी, ( २ ) सूक्ष्म, ( ३ ) प्रतीति कारक, और ( ४ ) दृश्य गणित ( ऐसे पंचांग के स्वरूप ) को बनाने वाले चारों विशेषणों को देखने से स्पष्ट होजाता है कि:—

श्रीमन्त कै० महाराज तुकोजीराय ( दूसरे महोदय ) वास्तविक “मान” का, दृक्प्रत्यय युक्त व शास्त्रशुद्ध सिद्धान्तानुसार पंचांग चाहते थे। यह बड़े सौभाग्य की बात है।

३५ यह बात भी बड़े आनन्द की है कि प्रायः दो वर्ष से इंदोर के ज्योतिष तीर्थ पुं० नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषी ने महल ( जूने राज-वेध छद्म पंचांग बनाने में बाडे ) के ऊपर वेध लेने के लिये दिशाओं का साधन करके शंख छायी नापने एवं नलिकासे ठंक् पूर्व दिशा में सूर्य का वेध लेने के लिये तथा अयनांश साधन के लिये एक संगमरमर पत्थर के स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई उसके अनुसार लोक प्रिय माननीय होलकर सरकार की आज्ञा से जब यह पत्थर रखने की व्यवस्था प्रसिद्ध विद्वान् माननीय दीवान् ए-स्त्रास बहादुर सरदार माधवरायजी किवे साहय बहादुर एम. ए. ( एम. आर. ए. एस. आदि ) द्वारा गत फाल्गुन मास में की गई। उस समय वहाँ भी उपस्थित था। अब उससे वेध लेने का काम उक्त पंडितजी किया करेंगे हैं। मुझे आशा है कि माननीय होलकर सरकार भविष्य में इसकी ऐसी उन्नति कर देनेकी कृपा करेंगे, जिसके द्वारा गणित शास्त्र को प्रशसनीय सहायता सदा मिली करेगी।

३६ उक्त लेख का सारांश ये है कि जिस ग्रंथ के आधार पर यह पंचांग बनाया जाता है, उस ग्रंथकार के कथन से एवं अन्यान्य और प्रमाणों से इस पंचांग के शोधन के लिये प्रह्लादराय ही बाल-निम्न लिखित दो बातें निश्चित [ निर्णीत ] होती हैं।  
न देकर शुद्ध कला बा-  
हिये,

( अ ) जिस ग्रंथ का गणित दृक्प्रत्यय से बराबर मिलता है । उसी ग्रंथ के आधार से बने हुए पंचांग के तिथि, नक्षत्र, ग्रह-गोचर, लग्न साधनादि संपूर्ण कार्यों में यहां आज तक मान्य किये जाते थे । और—

( ब ) ग्रह लाघव के समय ही उसमें थोड़ा अंतर था और आगे सिर्फ १११ वर्ष के पश्चात् शाके १५५३ में विश्वनाथ देवज्ञ ने उस अंतर को निकाल ने के लिये बीज संस्कार किया है । किंतु आज उसे ४०९ वर्ष होगये हैं इसलिये निश्चय है कि उसमें बहुतसा अंतर पड़ गया है । इन दो कारणों से इस पंचांग के शोधन के लिये ग्रह लाघव को ही शुद्ध करना चाहिये ।

क्योंकि सिद्धान्त प्रयोगों की अपेक्षा करण प्रय कोही चालन देकर शुद्ध करना गणित के लिये सुभीते का होना है । उसमें भी बहुमान्य ग्रंथ को चालन देनेमें उसके द्वारा बना पंचांग भी सर्वमान्य होमकता है । क्योंकि भारतवर्ष में ग्रह लाघवीय पंचांग के इतना मान और पंचांगों की नहीं है इतना ही नहीं तो यहां जिस पंचांग को सुधारने की हों आशा हुई है वहीं शुद्ध ग्रह लाघव से बनाया जाता है । इसलिये पंचांगकार को ग्रह लाघव का गणित मादूम होना चाहिये इसमें हमारा अब यही कर्तव्य है कि चालन देकर ग्रह लाघव को ही शुद्ध करना चाहिये ताकि उसके द्वारा सर्वसाधारण उपयोगी भी सूक्ष्म गणित का पंचांग बना सके ।

इतना ही नहीं तो इस सभा पर यह भी बर्तव्य है कि पंचांग में जो दिनमान व गुरुोत्तर रा की स्टैंडर्ड टाइम लिखी जाती है सदा एव सारणी भाष्यसारणी और वर्ष प्रवेश सारणी लिखी जानी है सो इनकी स्यूता निम्न प्रकार इन्दौर नगर के रेखांश अक्षांश द्वारा इतनी गुरुम बना देना चाहिये कि उनके दृक्प्रत्यय में एक मिनट या भी फर्क नहीं पड़े । और यही सारणी गुरुओं से देते जाने में भी पचास वर्ष तक काम दे सके ।

आता है सपूर्ण समाप्त महमन होकर त्रय विभागनक के अनुसार अपने अपने तर्क में इस के एक एक विषय को पूर्ण करेंगे तो निर्दिष्ट समयमें पंचांग शोधन का कार्य करके इसका विवरण [ रिपोर्ट ] प्रिन्स मस्कर की सेवा में भेज दिया जायेगा ।

एक मिनट से इसे काम करना चाहिये.

भवदीय

दीनानाथ टागोरी प्रिन्स.

## समापति का भाषण.

[ पहिली सभा में ]

[ ता. २२-९-२९ ]

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट बोले कि;

१. " भारत में बहुत से पंचांग पहलाघव व तदनुसार बनी हुई तिथि चिंतामणि की सारणों से बनाए जाते हैं किन्तु वर्तमान समय में दृश्य बातों से मिलाने पर—'अमावस्या, पौर्णिमा और कृष्णाष्टमी तिथि के समय ११ घड़ी से १४ घड़ी तक अंतर सदा दृष्टि में आता है। इससे भद्रा व व्यतीपात संधि कुयोग के समय में भी आध घंटे से ५॥ घंटे का, ग्रहण के स्पर्श मोक्ष काल में दो घंटे का, ग्रहों के भोग में ६ अंशों का और गुरु शुक्र के उदय अस्त में ९, १० दिनों का ज्यादा से ज्यादा अन्तर दृष्टि गोचर होता है। इसके अनुसार पंचांग की सभी बातों में अन्तर रहना स्वाभाविक बात होगई है।

२. यह अन्तर हमही बतला रहे हैं ऐसी बात नहीं है किन्तु भारत में इस विषय में कई सभा होकर उनमें सभी पक्ष के लोगों ने इस बात को प्रस्ताविक बातें. मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है; इतना ही नहीं बरन उसे सुधारन के लिये क्या २ उपाय किये जावें ऐसी समस्या को पूर्ण करने के लिये उसमें बहुत से कार्य किये भी गये हैं। और उसको पूर्ण करने का सौभाग्य भीमंत होकर सरकार की नियुक्ति से इस सभा को प्राप्त हुआ है।

३. पंचांग के सुधार के संबंध में बहुत से ग्रंथकार और ग्रंथ लेखक आदि विद्वानों का कथन \* है कि; हमारे धर्म शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के पहले पक्ष का कहना. ग्रंथों का परस्पर में इतना निकट संबंध है कि वह एक रूप के बराबर होगये हैं। अतएव धर्मशास्त्र के तत्त्वानुसार अभी तक के सभी ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथ बने हैं। और उनके अनुसंधान से ही धर्मशास्त्र के ग्रंथों में व्रतोपवास आदि के काल निर्णय किये गये हैं। यह निर्णय और ज्योतिष के ग्रंथ ऋषियों के कहे हुए वचन

---

\* काल माघव से धर्मसिंधु तक के ग्रंथ व 'महापट्टीय पंचांगेक्य मंडल पूना शाके १८४७ के वृत्तांत में पत्र नं० २३ आदि में लिखा है ओ [ देखिये पृष्ठ नं. १५ ]

हैं। तथा हमारा धर्म ही आर्य वचन प्रमाण को मानने वाला A है। तो इस शोधन से आर्य ज्योतिष के तत्वों में बाधा आने से हमारे धर्मानुष्ठान की बातों में भी बाधा आती है। जिससे यह सुधार करना हमें मान्य नहीं है। वह बाधाएँ यह हैं कि;

[ अ ] मनुस्मृति की युग व्यवस्था के अनुसार— 'कल्पादि से वर्ष गणों को करके; वहाँ ग्रहों के शून्य क्षेपक मानकर ज्योतिष के ग्रंथों में ग्रहगणित लिखा है और सूक्ष्म गणित के नव्य ग्रंथों से उस वक्त सब ग्रहों का शून्य क्षेपक नहीं आता तब धर्मग्रंथों में कही व से क्या इससे मिथ्या प्रतीत नहीं हो सकती? इतना होकर भी सूर्य-चंद्र के गति के कालान्तर जन्य फर्क ( सौ वर्ष में प्रो० हाजेसेन के मत से +१२.१९ श, प्रो० न्यूकम्ब के मत से +८.४४ श. और गलग्नतर +२९.१७ B से ) निश्चित नहीं होते हुए भी उससे त्रिकाल दर्शी को निष्कारण मिथ्या कहना नहीं होता क्या?

[ आ ] हमारे ज्योतिष के आधार से बर्ना तिथि की घटती ६ घड़ी की और घटती ५ घड़ी तक की होती है। इसी के अनुसंधान से धर्मग्रंथों में श्राद्ध और व्रतादि काल का निर्णय लिखा गया है। किंतु नव गणित की तिथि में वही घटा बधी ६ व १० घड़ी तक होती है। तब श्राद्धादि कार्यों का धर्म ग्रंथों से योग्य निर्णय कैसे हो सकता है ?

( ई ) हमें मालूम है कि पाश्चात्य जंत्री बहुत सूक्ष्म हैं किंतु उनकी नकल के पंचांगों द्वारा कुछ हमें नौ का ध्यान दृश्य गणित से निश्चित नहीं करना है; कि उक्त स्थलों को दृश्य आकाश से रेखांश अक्षरांश का फर्क न पड़ जाय। हमें नौ केवल धर्मानुष्ठान काल और फल ज्योतिष का शुभाशुभ फल चाहिए। पर भी कदियों के वचनों से; फिर जब उनका बताया कर्मकाल ही गलत हुआ तब उस कर्म का बताया हुआ शुभाशुभ फल भी गलत भिन्न नहीं होता क्या !

A जैमिनि मीमांसा सूत्र के प्रारम्भ में ' चेदना लक्षणोऽर्थो धर्मः, देवा ( १.१.२ ) धर्म वा स्वरूपं दत्ताया है। इससे ' वचनात्मवृत्तिर्वचनाप्रवृत्ति.' प्रमाण में माने जाते हैं। B ज्योतिषगणित पृष्ठ ८२ में उक्तानुसार।

[ऊ] जब कि धर्मका फल अदृष्ट होते हुए भी आर्षि वचनों से उसका अस्तित्व माना जाता है तब उसके अनुसंधान से कहा काठ भी मानना योग्य है । तथा कर्मानुष्ठान के योग्य काठ की व्याप्ति इतनी बढ़ाई हुई है कि उसके पर्याप्त काठ को हमारे पंचांग बता सकते हैं जैसे संक्रांति काठ के आगे पीछे '१६-४० घड़ी, गुरु शुक्रास्त में बाल वृद्धत्व के १५-७ दिन, आदि' बताए गए हैं; २३ अंशों के ऊपर आगे की राशि का फल कहा जाता है इतना ही नहीं वरन वास्तु-प्रकरण में २१ नक्षत्रों की राशि के स्थान में २ व ३ नक्षत्रों की राशि कहा होने से वहाँ वही फल में स्वीकृत होती है तदनुसार यहाँ स्थूलता मानने में हानि होती है ऐसा प्रत्यक्ष बता सकते हैं क्या ?

[ए] यदि आपको कुछ सूक्ष्मता ही बताना हो तो जंत्री, क्यालेंडर, आलेख्यों द्वारा बतावे किंतु वैसा करना छोड़कर श्रौतस्मार्त धर्मानुष्ठान के तत्त्वानुकूल पंचांग का 'उक्त अ-ऊ समस्या को पूर्ण करे बिना' शोधन करना निष्कारण प्रयत्न नहीं होता क्या ? A

४ "दूसरे" गणितशास्त्र के ग्रंथकार और प्रबन्ध लेखक आदि कतिपय विद्वानों का कथन \* है कि कलाज्ञान और शास्त्रीय शोध दूसरे पक्ष का कहना, चाहे किसी के हों उन्हें लेने में हमें हानि नहीं है । इसलिये, ज्योतिष यह प्रत्यक्ष शास्त्र है; प्रत्यक्ष, दिखनेवाली बात को 'हम ऐसा मान्य करेंगे व ऐसा मान्य नहीं करेंगे इस प्रकार कहना योग्य नहीं है । तब पंचांग के शोधन करने में शुद्ध गणित से चाहे हमारे धर्मशास्त्र ग्रंथों के कथन के अनुसार; कल्य के आदि और अन्त में शून्य क्षेत्र के ग्रह हों, चाहे नहीं; मनुस्मृति के माफक युगमान हो, या, न हो; ऐसे ही दृश्य गणित के मान से बनी हुई तिथि के निर्णय करने में धर्म-शास्त्रोक्त रीति से बाधा आती हो, या न आती हो इसकी कुछ हमें आवश्यकता नहीं है । आज आद्य नहीं करके कल किये ऐसे करने से हमारा कुछ हानि नहीं है; वरन पंचांग को स्थूल रखने में है । इसलिये आज जो दृक्प्रत्यय में आवे उस सारणी या प्रदग्गणित से पंचांग बनाने फल अयनांश आदि बातों का विचार समा में बहुमत से

A ज्योतिर्विद पंडित मनीगमजी गांगवत गौड कृत विद्वान्त देवश विनोद की भूमिका में इसका कुछ भाग कहा गया है ।

\* पंचांगैक्य मण्डल पूना में सम.पति मशहदय के निर्णय में डमका कुछ भाग कहा गया है [ शाके १८४७ प्रथमाभिषेचन. ]

करलेवें। इस प्रकार ग्रहगणित ग्रंथों से भी पंचांग नहीं बना सकें तो नाटिकल आलपनाक नामक आदि इंग्रेजी पंचांगों से सूक्ष्म गणित का पंचांग बना लेंगे. A

५ " तीसरे " भारतीय सिद्धान्त, ज्योतिष शास्त्र व धर्मशास्त्र के कतिपय विद्वानों का कथन है कि श्रुति और स्मृति ग्रंथों में कहे हुए ज्योतिष तीसरे पक्ष का रहना. के तत्वों के अनुसार बने हुए प्राचीन ग्रंथों के मूलाङ्कों को शुद्ध करके उसके द्वारा दृक्प्रत्यय युक्त पंचांग बनाया जाय और उसकी प्रस्तावना में पहिले पक्ष के किये हुए प्रश्नों का यथा योग्य उत्तर देते हुए वह पंचांग कोई भी आर्ष वचन के विरुद्ध नहीं जाने पावे; ऐसा शास्त्र शुद्ध और उसकी सब बातें दृश्य गणित के तुल्य एवं सूक्ष्म गणित की होनी चाहिये।

६ जब कि; ' अन्योन्य सिद्धान्त ग्रंथों ' में बीज संस्कार देकर श्रीमत् गणेश देवज्ञ प्रह्लादप्रभु को शुद्ध करें तो. ने वेध लेकर तत्कालीन दृश्य गणित से मिलाते हुए शुद्ध मूलांक प्रह्लादप्रभु ग्रंथ में लिखे हैं, इसलिये सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथों की अपेक्षा प्रह्लादप्रभु ग्रंथ शुद्ध है। " तत्र यदि उक्त मूलाङ्कों में वेधसिद्ध चालन देकर क्षेपक, ध्रुवक और फल साधन की सारणी आदि मुधारी जायें तो जिस ग्रंथ के आधार पर आज तक के पंचांग बनाये जाते हैं वह ग्रंथ ही शुद्ध होजायगा। और उसके द्वारा शुद्ध, सूक्ष्म, व दृक्प्रत्यय कारक गणित के पंचांग भी बनते रहेंगे। इससे प्राचीन ग्रंथों का उपयोग भी होता रहेगा और वेगल सारणी पर से पंचांग बनने वालों को बड़ा सुभीता हो जायगा।

७ किन्तु यहां यह संका उपस्थित होसकती है कि उक्त शुद्ध पंचांग बनने से और उसमें सूक्ष्मता होने से क्या वह धर्म शास्त्र ग्रंथों से विरुद्ध हो सकता है. होगा ! ऐसा शंकेह करने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि हमारी नई सोध से सिद्ध किया गया है कि; " वेद " यह " ज्योतिष शास्त्र का मूल ग्रंथ है। अतएव इसका एरु २ मंत्र आकाश के दृश्य ज्योतिषों का वर्णन करता है। इसलिये निश्चय है कि जो बातें सूक्ष्मातिसूक्ष्म वेध लेने पर भी अभी तक ' निश्चित वहां ' अनुमित की जासकती हैं; वही वेद में उतनी ही सूक्ष्म कही गई हैं। तब इसके द्वारा पहिले पक्ष के उपाधित किये हुए ( अ+ आ+ ई+ ऊ+ ए+ ) प्रश्नों का

A सुंभर की पंचांग सोधन परिपद में म० म० पं० दुर्गाप्रसादजी के कहे हुए प्रथम पक्ष के उत्तर में म० प० स्मृति तीर्थ आदिके मापण का सारांश। व प्रस्ताव नं० २-४ में स्वीकृत बातें ( भाक १८२९ )

सप्रमाण निर्णय करने से सब शंकाओं का समाधान होजाता है। और धार्मिक ग्रंथों से निश्चित हो सकता है कि एक तिथि का वृद्धि क्षय ५+६ घटी का नहीं है किन्तु ९+१० घड़ी का श्रुति स्मृति सम्मत है।

८ अतः अब हमें श्रुति व स्मृति ग्रंथों के प्रमाणों से ही सूक्ष्म गणित के पंचांग का निर्माण कराना चाहिये। क्योंकि इसके संबंध में कै. था. सरकार की भी ऐसी ही श्रीमंत बड़े तुकोजीराव महाराज ने संवत् १९६० के साल के इस राजधानी से प्रकाशित होने वाले पंचांग में ( भूमिका कलम ३३ में लिखे प्रकार की ) जो रूप रेखा अंकित करदी है वस उसी तरह के पंचांग को हमें बनवाना चाहिये।

क्योंकि पंचांग की सब बातें जबकि दृष्टि कही गई हैं तब आकाश में ग्रह नक्षत्रों के उदयास्त याम्योत्तर लंघन काल आदि द्वारा; चाहे जिस दिन की पंचांग की बातें—जैसे सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर से तिथि; चंद्र की स्थितिसे नक्षत्र और सूर्य चंद्र के नक्षत्रों के जोड़ से योग; इत्यादि—प्रत्यक्ष व्रतलाते आना चाहिये।

तथा इसके संबंध का बहुतसा कार्य भाग भारतीय पंचांग शोधन महापरिषदों एवं पंचांगिक्य मंडल द्वारा निश्चित होचुका है। उन निश्चित बातों के अनुसार ही यह पंचांग बनाना चाहिये। और इस पंचांग की शास्त्र शुद्धता व दृक्प्रत्ययता बतलाने के लिये महीने या पंद्रह दिन का एक पंचांग का पृष्ठ छापकर विद्वान लोगों की सेवामें भेज दिया जाय तो मैं उम्मीद करता हूं कि आपका किया प्रयत्न और पंचांग का; विद्वान लोग अवश्य ही आदर करेंगे। अतएव यह पंचांग मालवे में ही नहीं तो भारतवर्ष में एक आदर्श पंचांग होजायगा। इससे पंचांग शोधन कार्य की पूर्णता का श्रेय इस इंशिर पंचांग कमीटी को प्राप्त होसकेगा।

भवदीय,  
दीनानाथ सास्त्री,  
चूलेट.

प्रश्नोंका चुनाव मुद्दे ( विषय निर्वाचन )

इस प्रकार समापति के भाषण के अन्त में इस रिपोर्ट को भूमिका रूप पर समापति ने दाखल किये व तदनुसार नीचे लिखे प्रकार मुद्दे निश्चित किये गये वह ये हैं कि—

१ प्रचलित पंचांग में प्रसिद्ध होने वाले दिनमान व रवि के उदयास्त की स्टैंडर्ड टाइम यहां के रेखांश अक्षांश से सांप्रतकाळ की [ सूर्य की ] परमक्रांति द्वारा सूक्ष्म गणित से चर पलों का साधन करके दृग्गणितक्य युक्त बनाई जाती है या नहीं ? यदि नहीं हों तो उसको ठीक २ करने में क्या उपाय किया जाय ?

२ चालू पंचांग में लग्न, मावादि सारणी छप करती हैं वह बरोबर हैं या नहीं ? यदि न हो तो उसमें क्या उपाय किया जाय जिससे कि वह सूक्ष्म गणित की तयार की जाय ।

३ ग्रहण ग्रहों के उदय अस्त आदि कार्य ठीक २ मिलने के लिये सूक्ष्म गणित से ग्रह साधन करना अवश्य है इसके लिये “ हमारे सिद्धान्त ग्रंथोक्त मूलकों में कितना बीज संस्कार दिया जाय जिससे कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विद्वद् न होते हुए जिनके द्वारा दृग्गणितक्य होजाय । ”

४ तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण इत्यादि पंचांग विभाग भी सूक्ष्म गणित से बराबर हैं या नहीं ? यदि नहीं है तो उन्हे शास्त्रशुद्ध और सूक्ष्म करने के लिये क्या किया जाय ।

५ शुद्ध गणित के पंचांग में जबकि तिथि का वृद्धिक्षय ९१० घड़ी तक का होता है तो क्या इसमें धर्मशास्त्र से बाधा आती है । जो कि “ वाण वृद्धि रस क्षयः ” आदि कहा जाता है ।

ज्योतिषाचार्य पंडित रामसुचित त्रिपाठी का पहिला

दृश्य गणित के पंचांग का खंडनात्मक लेख.

॥ श्री ॥

जायक नंबर २३

ता० १६-११-२९ ई.

रा. रा श्रीमान् वि. दीनानाथ शास्त्रीजी की सेवामे

नमस्कार

पत्र नम्बर २

पंचांग कमेटी के अध्यक्ष शास्त्रीजी साहब— कई एक कमेटी में मैं नहीं उपस्थित हो सका शारीरिक अस्वस्थता के कारण इसलिये मैं जानना चाहता हूँ कि आज तक कमेटी द्वारा पंचांग का कितना कार्य हो चुका और कैसा पंचांग बनाने चाहते हो—



कमेटी में आपके मुख में मालूम हुआ कि दृक्प्रत्यय से पचाग बनेगा यदि सवही विभाग पचाग के दृक्प्रत्यय से बनाने चाहते हैं तो आर्य सिद्धान्त विरोध होने से और धर्मशास्त्र विरोध होने से मेरे को मान्य नहीं है—आर्य सिद्धान्त विरोध बचन चाहते हो तो देने को तैयार हूँ आशा है कि आर्य बचन के लिये समय भी देंगे इस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पचाग नहीं बनता इन बातों का उत्तर लेखी मिलने से आपका प्रश्न मूलाकों में क्या सस्कार देना जो दृक्प्रत्यय सिद्ध हो यह प्रश्न उपस्थित होता है।

आपका हितैषी

पं. रामसुचित त्रिपाठी.

जायक न २३

ता २० ११-२९ ई०

पत्र का प्रत्युत्तर

लेखक—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री (कमेटी में)

॥ श्री ॥

पत्र नम्बर २

श्रियुक्त

ज्योतिषाचार्य पंडित रामसुचित त्रिपाठी

नमस्कार ।

आपसे ता० १०-११-२९ के पत्र न १९ द्वारा जो उत्तर मांगा गया था उस प्रश्न का उत्तर न आकर आपही ने कुछ प्रश्न खड़े किये हैं। वह इस प्रकार—

- १ आज तक कमेटी द्वारा पचाग का कितना कार्य हो चुका ?
- २ कैसा पचाग बनाना चाहते हैं ?
- ३ यदि सवही विभाग पचाग के दृक्प्रत्यय में बनाना चाहते हैं तो आर्य सिद्धान्त विरोध होने से और धर्मशास्त्र विरोध होने से मेरे को मान्य नहीं ।

४ केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पचाग नहीं बनता ।

उपरोक्त चार प्रश्न आपने खड़े किये हैं । इनका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है कि

१ आज तक कमेटी द्वारा जो भी कुछ कार्य हुआ है, वह आपको मुख जगानों तारीख १६-११-२९ ई० का सभा के दिन संपूर्ण निस्तारपूर्वक समझा दिया था तो भी आप के पत्र के लख से ज्ञात होता है कि वह आपकी समझ में नहीं आया । इसलिये फिर दुबारा उसका स्पष्टाकरण करने में आता है कि—

आपके इन्दौर में प्रचलित पंचांग हल्किर स्टेट के तर्फ में निकल रहा है। जिसे आप ग्रहलाघवी समझ रहे हों, उसमें जो रवि का उदयास्त और दिनमान दिया जाता है; उसके गणित का तपास करने से पता लगा है कि वह ग्रहलाघवी नहीं है। और इस बावत पं. बालकृष्ण जोशी द्वारा जांच करनेसे पता लगा और उन्होंने बचूल किया कि “गत पांच वर्ष से सूर्य के उदयास्त और दिनमान में ग्रहलाघव के मान से प्रत्यक्ष में चूकी के आने के कारण मैंने इसको बदल दिया है। और उसका एक कोष्टक में न्याया दे दिया है।” जो कि ग्रहलाघव के और धर्मशास्त्र के लिये सू गभीर मान से आपके मत से भिन्न है। इसलिये हमारी बनाई हुई सूक्ष्म गणितकी सारणीसे रवि के उदय-अस्त तथा दिनमान आगे के पंचांग में छापने के लिये रखा गया जिसकी जांच और उपपत्ति प्रो० गोळे साहब की पूर्ण रीति से समझाई गई और वह प्रस्ताव सर्व संमती से पास हो गया।

वैसेही लग्न सारणी में राश्यांश में एक साथ अंतर डाल कर जो २ राशि भर में समान अंश अंशों के लिये बनाते हैं। वह मानस्थूल रहता है। अतः इस सारणी को अंतर न्यास पद्धति से सूक्ष्म करके हमने पेश करी थी वह भी सर्व संमति से पास होगई और पंचांग कर्ता पं० बालकृष्ण जोशी ने पंचांग में देने के लिये कौपी भी करली है। सारांश पहिले प्रश्न का उत्तर यह है कि-आज तक कमेटी द्वारा-पंचांग में उदयास्त और लग्न सारणी तथा दिन मान सूक्ष्म चर पलों में जो लाये गये हैं सो ही प्रति वर्ष पंचांगों में प्रसिद्ध हों यह प्रस्ताव भी सर्व संमति से पास किया गया।

२ “ग्रहण ग्रह युति चंद्रार्द्रगोमति और रविका उदयास्त-दिनमान चतुर्थीका चंद्रोदय और कालाष्टमी आदि बात सूक्ष्म गणित की पंचांग में दी जावे” ऐसा जो तारीख १९-११-२९ ई. को आपने प्रस्ताव लाये थे सो सर्व संमति से पास कर लिया है। उसी रह दृक्तुल्य और टीक टीक १२ अंश के अंतर से प्रत्यक्ष सूर्य चंद्रादि की साक्षि द्वारा आने वाली तिथि ही तिथि की पद्धति स्वीकार्य है। अन्यथा स्थूल गणित के ग्रहलाघव मान से शके १८५१ कार्तिक वदी ३० शुक्रवार का सूर्य ग्रहण जैसे अपात्र समझा गया वैसेही सब तिथिधर्म अथवा अपात्र होता है सो स्थूल पंचांगसे भारीदार लोग न हों! इसलिये सूक्ष्म और दृक्तुल्य तिथि धर्मशास्त्र युक्त सशास्त्र समझी जाती है। ऐसी पवित्र तिथि पंचांग में देना चाहते हैं।

३ पंचांग में ऐसा कोई भी विभाग नहीं है कि जिसमें दृक्प्रत्यक्ष न हो अर्थात् सब विषय प्रत्यक्षता में आनप्रोत हैं फिर नहीं समझ में आता कि आपके ऐसे कौनसे आर्थ बचन हैं जो दृग्गोचर रहित बात मानने के लिये बाध्य करने हों! और साथ में

यह भी नहीं पढ़ने में आया कि पंचांग में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ऐसे कोई भिन्न २ भेद दिखाया हो यदि कही होतो सम्माण आधार युक्त ऐसा लेख लिखकर लाने का कष्ट उठावे ताकि उसका विचार करने में आवेगा।

४ यह प्रश्न आपका बड़ा अनोखा और आश्चर्य जनक है क्या ? खगोलीय बातें खगोल में न रहेंगी तो क्या भूगोल में दिखेंगी। पंचांग आकाशी नाटक ही नहीं किंतु आकाश में देदिप्यमान तारा-ग्रह इत्यादि की दीप्तियों को ब० ने वाता व्यवस्थित एवं ठीक २ नकशा है। आकाश में प्रत्येक ग्रहों को अधिक दृढ़ने की दिकत न हो इसलिये उसके राशि-भंश-कला िकला के विभागों का पता; पंचांग ही में चलता है। अतः पंचांग का अक्षर २ दृक्प्रत्यय से तोड़ने ही के लिये रहता है। अन्यथा उसका क्या उपयोग।

इसका थोड़े से में इतना ही उत्तर वस है कि पंचांग आकाशीय नकशा है। और इसकी जांच आकाश ही में हम कर सकते हैं।

आपका  
दीनानाथ चुलेट

### विशेष सूचना—

ग्रहण इत्यादि में भी क्यों न हो ? किंतु क्या बीज संस्कार उसमें देना इस आशय का जो ता० १६-११-२९ को प्रस्ताव भेजा गया था उसका शीघ्र ही उत्तर लिख भेज। अर्थात् आज से तीन दिन के भीतर तक जल्दी दें।

आपका  
दीनानाथ चुलेट.

पत्र नंबर ३

श्री.

( सूचना पत्र )

रा. रा. श्रीमान् वि. दीनानाथ शास्त्री पंचांग कमेटी

सम.ध्यक्ष की सेवामें

नमस्कार.

ता० १-१-२९ ई०

आज तारीख तक दरबार आर्डर मुताबिक पंचांग कमेटी समा में आये जैसा काम चला था वैसा काम किये. अब पंचांग संशोधन जो पंचांग का मुख्य विषय है उसमें

आपका और हमारा विचार में भेद हुआ. भेद होने से यह निश्चय नहीं होता है कि आपका विचार सच्चा है या हमारा विचार सत्य है. यह काम जगत् को धर्मानुष्ठानोपयोगी होने से आपका मत यदि असत्य है तो आप दोषी बनेंगे यदि हमारा मत असत्य हुआ तो हम दोष भागी बनेंगे, इसलिये कृपया, इस विसंवाद पंचांग कार्य को काशा, कलकत्ता, लाहौर, दरभंगा, ग्वालियर बड़ोदा, जयपुर, कानपुर, मंसूर प्रधान कॉलेज ज्योतिष शास्त्राध्यापको से अभिप्राय मगाया जाय, जिससे निश्चित हो जाय कि कितनी वस्तु पंचांग में दृक्प्रत्यक्ष से है और कितने आर्य सिद्धांतानुसार है. या कैसा धर्मानुष्ठान के लिये पंचांग साधन करने मत भेद का खुलासा हमने अलग लिखा है. ११ पत्र

आपका हितैषी,

ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी.

अ नं. ४०

ता० १-१२-२९

श्री

श्री. दिनानाथ शास्त्री इन्हेंको नमस्कार,

आपके ता. २०-११-२९ के पत्र में यह बातें लिखी गई है कि—( १ ) जो दृग्गोचर रहित बात मानने के लिये वाध्य करते हो ? ऐसा कौनसे आर्य वचन है ? ( २ ) और आप ऐसा भी लिखते हैं कि यह भी नहीं पढ़ने में आया कि—पंचांग में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ऐसे कोई भिन्न २ भेद दिखाया हो ? ( ३ ) और मूलांक में कितना संस्कार देना ? इनके ऊपर हमारा यह उत्तर है.

अदृष्ट गणना से स्पष्ट ग्रह और दृष्टगणना से दृक्स्पष्ट ग्रह इस तरह दो होते हैं, यथा—पंचताप में चार फल संस्कार होने से और सूर्य में मंद फल चरफल संस्कार देने से और चंद्र में मंदफल-चरफल—मुजफल-देशान्तर चार संस्कार से ही मीमादि तथा सूर्य चंद्र स्पष्ट बहे जाते हैं । इन ग्रहों का उदयास्त यदि देखना है तो इन ग्रहों में दृक् संस्कार करने से स्पष्ट दृक् ग्रह होते हैं. आपने यदि इन ग्रहावलोकन किया है तो देखो सिद्धांत शिरोमणि के उद यास्नाधिकार श्लोक १-२ ' प्राक्दृक् ग्रहस्यादुदयाद्य तत्रम अस्ताद्यकं पश्चिम दृक् ग्रहश्च ' इत्यादि.

आपने लिखा है कि—किम अनोम्ना ग्रंथ में लिखा है कि दृग्ग्रन्थ ग्रह नहीं देना इस जगह पर मेरा यह ही कहना है कि—जिम ग्रह को मी. आई. ई. आर्बुदेय शारदाजी तथा महामहोपाध्याय श्री. सुधाचरजी पढ़ने पढ़ाने में हों जीवन व्यतीत किया उम ग्रंथ का देख

माल कर आप अपना काम निभालना चाहते हो इसलिये वह ग्रथ आपको अनोखा होगया. आप कहते हैं कि स्थूल खिचेत्र में कहाँ लिखा है. पचाग साधन करना इसका ममाधान आपके अनोखा ग्रथ में हा भास्कराचार्य ने लिखा है. “स्थूल कृतं भानयन यदेतत् ज्योतिर्विदा संन्यवहारहेतोः ॥ सूत्रप्रवक्ष्येऽथ मुनीप्रणीतं विवाहयात्रादि फल प्रसिद्धये. ॥” आपके दृक्ग्रन्थ ग्रह पचाग को विवाह यात्रा जातक कर्म में नहीं लेना इसमें प्रमाण सूर्यासिद्धान्त की किरणावली टीका क स्पष्टाधिकार के अंत में लिखा है सो ऐसा है ‘एतत् नियत सत्काले वेधादिनाकृत्वा तत् संस्कृत ग्रहेभ्यो अयुति ग्रहण दृगो-भत्यादि दृष्टफल मादेय अदृष्ट फल यथास्थित ग्रहेभ्य इति त्रिकेकः” इस विषय में केवल इतना ही प्रमाण नहीं किन्तु गुरुवर्य महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर शास्त्रीजी की पंचाग भूमिका को देखिये इन्होंने भी सूर्य सिद्धान्तीय पचाग दृष्ट अदृष्ट गणनानुसार ही पचाग जनाते थे और आजभी जनता है. आप खुद अपने मुख से कहते हो कि ज्वन नतकर्म संस्कृत मर्य चन्द्र को लेकर मैं पचाग साधन नहीं करता इसका क्या कारण. जब आप दृक् ग्रह को स्पष्ट ग्रह मानते हो तो ज्वन संस्कृत नतकर्म संस्कृत ग्रह आपके मत से स्पष्ट ग्रह है फिर उस पर से फलादेश यात्रा विवाह जातकादि का विचार करने से क्यों भागते हो. यदि आपके मन से दृक् ग्रह ही मुख्य है. यदि आकाश में दृक्ग्रन्थ से मिला हुआ ही यात्रा विवाह जातकादि में लिखा है तो यात्रा विवाह जातकादि में रवि सेप का चंद्र वृष का भौम मकर का बुध कन्या का गुरु रक्त का शुक्र नील का और शनि तुला का इत्यादि “अजतृपममृगागना कुडीरक्षप णिजौच दिनकपदितुगा इन उच्च राशिषो का आधार लेकर यात्रा विवाहोत्सव जातकादि में विचार करना आपके मत से योग्य नहीं है, क्योंकि आपतो आकाश में जो दृक्ग्रन्थ से मदीच राशी है उसको ही शीतौच उच्च समझते हो. ऐसा यदि हो तो आपका परिश्रम सबही व्यर्थ है क्योंकि आकाशीय उच्च को नहीं लेते हुये स्पूत्र ही उच्च से फलादेश किया है ज्योतिष शास्त्र में फलादेश ही मुख्य है. भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि “ज्योतिष शास्त्र फल पुराणगणके आदेश इत्युच्यते

मल्लम हुआ कि इन लोगों ने वेध करके निश्चय किया है. मंदोच्च भगण में अन्तर इतना बहुत दिन में पड़ने पर भी जो कि लिखा है कि—‘वर्षांतरनेः अपिनोपलक्ष्यते’ इतने दिनों में भी कोई संस्कार नवीन मदफलातिरिक्त नहीं देक ही पंचांग साधन किया. सिद्धान्त बनाने वाला साक्षात् ब्रह्मा और वृद्ध यनिष्ठ ऐसे त्रिकाल दर्शी थे. पौरुषेय भी नहीं जिससे अप्रमण माना जाय. गत सभा में आपके भाषण से मालूम हुआ कि प्राचीन सिद्धान्त को पंडितों ने सुधारकर नष्ट कर डाला. आपके मत से पाप भागी होगा. आपके मत से जीर्णोद्धार करना ही पातक है. यदि लेखकाध्यापकाभ्येतुंशः से भ्रष्ट होगया होतो उसको शुद्ध करना नहीं आपके मत से पाप भागी होगा. आपके ज्योतिर्गणित, नाटिक प्रभाकर सिद्धान्त में पाच संस्कार के योग से स्पष्ट ग्रह बनाया परंतु यहां श्री सूर्य भगवान ने अष्टगति भेद से चार फलों का संस्कार देकर स्पष्ट ग्रह बनाया. यथा— (वकानुवक्त कुटिला मन्दा मन्दनरासमा ॥ तथा शीघ्रनराद्विप्रा ग्रहाणाऽष्टधागतिः तत्तद्ग्रातेवशास्त्रियं यथा दृक्कुल्यतामहा ॥) प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरण मादरात् इसलिये विवाह यात्रादि शुभाशुभ फलादेश के लिये यह स्पष्ट ग्रह दृक् संस्कार करने से दृक् कुल्यता का जिस तरह प्राप्त होता है. ऐसी स्फुट किया कहता हूं किंतु दृक्ग्रह साधन नहीं और भौमादि के लिये कर्म चतुष्टय से ही स्पष्ट किया सूर्य सिद्धान्त का ही आधार लेकर गणेश देवज्ञ ने भी फल संस्कार किया है. (प्राज्ञ मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यादिति) आपने जो लिखा है कि भूलांक में क्या संस्कार देना अथवा बीज संस्कार कैसा देना इस प्रश्न का उत्तर मेरे तरफ से यही है कि सूर्य सिद्धान्तयि सूर्य को चरफल-मंदफल सूक्ष्म रीत से बनाकर स्पष्ट सूर्य और चंद्र में चारों फल या सूक्ष्म बनाकर जो स्पष्ट चंद्र इन दोनों प्रहों से ही पंचांग साधन करना योग्य है.

गूलांक में स्पष्ट ग्रहों के लिये संस्कार करने की आवश्यकता नहीं ऐसा ही भौमादि पंच तारा प्रहों के मदीय शीघ्रोय के जो राश्यादि को से जो चार फल संस्कार ये ही स्पष्ट ग्रह भौमादि होंगे. ये ही ग्रह विवाह यात्रा जातहादि फलोपयुक्त हैं. ‘गतिश्रुति परिणति’, इत्यादि दृक् संस्कार में बने हुए ग्रह अदृष्ट पञ्चांग में नहीं लिये जायेंगे—प्रमाण “नक्षत्रमद्योगेषु ग्रहास्तोदयमाधने । शृगोन्नातो वदस्य दृक् कर्गादिविदंमृतम् ॥ सूर्य सिद्धान्त के किरणायनी टीका में भी ऐसा ही स्पष्ट लिखा है. इमालिये दिनमान-सूर्योदय, सूर्यास्त-चंद्रोदय-चंद्रास्त भौमादि पंच तारा प्रहों का उदयास्त-ग्रहयुति-नक्षत्रग्रह योगशृंगोन्नति-ग्रहण इनमें प्रभाकर सिद्धान्त से ज्योतिर्गणित से या नाटिक से पादे जिस पर से संस्कार करो सर्वथा मान्य है या वेध द्वारा बीज संस्कार दे सकते हो बही, मार्गी उदय अस्तादि विषय में जो कालानुवर्तमान सिद्धान्त या करण प्रथ में पठित है वह स्थूल है. यदि आप कागज-पेज में के उपपत्ति जानते हो तो आपका

व्यक्त ही है और इस कारण से ग्रन्थ कर्ता ने लिखा भी है “वक्रादिक स्थूलभिदमयोक्तं सुखार्थमेवेति न तद्यथार्थम् ॥ अस्तोदयोस्पष्टतरौ प्रसाध्यौ सिद्धान्तरीत्या वसुतादिका नाम् ॥ यद्वान्नशुक्राङ्गि रसौ प्रसाद्धौ विवाह यात्रादि फल प्रसिद्धये”, अतएव इन विषयों में सिद्धान्त कर्ता को या कारण प्र- बनाने वाले जो दोष भागी बनता है वह स्वयं पातकी है जो कि ग्रन्थ बनाने वाला आपका दोष खुद जाहिर कर रहा है. बड़े आश्चर्य की बातें हैं कि जिस बराहमिहिर के आधार पंच सिद्धान्तिका को लेकर प्रमाण साबित कर रहे हो और बराहमिहिर के ग्रन्थ में अनेकों जगह जिसको आर्प मानकर प्रमाण बराहमिहिर ने दिया है उसको आप कहते हो कि कोई आर्प ग्रन्थ है नहीं अस्तु आपके मत से कोई आर्प ग्रन्थ नहीं है और वेद भी पौरुषय है आप के मत से तो किसी स्मृति धर्म शास्त्र में बादी प्रतिवादी कोई विषय का निर्णय कराना चाहता हो तो अब कोई आधार नहीं रहा अस्तु आपसे छोटे पंडित बराहमिहिर ने जो निर्णय किया है सो लिखता हूँ “पौलिंस रोमक वशिष्ठ सूर्य पितामह इन पांच सिद्धान्त में जिसको बराहमिहिर ने शुद्ध आर्प बताया, उसको भी लेकर आप पचाग साधन करते तो सर्व मान्य होता । बराहमिहिर का वचन । पौलिंस छुतोऽस्फुटोसौ तस्यासन्नस्तुरोमक प्राक्त ॥ स्पष्टतर साधित्र परिशेषौदूर विभ्रष्टौ ।

उयोतिर्विदामरण कारने भी लिखा है

स्थूल सदा ब्रह्ममत निरुक्त भादित्य भिद्व तभतचसूक्ष्मम् ॥ एन आर्प वचन कमलाकर भट्ट का भी है जिमने धर्मशास्त्र के ग्रन्थ निर्णय सिन्धु बनाया है । “अदृष्ट फल सिद्धान्तं यथाऽकांक्षुक्ति कुरु ॥ गणितयाद्वि दृष्टार्थं तददृष्टयुद्भव सदा । इतना ही नहीं किन्तु नृसिंह दैनङ्ग, सार्वभौम कमलाकर भट्ट ने भी सूर्य सिद्धान्त को वद ही माना है यथा “वेद एव रचितः प्रमथा स्यवासना कथन मल्य धियादि ॥ दोष एव न गुणोर विणोक्त तेन युक्ति युतमेव सदेष्टव्यम् ॥

ब्रह्म सिद्धान्त में शाकल्य ऋषि ने भी लिखा है ।

अतीन्द्रियार्थं विज्ञानप्रमाणं श्रुतिरेव हि ॥ श्रुतिर्यत्र प्रमाणम्यायुक्ति कातत्र नारद ॥

जिज्ञासो युक्ति रिष्टास्ति यदि ध्युयानुमारिणीति यदि इन ग्रहों में सरस्कार होने की सम्भावना है तो वेध द्वारा परममन्दान्ताफलज्या । परमशीघ्रान्ता फलज्या का ज्ञान होने से ही दोनों फल में नवीन सरस्कार होने की सम्भावना है आप विरोध नहीं होते हुए वास्तव ग्रह ज्ञान होगा केवल ग्रह भगण में घटाना बढ़ाना ऐसा बीज सरस्कार किसी ने नहीं किया ऐसा यदि वास्तव ग्रह ज्ञान सिद्धान्त युक्ति से करना है तो वास्तव अथ फलज्या वास्तव कर्ण के ज्ञान बिना कदापि वास्तव मुज फल ज्ञान नहीं हो सका

वास्तव भुजफल ज्ञान प्रकार.

$$\begin{array}{l}
 \frac{\text{ज्याकेवाम} \times \text{ज्याअवा}}{\text{त्रि.}} = \text{जामुफ.} \quad \frac{\text{ज्याअम} \times \text{वार्कण}}{\text{त्रि.}} = \text{ज्याअवा.} \\
 \frac{\text{ज्याकेवा म} \times \text{ज्याअंग} \times \text{वा कर्ण}}{\text{त्रि.} \times \text{त्रि.}} = \text{जामुफ.} \times \text{त्रि.} \quad \frac{\text{वामुफ.} \times \text{त्रि.}}{\text{वाक}} = \text{ज्याअम.} \\
 \frac{\text{ज्याकेवाम} \times \text{ज्याअंग} \times \text{वार्कण} \times \text{त्रि.}}{\text{त्रि.} \times \text{त्रि.} \times \text{वाक}} = \frac{\text{ज्याकेवाम} \times \text{ज्याअम}}{\text{त्रि.}}
 \end{array}$$

आपका हितैषी

**ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी.**

आपके ता. ९-१२-२९ ई० की सभा में कहे मुताबिक वास्तव भुजफल सकृत्प्रकार की युक्ती भी लिख दिया है आपने सभा कहा कि प्राचीन सिद्धान्त म्रष्ट नहीं लिखा है सो आपके लेख में कहे वार आया है हमने भर्त्ता भाति देख लिया. यदि प्राचीन अर्थाचीन सिद्धान्त को जानते हो तो खय वेध कर यंत्रों द्वारा देखो मद्दोच्च शीघ्रोच्च जन्म कितना अन्तर पड़ता है और बीज सरकार प्राचीन पद्धति के अनुसार कितना बढ़ाना या घटाना जब आप सिद्धान्तानुसार पंचांग बनेंगे जिस पंचांग से धर्मानुष्ठान कार्य होंगे. जिस २ दिन तारीख को पंचांग साधन त्रिपय में जो त्रिपय पास किया है आपने उसमें यदि हमारा हस्ताक्षर नहीं है तो मेरी मम्मनि नहीं ममही जायगी.

आपका हितैषी,

गव्हर्नमेंट कालेज काशी के रात्रकीय ज्योतिषाचार्य

**पंडित रामसुचित त्रिपाठी.**

नं० ४२

ता० ९-१२-२९ ई०

दस्य गणित के पंचांग का गटना मर पत्र ३

लेखक वि० भूषण दाननाथ शार्मा चुलेट.

मिमर पत्र नं० ४०

ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी ज्योतिष शास्त्र के प्रधानाध्यापक सहज गदा विद्यालय इंदौर

सा० नं० वि० १० आपका कृपा पत्र नं० ४० ता० ९-१२-२९ का आया विन्दु उसमें जो आपने प्रमाण लिखे हैं सो आपके दस्य गणित के पंचांग के गटना मरक के



के पर्याप्त न होने से आपके ही कथन को पुष्ट करने के प्रमाण इस पत्र के साथ युक्त कर के दिये हैं. आगे आपके पत्र में लिखे हुए आक्षेपों का अनेक श्रुति स्मृति के प्रमाण देकर इस पत्र में उत्तर दे दिये हैं. और सिद्ध करके बता दिया है कि वैदिक काल में ऋषि लोग आकाश में सूर्य चंद्रादि ग्रहों को प्रत्यक्ष देखकर उस वक्त में सुपर्ण चिति नामका पंचांग बनाते थे उसी सुपर्ण चिति के पंचांग का निर्माण ऋषि लोग किस प्रमाण से कैसा करते थे. उस समय में किस प्रकार दृश्य बातों से कई ज्योतिष के सिद्धान्त उन्होंने निश्चित किये थे वह सब प्रमाण युक्त इस पत्र में बतला दिया है और साथ में सुपर्ण चिति का एक चित्र भी बता दिया है. इसी पंचांग के तत्वों के आधार पर इस वक्त में सिद्धान्त ग्रंथ की आवश्यकता हर एक समा में श्रोतस्मार्त धर्माभिमानी विद्वानों ने बताई है. और अभी तक के शतशः ग्रंथों में दृश्य गणित का ही पंचांग शुद्ध कहाता है। वही धर्मानुष्ठान में लेना योग्य है.

इत्यादि स्वयं कारणों से हमने सिद्धान्त प्रभाकर नामका ग्रह गणित ग्रंथ बनाकर उसी के आधार पर आग्रिम साल का पंचांग मीन बनवाया है। और वह इंग्रजी पंचांगों के इतना सूक्ष्म दृक्प्रत्यक्ष कारक शुद्ध होगया है। क्योंकि प्राचीन काल में सूर्य चंद्र की दृश्य स्थिति के द्वारा ही पंचांग किये जाते थे। इसलिये उस वक्त चंद्र इतना स्पष्ट रहता था कि आज जो सूक्ष्माति सूक्ष्म यंत्रों से किये हुए प्रो० हानसेन और प्रो० न्यू कंत्र आदि के बताये हुए ५०-६० संस्कारों से स्पष्ट होता है। इसको बतलाने के अनेक प्रमाण हैं उनमें से एक नीचे लिखे प्रकार वेदमूर्ति बोधायन ऋषि का है और वह हमारे पत्र नंबर में बताया गया है किन्तु यहां बताने का हमारा हेतु यह है कि उक्त सब दृश्य पंचांग गणित का प्रचार "संहिता" ब्राह्मण, सूत्रकण्ठ और स्मृति व पुराण काल तक था। और ज्योतिष के ग्रंथों को देखते शाके ४९१ के आर्यभट्ट के "काल तक था; किन्तु आर्वाचीन काल में वह "स्फुट ग्रह मध्य राग प्रकल्प" की क्रिया बंद होकर मध्यम ग्रहों को फल संस्कार देने में स्थूलता होने लगी गई व उक्त क्रिया का (गणित; सौदो सौ वर्ष में कोई ग्रंथकार करके अपने तात्पुरते ग्रह वेध से मिलाकर; फिर मध्यम ग्रहों को वर्षानुवर्ष बनाकर; फल एक चंद्र को मंद फल संस्कार ही देने से दिनों दिन वह दृश्य गणित से) पंचांग बनाने की परंपरा छूट गई। इससे यह फल पड गया कि जो पहिले दृश्य गणित से तिथि का शुद्ध क्षय ९+१० घड़ी का होता था; वह अनुमान के गणित से ५+६ घड़ी का रूढ़ होगया। इस ऐतिहासिक बात को सिद्ध करने के लिये जूने ऋषि के कहे हुए वचन का शाके १२०० में हुए माधवाचार्य अपने बाल माधव नामक ग्रंथ में अर्थ करते हैं कि "ननु बोधायनेन त्रयोदश सप्तदश दिनयो रन्धाधानं प्रतिपिद्धयते। तथामति त्रयोदश सप्तदशयोः प्रमाते येन नास्ति; तत्कथं प्रतिपिष्यते इति चेत्। एवं तर्त्यप्रमत्त प्रतिपेधे नित्यानुयादोऽस्तु। अस्ति चाप्रसक्त प्रतिपेधरूपो नित्यानुयादो वेदे, "न श्रुतिन्यां नान्तरिक्षे न दिव्यऽग्निश्चेतव्य इति।" (काल माधव चतुर्थ प्रकरण पृष्ठ २००)

अर्थात् यौषायन महर्षि ने जो १३ और १७ दिन का पक्ष कहा है; इसकी क्या गति है। क्योंकि वह तेरह और सतरह दिन के पक्ष में अन्वाधान को मना करते हैं। तबतो इतने दिन का पक्ष होता रहना चाहिये। किन्तु वर्तमान में तो यह असंभाव्य बात है। क्योंकि ९+१० घड़ी की वृद्धिक्षय के बिना; ऐसा हो नहीं सकता। और वर्तमान में तो ६+९ घड़ी की ही घट बच होती है। इसलिये यह नहीं होती बात को मनाई कैसी? ऐसा आप पूर्व पक्ष करके; उत्तर पक्ष कहते हैं कि; यह एक कल्पना मात्र है। क्योंकि वेद में भी ऐसे कल्पना मात्र वचन हैं।

जैसे वेद में कहा है कि “ ( १ ) पृथ्वी, ( २ ) अंतरिक्ष और ( ३ ) द्यौः में यज्ञ का आरंभ, अग्नि का आधान ) नहीं करे। ” इस प्रकार यह भी असंभाव्य बात है क्योंकि अंतरिक्ष और द्यौः में यज्ञ कैसे हो सकेगा ?

इस प्रकार के माधवाचार्य के कथन से दूसरी गलती उनकी ये पाई जाती है कि वेद के अर्थ को भी वे नहीं समझते थे। अतएव उन्होंने इसे भ्रामक कल्पना मात्र बता दिया है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। इसी पत्र के साथ दिये हुए वैदिक पंचांग ( सुपर्ण चित्ति ) और वेद काळीन ज्योतिष; इसमें देखने से आपको पता लग जायगा कि वसन्त संपात से २७०, १८०, ९० अंशों पर जब सूर्य आता था, उसको क्रमशः पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौः करते थे तथा वसन्त संपात के दिनको स्वर्ग कहते थे। इसलिये उपरोक्त श्रुति वा तात्पर्य यह है कि वसन्त संपात से २७०, १८०, ९० दिनों में यज्ञ नहीं करके संपात के दिन करें। किन्तु अग्रे मरे बाद स्वर्ग लोक मिलता है और वेद में तो और ही लोक बोले गये हैं। तो “स्वर्गकामोयजेत” का क्या अर्थ होगा। ऐसी अनेक शका होगी। इसलिये हमने इसके आगे वेद यह ज्योतिष के ग्रंथ हैं, इन्हीं ग्रंथों के आधार पर उस वक्त में ५ प्रकारके पंचांग बनते थे। ( १ ) चक्रचित् ( २ ) करुचित् ( ३ ) प्रउग चित् ( ४ ) उभयत प्रउग चित् और ( ५ ) सुपर्ण चित् इन पंचांगों में से अभी दिग्दर्शन के लिये एक सुपर्णचित् और उस वक्त के ज्योतिष के शोध यही यहाँ बतलाये हैं।

किन्तु आज वैदिक अर्थ में इतना परिवर्तन हो गया है कि उनके सब तत्त्व समझा ने में संक्षेप से लिखने में भी कई पृष्ठ हो जाते हैं, किन्तु इसमें यह एक आपको नई बात दिखेगी कि; आज जो वेद को फेरल धर्म ग्रंथ मानते हैं किन्तु वह धर्म ग्रंथ होते हुए भी ज्योतिषके पथ हैं; ज्योतिषके मूलतत्त्वों को शोध कर निश्चित करने वाले इस काळ के प्रोफेसर उग्रचारादि के नाम श्रेय। फेरकरगी अपने प्रह दृष्टाणित में रटते हैं, बाकी सभी इस जमाने के शिक्षित लोग कहते हैं कि जो कुछ जोध गया है सो अभी दो चार सौ वर्षों में लगाई ऐसा कहते हैं किन्तु प्राचीन पंचांग को देखकर यही लोग

प्राचीन गौरव के गुण गान करेंगे. इतना ही नहीं तो इतने प्राचीनकाल में जिस वक्त अक्षर लेखन तो दूर रहा केवल ईंटों ही से पंचाग बनाए जाते थे तदनुसार तिथि नक्षत्र योग और कारण तथा दिनमान रात्रिमान यह सब बातें उसके द्वारा अब भी मालूम हो सकती हैं। आगे स्मृति ग्रंथों में भी वही शुद्ध गणित का प्रचार या और उसी से अंक वृद्धिदशक्षय वाक्य सिद्ध करके बताया है क्योंकि वर्तमान कालिक निर्णय सिन्धु आदि ग्रंथकारों को वह दृश्य गणित की बातें विस्मृत होनेसे उन्होंने कुछ तो भी कह दिया है। इसलिये यहाँ हमने वह वैदिक ज्योतिषका ही प्रमाण माना है। इनके मूल तत्त्वों की ओर वैदिक काल में ही ऋषियों ने लगा लिये थे जोकि इसके पूर्व के हिन्दी व संस्कृत पत्रों में लिखा गया है। इन सब प्रमाणों से आपकी ज्ञात होगया होगा कि उस वक्त में दृश्य गणित का ही पंचाग बनाते थे किन्तु जब कि ज्योतिष को वेद का चक्षु नेत्र कहा है नेत्र से देखने का ही काम है विचार करने की बात है कि आपके कहे माफक यदि अदृष्ट गणित से ऋषि लोग पंचांग में तिथि आदि बनाते तो आज तक यह ज्योति शास्त्र यह इतने ऊँचे दर्जे को नहीं पहुँचता। धन्य है जिनकी बुद्धिमत्ता को कि सिर्फ १ सुपर्णचिति पंचांग से लाखों वर्षों के तिथि, नक्षत्र, योग, कारण, दिनमान, शनिका और चन्द्र का नक्षत्र राश्यादिमान वसन्तसंपात अधिक्रमण इत्यादि मूल तत्व की बातें आज भी यथार्थ मालूम हो-सती हैं। आपने अपने पत्र के पृष्ठ ५ पक्ष ६-८ में लिखा वैसा मेरा लिखने का आपय यह नहीं है। मैंने ऐसा लिखा है कि “यदि आर्य भट आदि जिन ग्रंथों के स्वरूप को जैसे श्रीमंत बराहमिहिरने कायम रखा है वैसे करते तो किस कालमें क्या मान थे यह आज हमें दिख सकता था अथवा जैसे ग्रहलाघव कारने अंतर बताया है वैसा तो भी करना था। किन्तु इन्होंने क्या उनमें कम उपादा किया सो भी लिखा नहीं है. इससे मैंने लिखा है कि ये आर्य ग्रंथ नहोते हुए उनके छाप करने वाले हैं। खैर हमें मुद्देके बिना अन्य बातें देखना ही नहीं है। किन्तु इस पत्र से आपकी अब खानी होजायगी कि ऋषि लोग दृश्य रवि चंद्र से ही पंचाग बनाते थे। उसी के तत्त्वों के अनुसार शुद्ध सूक्ष्म गणितका हमने मिहिर प्रभाकर ग्रंथ बनाया है। अन्य मिहिरातोंके ही वह स्वरूप था है उसीके आधार पर दृश्य गणित का पंचाग धीयुत नीटकठ जोशी ने हमारे पाम की सारणी के अकों से बनाया है। सो ऋषियों के तत्त्वानुसार धर्म ग्रंथ ममत है उम् दृश्य गणित के पंचाग को अब तो भी दुर्गम्रह त्याग अनुमति देंगे ऐसी आशा है। यदि कुछ भाग में आपकी मूर्खता इच्छित हो गुलामेवार यह जिन भेजने की टपा करें।

भारतीय

- दिनानाथ शास्त्री, जुलैट.

(दृश्य गणित के पंचांग का स्वीकार)

आवक नं० ४२

ता० ११-१२-२९ ई०

लेखक ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी.

॥ श्री ॥

रा. रा. श्रीमान् दीनानाथ शास्त्रीजी की सेवामें

नमस्कार

हमने लेखी अभिप्राय भेजा है उसमें इतना और समझा जाना योग्य है कि ग्रहलाघव बहुत स्थूल होने से उसपर से पंचांग योग्य नहीं है इसलिये पंचांग साधन सूर्यासद्धांत से होना योग्य है और उक्त पंचांगग्रहों में उच्च-क्रांति-मंद फल, शीघ्र फल सूक्ष्म ठाकर देकर स्पष्ट ग्रह पंचांग में रखना योग्य है। इसके अतिरिक्त संस्कार जो देने से आकाश में ग्रह देख पड़ेगा उसको दृक् संस्कार कहते हैं उसको ग्रह में संस्कार देकर पंचांग कर्ता वेध से उदय अस्तादि में मिलाता रहे। सूक्ष्म शब्द से जीवा-चाप-क्रांति ग्रह-त्रिज्या-वास्तव मंदकज्या-वास्तव शीघ्र कज्या लेना।

ता० १०-१२-२९ ई०

ज्यो. आ. पंडित रामसुचित त्रिपाठी.

॥ श्री ॥

पत्र नं० ५

नं० २१

ता० १६-११-२९

श्रीमान् वि० शास्त्री दीनानाथजी की

सा० प्रणाम आगे आपका पत्र नं० २० का पाया आपके मत्तानुसार १० क्षव होवे तो धर्मशास्त्रानुसार आद्यादि कार्यों में बाधा आती है इसका निर्णय होना अत्यावश्यक है। फक्त।

पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे.

## पंडित रामकृष्णजी साठे का प्रथम पत्र

( मे लान के लिये ता० २०-११-२० ई०

आठवीं मिटिंग का यह पत्र ९ में उत्तर के साथ रखा है । )

शुलपाणीः निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शे अमा आह्वम् अपराण्हिकम् एवं मन्वंतरादीनां युगादीनांच विनिर्णयः । यदि आह्वे अपराणहेनचेत् स्मृत्यर्थसारे कुतुपकाल योगीत्युक्तम् अन्यत्र रौहिण्यंतु नलंययेत् इत्यादि वचनेन रौहिण्युक्तः कुतुपो ग्राह्यः । इत्यादि वचनेन याव्यवस्था स्यात् साकार्या ।

## पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे.

३

पत्र नं० ६

ता. २०-११-२९

उपरोक्त पत्र के उत्तर में दिया हुआ पत्र.

## लेखक- विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

श्रीयुत धर्मशास्त्राचार्य पंडित रामकृष्णजी शास्त्री महोदयजी

सा० न० वि० वि

आपके पत्र के उत्तर में निवेदन किया जाता है कि;

आपने जो निर्णय सिंधु ( द्वितीय परिच्छेद अक्षय तृतीया निर्णय प्रकरण ) की पांक्ति अपने पत्र में उद्धृत की हैं । उनके द्वारा आपका कहा हुआ दश घड़ी का क्षय होने तो आदादि कार्य में बाधा आती है यह अर्थ नहीं निकलता इतना ही नहीं किन्तु निर्णय सिंधु का यह समग्र लेख पढ़ा जायतो उससे १० घटी का तिथि क्षय होने पर आद्व किस दिन करे वह अर्थ निकलता है अर्थात् आपके किये हुये आक्षेप का खंडन उक्त लेख से ही हो जाता है. इसलिये यहां हम वह लेख लिखते हैं । इसमें से जो पांक्तिया आपने अपने पत्र में थोड़ी अशुद्धी करके लिखी हैं उनके नीचे ( अंडर लाईन की ) रेखा देकर बना दी हैं ।

( १. ) निर्णयसिंधु ( प. ३ ) अक्षय तृतीया निर्णय में— “ आदेपि पूर्वाह्न व्यापिनी

ग्राह्या । पूर्वाह्नेतु सदा कार्यः शुद्धा मनु युगादयः ॥ दैवे कर्मणि आह्व में सामान्य काल विच्छेद कृण्वे चैवा पराण्हिका ” इति पात्रोक्तेः । द्वे मुकले द्वे तथा १५ घटी का.

कृण्वे युगादि कययोमिदुः ॥ मुकले पौर्वाह्निके ग्राह्ये कृण्वे चैवापराण्हि

के ॥ १॥ इति हेमाद्रौ नारदाय वचनाय दीपिकापि अयोमन्वादि युगादि कर्म तिथयः पूर्वाण्हिका स्युः सिने भिषेवा अपराण्हिकाश्च बहुले ” इति । स्मृत्यर्थसारेपि युगादि मन्वादि भद्रेषु मुकले

पक्ष उदय व्यापिनी तिथि ग्राह्या कृष्णपक्षेऽपराह व्यापिनीति । दिवोदासीये गोभिलः वैशाखस्य तृतीयांयः पूर्व विद्धां करोतिचै ॥ इयं देवान गृह्णति वयश्च पितरस्तथेति । गोविन्दार्णवे प्येवंतेनेयं पूर्वाह व्यापिनी, दिन द्वये सत्वे परेवेति धर्म तत्त्व विदो हेमाद्रादयः । अनन्तभट्टस्तु 'सर्वधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा ॥ सन्मुला उपवासेऽस्तुर्दानादावन्तिमाः स्मृता इत्याह दानादा विति आह संग्रहः उपवासस्तत्र चक्ष्यते । हेमाशवप्येवं माधवस्तु व्यतीपातः आह पराह व्यापो ग्राह्या इत्याह । स्मृत्यर्थसारेतु कुतुपकालयोगीत्युक्तं यत्तु मार्कण्डेयः शुक्ल पक्षस्य पूर्वाह्ने आहं कुर्याद्विचक्षणः ॥ कृष्णपक्षापराल्तेहि रोहिणंतुलंघयेत् । रोहिणेनवमोऽहूर्तः । अत्र शुक्लपक्ष युगादि आहं पूर्वाह्णं कार्य मिति शूलपाणिः

४ अर्थात्—जब कि धर्मशास्त्र ग्रंथों में अक्षय तृतीया आदि तिथियों की युगादि व

दश पक्ष का क्षय होता  
आदि कार्य में बाधा  
नहीं आती.

मन्वादि संज्ञा की है अतएव इस दिन आह आदि करने का बड़ा  
माहात्म्य लिखा है तब यह आह दिन के किस विभाग में  
किया जाय इस विषय का निर्णय ऊपर जो कमलाकर भट्ट ने  
किया है उसका भावार्थ ये है कि; "इस दिन आह तिथि भी  
पूर्वाह व्यापिनी लेना ? क्योंकि—इस विषय में प्रमाण ये हैं उनमें ( अ ) १ पक्ष पुराण  
का प्रथम प्रमाण ये है उसमें लिखा है कि; "जैसे महीने के शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष और  
कृष्णपक्ष को अपर पक्ष कहा है वैसे पूर्व शुक्लपक्ष की तिथि में देवपूजन व पितृआह दिन  
के पूर्वाह नामक अर्ध विभाग में और अपर ( कृष्ण ) पक्ष की तिथि में दिन के उत्तरार्ध  
भाग = अपराह में करें " ऐसा महीने के दोनों पक्षों के कार्य दिन के दोनों ( पूर्वाह व  
अपराह नामक ) विभागों में करना कहा है । क्योंकि

( अ ) २ युगादि तिथि शुक्ल पक्ष में दो व कृष्णपक्ष में दो होती हैं तदा शुक्ल  
क्योंकि १५ पक्ष की पूर्वाह व्यापिनी लेना और कृष्णपक्ष की अपराह व्यापिनी  
कर्म काय रहा है । लेना ऐसा हेमाद्रि नामक ग्रंथ में गारुड का यवन है ।

( ३ ) ३ दीपिका ग्रंथ में भी ऐसाही लिखा है कि " मन्वादि व युगादि कर्म की  
तिथि, शुक्लपक्ष में की पूर्वाह व्यापिनी और कृष्णपक्ष में की अपराह व्यापिनी लेना "

( ४ ) ४ स्मृत्यर्थसार ग्रंथ में भी " युगादि मन्वादि आहों की तिथि शुक्लपक्ष की  
सूर्योदय व्यापिनी व कृष्णपक्ष की अपराह व्यापिनी लेना. " ऐसा लिखा है । इसमें सूर्यो-  
दय व्यापिनी के कथन में पूर्वाह का आरंभ सूर्योदय में दिनार्धनामक और अपराह का  
दिनार्ध से सूर्यास्त तक ऐसे दो ही भाग बनता है.

( उ ) ५ दिवोदास ग्रंथ में गोमिष्ठ का वचन है कि " जो मनुष्य वैशाख शुद्ध तृतीया पूर्व विद्धा करे तो देव पूजन को देवता प्रदण नहीं करते और भ्रातृ को पितर नहीं छेडे " इसमें उक्त तिथि पूर्व विद्धा निषेध कहने से यह सूर्योदय व्यापिनी उत्तर तिथि लेनी ऐसा इससे अर्थ निकलता है । और

( ऊ ) ६ गोविन्दार्णव ग्रंथ में भी ऐसा लिखा है अतः उक्त शास्त्रों के आधार से निश्चित होता है कि उक्त ( अक्षये तृतीया ) तिथि पूर्वाण्ड व्यापिनी लेना चाहिये और

( ऋ ) ७ हेमाद्रि आदि धर्म शास्त्र ग्रंथों में ऐसा भी लिखा है कि यदि तृतीया दो दिन में पूर्वाण्ड व्यापिनी होवे तो दूसरे दिन को सूर्योदय व्यापिनी लेंगे.

( छ ) ८ इत्यादि निर्णय उक्त तिथि में भ्रातृ व देवपूजन करने के संबंध में हुआ किन्तु इस दिन उपवास करना हो तो उसके संबंध में निर्णय लिखते देव पूजा में भी बाधा है कि- नहीं पाती.

( ए ) ९ अनन्तभट्ट के ग्रंथ में प्रमाण लिखा है कि 'व्यति' व्यतीपात यह योग और युगादि मन्वादि तिथि उपवास के लिये पहिले दिन की और दान भ्रातृ इत्यादिक विषय में पर विद्धा याने सूर्योदय व्यापिनी लेनी । हेमाद्रि में भी ऐसा ही लिखा है । फक्त.

( ऐ ) १० ' व्यतिपात के दिन जो भ्रातृ किया जाता है वह परान्ह व्यापि लेना ' ऐसा माधवाचार्य ने अपने ग्रंथ में कहा है । जो कि मध्यम दिन भोजन काल में भी बाधा नहीं आती, मान के वक्त १५ घड़ी से ३० पर्यंत का होता है ।

( ओ ) ११ किन्तु उक्त व्यतीपात में के भ्रातृ को पूर्वाण्डपण्ड नामक दोनों कालों के बीच के मधीकाल में यानी १४ घड़ी मे १९ के अन्दर के कुतुप् नाम के आठवें मुहूर्त में भोजन के समय ही करना ऐसा स्मृत्यर्थसार में बताया है ।

( औ ) १२ मार्कंडेय ने जो शुक्ल पक्ष में भ्रातृ हो तो पूर्वाण्ड में और कृष्ण पक्ष का अपराण्ड में ऐसा भ्रातृ का मुख्य काल बनाकर जब कि अराण्ड की तिथि में भ्रातृ करना हो तो रोहिण्य नाम के ९ मुहूर्त का उल्लंघन नहीं करे ऐसी इसमें ( भोजन का अति काल न होने पर इमलिये ) विशेषता बताई है ।

( अ ) १३ किंतु रौहिण मुहूर्त को कोई श्राद्ध का मुख्य काल न समझले इसलिये मध्याह्निक से सायंकाल तक श्राद्ध शूलपाणि नामक ग्रंथकार ने इस विषय में इसका अर्थ स्पष्ट कर दिया है कि शुक्ल पक्ष का युगादि श्राद्ध पूर्वाह्न में याने, दिन के पूर्वार्ध भाग में करे अर्थात् कृष्ण पक्ष का श्राद्ध अपराह्न में ही करे । ”

( ५ ) इस प्रकार १३ ग्रंथकारों के वचनों के आधार पर युगादि तिथियों के अंदर श्राद्ध करने के सिर्फ पूर्वाह्न और अपराह्न नामक दोही काल बताकर आगे इस ( पूर्वतोऽनुवृत्त ) लेख को पूर्ण करते हैं ।

( ६ ) “ निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शोऽमाश्राद्ध मापराह्णिकं मुक्त्वा एव मन्वन्तः । रादीनां युगादीनां विनिर्णय इत्युक्तत्वात् ‘ द्वे शुक्ल ’ इत्यादि कलालकर का कथन, वचनं विष्णु पूजन विषयं । श्राद्धत्रापर्याह्नस्य वेति व्यवस्थां जगदुः । सेयं पूर्वोक्तानेकवचनो विरोधात् । पूर्वोह्नदैविकं कुर्वादित्यादि वचनादेव सिद्धे । वचनं वैयर्थ्याच्च स्वाच्छन्द्यं विहासितं मात्रं मित्युपेक्षणीया किंच कालादर्शोक्ते न्यायमूला वचो मूलाया । नापः युगादि श्राद्धस्यामाश्राद्ध विवृत्तित्वेन न्यायतो पठन् व्याप्ता वपि वचनेन तस्य बाधात् । नागयः अति देशा देशापर्याह्नं प्राप्तेर्वचनं वैयर्थ्यात् । अत्राप्ते शास्त्रमर्थपदिति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कश्चिच्छ्रद्धा जात्येन समाधित्वात्तर्हि न्याय प्राप्त कृष्ण पथ युगादिविषयत्वेनसा व्यवस्थापनीयेतिदिक् । पूर्वाह्नस्तत्र द्वेषामक्त दिन पूर्वार्धः “ द्वेषामक्त दिनांश को प्रगदितः प्राण्हापराण्हाविति ” दीपिकोक्तेः माध्याह्नयोप्येवम् ।

( निर्णय सिधुः प. २ )

[ ७ ] [ भाषार्थ ] निर्णयामृतादि ग्रंथकार कालादर्श नामक ग्रंथ में “ अमा-

श्राद्ध अपराह्न में करे ” ऐसा कहकर “ यही निर्णय मन्वन्तरादि व युगादि का है ” ऐसा उनका कहना होने से ‘ शुक्ल पक्ष में दो युगादि करे उपरोक्त नारदका वचन विष्णु पूजन विषय में है । श्राद्धादि के विषय में तो अपराह्न व्यापिनी तिथि को ही लेना ऐसी आपने इस विषयके वचनों की व्यवस्था लगादी है । तथापि यह व्यवस्था पूर्णोक्त पञ्चपुराण आदि ( १-१३ ) अनेक वचनों के विरुद्ध होने से और पूर्वाह्न में देव पूजन आदि कार्य ॥ अपराह्न में श्राद्ध आदि पितृ कार्य करना इत्यादि वचन से ही यह अर्थ प्रदर्शित होते हुए इतने ( कलम १-१३ ) ग्रंथकारों को व्यर्थ बताना मानो मन-घट्टत बात है. याने मन आवे वैसे धक्के देने के माफक है, इसलिये इन ( कालादर्श ) का कथन प्रमाणित नहीं है । क्योंकि न तो यह न्याय युक्त है, न धर्म प्रमाण के वचनों से प्रमाणित है ।



युगादि आद्ध, अमावस्या आद्ध को विकृति (रूपान्तर) होने से प्रकृति (मूल आद्ध के स्वरूप) के माफिक ही विकृति होती है। इस न्याय से पार्वण्य आद्ध में भी वा अपराण्ह काल की व्याप्ति युगादि आद्ध के विषय में प्राप्त हुई तो भी पूर्वोक्त संपूर्ण वचनों से उस अपराण्ह काल का बोध हो जाता है। इसलिये यह न्याय युक्त नहीं है। ऐसे ही इस विषय में उक्त अतिदेश (प्रकृति के माफिक विकृति करे इस कथन) से ही अपराण्ह काल की प्राप्ति हो जाती थी फिर से वही कथन स्वयं व्यर्थ समझा जाता है। और इसलिये अप्राप्त विषयक शास्त्र वचन सार्थक होता है,

इस न्याय से कालादर्श को कथन अयुक्त (अयोग्य) है। इतने पर भी जब किसी का कालादर्श के कथन पर अंध अद्वा ही हो तो कृष्णपक्ष के युगादि आद्ध संबंध का उक्त कथन मानकर वे कैसे तो भी उसकी व्यवस्था मानें यह उसकी दिशा बताई है।

( अः ) अब ऊपर जो पूर्वाण्ह और अपराण्ह नामक आद्ध के दो काल बताये हैं उसका निर्णय (कमलाकर भट्ट) करते हैं कि; 'दिनमान के दो समान भाग करके जो पूर्व भाग वह पूर्वाण्ह और दूसरा भाग वह अपराण्ह है क्योंकि "दीपिका" नामक ग्रंथ में कहा है कि "दिन मान के समान दो विभाग करने पर पूर्व भाग वह पूर्वाण्ह और उत्तर विभाग वह अपराण्ह इस (आद्ध) विषय में कहाता है।" और माधवाचार्य ने भी अपने ग्रंथ में पूर्वाण्ह और अपराण्ह का अर्थ ऐसा ही किया है।"

( ८ ) इस प्रकार के निर्णय सिंधु के लेख से और उसमें बताये हुये ( अ से अः पर्यंत के १३ ) प्रमाणों से यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि आद्ध के पूर्वाण्ह और अपराण्ह ऐसे दो काल हैं, उस ( काल ) में दिवस के पूर्वार्ध भाग को पूर्वाण्ह और उत्तरार्ध भाग को अपराण्ह कहा है। अतः यही दो आद्ध के कर्म काल हैं इसलिये—

"कर्मणोयस्य यः कालस्तत्काल व्यापिनी तिथिः ॥ तथा कर्माणि कुर्वति ह्यसृद्धिर्न कारणम् ॥ १ ॥ इति विष्णु धर्मोक्तेः "

इस शास्त्रधार से युगादि आद्ध का कर्मकाल, दिन का पूर्वार्ध और आद्धों का काल दिनका उत्तरार्ध है तब इसी अक्षय तृतीया के आरंभ में लिखी हुई—

( ९ ) " सा 'अक्षय तृतीया' तिथिः 'पूर्वाण्ह व्यापिनी प्राद्या दिन द्वेयेऽपित

१ धड्क बटने से द्याप्तौ परैवः "

बाध नहीं आता.

इस निर्णय सिन्धु की व्यवस्था से उसका निर्णय कर सकते हैं। और स्मृत्यर्थसार [ कालम् ( ओ ) ] में जो कुतुप नाम के आठवें मुहूर्त की व्याप्ति वाला पूर्वाण्ड निवा अन्यत्र अपराण्ड लेना कहा है सो वैश्वानराधिकरण न्याय से उक्त कर्म काल के अंग की प्रसंगा के लिये है। इसलिये दूसरे ग्रंथकार ( औ ) मार्कण्डेय ने कृष्ण पक्ष के अपराण्ड काल को मुख्य बतलाते हुये, उसके रोहिण नाम के कुतुप के आगे के मुहूर्त की उसमें प्रशंसा की है। यदि, वहां, वैश्वानराधिकरण न्याय मानलो एक बार नहीं लगायें और कहें कि कुतुप काल मुख काल होकर बाकी का अपराण्ड काल गौण काल है।

(१०) लेकिन, ऐसा नहीं होसकता क्योंकि जिस प्रकार वहां कुतुप का प्रशंसा लिखा है उसी प्रकार रोहिण का भी आंग कहा है। अब जहां धर्म कुतुप आदि पक्ष दोनों को समान प्रशंसा है। वहां दोनों में से मुख्य कौन वह मुहूर्त को उत्तम कहा है प्रश्न खड़ा होकर जिस अंगों के यह अवश्य हैं वही उत्तम होने से उक्त वैश्वानर न्याय ही मुट्ठ होता है। इसलिये, कुतुप या रोहिण कर्म काल के प्रयोग कहीं नहीं हो सकते फिर उसका काल मुख्य कहा से होसकता है। अतः यहां यह व्यवस्था दी जाती है कि जबकि उक्त लेख में १३ प्रमाणों की एक वाक्यता से दिन के दो ही भागों को शुक्ल कृष्णपक्षादि के भेद से कर्म काल माने हैं। आ। छोटे से छोटा भी दिनमान हो ताभी दिनार्ध १३ घड़ी से कम नहीं होसकता तब तिथि के १० घड़ी घट जाने पर या ९ घड़ी बढ़ जाने पर भी कर्म काल व्यापिनी तिथि में श्राव करने में बिलकुल बाधा नहीं आती क्योंकि १० घड़ी के घटने में और ९ घड़ी के बढ़ने में कर्म काल ( दिनार्ध ) का उलघन नहीं होता।

(११) इस प्रकार पत्र नं० ५ का उत्तर दिया गया और पत्र नं. ६ का उत्तर भी इसी आक्षेप को लिये वह पत्र होने से उसका १ यही उत्तर वगैरे पत्र ११ उत्तर हो सकता है किंतु यदि कहें कि यह युगादि धातु में दिनार्ध का पूर्व काल कहा गया किंतु अमानस्य के ( पिंड पितृ ब्रह्म ) धातु में तो— इसी निर्णय सिन्धु के—

“ धातु लग्ना वास्या त्रेधा विभक्त दिन तृतीयात्रेयोऽपराण्डगामस्त द्वयादिनी साप्ति कैर्मादा ॥ [ नि. सि. परिच्छेद १ अमाश्राद्ध । ]

इस लेख में अमा श्राद्ध का कर्म काल दिन का  $\frac{2}{3}$  भाग बताया है अतः जिस वक्त मानों २६ घड़ी का दिन मान होगा तब कर्म काल भी ८ घड़ी ४० पल या हो जायगा इसमें उस उक्त की तिथि की व्याप्ति दोनों दिन भी कर्मकाल में नहीं रहेगी इसको व्यवस्था धर्मशास्त्र में लिखी है क्या !

इस शंका के समाधान में भिन्न इतने ही शब्द हम पर्याप्त समझते हैं कि, मनु, कात्यायन, गोभिल, पारिजात, पराशर, लौगाक्षि आदि कई महर्षियों ने "दिन द्वय व्याप्य भावे" इत्यादि वचनों से व्यवस्था की है सो निर्णय मिथु आदि अनेक ग्रंथों में लिखी है अतः जबकि १० घटी के क्षय की और ९ घटों के वृद्धि की व्यवस्था आप ग्रंथों में की है। अतः उक्त-क्षय १० वृद्धि ९ धर्म शास्त्र सम्मत है।

किंतु प्रचलित स्थूल गणित के पंचांग में क्षय ६ वृद्धि ९ घटी की ही होती है। सो धर्म शास्त्र से विरुद्ध है अतः धर्म विरुद्ध पद्धति का संशोधन ५-६ घटी का वृद्धि क्षय करके आंग शुद्ध पद्धति के प्रचार करने के लिये आप अनुमति धर्म शास्त्र सम्मत नहीं है। देवों ऐसी उम्मिद है। यदि उक्त पत्र का उत्तर १-दिन के अंदर आप देंगे तो अग्रिम सभा में इन सब शंकाओं का समाधान करके प्रस्तुत प्रस्ताव को पास कर देंगे।

भवदाय-

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

॥ श्री ॥

दा नि. नं. २७

ता. २४-११-२९

पं. दीनानाथ शास्त्री महोदय को

सा. न. वि. वि.

पं. रामकृष्णजी साठे के पूरे पक्ष का द्वितीय पत्र.

(सभापति महोदय के ता. २०-११-२९ के पत्र का उत्तर)

आक्षेप-

सभा में आज तक क्या काम हुआ यह बात हमारा गणित विषय न होने से न समझ सके, लेकिन एक सभा में करीब २ प्रभाकर पंचांग का नमूना ही कमेटी बनाना चाहती है ऐसा माध्यम होने से हमने प्रभाकर पंचांग मंगवाकर देखा, उभे यह ज्ञात हुआ कि अब नये बनने वाले पंचांग में दस घटी तक क्षय आवेगा, इतना क्षय आने से सांवत्सरिक पार्वण और सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट इत्यादि आद्यों में बाधा आती है ऐसा शास्त्र का प्रमाण होने से और उर्सा ही वक्त पर दीनानाथ चुलेट महोदय का जा० नं० २० का प्रस्ताव आया उसमें लिखा हुआ था कि सिद्धांत ग्रंथों के मूलांक में किचना बीज संस्कार दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुये जिसके द्वारा दृग्गणितैक्य होजाय. इस पर से ता. १६-११-२९ के सभा में लेरी लिख दिया कि आपके मतानुसार दस घटी क्षय होवे तो आह्लादि कार्य में बाधा आती है, इसका निर्णय होना अत्यावश्यक है. इस लेख के ऊपर उसी वक्त हमको पूछा गया

कि दस घटी का क्षय जाने से कहां बाधा आती है. उसके ऊपर आद को अपराध काल की आवश्यकता है और वह न मिले तो रोहिण मुहूर्तयुक्त कुतुपकाल की आवश्यकता है. एमा मुंह से कहा और हमारे छात्र खांते शास्त्री जाये थे उन्होंने उदाहरण द्वारा समझाया भी लेकिन यह बात अक्षय महोदय को न माने से छेड़ी वचन दो यह हम आगे कर देगे ऐसा कहने पर वहां निर्णयसिंधु व, धर्मसिंधु के अलाहिदा दूसरे ग्रंथ न होने से और धर्मसिंधु या निर्णयसिंधु में आद का संग्रह सब एकही जगह न होने से हमारे धर्मशास्त्र के आशय मुताबिक निर्णयसिंधु में अक्षय तृतीया के ऊपर जो एक दो वचन लिख पड़ी वहां लेकर हमारे को उस लिख दिये आशय मुताबिक तिथि होवे ऐसा हमारे छात्र खांते शास्त्री जी ने लिख दिया और हमको यह बात समझ होने से हमने सही कर २ सभा में पेश किया और सभा खतम हुई. बाद तारीख २७-११-२९ ई० को जा. नं. २४ से दीनानाथ शास्त्री जी ने तारीख १६-११-२९ को किस आशय से हमने वचनों को उद्धृत किया है यह बात न समझकर हरनाहक अक्षय तृतीया का निर्णय का पत्रा का पत्रा हिंदी माया टीका समेत [लिखकर उस वचनों का अर्थ आपको समझा नहीं इस आशय का पत्र लिख भेजा. उसके ऊपर से धर्मशास्त्र दृष्टा फिर से लिखते हैं कि हमने जिस आशय से वही पंक्तियां उद्धृत की थीं वह हमारा आशय बिल्कुल बराबर है और इस विषय में निर्णयसिंधु यदि सब ग्रंथों में लिखा है जिसमें अभी फक्त हम निर्णयसिंधु और पुरुषार्थ चिंतामणि यह दो पुस्तक का ही आधार लिखते हैं.

निर्णयसिंधु पत्र ३३५ [ पंक्ति १४ ]

अथ क्षयार्हद्वये निर्णयः तत्रैकोदिष्ट मघ्याह्ने कार्यम् । मघ्याह्नेश्च पंचधाविभक्त दिन तृतिव भागः इति माधवः । आमघाद्धेतुपूर्वाण्डे एकोदिष्टमुपक्रमे । पार्श्वेण व्यापराधेतु प्रातर्द्विदिनिमित्तकम् । इति हारीतकौ प्रातः शब्द साहचर्यात् तत्रापि कुतुपादिषु मुहूर्त द्वितये शेषम् । प्रारम्भ युतुपे आदं कुर्यादरोहिणं ५धः । विविधो विधिराधाय रोहिणमुनठघवेत् इति गीतमोक्तैरतस्तथा । रोहिणो नयमो मुहूर्तः । भीधत् आदं कौमुदी चेयम् । अन्यथा—ऊर्ध्वमुहूर्तकुतुपाद्यन्मुहूर्तं चतुष्टयम् । मुहूर्तपंचक रोतस्वधा भवन मित्यवे । इत्यादि विरोधात् । दीपिकाऽपि "एकोदिष्टमुपक्रमेत कुतुप इति । माधर्ये व्यामोऽपि युतुपःप्रथमभागे एकोदिष्ट मुपक्रमेत । आवर्तनमप्येवा तत्रैव नियतामनात् । पृथगं चंद्रोदयेऽप्येयम् । तेन कुतुपादि रोहिणांते मुख्यः कालः । दिनद्वयं तद्व्याप्तौपान्मघ्यामौच पूर्वा । विषयव्याप्ता वाधेनयेन निर्णयःअव्याप्ता पूर्वव । परनिहाया निषेधात् । साच पूर्वदिने रोहिणउपनापचेः पूर्वमिति गौराः शुभकृष्णवदा ररायंदर्पादीषां व्यवस्थेयन्ये । तत्र परनिहा निषेधप्राबल्यात् । अत्र मूळ काल माधर्ये शेषम् । पार्श्वेणवराण्डे कार्यम् पूर्वोक्तचनान् । नि. मि. ३३६ पृष्ठ पंक्ति ६—यत्

काष्णीजिनि न्यामौ—“ अन्होऽस्तमलत्रेलायाम् कलामात्रायदासिधिः । सैवप्रत्याद्विके  
ज्ञेया नापुःपुत्रहन्तदा । इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः पूर्वयुःसाय त्रिमुहूर्तभावेतु परैव ।  
त्रिमुहूर्ता न चेत् प्राह्या पयैव कुतुपे हिंसा । इति कालादर्शे गोभिलोक्तेः कालादर्श-  
ऽपि प्रत्याद्विकेप्येवमेव तिथिप्राह्या पराणिकी । उभयत्र तथात्वंतु महत्वेन विनिर्णयः ।  
पुरुषार्थ चिंतामणी पृष्ठ ३७३ पंक्ति ४

तत्र निषिद्धे काले माह मनुः । रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिताहिंसा ।  
संध्योरुभयोश्चैव सूर्यचैषाविरोहिते । इति बौधायनः— चतुर्थे ग्रहरे प्राप्ते यः श्राद्धं  
कुर्वते नरः आसुर तद् भवेत् श्राद्धं दाताच नरकं व्रजेत् । माधवे शिवराघव संबादे—  
प्रातःकाले तुन श्राद्धं प्रकुर्वीत कदाचन । नैमित्तिकेषु श्राद्धेषुन कालनियमःस्मृतः इति  
महादिव्यतिरिक्तस्य प्रक्रमे कुतुपःस्मृतः । कुतुपादयवाऽप्यर्वागासन कुतुपे भवेत् ।  
इति माधवे शिवराघव संबादे वचनेन गांधर्वेऽप्यारं भस्योक्तत्वेनार्थासंगव निषेधः । तात्-  
पर्यम् । कुतुपादारभ्य सायंकालः, प्राक्तनानैमित्तिक श्राद्धस्य कालः । इति ।

इस धर्मशास्त्र वचनों से यह बात सिद्ध होती है कि पार्वण श्राद्ध में पंचधा विभक्त  
अपराण्ड को ही मुख्य माना है । उसके अभाव में यौहिण्युक्त कुतुप ही मुख्य है.  
क्योंकि पुरुषार्थ-चिंतामणी में साफ २ लिख दिया है कि प्रातःकाल, संगवकाल और  
अपराण्ड रहित—सायंकाल और रात्र यह काल के विभाग श्राद्ध में वर्ण्य है । यदि  
पंचधाविभाग श्राद्ध में न माना जाता तो यह निर्णय लिपना अनुपयोगी ही था ।  
इसलिये पंचधाविभाग मानकरही श्राद्धादि तिथियों का निर्णय करना सर्व शास्त्र के  
ग्रंथों को मान्य है । वही शास्त्र सारे जगत को मानना उचित है । धर्मशास्त्र  
ग्रंथों में केवल वचनाप्रवृत्ति और वचनान्निवृत्ति होने से हम धर्मशास्त्र को वेद तुल्य  
समझते हैं । और प्रदोषादि व्रतों में भी दश घटि क्षय होने से बाधा आती है ।  
परन्तु समयभावा से विशेष लिखना इष्ट नहीं मानते । यदि शास्त्रार्थ में कोई धर्म-  
शास्त्र समझनेवाले होय तो इस विषय में पूरा २ निर्णय दे सकते हैं । इस श्राद्धादि  
विषय में पंचधाविभाग मानना यही सर्वथा उचित है । लेकिन कोई त्रेधाया द्वेधाही  
विभाग आप्रह से स्वीकृत करे तो उसके भी मत में दश घटीक्षय मानने से दोष  
आते हैं । इसलिये ।

विशेषतः सत्र धर्मशास्त्र से अर्धापचि से सिद्ध हुवा २ वाण वृद्धिः रस क्षयः यह  
सिद्धांत लेकर ही पंचांग बनाया जाय तो धर्मशास्त्र संमत हो सकता है इतिशम् ॥

ता० २४-११-२९ ई०

पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे,

व्याकरण धर्म शास्त्राध्यापक संस्कृत महा विद्यालय इंदौर.

सभापति महोदय के मङ्गलात्मक लेख पत्र नंबर २७ के प्रति खडन में

प्रायुत रामकृष्ण शास्त्री का दिया हुआ तीमरा पत्र.

प. दीनानाथ शास्त्री इनको सा. न. रि. बि. की:—

आपने ता. २७ ११-२२ को यह पत्र लिखा है कि:—

“प्रबन्धेऽस्मिन् एकोदिष्ट आद्वयस्य मुख्यकालः [ पृ. २ प. १७ १८ ] मध्ये कुतुषादि रोहिणांतो उक्तः अतः अमावास्यादिन गौण कालः विवृते तद्दिने आद्वयकालस्य विधानोक्ते. ततश्च दिनद्वय अव्ययार्ण पूर्वे [ पृ. २ प. १८ ] मध्ये भयङ्गिः उक्तं अतः अपराह कुतुषेन सह मुख्यकालः दिनस्य एक तृतीयांशमिना भयति तस्यैव भागस्य गनुना अपरस्य मुख्यकालः उक्तत्वात् इत्यादि. दिनद्वये अव्ययस्य इतिकथनेनमति अतीतितस्य दश घटिकागित तिथिक्षय कादृश्य अर्धाव्ययमिच्छिः तस्य व्ययः प्राया. उत्तरत्वात् इत्यलम् ता. २७ ११ १९२२ ई.

दीनानाथ शास्त्री.

इममे उत्तर में पं० रामकृष्ण शास्त्री का हिन्दी पत्र.

दिन का पार्वण श्राद्ध है और सप्तमी तिथि १४ घटी = पल है और दुसरे दिन अष्टमी १४ घटी = पल है पहिले दिन अपराह्न काल में अष्टमी न होनेसे उस दिन भी श्राद्ध कर सकते नहीं और दुसरे दिन १४ घटी तक ही होने से गौण कुतुपयुक्त रोहिण काल में भी नहीं है। इसलिये दुसरे दिन भी अष्टमी का श्राद्ध कर सकते नहीं। ऐसी १० घटी का क्षय मानने में आपत्ति आती है। इसीही तोर से प्रदोष में भी आपत्ति आती है। सूर्यास्त से ६ घटी का परिमित प्रदोष का मुख्यकाल है और सूर्यास्त के पहिले ३ घटी प्रदोष का गौणकाल है। ऐसे परिस्थिति में यदि प्रदोष का विचार करना होतो, मानों पहिले दिन द्वादशी १२ ३६ घ० और ४० पल है और दुसरे दिन त्रयोदशी २६ घ० और ५८ पल है, इस परिस्थिति में पहिले दिन मुख्यकाल में न होने से और दुसरे दिन गौणकाल में भी न आने से प्रदोष में दोष आता है। हमारे पद्धत से यदि मानाजाय तो आपसे ३ घटी हमारी तिथी जादा होने से हमारे को आह्न निर्णय में, और प्रदोष निर्णय में दोष आता नहीं। और भी बहोत प्रमाण इस विषय में है। लेकिन समयाभाव से लिखते नहीं। और प्रार्थना करते हैं कि विषय को न समजते हुवे आपका अमूल्य काल खर्च करके हमको कृपाश्रम न देवेंगे। इत्यम् । ता. १-१२-२९ ई.

पं. रामकृष्ण शास्त्री साठे.

लेखक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

श्रीयुत साठे शास्त्रीजी साष्टांग नमस्कार ।

आपके तारीख १६-११-२९ के पत्र का उत्तर तारीख २०-११-२९ को हमने दे दिया तोभी नजर्ने फिर से वही बात आपने २४-११-२९ के पत्र में लिखी है। आपका प्रश्न इतना ही है कि " १० घडी का क्षय होगा तो श्राद्धादि कार्य में बाधा आती है " हमने गत पत्र में बता दिया है कि श्राद्ध का गौण कर्मकाल १५ घडी का १२ ग्रंथों के प्रमाणों से सिद्ध होता है तथा मुख्य कर्मकाल १० घडी का है जोकि आपने भी " ऊर्ध्वं मुहूर्त्वात्कुतुपात् यन्मुहूर्त्तचतुष्टयं ॥ मुहूर्त्तपंचकं त्येतत्स्वधा भवन सिध्यते ॥ इसी पत्र में लिख दिया है। क्योंकि पांच मुहूर्त्त की १० घडी ही होती है। और आगे दिनद्वये तदव्याप्तौ वा समव्याप्तौ च पूर्वा को भी लिख दिया है सो इसी की फैलावट करके देखें तो निर्णय होजाता है।

क्योंकि मुख्य काल में व्याप्ति नहीं हो या दोनों दिन मुख्य काल में व्याप्ति हो तो पूर्वा करें यह इसका धर्मशास्त्र में निर्णय कहा है। क्योंकि मुख्य काल में चाहे अव्याप्ति होजाय क्योंकि मुख्य काल ( मुहूर्त्त पंचक रूप ) १० घडी का है और तिथी का क्षय भी सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर को ग्रन्थ देखने से १० घडी तक ही

होता है। सो कचित् इतनी तिथि घट जावे तो गौण काल तो पंद्रह घड़ी का रहता है उस गौणकाल में जिस दिन व्याप्ति रहे वही आद्र का काल माना है। इससे १० घड़ी के क्षय से धर्म शास्त्र में बाधा नहीं आती प्रत्युत दस घड़ी का क्षय नहीं मानने से आती है। वह यह है कि मुहूर्त पंचकरूप १० घड़ी के मुख्य काल की जब कि अव्याप्ति हो नहीं सकती तब दिनद्वये तद्द्वयास्तौ यह धर्मशास्त्र का वचन व्यर्थ गिरता है। अर्थात् ६ घड़ी का क्षय मानने में दोनों दिन में अव्याप्ति हो ही नहीं सकती फिर धर्मशास्त्र में यह वचन क्योंकर कहा।

यह सब शका समाधान की बातें गत पत्र में हमने लिख दी हैं। किन्तु फिर से वही बातें थोड़ी बहुत और मिलाकर आपने इस पत्र में लिखने से वही उत्तर लिखने में हमको पुनरुक्त दोष नहीं लगे इसलिये तथा इस विषय का पूर्ण निर्णय होजाने के लिये नीचे लिखे प्रकार के प्रश्न (मुद्दे) उपस्थित करके उनसे इस पत्र में सप्रमाण रीति से हलकर देते हैं ताकि हमेशा के लिये यह झगडा तय होजाय।

### प्रश्न [ मुद्दे ]

१ हमरे धर्म के प्रमाणभूत कितने ग्रंथ हैं और उनमें तिथि का वृद्धि क्षय क्या ५-६ घड़ी का (वाण वृद्धी रसक्षय.) लिखा है। या उक्त कथन अनुमान कल्पित है।

२ यदि अनुमान कल्पित है तो भी यह योग्य अनुमान से है या आमक कल्पना मात्र है तो क्या धर्मशास्त्र से तिथि का वृद्धिक्षय और ही सिद्ध होता है ?

३ ऐसा होने का कारण क्यों ऐसी भिन्न कल्पना कब व क्योंकर हुई और क्या प्राचीन कल्पना आधुनिक सूक्ष्मानुमान से मिलती है।

४ क्या आकाश में तिथि प्रत्यक्ष में दिख सकती है ? यदि दिखती है तो उसे हम कैसे देख सकते हैं। और उसके रीतिरूप करने में भार्य वचन में बाधा आती है क्या ?

५ प्रत्यक्ष तिथि के संबन्ध में प्राचीन चलना किस प्रकार थी। आज किस प्रकार की है और हमें कैसी रखनी चाहिये।

६ अब इसका सिद्धान्त रूप में क्या निर्णय हो सकता है।

बस इस ६ मुद्दोंपर हम इस पत्र में क्रमशः हमारे विचार प्रकट करते हैं आशा है कि शास्त्रीजी का इससे समाधान होकर प्रचलित पचांग शोधन का कार्य में (मुद्द सूक्ष्म गणित के पंचांग की तिथि ही धर्मानुष्ठान में टेना योग्य है ऐसा) आग योग्य अनुमति देंगे !



### पहिले प्रश्न का उत्तर.

हमारे धर्मशास्त्र ग्रंथों में निम्न लिखितानुसार १४ ग्रंथों के प्रमाण माने जाते हैं वह ग्रंथ \* ये हैं ।

- |                                               |    |                                                                           |
|-----------------------------------------------|----|---------------------------------------------------------------------------|
| ( १ ) हमारे धर्म के प्रमाणभूत कितने ग्रंथ हैं | १  | पुराण व महाभारतादि इतिहास दर्शक ग्रंथ                                     |
| और उनमें तिथि का वृद्धि क्षय क्या ५           | २  | न्याय व वैशेषिक तर्कशास्त्रीय ग्रंथ                                       |
| घड़ी का लिखा है या उक्त कथन अनुमान कल्पित है. | ३  | मीमांसा= वैदिक मंत्रों का अर्थ लगाने वाला विचार-शास्त्र                   |
|                                               | ४  | स्मृति= प्राचीन प्रणाली के दर्शक धर्मशास्त्र ग्रंथ                        |
|                                               | ५  | शिक्षा= पठन पाठन पद्धति युक्त स्वर शास्त्र                                |
|                                               | ६  | कल्प= प्रकारांतर से सत्य वस्तु को बताने वाले प्रयोग ग्रंथ                 |
|                                               | ७  | व्याकरण= शुद्ध लेखन पाठन ज्ञापक शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र                  |
|                                               | ८  | निरुक्त= भाषा शास्त्र ( वैदिक कोश )                                       |
|                                               | ९  | छंद= वृत्त गीति आदि का छंदोज्ञान साहित्य शास्त्र                          |
|                                               | १० | ज्योतिष= आकाशस्थ ज्योतिषों से कालज्ञान शास्त्र                            |
|                                               | ११ | ऋग्वेद= वेद कालीन पद्यात्मक ग्रंथ                                         |
|                                               | १२ | यजुर्वेद= वेद कालीन गद्य पद्यात्मक ग्रंथ                                  |
|                                               | १३ | सामवेद= वेद कालीन संगीत शास्त्रीय ग्रंथ                                   |
|                                               | १४ | अथर्वण वेद= वेद कालीन अर्थ शास्त्रीय एवं शिल्प शास्त्रीय-अर्थवान् ग्रंथ । |

इन १४ प्रमाणों को ही धर्मशास्त्र कहते हैं । और यह ऋषि प्रणीत होने से अर्थ ग्रंथ हैं । अतएव इन के वाक्यों को प्रमाण मानना हमारा धर्म है । किन्तु इन ग्रंथों में कहा भी “ वाण वृद्धि रसक्षयः ” लिखा नहीं है । अथवा तिथि की ५ घड़ी की वृद्धि और ६ घड़ी का क्षय उक्त प्रमाण ग्रंथों से सिद्ध नहीं होता । अतएव कहना पड़ता है कि यह कथन अनुमान कल्पित है ।

### दूसरे प्रश्न का उत्तर.

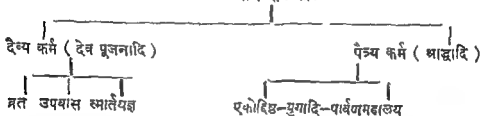
क्योंकि आकाश में देखना छोड़कर जब से स्थूल गणित के सूर्य चंद्रादिकों पर से तिथि बनाने की पृथा का आरंभ हुआ तब से इस भ्रामक यदि अनुमान कल्पित है कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है । इसको मैं भ्रामक कल्पना इस-तो भी यह योग्य अनुमान लिये कह रहा हूँ कि यह हमारे उपरोक्त धर्म प्रमाणों से तथा वे है या भ्रामक कल्पना प्रत्यक्ष गणित से सिद्ध न होते हुए भी उपरोक्त धर्म प्रमाणों से मात्र है । और धर्मशास्त्रीय सिद्ध होने वाले प्रमाणों को अप्रमाणित कहने तक की मजल रीति में तिथि का वृद्धिक्षय सिद्ध होना बिल्कुल हीतना भिन्न होता है- पहुँच गई है । क्योंकि वेद और शास्त्र से तिथि के ९।१० घड़ी वृद्धि क्षय बनाने वाले प्रमाणों को यह लोग गलत कह रहे हैं.

\* “ पुराण न्याय मीमांसा धर्म शास्त्राणां प्रामाण्याः ॥ वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य चतुर्दश ॥ १ ॥ [ यागवल्क्य स्मृति ] ”

( १ ) बौधायन ऋषि ने १३ और १७ दिन का पक्ष कहा है इसी प्रकार आपस्तम्ब, बालि, सूत्रकार, महाभारत और मुहूर्त ग्रंथों में लिखा है । बिना ९।१० घड़ी के वृद्धि क्षय के पंद्रह दिन में दो दिन की घटवध हो नहीं सकती परन्तु काल माधव में इसको गलत [ अर्थ वाद मात्र ] कहते हुए न श्रुतिव्यास नान्तरिक्षे न दिव्यग्नि श्वेतज्य इति इस वेद वाक्य को भी गलत कहा गया है । जोकि वसन्त सम्पात से २७०, १८७, ९० अंश के उपलक्ष में निषेध करके वसन्त सम्पात के दिन अग्नि का आधान करे इस अर्थ में कहा गया है । पीयूषधारा आदि टीकाकारों ने मुहूर्त चिन्तामणि आदि में कहे हुए १३।१७ दिन के पक्षों को खपुष्य तुल्य [ अशक्य ] कहा है । यह कथन उनका भ्राति से है । क्योंकि शास्त्र शुद्ध नहीं है ।

[ २ ] धर्मशास्त्र ग्रंथों में कर्मकाल के गौण और मुख्य ऐसे २ भेद कहे हैं उसमें गौण काल का निर्णय नीचे लिखे प्रकार किया जाता है ।

### गौण कर्म काल



पूर्वाह्न काल में  
सर्वादय प्रातःकाल से १२ बजे तक

अपराण्ह काल में  
मध्याह्न से सूर्यास्तकाल तक

उपरोक्त गौणकाल में दिन के मगन दो विभाग माने जाते हैं इसलिये इसे द्वेधा विभाग पक्ष कहा है गत [ ता० २०-१-२९ ] के पत्र में १२ प्रमाणों से इसे सिद्ध कर दिया है ।

मुख्य काल का निर्णय कालायन सृष्टि ( खंड १६ ) में नीचे लिखे प्रकार किया है कि—

पिंडान्वाहार्यकं आर्द्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥ वासग्न्य तृतीयेशे नाति संध्या समीपतः ॥१॥ अर्थात् मुख्य कर्म काल में दिवस का एक तृतिपात्र (  $\frac{1}{3}$  ) भाग कहा है । अतः सामान्य रीति से ३० घड़ी का दिनमान हुआ तो २०-३० घड़ी का कर्मकाल होता है । इसका स्पष्टि करण करते हुए दोनों दिन मुख्य कर्म काल में अमास्या न हुई तो आद्ध कर्म करना इसका निर्णय कहते हैं कि—

यदा चतुर्दशीयामं तुराय मनु पूरयेत् ॥ अमावास्यायां भागा तद्वै आद्ध मिष्यते ॥ २ ॥

उदाहरण द्वारा इसका स्पष्टीकरण ये है कि—

पहिले दिन चतुर्दशी घड़ी ३० चार प्रहर पर्यंत है दूसरे दिन अमावस्या घड़ी २० तक ही होने से उक्त कर्म काठ में क्षय्यमाण है। तब दूसरे दिन में घड़ी १५ से २० घड़ी तक के अमावस्या में श्राद्ध कर लेना कहा है। क्योंकि श्राद्ध के वक्त मुख्य न रक्ष तो भी गौण काल रहता है।

ऐसा दोनों दिन अमावस्या की अंशतः व्याप्ति और पूर्ण व्याप्ति के निर्णय में भी वही कर्मकाल को दर्शाया है कि— “वर्द्धमाना ममावस्यां लभेद्यदपरऽहनि ॥ यामान् खीन् ३ अधिकान् ४ चापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥ उदाहरण द्वारा इनका स्पष्टीकरण ये है—

पहिले दिन चतुर्दशी घड़ी २० के अंदर समाप्त होकर अमावस्या दूसरे दिन अमावस्या घड़ी २२॥ तीन प्रहर पर्यंत हो अथवा दूसरे दिन अमावस्या घड़ी ३० चार प्रहर पर्यंत हो तब पहिले दिन कर्मकाल में अमावस्या की पूर्ण व्याप्ति होकर दूसरे दिन भी उमकी तीन प्रहर होतो अंशतः व्याप्ति चार प्रहर हा या पूर्ण व्याप्ति होतो दूसरे ही दिन श्राद्ध करे।

इन तीनों प्रमाणों से तिथि की क्षय वृद्धि १० घड़ी की [ दिन के  $\frac{1}{3}$  भाग मित ] कही है और वेध सिद्ध मान से भी तिथि का ९।१० घड़ी का वृद्धि क्षय सिद्ध होता है।

इसी प्रकार जाबालिशातातप और हारति में भी लिखा है। रात्री के वृत्त में भी १०।२०।३० घड़ी का कर्मकाल अन्यान्य कार्यों में कहा है।

“त्रिधा विभज्यरात्रितो मय्योक्तो यज्ञ तारकम् ॥

उपोषितव्यं यद्यत्र येनास्तं याति आस्तरः ॥ १ ॥”

( ब्रह्म सिद्धान्त ३।३२ पृष्ठ ४८ )

वहां भी [ दिनइयेऽपि मुख्यकालव्याप्त्यभावे गौण कालालाभ्यनुज्ञापरत्वात् ] ऐसा गौण काल में कतना लिखा है। इसीसे रात्रि व्रत में भी तिथि का ९।१० घड़ी का वृद्धि क्षय मिद्ध होता है क्योंकि संपूर्ण ग्रंथों में दिन व रात्रि के तीन २ विभाग रूप कर्म का मुख्य काल कहा है। किंतु शाके १०५० में माधवचार्य ने शाके १५८८ में कमलावर ने शाके १७२२ में काशीनाथ ने अपने काठ माधव, निर्णय सिन्धु व धर्मसिन्धु तथा पुन्यार्थ चिंतामणी आदि आधुनिक ग्रंथों में उक्त त्रैश पक्ष को वींचतान कर अयुक्त बताने का प्रयत्न किया है किन्तु आश्चर्य ये है कि जैसे ऊपर के प्रमाण में दिन रात्रि के तीन विभाग माने हैं ऐसा श्रुत्यादि १४ प्रमाणों में श्राद्ध व्रतादि में पंचांग विभाग कहा नहीं होकर भी उसको आप ने माना है। इसका कारण ही यह दिखता है कि इस वक्त वेध क्रिया लुप्त होकर स्थूल गणित में इनको तिथि का ९।६ वृद्धि क्षय दिखता था। इसी भ्रांति से कोई गणिताभिक्त ने बाण वृद्धि रम क्षय को अनुमान से कल्पित कर लिया है।

## तीसरे प्रश्न का उत्तर.

चंद्र स्पष्ट करने में साधारणतः पांच प्रकार से फल संस्कार मध्यम चंद्र में देने पड़ते हैं। अथवा वैदिक ऋषियों के माफक उसका सतत वेध लेना यदि भ्रामक कल्पना माना जाय तो भी ऐसी कल्पना क्या बचनों को आर्पण वचन न होते हुए भी आर्पण वचन मान कर वेध लेना छोड़ दिया इसलिये चंद्र में सिर्फ एकही मदफल संस्कार दिया जाने में वह स्थूल रहने उनका यथार्थ में तिथि की घट वध समझी ही नहीं किन्तु धन्य है उन प्राचिन ऋषियों को कि शक ४२१ के प्राचिन काल में प्रत्यक्ष वेध लेकर आपने तिथि का गृह ९ क्षय १० वह निश्चित किया है कि सूक्ष्माति सूक्ष्म यंत्रों में आजभी वही काल निश्चित होता है जो कि हमारे ऋषियों ने कहा है।

## चौथे प्रश्न का उत्तर.

सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर से एक तिथि ऐसे ३६० अशान्तर में ३० तिथि हो जाती है। इनको प्रत्यक्ष देखना होता तो सूर्य के अस्त हुए की प्रत्यक्ष दिखती है। दिखती है तो हम उसे देख सकते हैं और उस प्रत्यक्ष तिथि से आर्पण वचन में बाधा आती है क्या।

तिथि समाप्ति काल

तिथि घटा मिनट

२०	९	०
१	९	४८
२	७	३६
३	८	२४
४	९	१२
५	१०	०
६	१०	४८
७	११	३६
८	१२	२४
९	१	१२
१०	२	०
११	२	४८
१२	३	३६
१३	४	२४
१४	५	१२
१५	६	०

निर्दिष्ट हो सकती है। अनुगम का उदाहरण है। एक सूर्यास्त ६ मजे हुआ उस दिन चंद्रास्त ६ ४८ या हुआ तो प्रतिपदा तिथि भुक्त होगई ऐसे ही सूर्योदय में बाद चंद्रादय में भी शुक्ल पक्ष की तिथि निर्दिष्ट होती है।

प्रति गेम में उदाहरण में सूर्योदय में चंद्रास्त दिया सूर्यास्त में चंद्रोदय या अगस्त रात्रि पक्ष की तिथियों का निर्णय होता है। सूर्य चंद्रा - म सत्राय देवस्य पार्णिमा त का और एक सत्राय देवस्य जम त रा निदय हो सकता है।

प्राचिन ज्ञात में इस प्रकार प्रत्यक्ष दूसरे तिथि का निश्चय करने लगे थे। किन्तु यह निश्चित न था कि यह अर्वाचीन काल में यह वेध दिया गया होने २ मासराचार्य के बाद ने प्रत्यक्ष ही गम योग है।

## पाँचवें प्रश्न का उत्तर.

प्राचिन कल्पना व आर्प कथन

प्रत्यक्ष तिथि के संबन्ध में प्राचीन कल्पना किस प्रकार थी ।

स्मृतिःप्रत्यक्ष मतिह्यम् । अनुमान चतुष्टयम् ॥  
एतैरादित्य मण्डलम् । सर्वे रेव विधास्यते ॥ १ ॥  
संवत्सरःप्रत्यक्षेण सर्वैरेव विधास्यते

[ तै. आ. १-२ १-२ ]

आज किस प्रकार की है और हमें कैसी रचना चाहिये।

“पड है र्मासान्संपश्यन्ति । अर्द्ध मासैर्मासान्संपश्यन्ति इति ॥

[ तै. सं. ७-५-६ ]

“ सस्यंहि वैचक्षुस्तस्माद्यदि दानां द्वौ विषदमाना वेयाता महमदर्श महमश्रौ पमिति ।  
यएव ब्रूयादहम दर्श मिति तस्माएव ब्रह्म्याम तन्मत्ये नै वै तत् समर्द्ध यति ॥  
[ वा. ब्रा. १-२-४-२७ ]

आर्प धर्मोपदेशैच । वेद शास्त्रा विरोधिना ॥यस्तर्केणानु संघत्ते सधर्म घेदने तरः ॥ १ ॥

( इति न्याय वार्तिके कुमारिलः )

वर्तमान कालीन कल्पना व कथन.

मूला शुद्धिर्महर्षीणां वचने यदि तर्क्यते ॥  
तदास्म दादिवत्तेपां सर्वज्ञत्वं नयुज्यते ॥ १ ॥  
अतस्त दुप धर्मेपु मिथ्यात्वादि विभावनात् ॥  
वेदोक्त फल सिद्धयर्थ प्रतिभानावतिष्ठते ॥ २ ॥  
इत्थं प्रसज्यते सर्व विश्वासा भाव भावना ॥  
तिथ्यादि तदनुष्ठेय कर्मणान्तु कथैवका ॥ ३ ॥  
आस्ता तावद्भूरिवादा लौकायतिक कल्पना ॥  
यानिरस्ता समस्तैव प्रशस्त श्रुतिशास्त्रिभिः ॥ ४ ॥  
प्रकृतेतु महर्षीणा सर्वज्ञत्व प्रथाजुषाम् ॥  
आज्ञयैव प्रवर्तते धर्म कर्माणि यत्नतः । ५ ॥  
तैरेव पुनरादिष्टा द्वेधा गणित कल्पना ॥  
दृष्टादृष्ट फल प्रात्यै ततो धर्म व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥

पं० दुर्गाप्रसादजी जैपुर सं. १९५८ के अधिमाम परीक्षा में कहे हैं ।

उपरोक्त प्राचीन व वर्तमान कालिक तिथि विषय की कल्पना का जब आप रूपान्तर देखोगे तब आपको ज्ञात होगा कि कहा तो प्रत्यक्षादि चार प्रमाणों के द्वारा ग्राह्यगुह्य पद्धति से विचार करने की कल्पना थी और कहाँ उमे शास्त्रीय कमीटी पर टंगान से डरने की वर्तमान में कल्पना होगई है । किंतु ऐसी कल्पना होने का कारण ही हमें यह दीखना है कि ब्रह्ममिहारे के इधर के काल में ऊपर को ऊपर वेच लेने की पद्धति का छाप होजाने पर आर्य सूर्य ब्रह्म मिद्वान्तादि धार्मि ग्रंथों को

युगान्तरीय एवं गलत गणित के कहकर उनके ही नाम पर आर्यभट्ट, मय [ मीयांय-वनाचार्य ] व ब्रह्मगुप्त के बनाये ग्रंथों को अर्प ग्रंथ मानना है। यद्यपि इनको आर्य ग्रंथ के परिमाण स्थूल मालूम होते हैं किन्तु उस वक्त प्रत्यक्ष वेध प्रामाण्य मानने के कारण तिथ्यादि निर्णय में उन्होंने इतना सूक्ष्म मान निश्चित कर लिया था कि आज भी वह वेध सिद्ध सूक्ष्म गणित से ठीक २ मिलता है। इसलिये उक्त भ्रामक कल्पना को त्याग कर आर्य माने हुए ग्रंथों को ही आर्य मानें तो उनका स्वीकृत तात्व सत्य २ होने से उसमें बाध आने का कारण ही नहीं है।

### छठे प्रश्न का उत्तर.

तिथि यह सूर्य चक्रान्तर से प्रत्यक्ष दिखने वाली वस्तु है इसलिये जिस शास्त्र से इसका प्रमाण हमें यथार्थ दिख सके याने दृग्गणितैक्य होजाय **अथ इसका भिद्वान्त** ६- **प** में क्या निर्णय हो **वही** ज्योति शास्त्र हमें प्रामाण्य है। हम इसको मानते हैं। इसको नहीं मानते ऐसा उपरोक्त १४ प्रमाणों में कहा २ नहीं है फिर अभिद्व बातको सिद्ध करने का प्रयत्न क्यों करें। इसमें न तो आर्य वचन लोप होता है न व्रतोपवास आद्यादि में उक्त काल का लोप होता है प्रत्युत तिथि की ९ घड़ी वृद्धि और १० घड़ी तक का क्षय प्रत्यक्ष से और आर्य ग्रंथों से सिद्ध होता है इसलिये अंक वृद्धीदर्शक्षयः यह पद हमने प्रभाकर में लिखा है सो इसका आप स्वीकार करें।

### उपसंहार

यद्यपि आपके पत्र में और भी बहुत बातें हैं किन्तु ये सब मुद्दे को छोटकर होने में प्रकृत कार्य में उसका उत्तर देने से कुछ लाभ नहीं दिखने से उनका उत्तर दिया नहीं।

भरदीप,

**दीनानाथ शास्त्री चुलेट.**

पंचांग कमेटी तारीख २०-११-१९ ई० की  
मभा में आया नीटकट का पत्र.

लेखक पंडित नीलकंठ मंगलजी ज्योतिष नाथ

रा. म. प्रेमिटेड मोहन पंचांग कमेटी टोश

से ग्रामें

मा. न. नि. है कि प्रदयाध्व ग्रंथ पर मे जो पंचांग बनाये जाने है वे क्यों अशुद्ध है इस विषय में यदि निचार किया जाय तो इसका मुख्य कारण ग्रंथ के नाम से ही जाहिर होता है तो भी उस ग्रंथ में किस कदर शुद्धता हुई यह देखना भी एक आवश्यक बात है और इस विषय में श्री महामहोपाध्याय पं. मुभासजी त्रिवेदी साहबने महान परिश्रम करके सिद्धान्त पत्र में अहर्गण तथा दिन २ सिद्धान्तों में जो २ प्रद या उच्च अंगणेश देवज्ञ ने

साधन किये हैं उन २ सिद्धान्तों से यथोक्त गणित करके ग्रहलाघवोक्त क्षेप तथा ध्रुवक इन्होंने सिद्धान्त गणित से आया हुआ वास्तविक अंतर दिखलते हुए इस ग्रहलाघव की उपपत्ति करके इस ग्रंथ के प्रत्येक अधिकार में ही नहीं किंतु अधिकांश इलों में जो स्वल्पान्तर ग्रहण किये हैं दिखाया है यह सब उन्हींके सोपपात्तिक ग्रह लाघव से प्रसिद्ध है ही तो भी उदाहरणार्थ क्षेप और ध्रुवको में अन्तर होने से मध्यम ग्रहों में आज कितना अंतर हुआ इसका खुलासा संक्षेप में नीचे लिखे मुजिब है श्रीगणेश देवज्ञ ने ग्रहलाघव शके १४४२ में बनाया जिसको आज ४०९ वर्ष हांगये और उन्होंने ११ वर्ष का चक्र माना उस हिसाब से चक्र ३७ हुए हैं जो ध्रुवकों में एक चक्र जनित अन्तर था वह अन्तर अब ३७ पट क्रम से बढ़ा इसका सविस्तार कोष्टक साथ पेश है।

### एक चक्र जनित क्षेपकांतर तथा ध्रुवांतरम्.

ग्रह.	ग्रंथ नाम.	क्षेपरा. अं. क. वि.	क्षेपान्तर.	ध्रुवक.	ध्रुवान्तर.
रवि.	ग्रह लाघव सूर्य सिद्धान्त.	११-१९-४१'-०'' ११-१९-४१-१३	न्यून १३"	०-१-४९' ११" ०-१-४९-११	० ध्रुवान्तर.
शुक्र.	ग्रह लाघव सूर्य सिद्धान्त.	११-१९-६-० ११-१९-१५-५२	न्यून ९'-५२''	०-३-४६-११ ०-३-४६-११	०
चंद्रोच्च.	ग्रह लाघव सूर्य सिद्धान्त.	५-१७-३३-० ५-१७-४०-२३	न्यून ७'-२३"	९ २ ४५-० ९-२-४१-१३	१'-४९" अधिक.
शुक्र.	ग्रह लाघव आर्य सिद्धान्त.	७-२-१६-० ७-२-३१-४३	न्यून २५'-४३''	०-२६-१८ ० ०-२६-१६-५३	१'-७" अधिक.
मंगल.	ग्रह लाघव आर्य सिद्धान्त.	१०-७-८-० १०-६-२९-५	अधिक ३८'५५''	१-२५-३२-० १ २५-२७ १४	४'-४९" अधिक.
राहु.	ग्रह लाघव आर्य सिद्धान्त.	७-२७-३८-० ०-२७-३८-४६	न्यून ०' ४६"	७ २-५०-० ७ २-४६-३३	१'-२७" अधिक.
शनि.	ग्रह लाघव आर्य सिद्धान्त.	९-१५-२१-० ९-१५-२२-११	न्यून १'-११"	७-१५-४२ ० ७-१५-४२-४१	०'-४१" न्यून.
ध्रु. कं.	ग्रह लाघव ग्रह सिद्धान्त.	८-२९-३३-० ८-२९-१४-३०	अधिक १८'-३०"	४-३-२७-० ४-३-२८-३४	१'-३४" न्यून.
ध्रु. कं.	ग्र. ला. म. मि + आ. मि.	७-२०-९-० ७-२०-३९-९	न्यून ३'-९"	१-१४-२-० १-१३ ५६ ५०	५'-१०" अधिक.

## चक्र ३७ जनित ध्रुवान्तर तथा वास्तविक अन्तर.

ग्रह.	ध्रुवान्तर	क्षेपान्तर.	वास्तविकान्तर.	
	अं. फ. वि	फ. वि	अ. क. वि.	
रवि.	०- ०- ०	०-१३	०-१३ न्यून	ध्रुवान्तर होने से सिद्धांत मुख्य ही है.
चन्द्र.	०- ०- ०	९-५२	९-५२	
बुध.	२-२१-१३	७-२३	२-१३-५०	अधिक है.
शुक्र.	०-४१-१९	१५-४३	०-२५ ३६	अधिक है.
मंगल.	२-५६-२२	३८-५५	३-३५-१७	अधिक है.
राहु.	२- ७-१९	०-४६	२- ६ ५३	अधिक है.
शनि.	०-२५-१७	१-११	०-२६-२८	न्यून है पांच अंश न्यून स्वतः वहाँ है सबय
बु. कें.	०-५७-५८	१८-३०	०-३९-३८ न्यून है	४ १३ १३२" धन करना चाहिये.
शु. कें.	३-११-१०	३०- ९	२-४१- १	अधिक है.

उपरोक्त जो मध्यम ग्रहोंमें अन्तर हुआ इतना और उन सिद्धान्तोक्त ग्रहोंमें धीज संस्कार देकर जो क्षेपक ध्रुवक कहें हैं यह बीजान्तर होने अन्तर हुआ है यह एक स्थूलता हुई.

इसके शिवाय ग्रहों को स्पष्ट करने में तथा अन्य वास्तुओं के साबन करने में जो संस्कार आदि आचार्य ने बतलये हैं उन्होंने अधिवास में स्वरूपान्तर ग्रहण किये हैं यह दूसरी स्थूलता हुई.

और सिद्धान्तकाल में ज्ञात तक का अन्तर यहाँ जो ज्ञानों मंद फल वर्गा में अन्तर होकर स्थूलता हुई यह तीसरी स्थूलता हुई.



ऐसे तीन प्रकार से जिन ग्रन्थ में स्थूलता हुई अर्थात् वह स्थूल कहो चाहे अशुद्ध क्यों के वह अशुद्ध प्रायही है. और उस पर मे वनी सारणीयों पर मे पंचांग साधन कहा तक शुद्ध हो सकती है. और वह पंचांग वृत्तादिक तथा मुहूर्तादि धर्म शास्त्र में कैसे उपयोगी होगा इसका विचार आप सूत्र लोग कर सकते हैं.

नीलकंठ मंगल जोशी.

रा. रा. प्रेसिडेंट साहेब पंचांग कमेटी इन्दौर.

सेवामें.

सा. न. विनन्ती है कि मैंने गत बुधवार के कमेटी में जो प्रश्न विनय पत्र के द्वारा पेश किये हैं उन्हीं का उत्तर मिलना अति आवश्यक मालूम होता है क्योंकि पंचांग करता जब के ग्रह लाघव से पंचांग बनाते तो इस वर्ष शके १८९२ अधिन कृष्ण ३० सोमवार ता. १-११-२९ को समस्त भारतवर्ष में होने वाला मूर्धप्रहण इस ग्रह लाघवी पंचांग में ग्रह लाघव के गणित से आते. हुवे क्यों नहीं छपा गया इसका योग्य उत्तर मिले. और ता. ३१-३-१९३० ई. को ग्रह लाघव के गणित से रवि उदयास्त कितने बजे होंगे और दिन मान कितना रहेगा इसका कुछ कच्चा गणित ग्रहलाघव करते उस दिन रवि उदय ५.५३ सुबह पांच बजकर त्रेपन मिनट पर होगा और रवि अस्त ६.७ शाम को छः बजकर सात मिनट पर होगा तथा दिन मान ३० घंटे ३४ पल रहेगा इसका कुछ कच्चा गणित इसके साथ पेश है. और विनन्ती है कि पंचांग कर्ता कमेटी के समक्ष कह चुके हैं की यह पंचांग ग्रह लाघव से बनाया गया है तो ग्रह लाघव के गणित से रवि उदयास्त में कितना करक है वो देखें ता. ३१-३-१९२४ ई. को पंचांग करता ने अपने पंचांग में उक्त दिन रवि उदय ५.५३ रवि अस्त ६.७ और दिन मान ३०-३६ लिखा है जो हमने ग्रह लाघव से गणित करके लाये हैं उन्हीं के समान ही हैं. परन्तु तारीख ३१-३-२९ ई. को पंचांग में उक्त दिन रवि उदय ६-२४ रवि अस्त ६-३९ और दिन मान ३०-२३ पंचांग करता ने लिखा है. यह कौन से ग्रह लाघव से साधन करके उन्होंने लिखा है ज्ञात होता नहीं यदि कल्पना करें की पंचांग करता ने ग्रह लाघव के गणित से रवि उदय और रवि अस्त अशुद्ध आते हैं तो उन्होंने उसमें शुद्धी की तो अखेर अशुद्ध पंचांग की शुद्धि केवल इतने ही से होना उन्होंने समझा; क्योंकि और कुछ भी भिन्न इमने सूक्ष्म गणित के तुल्य उन्हीं के पंचांग में अभी दिखाई दिया नहीं. यद् रवि उदय रवि अस्त भी ग्रास्तविक सूत्र में बहुत कुछ स्थूल है.

पंचांग साधन पंच तारा साधन वगैरा नत्र हा प्र लाघव के गणित में अशुद्ध आते हैं; जिन्होंने लोक व्यवहार है. तो एसी आवश्यक वस्तुओं की शुद्धी छोड़ देने की ही क्यों की गई;

इससे ज्ञात होता है की पंचांग करता यह अच्छा तरह समझ चुके हैं की अपना ग्रह लाघव से किया हुआ कुल गणित अशुद्ध है, परन्तु लोक दृष्टि से बचने के लिये सिर्फ इतनी शुद्धी कर लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि रवि उदयास्त तो सब कोई के दृष्टि में बहुधा आता है, शिवाय इसके प्रत्यक्ष में ग्रह लाघव के गणित से आते हुए सूर्यग्रहण को नहीं छापना कहां तक योग्य है, और इसी कारण ही शायद पंचांग कर्ता मेरे प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार करते हैं की क्या—यह विज्ञप्ति ता. २३-१०-२९

नीलकंठ मंगल जोशी.

रा० रा० प्रेसिडेन्ट साहेब पंचांग कमेटी इन्दौर

सेवा में.

सा० न० विनंती है कि पंच सारा ग्रहण उदय अस्त वक्ती मार्गी चतुर्थी कालाष्टमी का चन्द्रोदय आदि सूक्ष्म गणित से लेना यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो चुका अब इस विषय में मतभेद बिल्कुल रहा नहीं, सिर्फ उभय पक्ष को आश्वासन कि धर्म कर्म यथा-रुचि करते आवे इस हेतु से ग्रहलाघवोक्त प्रकार से तिथी बनाकर उसका एक कालम पंचांग में देना एसा प्रस्ताव उपस्थित हुआ है, परन्तु ग्रहलाघव से जो तिथी साधन करेंगे वे तिथि अशुद्ध होंगी कारण यह है कि ग्रहलाघव का प्रकार अब बहुतही स्थूल होकर अशुद्ध प्रायही है तो वे अशुद्ध तिथियां यदि पंचांग में दी गईं तो शुद्ध पंचांग में एक अशुद्धि का दोष रह कर पंचांग कमेटी को यह दोष हटाने नहीं आया क्या ? यह एक लोकापवाद पंचांग कमेटी के उपर आवेगा.

इसके लिये उन ग्रह लाघवोक्त प्रकार से की हुई तिथियों में सूक्ष्म संस्कार देना या नहीं क्योंकि जहांतक रवि, चंद्र और दोनों का गति सूक्ष्म साधन नहीं होंगी वहांतक तिथि भी शुद्ध नहीं मिलेंगी और प्रत्यक्ष में दोष दिखते हुए उसका विचार नहीं करते हुये यही सदोप तिथियां यदि पंचांग में दी गईं तो यह बात उपहास कारक होकर पंचांग कमेटी सूक्ष्मता का विचार नहीं कर सकी ऐसा होगा.

यदि तिथियों में आधुनिक सूक्ष्म संस्कार देने से आश्वासन कि धर्म कर्मों में बाधा आती हो तो अपने प्राचीन सिद्धान्तोक्त प्रकार से रवि, चंद्र साधन करके नडिका वन्धन वा तुंगेय वन्धन आदियों से रवि, चंद्र अपने संस्कृत गणित के बराबर आये या नहीं मिलाकर उस पर से तिथि साधन किया जाय तब की ग्रहलाघवकार आमान गणेश देवज्ञ ने वेधोपलब्ध ग्रहों को करके ग्रहलाघव की रचना की उस मुजब करने में कमेटी को क्या राय है क्योंकि बीज संस्कार और ग्रहों का अन्तर बिना वेध किये ठहर नहीं सकता.

३.

यदि वेध करने से जो संस्कार आँवे वे देकर तिथि साधन करना तो उसमें परम क्रांती प्राचीनोक्त २४ है वो मानना वा आधुनिक सिद्ध २२-२६ है यह मानना वैसे ही रवि चन्द्र के परम मंद फल प्राचीनोक्त लेना वा आधुनिक लेना और त्रिज्या कितनी मानना तथा यंत्रादिकों को बनाने का प्रकार भी प्राचीन गृहण करना या नवीन गृहण करना. कारण यह है कि बिना सूक्ष्म यंत्रों के वेध करना कठिन है. सूक्ष्म संस्कार जो कि आधुनिक विद्वानों ने बड़े २ सूक्ष्म यंत्रों से तथा गणित चातुर्य से १०००० त्रिज्या लेकर साधन किये हैं उन्हें को गृहण करने में धर्मकार्यों में क्या बाधा होगी इस पर विचार होना भी अवश्य है.

इस कमेटी में धर्मशास्त्री भी नियुक्त हैं उन्हें जो भी गणित विषय समझा नहीं तो भी कौन शुद्ध और कौन अशुद्ध है इतना तो आज तक के फैलाव तथा वादावाद से अवश्य ही समझ चुका होगा कि जो शास्त्र प्रत्यक्ष है और जिसमें वचनात् प्रवृत्ति वचनाभिप्राय नहीं है ऐसे शास्त्र में जो उसमें प्रमाण हो वही गृहण करना अवश्य होता है.

जिस काल में गणित से बाण वृद्धि रसक्षयः होता था उस काल में रविचन्द्र की जो गति थी उससे वर्तमान काल में भिन्न २ गतियाँ हैं इनका सिद्धान्तानुसार कोटक बनाकर हम कमेटी में पैदा कर चुके हैं

जहाँ पर वचन प्रमाण न होते प्रत्यक्ष प्रमाण है प्रत्यक्षज्योतिष शास्त्र चन्द्राऽर्कोपग्र साक्षिणी तो इस जगह उपमाण वचन का प्रमाण देकर प्रत्यक्ष प्रमाण का विरोध करना कहाँ तक ठीक होगा. धर्म शास्त्र का कर्तव्य इतना ही है कि जो शुद्ध गणित से बनाया हुआ पंचांग हो उस पर धर्मशास्त्र के प्रमाण से घृतादिकों के निर्णय दें और धर्मशास्त्र कारणों ने केवल वचन प्रमाण धर्मशास्त्र होने से किसी भी धर्मकार्य में बाधा नहीं आवे ऐसी योजना धर्म शास्त्र में की है.

धर्मशास्त्र शुद्ध और शुद्ध पंचांग की निधि में धर्मग्रन्थ मानते हैं तो जो तिथी प्रत्यक्ष अशुद्ध होकर निम काष्ठ में निम तिथि को मानकर श्रद्धादि धर्मकार्य करते हैं उस काष्ठ में वह तिथि है ही नहीं तो इसमें बड़ी धर्मग्रन्थों क्या होगी. यह बात अलग भी जान सकता है.

इन्दौर राज्य का चाण्ड प्रह्लादजी पंचांग के कर्ता सुद कबूट करने हैं की प्रह्लादजी अब स्थूल होने में अशुद्ध होकर उस में शुद्ध होना अवश्य है तो उस पर मे बना पंचांग धर्म कार्य में कैसे शुद्ध हो सकता है इस का विचार सुद धर्मशास्त्री करें यह वि.

ता० २७-११-१९२९

नीलकंठ मंगल जोशी.

## लेखक—ज्योतिर्कुल भूषण पं. नीलकंठ ज्योतिषतीर्थ.

रा० रा० प्रेसिडेन्ट पंचांग कमेटी इंदौर.

सेवाये.

सा. न. वि. वि. गत सभा में ठहरे मुजब में अपना मत निम्न लिखित पेश करता हूँ.  
पंचांग सूक्ष्म और शुद्ध होना अति अवश्य है.

पंचांग साधन वर्तमान कालिक वैधोपलब्ध मद कलादि संस्कार संस्कृत रवि चन्द्र से किया जाय.

पंचांगस्थ किसी भी रव्यादि ग्रहमें दृक्कर्म संस्कार नहीं दिया जाय.

पंचांगस्थ सबही ग्रह सूक्ष्म और स्पष्ट होकर कदम्ब प्रोतवृत्तीय हों.

पंचांगस्थ सबही ग्रह इतने सूक्ष्म स्पष्ट होना चाहिये कि जन्हो में उक्त दृक्कर्म करने से ये धेधेमें आयें.

पंचांग में ग्रहलाघव की तिथी का कालम देना या नहीं इस बाबद एक पत्र ता. २७-११-२९ को मेने पेश किया है वह देखा जाय.

पंचांगस्थ ग्रहोंको दृक्कर्म संस्कार करके तार २ वैधोपलब्ध करते रहेना पंचांगकर्ता को अवश्य होकर उस मुजब होते रहना जाम्बोजति का मार्ग है. यन् विज्ञप्ति ता ९-१२-२९ ई.

नीलकंठ मंगलजी जोषी  
ज्योतिषतीर्थ

लेखक ज्योतिर्कुल भूषण पं० नीलकंठ ज्योतिषतीर्थ

रा० रा० प्रेसिडेन्ट माहेश पंचांग कमेटी इंदौर

यह वाक्य किम ग्रंथ में लिखा है. इस प्रश्न का उत्तर सांवेदे ने संतोष जनक दिया नहीं और कहा की यह वाक्य किसी ग्रन्थ में भी लिखा तो नहीं है परन्तु सर्व मुखी है याने मैंने लोगों के मुख से सुना है.

इसी सिलसिले में हमारे गुरुजी ज्योतिषाचार्य पं. रामसुचितजी त्रिपाठोजी ने कहा की ( वाण वृद्धि रसक्षयः ) यह वाक्य बृहद् संहिता में लिखा है उस मुजव गुरुजी के वाक्य प्रमाण समझकर मैंने बृहद् संहिता में देखा तो उसमें इस विषय में जो लिखा है उसकी नकल नीचे लिखे मुजब है. बृहद् संहिता पृष्ठा ३६ अध्याय २

नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्र भोगः । तच्च कदाचित् पदं पट्टि घटिका भवन्ति  
कदाचित् चतुष्पचाशत् । अत्रापि मध्ये संचरति ।  
चान्द्रं तिथि भोगः । तस्यापि नक्षत्रवदनाधिकता ।

एवं उपरोक्त वाक्य से ( वाण वृद्धि रसक्षयः ) यह वाक्य कुछ सिद्ध होता नहीं इससे तो ( रसवृद्धि रसक्षयः ) होकर वह भी कदाचित् होना लिखा है.

और वहापर दैनिक रवि गति ५९-० और चंद्र ७९०-० लिखा है जो कि सिद्धान्तों से और सुक्ष्म गणितोक्त गति से भिन्न होना मालूम होता है उसका कोष्टक नीचे लिखे मुजब है.

अ. सं.	ग्रंथों के नाम.	दैनिक रवि- गति.	दैनिक चंद्र गति.	सूक्ष्म गतिसे अंतरकलाज्यादा या कमी कोष्टक			
				रवि.	चंद्र.	रवि	चंद्र
१	बृहद् संहिता.	५९-०-१-०	७९०-१-०-०	१-३१-१-०	०-३०-०-०	कमी.	कमी.
२	सूर्य सिद्धान्त.	५९-८-०-०	७९०-३४- ५२-०	०-२३-०	०-४-५२	कमी.	ज्यादा
३	सिद्धान्त शिरो- मणी.	५९-८-१०- २१	७९०-३४- ५३-०	१-२३-१-० ३९	०-२-५३-०	कमी.	ज्यादा
४	ग्रह टायब.	५९-८-०-०	७९०-३४- ०-०	०-२३-१-०	०-५-०-०	कमी.	ज्यादा
५	प्रभाकर सिद्धान्त जिससे यह सूक्ष्म पंचांग बना है.	५९-३१-०-०	७९०-३४- ०-०	०-०-०	०-०-०	.	.

इस मुजब रवि चन्द्र के गतियों में फरक होने से सिद्ध होता है की उस ( रस वृद्धि रसक्षयः ) की कदाचित् प्राप्ति होती हो न की आज इस पर कमेटी विचार करें यह विनन्ती.

हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों के मूलाङ्को में कितना बीज संस्कार दिया जाय की वह हमारे धर्म शास्त्रसे विरुद्ध न होते हुवे जिसके द्वारा दृगाणितैक्य हो जाय ? इस प्रश्नके उत्तर में विनन्ती है की उपरोक्त प्रश्न के अनुकूल मेरे भी विचार मेरे ज्योतिषाध्यन के वक्त से ही होकर मैं सन १९२७ ई. में ज्योतिषतीर्थ की परिक्षा पास हुवा उसके बाद इस कार्य को करने लिये मैंने श्रीमन्त सरदार किंबे साहेब डेपुटि प्राइम मिनिस्टर महोदय इन्डोकी भेट लेकर विनन्ती की के मैं होलकर स्टेट का वंश परंपरा से आभित और राजज्योतिषि घरानेका होकर इसी लिहाज से मैंने ज्योतिष शास्त्र का अध्यायन इस वर्ष पूरा किया होकर अब मेरे को काम करने के लिये मदत मिले वगैरा विनन्ती पर विचार होकर मेरे को मदत मिली और मिल रही है. और उस मदत के जरिये जो काम मैंने किये हैं वे कुछ शोध कर अभिप्रायार्थ कमेटी के तरफ दरबार से आये हैं और उसमें रा. रा. प्रिन्सिपल आपटे साहेब ने जो कुछ अभिप्राय वगैरा भेजे हैं उनका लेखी उत्तर संक्षेप में इस पत्र के साथ पेश करता हू.

मेरे विचार के अनुकूल सिद्धान्त प्रभाकर की रचना होने से पंचांग कमेटी के सब सभासदों से तथा अध्यक्ष से विनन्ती है की इस पंचांग कमेटी के अध्यक्ष पं विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्रीजी ने दश वर्ष असीम परिश्रम करके उपरोक्त प्रभाकर सिद्धान्त अपने सिद्धान्तों में यथोक्त बीज संस्कार देकर बनाया है. और उस पर से उन्होंने प्रभाकर पंचांग कुछ वर्षों के पहले छापे थे उक्त पंचांग की सूक्ष्मता आदि दृगाणितैक्य को देख कर प्रसन्नता पूर्वक लोचमान्य तिलक और प्रोफेसर नार्डक आदि महान् विद्वानों ने अनुभव लेकर उक्त शास्त्रीजी को प्रशंसापूर्वक सर्टिफिकेट लिखे होने से केवल श्रम दूर होकर उक्त प्रभाकर सिद्धान्त यथोक्त बीज संस्कार होने से उसके आधार से यह सूक्ष्म गणित का “यशवन्त” पंचांग मैंने बनाया जो वधे गणित की कार्य समेत पंचांग कमेटी की मेवामे पेश करता हूं यह विशिष्टि फक्त ता. १९-१२-१९, ई.

नीलकंठ मंगलजी जोशी.

नंबर २७ का उत्तर

श्री:

पत्र निर्गम संख्या २९

पंचांग कमेटी इंदौर

सभा तारीख २४-११-२९ ई०

पंडित रामकृष्ण साठे शास्त्री के आक्षेप के

खंडन के मंडन में दिया हुआ-धर्मशास्त्रीय उत्तर । याने

## सभापति महोदय का संस्कृत पत्र.

अथि सभासद महोदयाः !

प्रत्यावेद्यतेस्माभिः ;

१. योग्य काल ज्ञापनार्थं मेव सर्वत्र तिथिपत्रादीनां साधनं भवति तदपि धर्मशास्त्रा-  
नुकूलं मेव विज्ञापितं पूर्वं मेरा स्माभिः स्तराणि “ पूर्वाचार्यान्नुकूल-  
हेतु. ध्वम्. ” “ धर्मशास्त्रातिरुमण च मा भूदिति च विचारयन् यदि च  
भाष्ये शुद्ध तिथि पत्रे धर्मशास्त्रातिरुमणस्या तदा परिशील्यत तदुपायान् ” इति वारं वारं  
नोपद्रेष्टव्यं भवद्भिः ।

अत्रहि सावधाना एव वयं, त्रियतेच संशोधनं तिथिपत्रस्य तदर्थं मे वा स्माभिराज्ञया  
श्रीमन्महायाज होलकर राज्ञे समर्पिष्ठानां प्रधान पदाधि रूढानां  
प्रस्तुत सभा की स्थापना श्रीमद्व्यापना साहेबाभिधाना मुतचोप प्रधान पदाधिष्ठिताना श्रीमंत  
का ११९९ नरदार किंवा साहेब महोदयानाम् ।

२. पूर्वन्तने काले ऽस्माभि रपि प्राचीन मिद्धान्तराख्यैर द्वित्रि वर्षेषु पचागानि  
सम्पादितानि किंचितैविगाणितेषु शिबिचन्द्र, गुरुशुक्ल दयाश्लादिषु  
प्रहणादिषुच दग्गुणिन निमराद दृष्ट्या, मोहमया पुण्य पत्तनेच जाना  
सु पंचांग गोधून्-समाप्तु चगत्या तत्रोपस्थित प्रस्तावातुमारेण निम्न  
लिखित संप्रत्ययेभ्यश्च मिद्धान्तोक्तान्मूलाकाख्यरीक्ष्य कालान्तरानुसारं बीज दत्ता तेषा मूलाकाना  
संशोधनं चास्माभि कृतम् ।

३. येषोप छन्दिरेश प्रमाण ज्योतिःशास्त्रस्येति मिद्धान्तित प्राचीनैर्नक्षत्रैश्च सर्वं  
ज्योतिःशास्त्र का मुख्य आधार ‘ वेप ’ हे  
अर्थोनिर्दिष्टि । ते प्रत्ययाथात्रलोकनेन बहवः भन्ति । तद्यथाहिनिम्यं  
प्रत्ययस्तु सूर्योदयास्त दिन प्रमाणःदिभिः भवत्येव । परान्त प्रत्ययस्तु  
सूर्यचन्द्रयोर्महण जगतीतले आगच्छ वृद्धे म्यो महान्प्रत्ययः उक्तं  
चेनाद्विषये प्राचीन ग्रंथेषु-

ताराग्रहयुतिः, भेदयुतिः, पिधानयुतिः, नक्षत्र योगकरणादीनां सूर्यचन्द्रोदयास्तान्तरेणोपपत्तिः, महापात योगः सूर्योदीनां ग्रहाणां छाया गणितागता, एते सप्रत्यया एव ।

४ यद्यपि भौग दीनां ग्रहाणां छाया दृग्गोचरा वेषसाधनेन विना न सम्भवति तथापि गोचर प्रकाशोक्त प्रकारेण तुरीय नलिकादियंत्रवेधेन यस्मिन्ममये वेध केने की रीतिशा और दृक्प्रत्यय सुपरिमध्ये ग्रहाभागच्छन्ति तत्समय सप्तादाग्रहाणसिद्धा छायापि स प्रत्यय । गुरुशुक्रादीनां लोप दर्शनाभ्यां, उदयास्ताभ्याम् नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च याम्योचर लघनेन, ताराग्रहान्तरादिभ्यश्च स प्रत्यया अवलोकिताः ।

५ इत्यादिभिः सप्रत्ययैः, ग्रथकारकालिक पञ्चाङ्गश्च निरूप्य-तत्काल भवेत् प्रत्ययैर्निश्चितस्य बीजसंस्कारस्य शुद्धता सूक्ष्मताचात्रलोकितः । तदुत्तर-निश्चितचित्तम् अन्तर दूर करने के लिये पात्र संस्कार किया जाता है।

६ यद्यपि सत्यनेके प्रसिद्धा प्राचीनैर्वाचीनैश्च विरचिता सिद्धान्ताः करणग्रन्थाश्च शाके १४४९ में 'ग्रहलाघव' किन्तु सम्प्रति कालान्तरेण ते च विश्रष्टा आसन् अतएव श्रीमता नामक ग्रन्थ अग्रे प्रयोग क गणेशदेवज्ञेन शाके १४४२ काले विरचित हि कालान्तर संस्कार अपेक्षा शुद्ध था रूप बीज तथा तत्काले दृग्गणित साम्यावर ग्रह दायन करणम् ।

७ अतएव तदुत्तर शाके १५५१ मिते वर्षे श्रीमता विश्वनाथ देवज्ञेन ग्रहलाघव साधित ग्रहणे विसर्वाद दृष्ट्युत्पत्तदुक्तम्, तेन— यातेऽन्ते ग्रहलाघवस्य धरणी १ क्षोणी १ क्षपेशो १ मिते सर्वाक्ष्य क्षणश करोष्ण करयो पर्याये पक्षाभितम् ॥ दोषान्तरप्रयुक्तान् शश्विन्दुशश्वृ सुगोद्वयान् भादिकान् दृष्टि प्रत्यय कारकान् गणित-विष्करी विश्वनाथो मुने— ॥ १ ॥ इति

८ एवं चावलोक्य शक्येत मस्माभिः । 'अथैष्वपि सिद्धा त प्रथेपु ग्रहवक्षास्वरूपस्य कल्पना र्थात्पेनैव दृग्गणित विसर्वाद प्रधान कारणम् । ग्रहवक्षासु दायितुल्लक्ष्णीषु सतीषु कथं वर्तुलोपन्यास सिद्धानि ग्रहस्थानानि दृक्तुल्यानि भवन्ति । एव सत्यपि प्राचीन सिद्धान्त ना गणितं नव्य सिद्धांतस्यः इत्युक्त्यापि दृक्प्रत्ययात् नेपाचारा शुद्धा एव आसन् । वार वार वेधद्वारा शुद्धस्यैव तदा व्यवहारम् ।

९ यथाचोक्त भगवत्तान्यासेन, सिद्धान्त देवज्ञ वामेनोच—

प्राचीनकाल में पञ्चांग 'दृक्प्रत्यय' से बनाये जाते थे लघने प्रमाण " पूर्वाधे सुत्तर गोलमाचित्राम धर्मादिशेत् ॥ चित्रान्तार्धे ग्रहप्रत्यय पश्चिमार्धे च दक्षिणम् ॥ १ ॥ पादोनास्तारका सप्त पाद इत्यत्र निश्चित ॥ सपादितारा द्वादस्य, राशिरित्याभि धायते ॥ २ ॥ रवेर्मध्यमतो हित्वादित्राण पाण्णमानम् ॥ "



एव मनूय “ दृष्ट नक्षत्र नाडिका ” इतिचोक्तम् इत्यादि वचनेभ्यःस्तदा चित्रानक्षत्रं क्रांति वृत्ते मध्यं प्रकल्प्य ते नैव राश्यादीनां नक्षत्राणां च समाने विभागे कृते सति प्रत्यक्षं नक्षत्रान्तरादिना ये ग्रहचाराः स्वाधिता स्तेतु शुद्धा एवस्युः ।

१० यद्यपि तेषां ग्रहाणां गणिते स्फुट ग्रहस्य यस्मिन्दिने गतेः परमाल्पत्वं विज्ञेया भावश्च स्यात्तस्मिन्दिने स्फुट ग्रहं पातो न रविमध्य ग्रहं च मध्य खगं प्रकल्प्य ते नैव मंद फलं, विक्षेपः, क्षीप्र फलं, चानीय तैः संस्कृते स्फुट ग्रहे यत्किंचिदपि स्यौल्यं स्यात्तत्तु मध्य खगे एव । स्फुट ग्रहस्य नक्षत्रे रेववेधानाक्षत्र मानेन तस्य शुद्धता स्यादेव ।

११ ततो वराह मिहिराक्त पौलिश सिद्धान्तीय ग्रहचारवत् प्रत्यक्ष वेधोपलब्धेनाहर्गणेन ग्रहसाधन पद्धतिर्यावच्च सौरादीनां च मानानामसदृशसदृश योग्या-योग्यत्वप्रतिपादन पटवः; सिद्धान्तभेदेऽप्ययन निवृत्तौ प्रत्यक्षं सम-मण्डल लेखा संप्रयोगा भ्युदिताश कानां छाया जल्यन्त्र, दृग्गणित साम्येन प्रतिपादन कुशलाः; ग्रहणादि स्पर्श-मोक्षकाल दिक्प्रमाण स्थिति ग्रहसमागम युद्धानामा देष्टारः; सावस्तरिकाश्चोक्त लक्षणा आसन्म । तावदेव ताकाल भवा ग्रहाणां चारा स्तदनुसारेण पंचांगानि च शुद्धान्येवासन्, तदातु वेध विना परोपदेशास्ता-वस्तरिके नक्षत्र सूचकत्वस्य दोष-प्रसङ्गात् ।

१२ किन्तु यदा प्रथमार्धभटेन शक ४२१ वर्षे ग्रह गणित सौकर्याय ( पंचमांशेन युगसंख्यया च दशभिश्च गुणितैर्भगणा ३६० शैः स्मृतिषु उक्तानि म-वन्तराणां ३६० ÷ ५ = ७२ युगानि युग १२००० × ३६० = ४३२०००० वर्षान्, कलियुगारंभ ३६० × १० = ३६०० - ४२१ = ३१७९ वर्षान्श्च प्रकल्प्य ) आर्वाचीनेषु सिद्धान्तग्रंथेषु तेन प्रथमः सिद्धान्त ग्रंथो रचितः । अतएवोक्तं ब्रह्मगुप्तेन—

“ नसमायुगमनुकल्पाः कल्पादिगतं कृत्वा दयातं च ॥ स्मृत्युक्तैरार्य भटोनातो जानाति मध्य गतिम् ॥ १-१० ॥ स्वयमेव नाम यत्कृतमार्धभटेन स्फुटं स्वगणितस्य ॥ सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसेवदति ॥ ४२ ॥ आर्य भट दूषणानां संख्यावक्तं नक्षत्रयते स्माभिः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोक्त मध्य रवि शशि तदुच्चतत्पारिधिभिः स्फुट्रीकरणम् ॥ इत्येवं स्पष्ट तिथिर्देर भ्राष्ट्रस्य तंत्रोक्तैः ॥ ( २-३१ ) इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते । एवं अन्य तंत्रोक्तगणितागतमानेषु ब्रह्मगुप्तेन व्यभिचारान्दृष्ट्वा उपर्युक्तानि दूषणानि दत्तानि एवमेव अन्य ग्रहो मध्य साराः स्वकीयेषु ग्रंथेषु किमपि विशेषता सम्प्राप्य आर्यभट प्रभृति गणेश देवज्ञान्ताः सिद्धान्तकाराः करणकाराश्च बभूवुः ।

१३ यद्यप्येते महविद्वांसो ज्योतिषाश्च निपुणाः नानाविध गणिन सिद्धांत प्रतिपादका-स्तथमाकार चमत्कृत दृष्ट्या आसन्नपि यदाऽऽश्रयायनांश ( शक २०८ ) काळ सामिध्यान्त्यलेषु त्रिषु पंचमं चायनांशेषु सम्भवति तदार्थभट, लल्ल, ब्रह्मगुप्तादिभिः मासगतिक ग्रह गति स्थितं चावलोक्य तद्वेध मिद मूलाकैः सायन ग्रहाणां गणितमेव नाक्षत्रमाने नैवा भाभिः कथितम् । अतएव पंच सिद्धांतिकायामुल्लिखितम्—

शुद्ध नाक्षत्र मानके परिमाणं						सायन भाग मिश्रितं मानं			
योग तारा नक्षत्र नाम	प्रीक नाम	भोग अंशादि	शर अंशादि	अष्टमांश विभागे	घराह मिहिर रुधिर	आर्यभट्ट (सूर्य-सिद्धांत)	ब्रह्मगुप्त	द्वितीयआर्य	सार्वभौम सिद्धांत
ठुलिका	इटावारी	० ३६-९	० ३-४-२	कला ५.६९	फगुंशान्ते	० ३९-८	० ३८-५८	० ३८-३३	० ३९-३
मेरिणी	आदिट्टयान्	४५-५७	६-५-२८	३.५७	चतुर्थीभि	४८-९	४८-११	४७-३३	४८-९
पुनर्वसु	प्रभा	९२-०	६-१५-५१	७.२०	अष्टमेश	९२-५२	९२-५२	९२-५३	९२-५३
मृगशिरा	रेगुलस	१२६-०	७-०-२८	३.६	अष्टार्ध	१२९-०	१२९-०	१२९-०	१२९-०
मिथुन	स्पायका	१८०-०	६-२-३	४.०	अष्टाष्टम भागे	१८०-४८	१८३-४९	१८२-५३	१८३-५०

उपपुस्तकतः शुद्ध नाक्षत्र परिमाणेषु सायन भाग मिश्रितं प्रमाण चाशीभिः ब्रह्मगुप्तादिभिः स स्व ग्रहेषु लिखितम् ।

१४ अत्र तु प्रचलित सूर्यसिद्धान्तोक्तानिमानान्येव आर्यभटीय पंक्तौ लिखितानि तद्विषये डॉ. केर्न रचिताया आर्यभटीय ग्रंथस्य प्रस्तावनायाम्—  
 ‘सूर्यसिद्धान्त’ यवन निर्मित नहीं है। यह आर्यभट्ट की ही रचना है। “सिद्धान्तपंचकविधावपि दृग्विरुद्धमौल्योपरागमुखखेचर— चार कल्पौ ॥ सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यम्भवत् कलैतु भूगोल-वित् कुलप आर्यभटाभिधानः ॥ १ ॥ ( भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ १९८ प्रेक्ष्यम् ) इति लिखितम् तस्मिन् ग्रंथेऽपि—

१५ “आर्यभट्टो निगदति कुसुम पुरेऽभ्यर्जितं ज्ञानम् ।” इत्थं मुक्तमत आर्यभट्टे नैव प्रचलित सूर्य सिद्धान्तो रचित इति ज्योतिर्विकेतकर महोदयेन स्वरचितप्रहगणिते ज्यो-  
 दिक्षितेन भारतीय ज्योतिःशास्त्रेतिहासे च (पृष्ठ १५५) प्रतिपादितम् । इत्यतोद्वयोर्मान्य भिन्नं वात् एकत्रैव पठिताः ।

१६ एवमेव उच्चपात स्थानेषु, परमफल, मंदकर्ण, परमक्रान्त्यादिषु च अंतरं वर्तते ।  
 उच्चपात का अन्वेषण स्वल्पान्तराभिहितानि तथापि उच्च पातादीनां यथार्थं गते रज्ञानात् -  
 सिद्धान्तकारोने किया है । स्वल्पेनैव कालेन एतेषां ग्रंथेषु अंतरं पतितम् । अतएव भूयोभूयो  
 ग्रंथाश्च रचिताः तेषां नामानि—

१७ सिद्धान्त ज्योतिष ग्रंथाः—

प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के नाम.	१ ब्रह्मसिद्धांत	६ मनुसिद्धांत	११ पुलस्त्यसिद्धांत	१६ व्यवनीतसिद्धांत
	२ मरीचि ,,	७ अगिरा ,,	१२ वसिष्ठ ,,	१७ गरग ,,
	३ नाद ,,	८ बृहस्पति ,,	१३ पराशर ,,	१८ पुलिश ,,
	४ कश्यप ,,	९ अत्रि ,,	१४ व्यास ,,	१९ लोमश ,,
	५ सूर्य ,,	१० शोम ,,	१५ भृगु ,,	२० यवन ,,

यद्यपि एषा कर्तारो आधुनिक ज्योतिष्काराः किंच इमे सर्वे ग्रंथा आर्षा शुद्ध एवासन् किंच वर्तमान काले एतन्नामका ग्रंथाये उपलभ्यन्ते ते तु शक ४२१ वर्षकालादुर्वाचिनैर्ज्योतिर्विद्भिः  
 कृतान्ति न तु ऋषि प्रणीताः—

१ “ब्रह्मोक्त प्रहगणित महता कालेन यत्खलि भूतं ॥  
 ऋषि प्रणीत ग्रंथो के आधार पर सिद्धांतकारोने उन के ही नामपर ग्रंथ की रचना की है. इसलिये ये आर्यग्रंथ नहीं है ।

अभिधीयते स्फुटं तत् जिष्णु सुत ब्रह्मगुप्तेन ॥ ”

— ब्रह्मसिद्धान्त १-२

“लाग्रासूर्य शशाको मध्याविदूच चन्द्रपातोच ॥

कुज बुध शीघ्र ब्रह्मस्पति सित शीघ्र शनैश्चरान् मध्यान् ॥ ४८ ॥

युगपात वर्ष भगणान् वासिष्ठान् विजयमर्दि कृतपादान् ।  
 मंदोच्च पण्डिपात स्पष्टीकरणायमार्यभटात् ॥ ४९ ॥  
 श्रीपेणेन गृहीत्वा रत्नोच्चय रोमक कृतकन्या ॥  
 एतान्येन गृहीत्वा वासिष्ठो विष्णु च्द्रेण ॥ ५० ॥ ”

-- वसिष्ठ सिद्धान्त अ. ११

“ यस्मान्नरोमके ते स्मृति बाह्यो रोमकस्तस्मात् ॥ १३ ॥  
 तद्युगवधो महायुग मुक्तं श्रीपेण विष्णु चन्द्राद्यैः ॥ ”

-- ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त अ. ११ ५९

“ मेपादितः प्रवृत्तानार्यभटस्य स्फुटा युगस्यादौ ॥ श्रीपेणस्य कुजाद्याः ”

- ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त २-४६

“ इत्य माणुष्य सक्षेपात्-उक्त शाम्भ मयोदितम् ॥  
 विस्तृतिर्विष्णु चन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे ॥ ”

-- वसिष्ठ सिद्धान्त

“ आर्यभटस्याज्ञानान्मध्यम मन्दोच्च शीघ्र परिधिनाम् ॥ नस्पष्टा भौमाद्याः ”

- ब्रह्म सिद्धान्त ३-२३

१८ इसलं खडन प्रतिखडनद्वारेण रत्रिशेष मय रचयितृणा प्रमाणानि । इमेण  
 आर्यमंधान् दूर निश्रयान्, ग्लिष्ठभूतान्, अस्फुटानुक्तं वा तेषा मुक्तामूलानाननुसन्धेय तेषामेव  
 नामयुक्त सिद्धान्त मय सम्पादयितृणाम् आर्यत्वं वा आर्यमंधलोपकृत्यम, आर्यत्वं वा अनार्यत्वं  
 भवति इति भवद्विरेव ऊचम् ।

१९ एवमेव यथा मूर्धसिद्धान्ते ( आनदाश्रम पुस्तके अधिकारे ७, श्लोक ६९ ), (मुद्रित

पुस्तके अ. १ श्लोक ६९ )

प्रचलित मूर्ध सिद्धान्त  
 यवनाचार्य का बनाया  
 हुआ है. ऐसा प्रमाण

“ न मे तेजमह कश्चिदाग्यानु नास्तिम क्षण. ॥  
 मदग पुष्पेयन्ते नि शेष कथयिष्यति ॥ ६ ॥  
 तस्म त् एव एता पुष्पे गच्छ तत्र ज्ञान ददामि ॥  
 रोमके नगरे ब्रह्मण पान् गच्छ एतार पृथक् ॥ ७ ॥

इ त्रुत्वातर्द्धे देव. ॥ ८ ॥

नाम्नमाय तदेवद ययुर्वाह मास्तर ॥

युगाना परिचर्तेन काभेदोऽत्र मेवम् ॥ ९ ॥

इति कथनेन साप्रतिस्मूर्यसिद्धान्तो म्लेच्छप्रणीतशास्त्राधारेण मयासुरनामेन आर्यभटेन कुसुमपुरे रचित इति श्रीमत्केतकरोक्तिः पूर्वमेव लिपि कृता । इत्यतोऽप्य तथैव यवन सिद्धान्तस्य, यवनाचार्यस्यच किमन्तर्यत्वं न स्यात् ? तथाच —

“ अष्टाविंशानुगाद्यस्माद्यातमेतत्कृतं युगम् ॥ अस्मिन्कृत युगस्यान्ते सर्वे मय्यगता स्पृहाः ॥”

सूर्यसिद्धान्त १. २३, ५७

कृतयुगान्ते अनेन स्वग्रन्थ निर्माण काळो दर्शितः । तदुत्तर तदुक्त गणनया वर्तमाने

शक १८५१ काळे त्रेता द्वापरोच गतौ तथाच कलि वर्षाः

२१,६५,०३० व्यतीताः स्युरितिस्मृत् तदा तस्मिन्नेव ग्रंथे—

“ परमाप्रकृत उयातु सप्तसन्ध गुणेन्दवः १३९७ ” इति कथनेन

परमक्रांति २३१५८१३१ गणितेन निश्चयते । अस्या ४७६

विरुलात्मिका ऋण वर्ष गति तस्मात् शक पूर्व २१४७ वर्षे परम

क्रांते रक्तमानमासीत् । लङ्गोदयामवो लङ्गशाश्व ग्रंथोक्ता आसन् ।

इत्यत एव विगतिलक्षपंचपष्टिसहस्रादे गत काश्य मिथ्यात्वं भवत्येव ।

यो वराह मिहिर प्रोक्तोऽर्क सिद्धान्त स तु प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथो भिन्नस्तस्य भगणा कुदिनानिच भिन्नत्वात् इत्यतो वराह मिहिर शक ४९७ काळदपि माप्रतिक सूर्यसिद्धान्तस्य प्राचीनत्वं नोपयते तस्य वराहेण नामनिर्देशस्याप्यनुक्तत्वात् ॥

२० किंच रामक सिद्धान्तः श्रीपेणकृतः । वमिष्ठ सिद्धान्तो विष्णुचन्द्रकृतः । प्रथम

ब्रह्मसिद्धान्तः गारुड्येन, आर्यसिद्धान्त आर्यभटेन, पराशर सिद्धान्तो

द्वितीयेन आर्यभटेन रचितः । एवमेव सर्वेष्वपि सिद्धान्त नामका

ग्रंथाः । प्राचीनार्णवे ग्रंथस्थानेषु तन्मानानुसर्चैव नव्यैः पंडितैर्निर्मिताः

सतिनतु ऋषिभिः प्रणीताः ।

२१ ननु ‘श्रुमा विद्यामाददीता वषट्पि’ ‘विविधानिच शिल्लानि समा देवानि सर्वतः ॥

अत्राहणादध्यनमापन्काले विधीयते’ इति मनुक्तवत् म्हेच्छाहि

ययनास्तेषु सम्यक् शास्त्र भेदस्थितम् ॥ ऋषिरस्तेषु पूज्यन्ते कि

पुनर्देव विद्वजः ॥ १ ॥

उक्त मंत्राणोक्ते यह आर्य-  
मय नही है.

—बृहत्संहिता २-१४

इति वराहोक्त व म्लेच्छा अपि ऋषिवत्पूज्यन्ते तदा तन्निर्मित प्रधानायातेया ग्रंथाधारान्निर्मिताना ग्रंथाणा आर्यव स्यादिति चेन्न कैमुतिकत्वात्सम्यक् शास्त्रस्यापाराच यदा सम्यक्छात्रं स्यात्तदैवविषयज्ञत्वं म्यादित्युक्तेः

२२ एतेषां शास्त्रस्या सम्यक्त्व श्रीमता केशव देवज्ञेनैव शक १४१८ काले ग्रहकौतुके  
 केशव देवज्ञेन वेधद्वारा "ब्राह्मार्थभट्ट सौराद्येष्वपि ग्रह करणेषु सुध शुक्रयोर्महदन्तर  
 इनके गणितमें कहा २ अकतया दृश्यते । मंद आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेस्तेच पचभागा  
 कितना अंतर है यह अधिकाः इति प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते । एव क्षेपेष्वन्तरं १५ भोगेष्वपि  
 यतया है अंतरमस्ति । एवं बहुकाले बहन्तरं भविष्यति । यतो ब्राह्मार्थेष्वपि  
 भगणानां सायनादीनाञ्च बहन्तरं दृश्यते । एव बहुकाले बहन्तरं भवत्येव । एवं बहन्तरे जाते  
 सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभिर्निर्यमान घटनामत्रोक्त्य न्यून'अधिक भगणाद्यैर्ग्रह  
 गणितानि कार्याणि यद्वातःकाल क्षेपकं वर्ग भागान् प्रकल्प लघुकरणानि कार्याणि । एव मया  
 परम फल स्थाने चन्द्रग्रहणतिथ्यन्ताद्विदोमरिधिना मध्यमध्वन्त्रोज्ञात तत्र फल न्हास वृद्धच  
 भायात् '.... तत्र चन्द्र, सूर्य पक्षात् पच कलोनो दृष्टः । उच्च ब्रह्म पक्षाभित । सूर्यः सर्व  
 पक्षे पीपदन्तरः ससौरोगृहितः । .... शनि' पक्षत्रयापञ्च भागाधिका दृष्टः ।"

इत्युक्तम्

२३ एव मेव तत्पुणेण श्रीमता गणेश देवज्ञेन शक १४४१ काले ग्रह लाघवे—  
 गणेश देवज्ञेन वेध- "ब्रह्माचर्यं वसिष्ठ कश्यप मुख्यस्त्वैष्टकर्मोदितं तत्तत्कालज मेघ  
 द्वारा लघेपुन शुद्धकिया है. तथ्य मथतद्भूरी क्षणे भू-रूलथम् ॥ प्रापातोय मयानुरः कृतपुगान्ते-  
 कर्तपुण्ड तोपितात् तच्चारितिसम कलौतु सान्तर मथाभूवात्र  
 पाराशरम् ॥ १ ॥ तज्ज्ञात्वायभट्ट खिलंवद्वृत्तिषे कले करोत्स्फुट तस्मस्त किल दुर्ग सिंह  
 मिहिराद्यैस्तन्निरुद्ध १पुटम् ॥ तच्चाभूच्छिथिले तु जिष्णु तनये नाकारि वेधाःस्फुट ब्रह्मोवत्याश्रित  
 मे तदप्यथ बहौ काले भवत सान्तरम् ॥ २ ॥ श्रीकेशव स्फुट तर कृतवाप्ति सौरार्थासन  
 मे तदपि पष्टि मिते गताये ॥ दृष्ट्वाश्च विमपि तत्तनयोगेश स्पष्ट यथा द्युत  
 रगणितैक्य मत्र ॥ ३ ॥ इति ब्रह्म सिद्धान्तादारभ्य स्पष्टिपु — केशव देवज्ञ पर्यन्त कृत  
 ग्रंथेषु अन्तर पतितभि युक्त्वा स्वकीय वर्तमान कालेऽपि न्यातिर्विद्वानुदित्य—

"कथमपि यदि द के द्विषाकाले रुधे स्य न्युद्धरपि परिलक्ष्ये दु ग्रहादृक्ष योगात् ॥

सदमल गुरु तुल्य प्राप्त बोध प्रशसि कथित मदुप पत्य शुद्धि चेद्रे प्रचाल्ये ॥ ६॥ "

इत्युक्तम्

२४ अस्मात् धीमता गणेश देवज्ञेन आ म ग्रथ विषयक यद्वाग्विषय तत्पुन मेव तर्कित  
 तत्प्रतीति कालः सप्र युपरित्यक्त ॥ ग्रह ल'य काठे चन्द्र मन्द  
 भविष्य मे इधे चालन देकर शुद्ध करेन जेय  
 ऐसा इधे गणेश देवज्ञ ने प्रमिता उपरिथता अतचन्द्र ग्रहणागमे स्पर्शादय कागः कदा कदा  
 कहा है । गणेश देवज्ञ के सार्ध घटिका प्रमाण व्यभिचरन्ति । मौमादि ग्रहणा गणित मितोऽपि  
 का १०९ वर्ष हो सा तर स्पष्ट जातम् । सिद्धान्त ग्रन्थेष्वपि ग्रहणा भगणा कुदिनानिच  
 गये इधे इधे चालन देवा चाहिये । उच्च मभिभिम्भन्न निति । यदा पात्र नये मध्ये एव गणेश देवज्ञेन  
 स्पष्टिपुर्गणने अन्तर कथित नदाय ग्रहलाघवात् ४०९ वर्षा व्यतीना

अतएव ग्रह गणितान्तर्गत महान्तं त्रिसंख्य विज्ञानन्तोपि वयं यावन्मूकभाव मुरारीकुर्मः तावत्प्रशोधन दौर्बल्य दोष भाजना एव स्वभवेयुः यस्म ।

२५ इदमेव भविष्यं शक १०७० मध्ये श्रीमद्भास्कराचार्या अपि—“ यदापुनर्महता कालेन महदन्तर भविष्यति तदा पुनर्महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तादीना समान धर्माण एकोत्पत्स्यन्ते ते तदुपलब्ध सारणी गति मुरारी कृत्य शास्त्राणि करिष्यति । ” इति सिद्धात शिरोमणिगोलाध्याय वासनाया ( पृष्ठ २९८ ) जगद्गुरुः । इत्यत एव साम्प्रतिके ज्योतिःशास्त्र धौरेयै भारतीयानां पचागानां शोधन कार्य आरम्भ । तदर्थं मेव चतुः पंच परिपदश्च मोहमय्या पुण्य पत्तनादिपुत्र अभूवन् । तामु सर्वथापि सन्तस्तु दृग्गणित साम्यं पंचागं करणीय मिति प्रस्तावः सर्वे सदस्यै रेक मया स्वीकृतश्चासीत् ।

२६ अतोनास्त्यत्र विवादो दृग्गणित शुद्ध पचाग करणे कस्यापि त-कारणज्ञस्य पुरुषस्य इति । यद्यपि त्रिषोऽस्तो आपतित सर्वैः पचाग कौर व बुद्धस्तथापि अज्ञात शास्त्रीय गणितानामनात्रातार्थ वचन गन्धाना भेदं प्रहला-धन, तिथि चिन्तामण्यादि कोष्ठकै पचाग रचयितृणा वैतण्ड्यम् अत्र आर्य वचन लोप पूर्वापरपरंपरागतपचागगणितपद्धत्या लोप इति । परमिदं नैव साधु । न खलु श्रेयस्करं प्रहलाधवाचनुमरणं भारतीयानां धर्मे व्यवहारे वेति भिद्वेऽपि पुनस्तथैव स्थूल गणितस्य पचाग क्रमणम् । शके १८०६ चैत्र शुक्ल १५ या प्रहलाधगीयपचागेष्वनुक्त चद्रग्रहणं प्रस्तोदितमामीत्येवाद्यैव वर्तमान वर्षे गत कार्तिक कृष्ण २० प्रहलाधन गणितेन सूर्यग्रहणे सत्यपि नात्रिक पचागादि भिरनददशो नस्यादिति त्रिभूषण दृग्गणित विसत्राद भयात् पचागपुनोक्तम् । प्राचीनेषु पचागेषु गणितागत व्यतिपात वैधृतिपातादीनामारंभ समाप्ति कालौ ग्रहाणां सुतयः स्पष्ट ग्रहक्रान्त्या-दीना निर्देश आसीत् । तदपि दृग्गणित त्रिसंख्यदातृवृत्त गणकैर्बाहिष्कृतमिति मे भाति ।

२७ किंच शुद्ध पंचाग प्रचारस्थोऽयमे श्री काशी क्षेत्र महामहोपाध्यायैः श्री बापूदेव शास्त्रिभिः नाटिकल आत्मनाक नामक वैदेशिक पचागानुसारेणैव शक १७९७ १८१२ वर्षेषु पंचागा प्रकाशिता अभूवन् । पुण्यपत्तनेच-प्रोफेसर केरो लक्ष्मण छत्रे महोदयेन शुद्धनाक्षत्र मानान् २१५८११ न्यूने आरंभ स्याने झीटाविनियम तारकां परिकल्प्य “ प्रहसाधनाची कोष्टकं ” नामको दृष्टव्यवाहमेष्टो महाराष्ट्रभाषायां अग्रेष्ठ गणितानुसारेण रचितः तदनुसारी पटवर्धन पंचागच प्रकाशितमस्मिन् ।

२८ उत्तम पंचांग शोधन महासभायां पुण्यपत्तने च तत्समाख्येण श्रीमता लोकमान्य तिलक महोदयेन शक १८४०-४१ मध्ये इषदन्तरेणासिद्धान् २३ अयनाशान् प्रकलय तदनुसारी शास्त्र शुद्ध तिलक पंचांग प्रकाशितम् किंच एतस्य स्वर्गारोहणोत्तरं पूर्वोक्ति पटवर्द्धनी पंचांगेन, तिलक पंचांगस्वरूपं धारितं तदुपयनाशा (३११८.१) स्तरमन्तरा शुद्धमेव।

२९ किंच विद्यमान ज्योतिषाचार्येण श्रीमता वैकटेश बापूजी केतकर महोदयेन ज्योति-  
गणितानीन् प्रधानं विरच्य केतकी नामक शुद्ध गणित पंचांग तदनु-  
सारि गणित-साधित मोहमय्या वैकटेश्वर मुद्रणालये प्रकाश्यते।  
महाराष्ट्रीय पंचांग मंडल में सभी पक्ष के सभासदों ने इस गणित से पंचांग तथैव पुण्यपत्तने चित्रशाला पंचांग च। तदा अस्माभि रपि सूक्ष्म बगाना स्वीकृत किया। गणितानुसारी प्रभाकर नामक पंचांग शके १८४२ मध्ये विरच्य प्रकाशितम्। तस्मिन् भारतीय पंचदश नगराणा दिनमान रच्युदयास्तौ गुरुसितयोर्लोप दर्शनै ग्रहणस्य सार्वदेशिक कालश्च प्रदर्शित आसीत्। अतस्तस्य शुद्धता सूक्ष्मताचाजलोक्य पंचांग शोधन समाख्येण, श्रीमतालोकमान्य तिलकेन, उपाध्यक्षेण प्रोफेसर विश्वनाथ बळवंत नाईक महोदयेन, जगद्गुरुणा श्रीमता\* कुर्तकोटी शंकराचार्य महोदयेन, अन्यैश्च गणितज्ञै प्रोफेसरोः राज्य ज्योतिषिकैर्योग्य. स्वस्वाभिप्रायोदत्तः। एव सत्यपि शुद्ध गणित साधित पंचांगेषु भिन्नानां सद्भावात् द्विजन्त स्वदेशे तेन अभिमासादिषु द्वैविध्यमलोक्य अयनाश निर्णयार्थं पंचांगैक्यमण्डल सभा पुण्यपत्तने (शके १८४८) मध्ये स जाता। तस्या सदस्याधिकारेणाभिनिर्णयोदत्तस्तदा तदध्यक्षेण -तत्स्वीकृतत्वा तदनुसारी पंचांगैक्यमण्डल पंचांगं ततो व्यापिहि प्रकाश्यते प्रतिवर्षम्।

३० किंच अस्मिन् सदसि बहुभिर्ज्योतिर्विद्भि रित्यमुक्तम्। “यावच्च सूर्यादि सिद्धांतो-  
क्तं भगवद्भिरनादिगनेषु बीजं दत्तं, शुद्धभगवत्सु सिद्धातप्रयोगेन-  
विरच्यते तत्तदनुसारी कारणानामसम्भवात् येन केनापि मानेन संप्रति गृहसाधन कण्टकादिभिः सूर्य साग्ने, भिन्न २ करणागत मानेभ्यः व्यायकार्तरमपि भिन्नत्वादनाशभिन्ना एवसु अतोयावद्यायनासत्य भिन्नत्वात्पंचांगमानेभ्योपि द्वैविध्यं भाव्यमेव,” इत्यादि कारणैर्वैत-  
मान काले सिद्धात ग्रहस्यावस्यकता वर्तत इति विमृश्य नव्य प्रधानाचीनान् ग्रथाधारलोक्य यत्र कल्पादिप्रधानयनं स सिद्धान्तः। यत्र युगादि ग्रह नयनं तत् तत्रम् यत्र शकः र्पाद्ग्रहानयनं तत्तत्करणम् इति पृथक् ३ संज्ञित ग्रथान् मानूनं पर्यालोच्य भुवि स्मृति पुराणानां धार्मिकान् प्रधानाधारेण प्राचीनैतिहासिक काल तेषां (वेदकाल निर्णयस्ये प्रथे\*) निश्चय

\* अथैव द्वित्रि वर्ष पूर्व काले “वेदकाल निर्णयस्ये प्रथे” मया रचितः। नव्य पूर्वार्धभागोऽथैव इदंपुरे श्रीमन्महात्म्य शंकराचार्यस्य विद्वत्पुत्राणां महोदयता साधारणं श्रीनव्यभारत हिन्दो साहित्यसभायाश्च व्ययेणाद्य मुद्रित आशीनं यत्तु ज्ञापयैत कल्पेन शीतार्थं भाग संपूर्णः, प्रकाशितो मयिपत्तीयाचार्यमदे।



तदुक्तेषु तिथ्यादि मानैः तथैव प्राचीन नामकेषु ग्रंथेषु प्रकाशितैर्दानपत्र, मानपत्र, शिलालेख प्रमाणमुद्दिष्टमिदं प्रकाशिते ज्योतिःशास्त्रायमाने कालान्तरजन्यान्तरगणितेन ग्रहाणां मध्यम गतिं, उच्चपातस्थाने, तयोर्गतिच फलं, केन्द्रच्युतिं, शरं मन्दकर्णादिमानानि क्षिप्य “सिद्धन्त प्रभाकराख्यो ग्रंथोऽस्मात्प्राचुरितः” तदुक्तमानानां संप्रत्ययावलोकनार्थं शक (१८४५ १९४५) कालस्य शतवार्षिकान् पञ्चांगान् विरच्य तेस्य एव एतावत्कालपर्यन्तं ग्रहणोदयास्तादयः संप्रत्ययास्माभिर्निश्चिताः । तेतु अस्मभ्यं शास्त्रोक्तं शुद्ध मानस्य दर्शका अभूवन् स्म यथावत्च यथा काले घटमानत्वात् ।

३१ अनेनैव सिद्धांत प्रमाकर ग्रंथाधारेण अत्रत्य श्रीमन्महाराजाश्रित ज्योतिष तीर्थेन

श्रीमता नीलकंठ मंगलजी पंडितेन ( शक १८५२ ) अग्रिम धर्मस्य उसीके आधारपर बनाई हुई सारणी से ज्यो नीलकंठ ने शक १८५२ का 'यशवत' पंचांग नामक पंचांग दृश्य गणित का बनाया है ।

३२ ननु आस्ता तावन्नव्य गणितस्य, प्रमाकर सिद्धांतस्य तदनुसारि पंचांगस्य शुद्धता

सूक्ष्मता वा किंच सास्माकमनुपयुक्तत्वात्प्राप्त्या एव भौतस्मार्त वैदिक कालमें दृश्य पंचांग से यज्ञादि किंच जाते थे । काले यथा स्थौल्येनैव मानेन यज्ञश्राद्ध व्रतोपवासादयोऽभयन् तथैवाद्य क्रियाः स्थूलमानेनैव करणीया इति चेन्न । तस्मिन् श्रीतस्मार्तकाले शुद्ध दृक्प्रत्ययस्यैव व्यवहारात् । नहि तदा ज्योतिष तत्त्वानां ज्ञानं न जातमिति वाच्यम् । तस्मिन्काले ज्योतिषा प्रत्यक्ष दर्शनेनैव यज्ञकर्म प्रवृत्तेः । यथाचोक्तं वेदांग ज्योतिषे “वेदाहि यज्ञार्थमभि प्रवृत्ताः कालानुपूर्वाऽभिहिताश्च यज्ञाः ॥ तस्मादिदं काल विधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद सवेद \*वेदान् ॥ १ ॥”

— वेदांग ज्योतिष यज्ञः पाठ १.

इति यज्ञार्थं वेदानां प्रवृत्तिः । कालमापनार्थं यज्ञानांत्यतो हि कालानुपूर्वीय यज्ञ करणेन यथार्थ कालज्ञानं स्यादित्युक्तम् ।

३३ तयाचोक्तं तत्रैव ( वेदांग ज्योतिषे ) “चतुर्दशीमुपवसयस्तथाभवेद्ययोर्दिनोदिन-

मुपैचिंद्रमाः ॥ माघशुक्लाह्निकीयुक्तेष्वभिष्टायांचरार्पिणीम् ॥ १४ ॥

प्रत्यक्ष में चंद्र स्थितिसे इत्यस्मिन्पाठे उपवसयत् यज्ञात् एव संक्रमरारंभ कालो दर्शितः ॥ तत्काल निश्चयस्तु प्रत्यक्षं चंद्रे दृश्य दर्शनेन ॥ इत्यत एवोक्तं पारस्कर गृह्यसूत्रमाभ्यारभे श्रीमता ककार्चार्येण “प्रत्यक्षाहिभुगवः भौतेषु प्रयन्ततेस्मार्तपुच स्मरणादिति ॥” तेन सर्वं श्रौतग्रंथास्त स्मार्तिका ज्योतिष ग्रंथा एतेन वेदकाण्डनिर्णयोच्यते मते प्रतिपादितमस्माभिः ।

३४ सुपर्णचितिस्तु वैदिक कालिक पचागम् । तेनैव तिथि नक्षत्रादिनामान रात्रिमान

सुहूर्त करणादीना बोधो भवति । तत्साधनं तु शथपथत्र ह्यस्य  
वैदिक कालमें 'सुपर्णचिति' तृतीयैकाडे निरूपित । अतएव रामबाजपेयेन वेदस्य यथार्थः कथ  
नामक पचांग बनाया जाता न भवति इत्यस्य कारणानि उक्तानि—  
या इसका अन्वेषण हमने किया है ।

“काश्चिन्वेदगणितयदिनेतिशुल्च शुल्च न वेद यदिवेत्यपरोककलतिम् ॥  
विद्वान्द्वय न त्रिधागमपद्धितोन्यस्तज्ज्ञानानपि सुपर्णचितो-  
पटुक. ॥ १ ॥ इति गणितं, शुल्च, त्रिधागमज्ञानं सुपर्णचितिरिति वैदिक मन्त्राणा अर्थ  
साधनेषु कारणानि एषु एकस्माप्यज्ञानात् मत्र कर्तुर्धनक्षितार्थो न ज्ञायतेत्युक्तम् ।

३५ अतएव वैदिक ग्रंथेषु नक्षत्र तिथ्यादीना यौगिकार्थयुक्ताएव शब्दा कथिता.

यथाहि—

वैदिक कालमें नक्षत्रोंको “सलिलवाइदमन्तरासीत् । यदतरन् । तत्तारकाणातारकत्वम् ।  
देखकर कालमान किया यावाइहयजते अमुंलोक नक्षत्रेतरक्षत्राणानक्षत्रत्वम् । देवगृहा वै  
जाता था । नक्षत्राणि यथेधेद । गृह्यतमरति । यानिवाइमानिपृथिव्याधित्राणि ।

तानि नक्षत्राणि तस्मादक्षीलनामध्वरे । नाम्न्यजयजेत । यथा पापाहे कुरुते तादृगेवतत् ।  
प्रवाह्यत्रा अपेक्षत्रण्यातेषु ॥ तपामिद्र ( चित्रानक्षत्र देवता ) क्षत्राण्या दत्त नवा इमानि  
क्षत्राण्य भूतनितितनक्षत्राणा नक्षत्रत्वम् । ” ( ते. ब्रा. १-५-२ तथा २७ १८-३ ) “ यो वै  
नक्षत्रिर्ष प्रजापतिं वेद नभयोनेनेकेयार्तिदु हत एरास्य हस्त चित्राक्षिरः निष्प्या हृदय  
उरु विशाखे प्रतिष्ठानुराका एष व नक्षत्र प्रजापति ॥ ” ( ते. ब्रा. १-५ २२ )  
इति नक्षत्र विषये उक्तम् । एतादृशेषु नक्षत्रेषु चद्रम स्थत्यादिना नक्षत्रस्य निक्षेप-  
प्रत्यक्ष संपद्यते ।

३६ तिथि शब्दस्तु तनोवे द्वातो निष्पन्नः । तनोति विस्तारयति क्षीयमाणा वर्द्धमाना

सूर्य और चन्द्रा की  
प्रत्यक्ष में देखकर तिथि  
घाघन की जाती थी ।  
या चन्द्रकला मेका ये कात्रिशेष मातिपि सोमोत्पत्तो वृद्धि क्षयो  
पतापेचदश कात्राभिर्धिशिष्या काठ विभागा स्थिति विशेष ।  
प्रतिपदुपक्रम्य अमान्ता पार्थिमान्ताध्वगटिता । अतो उर  
मूर्यमण्डलग्य-अधः प्रदेशततो क्षीयमानो चन्द्र । ऊर्य प्रदेश  
वर्ती मन्दगामी सूर्य । तथासति तयार्गत विषेय वरादर्शे चन्द्रमण्डलग्नू मनमिहिक  
सूर्य मण्डल स्थाया भाग व्यसन्धित भवति । तदा मूर्यममभि मयन्नेन मिभूताचन्द्र  
मण्डल मीपदपि न दृश्यतेन उपागत काठ सूर्य चन्द्रगत्या विभि सून दशा प्राप्ति याति ।  
तत्र यदा द्वादशभिरो मूर्यमण्डल ग टते तदा चन्द्रस्यापि पचदशमुत्तुक्त भागेषु प्रथम  
भागो दर्शन योग्यो भवति, नोय भाग प्रातःचन्द्रन प्रथमकालेभिधीयते । तत्तु उरु दृश्य  
मिहित्वा त्रिसप्तममिह काठभागेषु प्रथमकाठ निषत्तिपमिह । काठ. प्रनिपत्तिविभवाते ।

३७ एतद् द्वितीयोऽपि तिथिष्ववगतव्यमिति । तदेतद्विष्णु धर्मोत्तरे स्पष्टमभिहितम्—

सूर्यं चन्द्र के १२ अंशो  
का अत्र दृश्य होन पर  
एक तिथि होता है ।

“ चन्द्रार्कं गत्या कालस्य परिच्छेदो यदा भवेत् ॥

तदातयोः प्रवक्ष्यामि गतिमाश्रित्य निर्णयम् ॥ १ ॥

भगणेन समप्रेण ज्ञेया द्वादश राशयः ॥

त्रिंशोऽंशश्च तथाराशे भोग इत्यभिधीयते ॥ २ ॥

आदित्याद्विप्रकृष्टं स्तु भाग द्वादशक यदा ॥

चन्द्रमा स्याच्चदराम तिथि रित्यभिधीयते ॥ ३ ॥ इति ”

— “ पुरुषार्थ चिन्तामणौ तिथि निर्णयप्रकरणे उक्तम् ”

सेय द्वादशभिर्मगै सूर्यमुल्लिखिततृती प्रथमा चन्द्रकला श्रृंगद्वयोः पेटा सूक्ष्मेखाशारा शौक्यमीपदुपयाति । उत्तरोत्तर दिनेषु सूर्यमण्डल-विप्रकर्ष-तारतम्यानुसारेण शौक्यमुपचीयते मेचरूपमथचीयते । अनेनैव रीत्या मन्त्रिकरूप तारतम्येन मेचरूपमुपचीयते तदनुसारेण शौक्यं चापचीयते ।

३८ अतएव पूर्वोक्त काल विषये उक्तं हि गोभिडेन—

अमावास्या और पौर्णिमा  
दृश्य गते से निश्चित की  
जाती या

“ यः परमो विप्रकर्षः सूर्या चन्द्रमसोः सा पौर्णमासी यः परः संनिकर्षः

सामावास्येति ॥ १ ॥ ( पुरुषार्थ चिन्तामणौ तिथि निर्णये गोभिडः )

तथाचोक्तं शतपथ ब्राह्मणे ( १.४.१.९ ) चन्द्रशौक्य विषये— “ सूर्यस्ये

वाहिचन्द्रमसोरश्मयः ” इति ॥ अमावास्या विषये— यदा मावास्या वृत्रोय-

चन्द्रमाः सपन्नेय एतां रात्रौ न पुरस्तान्नश्चादृशे ” [ श. ब्रा. १-१-३-१३ ] इति— पौर्णमासी

विषये— “ यत्पौर्णमस्य विदूरमित्रोदितोऽथैतमेतां रात्रिं उपैत व्याघ्रतलेन [ १.५.३.१३ ] इति.

३९ एभिः प्रमाणैः सूर्याचन्द्रमसोः स्थितिमतश्च प्रत्यक्ष सप्रेक्ष्येन तस्मात् तिथ्यादीनां

निर्णयः कार्य इति सिद्ध्यते । अतएव श्रौतसूत्रेषु दर्शभागेन अमावास्यायाः । पौर्णमास्येन

पौर्णिमायाः । सोमयागेन सर्वासां तिथीनां निश्चयः कार्य इति प्रतिपादितम् । एवमेव

पुराणेष्वपि “ कत्राशेषा निष्क्रान्त प्रविष्टा सूर्यमण्डलम् ॥ अमाया विशतेयस्मादमावास्या

ततः स्मृतेति ” ॥ १ ॥ ( भगवति पुराणे ) तथा “ आभिन्यर्गममावास्या पश्यतः

सुममागता ॥ अ-यो-न्य चन्द्र सूर्यां तौ यदातदर्शं दृश्यते ॥ २ ॥ ” इति मत्स्यपुराणे उक्तम् ।

न दृश्यते चन्द्रोऽमेति निर्वाचनम् । सूर्यदर्शनमेव चन्द्रदर्शनरूप यत्रस्याचदर्शरात्रः । अस्मिन्मये

सूर्याचन्द्रमसोः कलाविकला मास्याचदातयोः सममूत्र गन्ध-पचने इत्यनेन तयोरेकस्य दर्शनेन

द्वयोर्दर्शनं दर्शदिने भवतीत्यर्थः । इत्यं श्रुति स्मृति प्रतिपादित सिद्धांशदर्श तिथिनिर्णय उक्तः ।

द्वितिया एवं पुनः पंचदश मुहूर्तान्तरे अमावास्या स्यादिति एवं सूर्याचंद्रमनोरस्तोदय कालस्यान्तरेण तिथीनां निश्चयः प्रत्यक्षं संपद्यतेति ग्रंथोक्त प्रमाणैरपि उक्तार्थस्यैव संसिद्धिः । भागद्वादशकस्य तुरीययंत्र साध्यत्वात्सूक्ष्मस्यादेव ।

४१ ननुप्रत्यक्ष दर्शनेन अमावास्यापौर्णिमास्योः पर्वयोरेव “ अर्धमासैर्मासान् संपाद्याहस्तसृजन्ति अर्धमासैर्मासान् संपश्यन्ती ” इति तैत्तिरीय एक बार तिथि क्षय या पृष्ठ हनेपर छे दिनेतक वेध नहीं किया जाता था । श्रवणात् पक्षमध्ये क्षयवृद्धिकलानां साकल्येन ज्ञानात्प्रतिदिनं वेधस्य गौरवादशकत्वं स्यादेवेत्यतः पर्वव्यतिरिक्तानां प्रतिपदादितिथीनां प्रत्यक्षतयापुनःपलंभात्प्रमाण्य नष्टादिति चेन्न तत्रैवतासां “ पडहैमासान् संपाद्याहस्तसृजन्ति; पडहैमासान् संपश्यन्तीति ” व्यवस्थायाउक्ततात् । इत्यतः पडहमध्ये तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिर्वा नैवभवतीति निर्दिष्टमवति यथाहि— “ चन्द्रमाः पड्ढातासकृतून् कल्पयति ” इति । सूक्तविशेषे सूर्याचंद्रमसौ प्रकृत्य आस्राप्यते ।

“ पूर्वापरं चरतो मापयेतो विशू क्रीडन्तौ परिघातो अश्वरम् ॥ विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुन ” इति—

—ब्रह्मर्च भुतो ( पु. चिंतामणि पु. ८ ) उक्तम्

अत्रतु अश्वरेणैव चंद्रकृत कलानां ऋतुत्वं दर्शितं । इयार्ति—नष्टति अग्रिमकला विभागो पृष्ठव कलाभागेच इष्ट चाद्रमसी कलाः सात्र चाद्रकृतुत्वेनैका उक्त प्रमाणसे तेषिद्धे इत्यत एव श्रौतसूत्रेषु पडहाना अभिष्टवपृष्ट्येति संज्ञा चद्रर्तु क्षय और वृद्धि - १० घटी सद्भावाद्वोक्ता । इत्यस्मिन्नपि ज्योतिर्गिरापुराणुर्गोर्गोरिति छैभ्यः तक— विद्ध हाती है । प्रति लौभ्येन त्रिरुद्भिरेकैकस्य कलाया निर्देशात् एकस्मिन्दिनेषे परमवृद्धिक्षयो वा दश घटी परिमितो भवतीत्यपदिश्यते ।

४२ नूनं वाद्यशुद्धमक्षमपचागणिनेनापि तिथिक्षयस्य वृद्धेर्वाहः पडशभाग इतने प्राचीन कालमेंभी मित दशघटी मितवा परमं प्रमाणं सिद्धयन एतद्वेक्षमाणा नव्या ऋषियोंने सूक्ष्ममान को ज्योतिःशास्त्र सत्वज्ञा अपेक्षण स्तिमितान्तरा इव सन्तो विस्मयेरन् । निश्चित करके या यह वदेयुक्ताहोकिमुतहोतादशिप्रज्ञा प्राचीनानां भारतीयवेदविदुषामिति उतचंतादद्ये अतिप्राचीनकाले कथं चाग्निस्मृत्यामापने शुद्धता सूक्ष्मता कितने गौरव की बात है । चास्माकथंच यज्ञकर्मगाकालमापनं कर्म भावेतुमर्हतीति पुण्यभावनया यज्ञानुष्ठान प्रवृत्तेरितिमाशंकनीयम् । “ यत्पुण्यंनक्षत्रंनष्टं कुर्वीतौपव्युपम् । यद्वैमूर्ध्वदेति । अधनक्षत्रंनेति । यावत्तितत्रसूर्यागच्छेत् । यत्रजघनंपश्येत् । तावत्ति कुर्वीतयज्ञकारिण्यात् । पुण्याहएवकुरुते । ” इति तैत्तिरीय ब्राह्मणे ( १-५-२-१, ) मूर्धनश्चत्रस्येधाभिर्णातियेव-

पुण्यत्वमुक्तम् । ननुतदासूर्यनक्षत्रस्यैवस्थूलतया ज्ञानमासीन्नान्येषामिति चेन्न । अन्येषामप्युक्तत्वात् तथाहि अभिजिज्ञाम नक्षत्रम् । उपरिष्ठादपादानाम् । अवस्ताश्रोणार्थे । यदन्यजयन् । तदभिजितोऽभिजित्वम् । ( तै. ब्रा. १-५-२-३ ) इत्यनेन सुदूरदेशे उत्तरभागे स्थितस्याभिजितस्य यथार्थं ज्ञानमासीत्तदा क्रातिवृत्तासन्नाना अश्वमुखादि-चित्ररूपनक्षत्राणां प्रहाधिष्ठितानां ज्ञानं किमुत दुष्करमिति ।

४१ इत्येवमपि किंच नक्षत्रसमीपवर्तिनानां देवयानी, शर्मिष्ठा, वृषपर्वदादीनां तारकापूर्वा-  
 कृतिमयचित्रस्य यथार्थस्वरूपवर्णनंच वेदे उक्तत्वात् ' अहेर्बुध्निय  
 ऋषियो ने भिन तारका मंत्रम् ' चतुः शिखडा युवतिः सुपेशा घृत प्रतीका भुवनस्य मध्ये ।  
 पुत्रो का वर्णन किया है ( तै. ब्रा. १-२-२-२६ ) इत्यादिभिः प्रमाणैः तस्मिन्काले खगोलीय  
 वह वर्तमान कालोन नक्षत्रों नक्षत्रादीनां सुष्ठुतर ज्ञान चासीत्साधनभूता वेध क्रियाच "   
 के विशेषों से एवं वर्णनों के तुरंग्येण विन्द दत्रिरिति ऋचा सूर्यग्रहणादिकालदर्शिका तुरीयपत्र  
 लगनम डीक मिलता है । साध्या यथा तप्येनायगता ऋषिभिरिति सिद्ध्यते ।

४४ तस्मिन्काले कालमापनार्थमेव यज्ञानुष्ठानचासीदाकाशस्थितिं निदर्शिकाया एव  
 यज्ञकर्माणि क्रियाया उक्तत्वात्-यथाहिभूपने (१) प्राचमग्निमुन्नयति  
 यशों में आकाश के रश्मि तस्मात्प्राञ्छासीने होता (२) असावादित्यः प्राङ्पार्श्वसंचरति  
 भूमिपर बतलाये जाते थे; तस्मादध्वर्युः प्राङ्पार्श्व संचरति, (३) अथैव चंद्रमा दक्षिणैवेति  
 क्योंकि वेध निक प्रयोगों तस्माद्ब्रह्माणं दक्षिणत आसयन्ति (४) अथैतस्यामुदीच्या दिशिभूयिष्ठं  
 की है। उस समय वह तस्माद्ब्रह्माणं दक्षिणत आसयन्ति (४) अथैतस्यामुदीच्या दिशिभूयिष्ठं  
 संज्ञा थी । विद्योतते तस्मादेता दिशमुद्गाता प्रत्युद्गायति (५) अथैव आकाशमप्यतो  
 भूतानां सत्तस्तस्मान्मन्त्रे सदस्यमासयन्ति (६) उद्यानचावा आप  
 उत्तेवगाधामवन्ति उत्तेव गंधीरास्तस्माद्दोत्राश सिन उत्तेव पंचचैनकुर्वेति उत्तेवभूयसां (७)  
 आदित्यस्यैवगत रश्मयोनुयांति तस्मादध्वर्योरेवगतं चमसाध्यर्येवोनुयन्ति " " अग्निर्मेहोता,  
 आदित्योमेध्वर्युः, चंद्रमा मे ब्रह्मा, पर्जन्योमरुद्राता, आकाशो मे सदस्यः आपोमेहोत्राश सिनः  
 रश्मयोमे चमसाध्यर्येव एता देवता ऋत्विजा प्राणोयजमानोऽयो यत्रैतासा देवतानां लोकस्तदुप-  
 हूतोभवति । " इति यजुर्वेद ब्राह्मणे ( २-३-४-५ ) उक्तत्वात् ।

४५ इत्यादि प्रमाणैः श्रौतकाले कालमापनार्थमेव यज्ञानुष्ठान तस्मिन् । " दृष्टे  
 तपरिमाणम् ( का. श्रौ. सूत्रेण १-४४ ) इत्यनेन सूर्याचंद्रमसो-  
 यशों से काल मापन प्रत्यक्ष दर्शनेनैव तिथिनक्षत्रादीनां परिमाणं कुर्यादिति यज्ञेय  
 किया जाता था । विधानस्योक्तत्वात् ।

४६ किंच " असौ वा आदित्योऽग्निरीकान् । तस्य रश्मयोऽनीकानि " " मागधेये  
 नक्षत्रं वीर राक्षसकृत् वेनत्समर्धयति " ( तै. ब्रा. १-६-६-२-६ ) तत्रापि नक्षत्राणां  
 आश्रयान आश्रय के गणनादुरेवत्यन्तमागेन अधिन्यासमादेयोक्ता यथाहि " कत्राप्रमाणंतु-  
 आरमधे गिना जाता था । सोमात् " सूर्यचन्द्रान्तरेण कुर्यादितिच " ते नक्षत्रं नक्षत्रमुपातिष्टन्त  
 ते रेवत्यामुपातिष्टन्त । यकिंचार्थोचैन सोमात् । प्रैरमगति " ( तै. ब्रा. १-५-२-४ ) इति  
 एतदभिहितमुनच " नक्षत्रागिरूपं अभिनोयाच " मितिवाजम महितायामनन्त्याह ।

४७ स्मार्तकालेऽपि सैव स्फुटग्रहवेधात्पंचांगसाधनपद्धतिर्ग्रहचारगणितरीतिश्च

प्रचलिता आसीत् । तथाचोक्तव्यासतन्त्रे तदनुसारिणि सिद्धांत  
स्मार्तकालमै मी दृश्यगणित कामधेनौच—  
ये ही पंचांगसाधन किये जाते या ।

“मध्याह्नार्क स्फुटज्ञात्वा गोलान्कुर्यात्पदक्रियाम् ॥ ४२ ॥

संपाद तारा द्वन्द्वस्यवाक्यमेकं समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

“मध्याह्नार्कस्योज पादं तु विलिप्ती कृत्य कोविदः ॥

दिनार्धं विकला प्राप्तं घटिकादि विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

अंगुलादिततोल्बधं मध्यच्छाया मिहक्षिपेत् ॥ ५५ ॥

“पूर्वापरार्धयोर्मध्यच्छाया विरहितं ततः ॥

नीचेन वर्धयेदेष भागहारो भविष्यति ॥ ५७ ॥

ततश्च नूतनैः प्राप्तं नक्षत्रं मिति निर्दिशेत् ॥ ६२ ॥ ”

(सि. का. संवत्सराध्याये १)

“चन्द्रार्कं दृष्टि नक्षत्रे विलिप्ती कृत्य लिप्तिं काम् ॥

पुनर्नीचेन चाभ्यस्य शुद्धं भुक्त्या विभाजयेत् ॥ ७७ ॥

इति चंद्र नक्षत्र साधनम्

शुद्धं नीति विशुद्धं तत् दृष्टं नक्षत्रं नाडिका ॥ ८ ॥ ”

“भानुनेष्टुं कली कृत्य प्रतिलिप्ता तिथिर्भवेत् ॥

शेषन्तु विकली कृत्य पुनर्नीचेन ताडयेत् ॥ १ ॥ ”

विवरेण विभज्यात् सद्दृष्ट तिथि नाडिका ॥ २ ॥

पक्षयोः रुमयोरेव तिथयः स्युः पुनः पुनः ॥ ४ ॥ ”

( इति तिथि साधनम् )

“चंद्रमर्केण संस्कृत्य दृष्टोऽयोग उदाहृतः ॥ १ ॥

इति योग ( निर्णये ) साधनम्

“इन्दुरस्तमितः प्राच्यांप्रतीच्या मुदयं भजेत् ॥

विशेष्यचंद्रतः सूर्ये संपे कुर्याद्विज्ञप्तिं काम् ॥ ३ ॥

समाधेत्पूर्वं वाक्येन तदा दग्धोचरः संशी ॥ ४ ॥

( इत्यम्नोदयनिर्णये )

“अस्ताकोनेन्दुतः पूर्वमस्तिचेत्तपरित्यजेत्॥ १ ॥

आकाश में प्रदृष्टि  
को प्रत्यक्ष देखकर ही  
पंचांगका गणित शुद्ध कर  
रिया जाता था।

कृष्णो दिनकरस्यास्तादा चंद्रोदयमन्तरा॥ २॥

शेषे पूर्वाभरे शुक्ले व्यतीताः स्युर्विनाडिकाः

घटिकाः साधये देव चंद्रच्छाया पदेवुषः ॥ २१ ॥

अंतरंच निशानाथ प्रमाणंच परस्परम् ॥ २२ ॥

—इतिच्छाया-निर्णयः—

४८ इत्या गमोक्ते स्तंत्र प्रतिपादित सयुक्तिभिः प्रमाणैर्ज्ञायते हि श्रौत कालादारम्य

आवराह मिहिर पर्यन्तेषु बहुषु ग्रंथेषु स्फुटग्रहस्य नक्षत्रे, वेधा देव

इस प्रकार श्रौत स्मार्त  
का क में दृश्य गणित से  
पंचांग बनाये जाते थे

साधितेभ्यो ग्रहेभ्यः पंचांगस्य साधन प्रकृतिः प्रचलिता आसीत्।

तदा पंच वर्षात्मके द्वादशा द्वात्मके वा युगारंभे उक्तं भिन्नान् वेधा द्वारा

संशोधयन् शुद्धमानान्निश्चित्य तैः साधितभ्यां चंद्रे सूर्याभ्यां विष्यादि

साधनेन तेषु वास्तवं मानं स्यादेवेति॥ अस्माद्द्वैतविकमानासाधितानि पंचांगान्यपि शुद्धान्ये

वासन्। नक्षत्राणां स्थिर प्रायस्त्वत्तु सृष्टवर्षेष्वपि यास्मिन्नेककलायाभधिकान्तरे नैस्यो

दिति दृश्यनिजगतिरप्य केन चिद्वा नक्षत्रेण उपर्युक्त (धारा ९) वत् नक्षत्र राक्ष्यादीनां

साधित विभागे स्तारकादिभिश्च वेधसाधनसद्भावात्।

४९ तेच बहवोऽप्या एतेषां कालानुक्रमश्च निधितोऽस्मभिवेदकांलनिर्णयादये ग्रंथे

सिद्धांतप्रभाकर भूमिकायांच तदथा निम्न लिखित ग्रंथानां

हमारे बनाये हुए वेदका निर्णय और सिद्धांत प्रभाकर की भूमिका में प्रचीन कार्य- प्रणाली के प्रयोगों का निमार्ण काळ।	शकपूर्व, वर्षाणि
१ बोधायन श्रौतसूत्रम् ....	२७५१७
२ आपस्तंब श्रौतसूत्रम् ....	२९०५६
३ कात्यायन श्रौतसूत्रम् ....	२४३९४
४ मैत्रयुपनिषद् ....	२२६२७
५ वेदांग व्योतिषम् ( ऋक्पाठ. ) ....	२२०९०
६ गर्गतंत्र, ७ पाराशरतंत्र, ८ पितृमह सिद्धांतश्च ....	२२०९०
९ पुराणानांच मूलग्रंथाः १० प्राचीन स्मृतयश्च ....	२२०९०
११ नारदतंत्र तदनुसारि नारद संहिताच ....	२०२२६
१२ पारस्कर गृह्यसूत्रम् ....	१९०००
१३ कात्यायनस्मृतिः याज्ञ पुराणंच ....	१९०००
१४ आद्ये रामायणे व्यास प्रोक्ते भारतेच ....	१९०००
१५ कर्कोपाध्यायः ( कात्यायन सूत्राणां माप्यकार्ण ) ....	१३१९१

द्वय गणितके शोधक,  
ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक  
आद्य ग्रंथकर्ता १० हैं इनके  
रचे हुए ग्रंथोंकोही आर्यग्रंथ  
कहते हैं इनमें ८ ग्रंथ पूर्व  
ग्रंथालुसारी हैं। सब भिन्न-  
कार कुल ३८, ग्रंथ दस्य  
गणित के हैं।

१६ गालव संहिता	१७ वसिष्ठ सिद्धांतश्च	६४००
१८ रोमक सिद्धांतः ( पंचसिद्धांतिका प्रोक्तः )		६३८७
१९ पौलिश सिद्धांतः ( " )		६३३६
२० प्राचीन ब्रह्मसंहिता ( तन्नान्नि विपरिणमिता )		२३२१
२१ प्राचीन सोमसंहिता ( " " )		२१४३
२२ प्राचीन सूर्यसिद्धांतः ( पंचसिद्धांतिकाप्रोक्तः )		१४८४
२३ विक्रमादित्यः ( प्रथमः ) संवत्कर्ता तस्य ग्रंथः		(१३९)
२४ अस्मिन्नेव काले भोज	२५ मणित्य	२६ बादरायण

२७ प्रल्हादन २८ बृहस्पति २९ मुबुद्ध ३० सारस्वत ३१ विष्णुगुप्ता-  
( अर्वाचीनाद्विष्णुचन्द्राद्विजः )- दयो ग्रंथकारा प्रायशः शकारंभ काले अभूवन्स

शालिवाहन शकारंभदुत्तरं ....	.....	.....	वर्षाणि
३२ सिंहाचार्यस्य गुरुः ( वराहोक्तः )	....	....	२०१
३३ सिंहाचार्यः ( आरंभस्थाने संपातस्य स्थितौ ) ....	....	....	२०८
३४ छाटाचार्यः ( वराहोक्तो गोड वंशोद्भवो विप्रः ) ....	...	...	२७१
३५ प्रद्युम्नः ( वराहोक्तः )	....	....	३००
३६ विजयनंदिः ( " )	...	....	३९०
३७ वराहमिहिरः ( पंचसिद्धांतिका बृहत्संहिता कर्ता )	....	....	४२७
३८ अनवदर्शी संघ राजः लंकाया देवज्ञ कामधेनु नामक ग्रंथस्य कर्ता ...	...	...	४४०

५० प्राचीननेपु आर्यग्रंथेषु स्वमुच्यनुसारेण संस्कारंदत्वा अर्वाचीन सिद्धांतः।

आर्यभटादिभिश्च निर्मिता प्रधाधेमे सति ।

एष आर्यग्रंथोके आपार-	१ आर्यभटः ( आर्यस्फुट सिद्धांत कर्ता )	....	४२१
पर अर्वाचीन ज्योतिष के	२ ब्रह्मगुप्तः ( शिष्यधी वृद्धि ) ब्रह्म सिद्धांतकर्ता	....	५००
१९ ग्रंथकर्ता हुए हैं ।	३ ब्रह्मगुप्तः ब्राह्मस्फुट सिद्धांत कर्ता )	....	५२०
	४ सूर्य सिद्धान्तः ( मधुरासुर कृतः )	....	६४६
	५ द्वितीय आर्यभटः ( आर्य ) महासिद्धांत कर्ता	....	८७३
	६ भास्कराचार्यः ( सिद्धांत शिरोमणि कर्ता )	....	१०७२
	७ सिद्धांत सार्वभौम कर्ता मुनीश्वरः पल्लिचपुर निवासी	....	१९२९
	८ कमलाकर भट्टः ( तत्त्व विवेक कर्ता )	...	१९८०
	९ केशव देवज्ञः ( महकौमुक कर्ता )	....	१५०२
	१० गणेश देवज्ञः ( महलाघव कर्ता )	....	१४४२
	११ विश्वनाथादीनां फाल्गु ग्रंथमेतत्त्व दत्त पुनर्नोक्तः	—	—



११ एतावज्ज्योतिषं तत्त्वप्रकाशकानां ग्रथानां कालजम मनूय गणितरुम दर्शयिष्याम ।  
अस्य सवादाद्धर्मशास्त्रप्रयेषु की दृष्ट्या न मुरीकृत तत्स्फुटी भविष्यतीति  
शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वरूप । जानीते ।

( अ ) ग्रहकक्षाया उच्चासन्ननामौ स्थितो दृष्टा मध्यमतुल्यग्रह पश्यति

( आ ) सूर्य मध्यस्थितो मन्दस्पष्टतुल्यम् ( ई ) भूमध्यस्थितः शीघ्र स्पष्टम्

( ऊ ) भूपृष्ठस्थितो लबन स्पष्टम्

एवमिदं दृष्टुं, स्थानभेदोभ्योदर्शनभेदा नामसंस्कारा उत्पद्यन्ते । एषु संस्कारेषु भूमध्य  
यावत् संस्कारा ( अ, आ, ई ) क्रियन्ते किंच लबन संस्कारस्तु  
सूर्य का एक मदफल  
संस्कार देने से वह स्पष्ट  
होता है । भगोलीयगणिताद्विन्न, सत्रुखगोलीय गणित साध्यत्वाद्भूपृष्ठ नाना  
स्थलेषु भिन्नत्वात्पचागणिते तस्यनोपयोगः । प्रयोजनाभावात् ।

स्फुटग्रहाश्च सर्वे कदम्बाभिप्रोत भोगशराम्यासाधिता क्रांतिवृत्तीया  
एवस्युः । वेधार्थमेवतेषां ध्रुवप्रोतीय भोगशराम्यां परिणमनम् । तथैव उदयास्तयाम्योत्तर  
लबनकालज्ञानार्थं तेषां विपुवाशां ज्ञातयश्च साध्यते । मदफल संस्कारस्तु मदकेन्द्रोपकरणेन  
सूर्याचक्रमसोमुख्यः संस्कारः । किंचमन्दफलस्यैव रूपान्तराद्बुद्धताश्चत्वारोऽप्ये संस्कारा यदा  
चक्रमसि स्थुस्तदैव तस्य वास्तविक स्फुटत्वमवति ।

१२ यथाहि- ( १ ) उदयान्तर जन्यो गतिसंस्कारः, ( २ ) कक्षाया दीर्घ वर्तुलरूपिण्या  
भव स्तिथिसंस्कार ( ३ ) चंद्रे सूर्य मदफलजन्यस्थितिसंस्कारः

चन्द्रमा को, सूर्यचन्द्रोश्च  
पातों से मदफलादि ५  
संस्कार देने से वह स्पष्ट  
होता है । ( ४ ) विक्षेप जन्य कक्षा परिणति नामक संस्कारः ( ५ ) उच्च-  
वशादुत्पन्नो मदफल संस्कारश्च केन्द्रात्साध्यते यद्यप्युक्तफल पचकेनतुल्य  
पूर्वात्तकाले फल नव्यसिद्धान्तप्रथमग्रहलघनगदिकरणेश्च साध्यते  
किं च तत्तु । अग्रे ममीपे महदन्तरितोभवति । उच्चकेन्द्रयाम्य

केन्द्रयोर्नास्तत्रिक गतेस्तदानुपलभात् । शक ४२७ कालादर्वाचीनेषु प्रयेषु मध्यमगति साधितेषु  
भगणेष्वपि अंतरसममति तेषां प्रदक्षिणाकालस्य उच्चगति सभिधत्वात् ।

१३ उक्तानां फलानां यूनार्थिककारणात्तिथेर्वृद्धि क्षयोवा सदाभवत्येव तत्र परमावधौ

वैदिकशास्त्र मे तिथिका  
वृद्धि और क्षय १० पदों  
पर्यंत का माना जाता था । कियती वृद्धिः कित्यान्धयो भवतीत्यस्यात्रममग्रमणेन नियम्य-  
वृद्धि और क्षय १० पदों कियते । अस्मिन्विषये पूर्वमेवास्माभि ( धारा ४१ या ) निरूपित  
पर्यंत का माना जाता था । ' पदद्वैर्मासान्संपाद्याहस्तमजन्ती ' ति श्रुते पदद्वयमे तिथे  
क्षयोऽष्टदिर्मा नैरभरतीत्यपदेशात् परमा वृद्धि क्षयो वा दशघटीमितो भवतीति निश्चितम् ।

१४ अमुमेतार्थं तैत्तिरीयब्राह्मणे ( १-८-१०-२ ) स्फुटमभिहितम् यथाहि " पौर्णमास्या  
पूर्वमहर्भवति व्यष्टकायामुत्तरम्, नानैवार्धमासयोः प्रतितिष्ठति ।

छांदोग्य गणितपद्धति से  
तिथिका वृद्धि और क्षय १०  
पदों निश्चित होता है । अमावास्याया पूर्वमहर्भवति उदहृष्टवत्तरम् । नानैवमासयोः प्रति-  
तिष्ठति । अथोक्तं यत् यमनपक्षे पुण्या ( पूर्णा ) हे स्यातां तयो  
कार्यं प्रतिष्ठितै अपशब्दो द्विरात्र इत्याहुः । द्वे होवे छन्दसी  
गायत्र च त्रैष्टुभ च जगतीमन्तर्यन्ति यदा वा एषाहीनस्याहर्भजते । साहस्य वा सवनम्

अथैव जगतीकृता, अथ पशव्य, व्युष्टिर्वा एषद्विरात्र ” इत्यत एतावदुक्तं भवति—त्रिंश-  
दिनात्मको परिपूर्णमासोऽहीनसंज्ञको द्विधा अहीनहीनपक्षयुतोहीनाहीनपक्षयुतश्चति । अथवा  
पूर्णापूर्णपक्षयुतो हासवृद्धिपक्षयुतश्चेति । तत्र तावदहानपक्षरूप ‘पौर्णमास्या पूर्वमर्हभवति  
प्रतितिष्ठतिरित्यन्तेन विवृणोति । पौर्णमास्यावृद्धि । अष्टम्या क्षयस्तदा पचदशदिनात्मकपक्षा-  
दहीनोपक्ष । एतमेव अमावास्यायावृद्धि अष्टम्याक्षयस्यापि पूर्ण पक्ष । तयोर्मासोऽप्यहीन  
पूर्णव ।

९५ अथ क्षयवृद्धिपक्षयुत पूर्णमास ‘अपशव्योद्विरात्रोव्युष्टिर्वा एष द्विरात्र इत्यन्तेन  
विवृणोति । तत्र दिनद्वयक्षययुतो अपशव्याष्टयोहीनोपक्ष तद्योतके

छादस गणितपद्धति का  
सोध हमने लगाया है  
उसके आधारसे भा तिथय  
निश्चय इस प्रकार होता है।

अहीन एवे यागे देवाछन्दसी A गायत्र च (१) त्रैष्टुभ च (६) जगती  
(७) मन्तर्यन्ति सप्तचन्द्रदिनेषु एकस्याहोभागाय कनितःरात्  
पदतिथय स्यु । एव त्रिद्वयवृद्धियुत पक्ष पशव्योव्युष्टिसंज्ञको भवति  
तत्र सप्तचन्द्रदिनेषु एकस्याहोभागस्य वृद्धिरादष्टौ तिथय स्यु एव  
क्षयवृद्धियुताभ्या पक्षाभ्या युतोमासोऽपि अहीन एव (१३+१७=३०) त्रिंशदिनात्मकत्वात्पूर्ण  
श्रोपविश्यते ।

### A छादस गणितपद्धत्या अक्ष संख्या दर्शक कोष्ठक

	गायत्री	अष्टिगृ	अनुष्टुप्	वृहती	पञ्च	त्रिष्टुप्	जगति
१ देवी	१	२	३	४	५	६	७
२ आसुरी	१५	१४	१३	१०	११	१०	९
३ याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
४ साक्षी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
५ आशी	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
६ आशी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
७ प्राची	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२
८ शक्रापरा	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०
दयना	अग्नि	वायु	आन्त्य	तृष्पति	वर्ण	इन्द्र	त्रिभुवना

५६ एव मेवेष्टिकालनिर्णये त्रयोदशाहसप्तदशाहकौ पक्षौ निषिद्धावुक्ताविति च स्मर्यते

“पोडशेऽहन्यभौष्टेर्मध्या पंचदशेऽहनि ॥

स्मृति कालमें एतद् दिन  
के पक्षका वर्णन.

चतुर्दशे जघन्येष्टिः पाषा सप्तदशेऽहनिरित्यत्र ॥

सप्तदश १० दिनात्मकः पक्षः प्रतिषेधे उक्तः ॥ ”

( कालमाधवे प्र. ४ पृष्ठे १०७ )

५७ तथैव त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽपि मांगस्ये निषिद्धोक्तः सांहितकैः । उक्तं हि

उयोतिनिर्वन्धे “पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्वीरव

इष्टि कालमें तेरह दिनके  
पक्ष का वर्णन.

फाल्गुयोगः ॥ पक्षेविनष्टेऽकलविनष्टंरित्याहुराचार्यवराःसमस्ताः

॥ १ ॥ उपनयनं परिणयनं वेदमारंभादि कर्माणि ॥ यात्रां द्विश्वपक्षे

कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥ २ ॥ इति ”

५८ तथा हि व्यवहारचण्डेश्वरे—

“त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् ॥

गर्गाचार्य आदिके मतसे  
तेरह दिन का पक्ष.

गर्गादि मुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा मयेत् ॥ १ ॥ इति.

प्राचीननिबन्ध ग्रंथेषु त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोनिर्दिष्टः शुभकार्ये तस्य

प्रतिषेधोक्तेः

५९ प्राचीनैतिहासिक धार्मिकग्रंथेष्वपि त्रयोदशदिनात्मकपक्षस्य सचाचासादित्यवगम्यते

महामारते भष्मपर्षणि दुर्योधनं प्रति भीष्मेकैः । यथाहि—

महामारतमें ११ दिनके  
पक्षका वर्णन ।

“चतुर्दशी पंचदशी भूतपूर्वा च पोडशीम् ॥

इमां त्वमभिजाने ह ममावास्यां त्रयोदशीम् ॥ १ ॥ ”

इत्यत्र त्रयोदशदिनात्मकस्य पक्षस्य नेष्टत्वं सूचितम् ।

६० वराहमिहिरेण तु सप्तदशाह पक्षस्य वृद्धिमंज्ञां त्रयोदशाहपक्षस्यक्षयमंज्ञां चोक्त्वा

तयोः फलं च “शुष्टे पक्षे संप्रवृद्धिः प्रयाते मक्षक्षत्रं यातिवृद्धिः

वराह मिहिरे १७ व ११  
दिन का पक्ष-बदा है

प्रजाञ्च । हीने दानिस्तुल्यता तुन्यतायां कृण्ये मयं तरुलं

ध्यत्ययेन ॥ १ ॥ ” इति जगद्—

६१ प्राचीनग्रंथाश्रयाद्रचिनेषु नव्यनिर्वन्धग्रंथेष्वपि त्रयोदशदिनपक्षस्य शुभकार्येषु प्रतिषेध

उक्तः यथाहि मुहूर्तचिंतामणौ ( शक १६२२ ) “विश्व १३

वर्तमान मुहूर्त ग्रंथोंमें भी  
१३ दिनों का पक्ष कहा है ।

पक्षेऽपि पक्षे ” ( मु. वि. शु. प्र. श्लो. ४८ ) एवमेव मुहूर्तमिन्धो

मु. गणपत्यादिषुच त्रयोदशदिनन्मकः पक्षोनिर्णीतः ।

६२ इत्थंस्मृतिप्रथेषु सप्तदशदिनात्मकस्य पक्षस्य ज्योतिषसहिता प्रथेषु च त्रयोदश दिनात्मकस्य पक्षस्य सद्भावो निरूपितः । किं च महर्षिणा बौधायनेन बोधायन ऋषीने १३ और १७ दिनका पक्ष कहा है ।  
तु अन्वाधान प्रतिषेधकालेन द्वयोरपि पक्षयोरैकत्रैव सद्भावो दर्शितः । यथाहि—

“ यत्रोपवसथ कर्म यजनीयात् ११ त्रयोदशम् ॥

भवेत्सप्तदशं १७ वापि तत्प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ १ ॥”

इति ( कालमाधने प्र. ४ पृ. २०७ मध्ये ) उक्तम्.

६३ इत्यादिषु श्रुति, स्मृति, पुराण, ज्योतिषशास्त्र प्रथेषु त्रयोदश सप्तदशदिनात्मकयो ।

पक्षयोः कालोद्दर्शितः । इत्यत्र सामान्यतया त्रैराशिकगणितादपि

श्री, दक्ष, घडीके वृद्धि, क्षय बिना १७ और १३ दिनोंका पक्ष होही नहीं सकता । इसीको “ अंक वृद्धिर्दश क्षय ” कहते हैं ।

त्रयोदशदिना मके पक्षे  $\left( \frac{13 \times 60}{14} = 55 \frac{30}{14} \right)$  वा १३×४=५२ घटी

मितत्वाप्रतिदिन अष्टौ घट्यः क्षयउपेयताम् । एवमेव  $\left( \frac{17 \times 60}{14} = 72 \frac{60}{14} = 73 \frac{30}{14} \right)$

वा १७×४=६८ अष्टौ घट्योवृद्धौ भवताम् । किं च प्रतिदिन चद्रस्य

गतिवैलक्षण्यात्, दीर्घवर्तुलोपन्यासाद्गणिते कृते गतिफलस्य न्यूनाधिकमानत्वात्, मध्यमातिथ्यन्त

मानात् ५९ घटी १-७ पल मितः कालः क्षयवृद्धिसत्वे “ अंक ९ वृद्धिर्दश १० क्षय. ”

इति वास्तव परम मान सिध्यति । उपपद्यते च सूर्यास्तोत्तर चद्रास्तोदयाम्या निश्चितस्य

कालस्य तुलनया केवल होरामिनिटादिभि माधारणैरपि प्रयोगैः । सम्पद्यते च नाटिकल-

आत्मनाकादिषु आकृष्टपचागेषु लिखिताभ्या रविचन्द्राभ्या तिथि साधन गणितेन साम्यं ।

दृक्प्रतीतो घटमानत्वात् ।

६४ इत्यत एवास्माभिरपि अनेकेषु दिनेषु तिथारभममातिफल सूर्याचद्रमसोर्वेधा

द्वेषसिद्धपचागाश्च अनुयोः भवादमनेकशर चावलीक्ष्य तेष्वं

विज्ञात प्रमाकरके गणित से भी तिथिका वृद्धिक्षय ही दया पटी का होता है ।

निश्चितेष्वोमानेभ्यः सिद्धातित चास्माभि स्तिथैर्वृद्धिक्षययोः परमावधौ

मानम् “ अंक ९ वृद्धिर्दश १० क्षय ” इति ।

६५ ननु “ अंकवृद्धिर्दशक्षय ” इति प्रतिपादितस्य सिद्धान्तस्यार्थभटादिभिर्ननुत्वा-

चदुक्तगणितेनाभिद्वाराज्ञास्याप्राप्तस्य स्यादिति चेन्न, वेदशास्त्राभ्यामुप-

ज्यत् । यत्तु आर्यभटेन तस्मादतीर्चनेन मिद्धान्तनामसम्प्रत्यक्तृभि

मध्यमचन्द्रे केरळ उच्चोपकरणेन मंदफलस्य संस्कारः कृतः ननु

अमाते वीर्यमाने च यद्यपि शुद्धउपचरस्य स्वस्यान्तरात्मनः

भजते । तथापि तस्मिन् रज्ज्बोदयान्तराद्विनादुपचरस्य पश्यस्याभा-

धित्वाद्शुद्धकलत्रादष्टमी मर्मापेक्ष्यादिमानेषु मरदतर जायते ।

कलम १९ में जिसे हुए ऋषियों के प्रयोगों में तिथि का वृद्धि क्षय ९-१० पक्ष का और कलम ५० में जिसे वर्तमान प्रयोगों में ५-६ पक्षों का लिखा है ।

उपपुस्तक ६१ धाराया मादिष्टेभ्यो गति, तिथि, ज्योतिषगणितसंस्कार चतुष्टयेभ्यो युतमेव

मंदफलं शुद्धं स्यात्तदन्तरा हीनत्वादपूर्णत्वाच्चाशुद्धं स्यादेव अस्तदाश्रयादुत्पन्नस्य " वाण ५ वृद्धि रस ६ क्षय " इति वाक्यस्याप्यशुद्धत्वं स्यादेव ज्योतिः शास्त्रेणानुपपन्नत्वात् ।

६६ नचात्रार्थवचनलोप-इति वाच्यम् । सामान्येनैव अहीने यागे ' पौर्णमास्यां अष्टम्यामिति [ धारा ५४ यां ] वाक्ये अष्टदिनेषु एकस्याहः वृथ्या ७॥ घटी मिता हासवृद्धेरुक्तत्वात् तथा च " चतुर्दश्यष्टमे मागे क्षीणोभवति चंद्रमाः ॥ अमावास्याऽष्टमेशेत्तु पुनः किल भवेदणुः ॥ १॥ इति कात्यायनस्मरणाच्च इत्यत्र सार्धघटी सप्तकं दिवसस्य  $\frac{1}{2}$ -अष्टमांश एव । तथाया  $\frac{1}{2}$  = ७-५ इति यदि च कात्यायनस्य वाणशुद्धिरसक्षयमिता विवक्षा चेत्तदा द्वादशांश, दशाशभागा उक्तं स्यात् किं च इत्यत्र तु अष्टमांशभागस्यैव सामान्येन उक्तत्वात् परमावधौ त्रयोदशसप्तदशदिनात्मकपक्षयोरूपपला दशक्षयाकवृद्धरेव सिध्यति ।

६७. यत्तु माधवाचार्येण काष्ठमाधवे ( ४ प्रकरणे ) " तथा सति त्रयोदशसप्तदशयोः प्रसक्तिरेव नास्ति तत्कथं प्रति पिद्धचते इति चेत् एवं तर्ह्यप्रसक्त प्रतिषेधे नित्यानुवादोऽस्तु । अस्तिचाप्रसक्तप्रतिषेधरूपो नित्यानुवादो वेदे " न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यमि श्वेतव्य इति " उक्तं तदसत् शास्त्रेणप्रसक्तत्वात् । " प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चंद्राकौ यत्र साक्षिणा " इति सिद्धान्तोक्तेः खिन्दो द्वादश भागान्तरे तिथिस्तस्या अंकवृद्धिर्दशक्षयोऽपि प्रत्यक्षं दृश्यते । सिद्धयेत चानेन त्रयोदशमसप्तदशदिनात्मकौ पक्षौ । उदाहृतवेदस्यापि वैदिकार्थेन पृथिव्यन्तरिक्षदिवादिलोकाना विपुलदिनात् २७०, १८०, ९०, रवेर्मार्गेषु उक्तत्वात्तदिनेषु अग्नेश्चयनारंभो न कुर्यादुत च वाक्यस्य शेषात्सर्वलोके = विपुलदिने अभिषेधेत्यव्य इत्यर्थो निष्पद्यते । अवगम्यत इत्येनस्मृपर्णाचितिचयनेन सर्वमनयम् । एषमेव मुहूर्तचिन्तामणिपीयूषधारायामुच्चवचनस्य " पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकतां ख पुन्य तुल्ये " सस्याप्यसर्माचीनत्वमूह्यते ।

६८ यत्तु अहे द्वेधा, त्रेधा, चतुर्धा, पंचधा, षष्ठधा, पंचदशधा, त्रिंशद्वा च विभागा धर्म शास्त्रीय प्रयोगे तौ उच्चास्तेषु कर्मकालस्य सामान्यविशेषाभ्यां निर्णये द्वेधा त्रेधा एव सूत्रे तिथि कारी स्वीकार विभागाः स्मृत्यादिपूक्ताः । अत्र माधवाचार्येणाऽपि " ययोक्तेषु पंचसु कालेषु यानि निहितानि कर्माणि तानि देयविज्यरूपेण राशिद्वयं कृत्या तयोर्गणकालाभ्यनुज्ञायेति " सामान्यकालनिर्णये द्वेधा विभागः स्वीकृतः आवर्तनात्तु पूर्वोक्तो द्वादशकालः स्मृतः ॥ यथा चेत्तपरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ॥ १ ॥ इति स्मृत्युक्तेः । " विशेषकालनिर्णयस्तु त्रेधा विभागनैव कार्य इत्युक्तं सर्वेषु धर्मशान्त्रग्रंथेषु "



७३ एवं धर्मशास्त्रप्रामाण्यात् सूर्याचन्द्रमसोर्द्वागमान्तररूपज्ञायास्तिथेः प्रत्यक्षैः प्रमाणैः सूक्ष्मतया च “ अंकवृद्धिर्दशक्षय ” इति सिध्यति । किंचार्थ-  
 इस प्रकार अंक वृद्धि  
 पक्षय सिद्ध होता है ।  
 मट ब्राह्मिहिरोत्तरं वेधक्रियायाः स्थाने स्थूल गणितागतायास्तिथे-  
 रंगीकारात् तदुत्तरकालिकग्रंथकारैः टीकाकर्तृभिश्च यद्यपि पञ्चधाविभाग  
 प्रोक्तस्तथैव १३।१७ दिनात्मकयोः पक्षयोः शंशशृंगत्वं चोक्तं तथाप्येतद्विषये क्षुतिस्मृति-  
 पुराणादिभ्यस्तुक्त्वात् प्रत्यक्षविरोधाद्वाणवृद्धिरसक्षयइत्यस्याप्रामाण्यस्यादेवेत्युपपन्नमिदम् ।

७४ यत्तु श्रीनिवासकृत वैखानस तिथिनिर्णय कारिकायां “ रबीन्दुमन्द संसिद्ध  
 भवात्तिथ्यादिभोगतः ॥ स्यातां तत्काल बीजोत्थौ, बाणवृद्धि  
 “ बाणवृद्धि रसक्षय ”  
 संबंधी आक्षेप  
 रसक्षयौ ॥ १ ॥ अतः पैत्रिक कर्मादौ तत्काल चरबीजकैः ॥  
 बाणवृद्धि रसक्षीणा ग्राह्या नान्या तिथिक्वचित् ॥ २ ॥ ” इति  
 धर्मशास्त्र विरोधवारणभवात् सिद्धान्त साधितसूर्याचंद्रमसोः तत्काल चरसंस्कारादान् बीजं च  
 दत्त्वा बाणवृद्धिरसक्षयौ यथास्याता तथाप्रसाध्य पैत्रिककर्मादौ तिथिप्राप्तेः स्फुटम् ।

७५ किंच “ मान्दैककर्म संसिद्धव्यर्केन्दुत्पादिततिथिः ॥ आह्लादिपुपरिग्राह्या ग्रहणा  
 दौतबीजयुक् ॥ १ ॥ ” इति कालार्के, “ प्रत्यहंतिथे नक्षत्रयोगस्या  
 “ बीजसंस्कार- संबंधी  
 आक्षेप  
 नयनेधिषुः । अबीजसंस्कृतो ग्राह्यो ग्रहणादौ स बीजकः ” ॥ २ ॥ इति  
 ज्योतिः संहते, “ यंत्रबंधादिनाम्नात् यद्बीजं गणकेस्ततः ॥ ग्रहणादौ  
 परिक्षेपेन नतिध्यादौ कदाचन ” ॥ ३ ॥ इति । ब्रह्मगुप्तकृत ग्रंथे च “ शृंगोन्नतौ ग्रहयुतौ, ग्रहणे,  
 सधास्ते, छाया निरीक्षणविधौ उदये च देयम् ॥ बीजं फलं तिथिभोगविधावदेयं चंद्रप्रदेयमखिलं  
 क्षितिजादिकैषु ” ॥ ४ ॥ इति । लङ्घने “ तिथ्यादिसाधने क्वापि नाकेन्द्रो बीजं योग्यता ॥  
 अन्यथा साधनार्कस्य राशिसंक्रमसद्भवे ” ॥ ५ ॥ तथाच “ ग्रहणादन्ययोगे च कालभाजप्रसाधने  
 शृंगोन्नतयुदयास्तेषु दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ” ॥ ६ ॥ अन्यच्च “ नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्राहस्तोदय-  
 साधने ॥ शृंगोन्नतौ तु चंद्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥ ७ ॥ ” इति सूर्यसिद्धान्तटीकायां संगृहीत  
 यत्तन्मर्थः । आह्लादि धर्मकृत्येषु बीजमदत्त्वेव ग्रंथ साधिततिथेरेव ग्राह्यत्वं मुक्तम् ।

७६ तथाच “ अदृष्ट फलसिद्ध्यर्थं यथाकाङ्क्षितं कुरु ॥ गणितं यदि दृष्टार्थं तदप्युद्भवतः  
 सदा ॥ १ ॥ श्रीसूर्यसिद्धान्तमतोद्भवार्कस्तार्थ्यो तदात्तावधिक-  
 “ अदृष्टार्थ ” संबंधी  
 आक्षेप ।  
 क्षयाभ्यो ॥ मासौ ग्रहैर्गणितं तथान्यत्साध्यं सदा यद्यपि  
 तदग्रहाद्यम् ॥ २ ॥ स्थूलं सदा ब्राह्ममतं निरक्तमादिश्य मिहान्तमतं  
 च सूक्ष्मम् ॥ भाषादिके सूक्ष्मतत्त्वसूक्ष्मं सूक्ष्मतत्त्वं स्थूलतत्त्वसिद्धम् ॥ ३ ॥ अतोऽनिशं  
 भ्रमरमणे शुभाविनास्थितौ मदा सूक्ष्मविधानं साधने ॥ सौरमतं सप्तमथान्यनिर्णयं स्थूलं च मन्ये-

ग्रहसक्रमेष्वपि ॥ ४ ॥ इति तत्त्वविवेके कमलाकरस्तु ब्रह्मगुप्तादिकृतसिद्धान्तापेक्षया साम्प्रतिक सूर्यसिद्धान्तस्य सूक्ष्मत्वप्रतिपाद्य ततोऽधिमासादीनां निश्चयोधर्मानुष्ठेयकृत्यानि अदृष्टार्थरूपाणि च तेनैवसाधिततिथ्यादिप्रकुर्यादिति, 'ग्रहणे, अस्तोदये, ओषदर्शने, तारामहयुतौ, ग्रहग्रहयुतौ, नतांशोन्नतांशदिग्देशेषु, छायानिरीक्षणविधौ, अन्येषुचदृष्टार्थकार्येषु बीजदत्त्वाभवात्वा दृक्प्रत्ययावहसूक्ष्मगणितसाधिता ग्रहाएवग्राह्या' इति च जगाद ।

७७ एषमेव ब्रह्मगुप्तादर्थाचीनाना ( ७३ ७५ स्तवोक्ताना ) उदाहारादनुयोगः सम्भवति  
 उपरोक्त आक्षेपों का उत्तर किमुत आतिपूर्णासिद्धानुष्ठानेनाभ्याख्यानामिति । नचाद्यः धर्मशास्त्र मूल भूतानां भूतीनां तत्स्मरणं कर्तृणां स्मृतीनां च ज्योतिःशास्त्रस्यैक रूपत्वात्, धृतिसम्मत वैधसिद्धमानानामेव वेदागत्वेन पुरस्तादागमत्वोपादानाच्च । नचान्यः दृग्गणित सिद्धस्य दृश्यप्रत्यावहान्तस्य तात्कालिककालान्तरजन्यसंस्कारसंस्कृतसिद्धान्त प्रथस्य तदाऽनुपलभात्-ऋषिप्रणीतग्रंथसाधिततिथ्यादीनां अदृष्टार्थकार्येष्वपि अदृष्टार्थं तया उपादेयत्वं प्रतिपादनेन सूक्ष्माभावे 'सूक्ष्ममसं स्थूलत एवसिद्धम्' इत्यनूय निर्व्यलीकेन मनसा आर्पसत्ताया एवांगीकारात् ।

७८ इत्यत इदं सान्ध कथनम् । तद्यथा यद्यपि रविदोर्मन्दफलयोः संस्कारे कृतेऽपि तात्कालीन बीजसंस्कारवशेन यथा बाण वृद्धिरसक्षयौत्याता तथा धौलसंस्कार के प्रमाण तिथेः साधनं कुर्यादिति (७४ स्तवोक्त) प्रमाणानि (७४+७६ स्तवोक्त) प्रमाण विरुद्धानि गोलविरुद्धानिच सति । एवमेव (७५ स्तवोक्त) प्रमाणानि (७४+७६) विरुद्धानि अतएव प्रचरणरहितानिच सति । यथाहि ब्राह्मिहिरेणोक्तम् "पौलिश तिथिस्फुटोसौ तस्यासमस्तुर्योमकं प्रोक्त ॥ स्पष्टतरः सावित्रः परितोयौ दूरं विभ्रष्टौ ॥" [ पंचसिद्धांतिका १-४ ] पैतामहवासिष्ठौ दृग्गणितरीणौ जातावित्यर्थः । किंच सूर्यसिद्धांतोक्तं गृहेष्वपि "क्षेप्याशरेन्दुविकला प्रतिवर्षम्" ( प. सि. ११-१०-११ ) इत्यनेन बीजसंस्कारोदत्तः । अतएव सिद्धांतिसत्त्वानेन "वर्षेणमगणमर्कयोदिमुक्ते किं ततो यथेष्टदिने ॥ असोप्येव गणयति किं न रविं ओष्ठरेखाभि ॥ १ ॥ सममदल रेखा सप्रवेशेवलां करोतियोर्कस्य ॥ सत्प्रत्ययं च जतयति जानाति स भास्करं सम्यक् ॥ २ ॥ ( प. सि. ४-१७-३६ ) इति दृक्प्रत्ययावहगणितसाधितसूर्यसंस्कारांगीकारं कृतः । मकरदेतुचंद्रोद्य पातादीनां लहनेन च चंद्र, चंद्रोद्यपातादीनां ग्रहणाच्च, सिद्धांतयिगेमणोच्च भास्कराचार्येण सूर्यचंद्रादीनां ग्रहाणांनये बीजसंस्कारः कृतः । गणेशदेवेनतु बीजादन्वदव्यन्तरदृष्ट्या 'अरु फलिकोनादृज' इत्यनेन चंद्रमसिच बीजदत्त्वा "मेयाति दृक्तुल्यता मिद्वैस्वैरिह पर्वधमं नयमस्त्यायांदिक्त्वादिशेदि"।



जगाद । एवमेव विश्वनाथोऽपि " दृष्टि प्रलय कारकान् " " रवीन्दु शशभृत्तुगोभवान्  
मादिकान् " कथितवान् । किमुत माप्रतिक सूत्र सिद्धान्तेऽपि "युगानांपरिभेदेन कालभेदात्र  
केवल ' मिलनेन कालान्तरानुमारेणायद्वितीय' सूर्यसिद्धान्तो रचित इत्युक्तम् । अतएवाष्टा-  
दशसिद्धान्ता बभूवु । तैश्चतत्तत्सालेषु तिथि पत्रादीनासाधन चामीत्तदा अदृष्टार्थ कार्येषु अदृष्टैरु  
प्रथसाधितायास्तिथेः केनाऽपि प्रथकारेण अंगकारेण कृत इत्यतः समलकाराद्युक्तिरवद्वमूलैव माति ।  
तथाप्येतच्छुद्धसूक्ष्ममथालाभकालिकया प्रासंगिकोक्त्या युक्तरथनेमेन एवगम्यतेऽस्माभि ।

७९. वस्तुतस्तु भूक्ष्मा केन्द्रच्युतिर्मन्द मन्दमगचीयमाना वर्तते तेनरवेः परमफल  
सूर्य फल में काकान्तर ( १° १५' १७ ) वर्तते । चद्रस्य गम्यमगतिरपि मन्दमन्दमुपचीयते  
[ जन्म संस्कार. तस्मात्कालान्तरे मध्यमचन्द्र उच्चपातयोश्चमहदतरमुत्पद्यते । सम्प्रतितु-  
अस्माकीनानि नाक्षत्रमानान्यपि उच्चगतिरिति सिद्धायतएव मदकेन्द्रगतिरुत्पन्नान्यभवन् । यथाचोक्त  
भास्कराचार्येण " यस्मिन्दिने गतेः परमास्त्वदृष्ट तत्रदिने मध्यमएव स्फुटग्रहो भवति तदेवोच्च-  
स्यान यत उच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमास्त्वमिति " गतिमतस्योच्चस्यरिपये " अस्यचल-  
न वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यत " इत्यतोऽप्यनाक्षत्रवन् स्थिररामुक्तम् । इदमपि तस्मिन्काले  
उच्चस्य वास्तविकगतेरनुपलभादेव नाक्षत्रस्थाने मदकेन्द्रोत्पत्तुल्याः भगणा उक्ता आसन्स्य ।

८०. एवमेव चद्रफल ( २° ५१' ) अत ( ५° ५१' ३५" ) आसीत् । तच्चसम्प्रति  
चद्र फल में ४१८१ ( ६° १७' ) वर्तते किंचतस्मिन्सूर्यनार्यिकगतिफलजन्योगतिसंस्कारः ।  
सूर्यस्य भूमिश्चाकर्षणभवौ तिथिच्युति संस्कारौ पातभयश्च परिणतिसंस्कारः  
एव पच संस्कारैः सह मदफल साधितम्यस्पष्टचद्रस्य भूमध्यदृश्यस्थान निश्चीयते नत्वेकेन मदप-  
लेन । एतत्तुपचागसाधानार्थमेव । ग्रहण दैत्युत्तोरचक्रादश संस्कारसंस्कृतेन स्पष्टतर चंद्रेणैव  
नताश नति लब्धनादीना भूपृष्ठीय दृश्य मानाना सूक्ष्मतरं भाव्यत्वात् निश्चयो भवति । तुरीय  
यत्रादौ स्थूलेन भिद्यमानत्वात् ।

८१. अतएवात्ताभ्या स्पष्टरत्रिचद्राभ्या द्वादशप्रभागान्तरमितैका चाद्रममी कला तिथि-  
तिथियों में ४१८१ शब्देनोच्यत एव ( १२+१५=२७ ) पचदशीकला पौर्णिमा,  
अमातुषोडशी शून्यस्थानीयाकला भुवारया अस्याः निश्चयस्तु " यदुक्त  
यदहस्त्वैव दर्शनं नेति चद्रमा ॥ अनयापेक्षयाहोवमिति " काव्य यनम्मारणोक्तबंद्रादर्शनकाला  
देव भवति । तदनुसारेण एवैकलायाः उन्नताशदिगशाभ्या छ ययानतकालाशत्रयेनच याम्योत्तर-  
लघने यथा भूगर्भायमान दृश्य स्यात्तथा स्पष्टक्रडारूपा तिथि निश्चिन्य तस्मिन्नेव सर्वाणि  
( दृष्टार्थादृष्टार्थ ) कार्याणि कुर्यादिति ( ३६-४१ स्त-पूतवत् ) ३. पर्यचनेरेवोपपन्नत्वाद्वाणवृद्धि-  
रसक्षयवृद्धिक्षयौवदृष्टापचम्यातिथोर्वस्तु परममानतु च कृष्टिर्दृष्टशक्षयमेतमूक्षगाणेतनमिष्यति

८२ यत्तु निर्णयसिन्धौ कमलाकरेण विद्वातिथि निर्णये पैठिनस्युक्त प्रमाणेन

तिथियों के लिये धर्म-शास्त्रीय प्रमाण ।  
“पक्षद्वयेऽपि तिथयः स्तिथिं पूर्वा तथोचराम् ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योयं विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ इत्यत्र सामान्यतया त्रिमुहूर्तात्मको वेध उक्तः । किंच ‘पूर्वातथोचरा’ मिति कथनेन त्रिमुहूर्तात्मकः क्षयस्त्रिमुहूर्ता वृद्धिश्च संपद्यतेऽत्र परमस्थाने एवेति चेन्न तस्य सामान्यतया निर्देशात् ।

८३. किंच तिथि विशेषस्य पूर्वापरवेधविशेषप्रसङ्गेन तिथेर्वृद्धिक्षययोर्मानमप्युक्तं स्कंदेन ।

तिथिके वृद्धि और क्षय का परम मान ।  
“नागां द्वादश नाडीभिर्विद्विक्पंचदशभिस्तथा ॥  
भूतोऽष्टादश नाडीभिर्दूपय स्युभये तिथिम् ॥ १ ॥ ॥  
+ वृद्धि क्षयौ स्तः परमौ तिथौ सदा व्यर्धारसाः ॥  
सार्धरसा ६॥ अत्र नाडिकाः ॥  
सनेमिशैला ७ विपदोष्टमा ७॥ स्वथा निरग्निरंघ्रा ८॥  
सपदा नव ९ क्रमात् ॥ २ ॥ ‡

द्वयोरैकवार्धः = यथाहि- ( १ ) नागः पचमी तस्या व्यर्धारसा, सार्धरसाश्च नाडिकाः ( ५॥ ) + ( ६॥ ) = १२ द्वादश तस्या तिथौ परमौ वृद्धिक्षयोस्तः । ( २ ) दिक् दशमी तस्याः सनेमिशैला वृद्धिः, विपदोष्टमा क्षय एव ( ७॥ ) + ( ७॥ ) = १४ पचदश पच्य-वृद्धिक्षयरूपा । तथैव ( ३ ) भूतश्चतुर्दशी तस्या निरग्निरंघ्रा A वृद्धिः, सपदा नव क्षयः एव ( ८॥ ) + ( ९॥ ) = १८ अष्टादश नाट्य । अमूभि उभयेपार्धे तिथि दूपयति भिन्नत्वात्पर्यः । अन्यथा क्षयवृध्यनुसारेण प्रोक्तस्य वेधस्य गणितेनात्मभयादुक्तचोक्तस्य प्रमाणस्य वैयर्थ्यापत्तेः । द्वितीयस्य प्रमाणस्य निर्वचनसंगत्या उपर्युक्तार्थ एव बोधनीति । नचाद्यस्यान्तेनान्यस्याद्येनान्योऽन्याश्रयः भवति किंच प्रथक्पृथगिति प्रोक्तप्रमाणयो रतंत्रयेणैवामुयोः सार्थकता, परस्परं सप्रधरादेकवाक्यताच बोध्यते ।

८४ नचोक्ताभ्यां स्कादोक्त प्रमाणभ्यां प्रोक्तानु निधिषु वृद्धिक्षयरशेन प्रत्यक्षतया ज्ञेयतिःशास्त्रविरोधापत्ति रितिवाच्यम् । उक्तवचनाभ्यामेतार्थप्राप्त्या तिथेर्भागानुसारेण ( १ ) तस्यादिनगति ( २ ) चंद्रदिनगतिरतथाच ( ३ ) चंद्रस्यचिंच, ( ४ ) क्षितिजं च न ॥ सूक्ष्मपरिमाणेन सह दृग्गणि-तस्य तुल्यत्वमवनाद्यास्य ज्येति शास्त्रानुद्धत्वंभय येत्येतेऽधस्तन समीकरणेनान्यमेतार्थोपप्रदर्श्यते

\* उक्त श्लोकस्य चतुर्थ्यागण्यु निर्णयसिधौ (प्रथमपरिच्छेदे तिथिनिर्णयप्रकरणे) “दूपयुक्तमिति” मितिपठितः । तदनु युग्मतावकाशेव विषयकर्मभेदेन उदीमत्या ध्वंशनिच उत्तरमेव तिथि दूपयति । पूर्वा तिथि वेधेन पुद्गेत्यर्थः

‡ पुण्यवचन पंचांगेन मङलरिक्ताने (पृष्ठ १२ मर्गे) प्रणुत श्लोकः उक्तः आदेशेन पठितः

A मनुस्मृत्यनुसारेण रमः = उक्तं मन्देन च वृद्धिचने ।



८६. ननु उपर्युक्त त्रिषष्ठितम ( ६३ ) स्तभोक्ताभ्या त्रयोदश स सप्तदशदिनात्मकाभ्या पक्षाभ्यातिथेरष्टघटी वृद्धिरष्टघटीक्षयश्च प्रतिपादितस्तथाचात्र उपर्युक्तस्काद प्रमाणाभ्या पादे न-  
नवघटीवृद्धिः सपादनवक्षयश्च प्रतिपादितोननु . अथ वृद्धिर्दशक्षयश्चेत्यत एतदेव परमावधौ  
परिमाणमिति चेत् । उक्तम्यास्कदपुराण वचनाभ्या पचम्यामेव चाणवृद्धि रक्षयासन्नमभवे-  
न्ययोर्दशमां चतुर्दश्यास्तु सप्ताष्टमितौ, पादोनाधिके नममितौ च दर्शितौ ते सर्वे चद्रफल  
दीर्घवृत्त जन्माएव ऋमेणोक्ता । किंच सूर्याकर्षण भयेन गनिसंस्कारेण, सूर्यमदफलार्पणोत्प-  
न्नेन द्युति संस्कारेण विक्षेप जय परिणति संस्कारेण संस्कृतास्त्युस्तदा पैणिमान्ते अमान्तेवा  
केंद्रोपकरणापरमफलेषु तिथे परम वृद्धिक्षये नवदशघटं मिते एव सिद्धयेत इत्युपपन्नमिदम् ।

८७. अहोभाग्य भारतवर्षस्य यत्प्राचीनतमत्रैदिक कालादेव ध्रुतिस्मृतिदृष्टारोहमतत्त्वात्  
वेद और ज्योतिष का एक स्वरूप, त्रयस्य सर्वे एव ज्योतिर्विदो ज्योतिस्तत्त्वानामाविष्कर्तारः सुपर्णचि-  
त्वादिरेषेण तत्कालीनपचागाना प्रणेतास्तु विमलविभासित  
विज्ञाना महाविद्वान्स आमन्स । चित्तिचयनेवा तदतर्गत देवता-  
म्यर्चनादिभिरेव तदा साप्रतिपदपचागवहुपयोग आसीत्तदर्थचेदमुक्त कुडगराम बाजपेयेन  
“ रुद्धिर्भवेद्गणितं यदिवेत्तिसुहृन् सुहृन् न वेद यदियोऽस्य परं कच्छासिम् ॥ विद्वान्द्वयं न विवि-  
धागम पंडितो न्यस्तज्ज्ञानवा नपिसुपर्णचितौ पटु क ॥ १ ॥ ” इत्यत एवास्माकं ज्योतिः  
शास्त्रस्य धर्मशास्त्रेणागामीभावा वर्तते.

८८. उतच विद्याना यानि स्थानानि तांश्चैव धर्मस्य स्थानानि स्मरण भगवतो याज्ञ-  
वल्क्यस्य “ पुराणन्यायमीमामा धर्मशास्त्रागमिभिः वेदाः स्थानानि  
विद्या और धर्म शास्त्र का एक स्वरूप, विद्याना धर्मस्य चतुर्दश ॥ १ ॥ इत्यत एव यदा २ आसा उन्नति  
कर्त्री काचिद्युक्तिस्त्यात् । जिज्ञासो युक्तिरिष्टास्ति यदि ध्रुवमुसा  
रिणी ’ तिसाक्ष्य ब्रह्मसिद्धान्तोक्तं ध्रुवमुसाणि योन्नति स्त्रीकार्या । ध्रुतिविरुद्धा युक्तिस्तु  
आसा अवनति कारिण्येव । प्रोक्तानि च चतुर्दश विद्यास्थानान्यपि नूनं श्रुतिमूलान्यतएव  
तेषा आर्षेव प्रामाण्येव सर्वोपपत्तिरिति न्यते ।

८९. किंच सप्रति केचन विद्वांस सम्यगनवलोकितं चतुर्दशविद्यास्थाना, अत्रिचारित  
प्राचीन ज्ञानां को कुछ अर्वाचीन विद्वान् व र्ना चारते हैं श्रौतस्मात्ताचर रहस्या, अर्वाचीन त्रिस्कथ ज्योतिषका, केवल वेद  
शिक्षाशिक्षणचमत्कार चमत्कृत हृदया, अतिममता नाशत्रगणना-  
पद्धति नि मारा तथैव भारताय ज्योतिष ज्ञानशार्णच मत्वा तस्मिन्-  
स्थानेऽत्र विज्ञानासृज्यनभयमममादिश्चै तयज्ञे परिशोधिताना-  
स्यत्वा किंच के रत्न भूषणैरदृश्यत्वगोलीय गणित साधन भूषा, ध्रुवसूत्राय परिमाणोपरगणा, तदु-  
पयोगिकार्यादिषु पदचतुर्गुणसाक्षत्रगणननैययनभगम ह्यस्य उपसृष्टाभ्या मप्यपत्तिक गणना-  
रुति रोमकसिद्धा तोत्तत्पचसाधनेऽपि विनियोज्य स्मरक धर्मशास्त्रोक्त कार्यादिषु केवल  
सायनमान विधरीकर्तुं प्रयतन्ते ।

९० तदर्थं च ते अर्वाचानभिद्वान् ग्रथानां केंद्रीय मानमपि गण्य तेषां कारणं नात्र मध्ये

सायनमान के प्रचार के लिये आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न ।

परस्परमुच्चापचाद्यभिप्राय, सूक्ष्मासूक्ष्माद्यमयनाशवाद, प्रचरणयुत-  
मयुताद्यभारभस्थानवाद, इदयुक्तमिदमयुक्तमित्यतिवादाश्च पुरस्कृत्य,  
सूक्ष्मफलत्यागेन ज्योतिःशास्त्रहानि भारताय ग्रथाक्तस्थूलफलत्यागेन  
धर्मशास्त्रहानिरित्यादिभ्य उभयपक्षयोः-पाठापादिभिर्धर्मशास्त्र ज्योतिः

शास्त्रयोर्मध्ये भेदमुत्पाद्यउत्तानां विसमाधानां मूलकारणं अयनभागा एतस्य तस्यास्तान्मूढं  
मुत्सृज्य तथैव कदरसूत्रीयनिश्चयारभस्थानचोच्चिद्वय, तस्मिन् स्थले वसतः सपातस्य  
चलस्थानमपि राशिक्रान्त्यारभस्थानेयुद्धं, रवेश्चक्रभोगाऽपूर्णपर्यन्तं पूर्णमंडलरूपं सौरवर्षं  
मत्वा, नक्षत्रराश्यादीनामध्वमुख्यं मेपाद्याह्वातं निशेपैः यौगिकभेदयानां सपातादेव नामानि  
वक्ष्यित्वा, नौकायानोपयुक्तान्मानान्पञ्चांगसाधनं अनुपयुक्तं-यपि युक्तानुक्तं, हिरण्मय  
तारकानपि अयनगत्या प्रतिवर्षं प्रतिदिनं च सञ्चान्य स्थिररुक्ता, तदनुकूलं पञ्चांग  
प्रचरणगततोऽपिमासं तिथ्यादीनां वृद्धिक्षयदिमानानि शयं चिकार्यं स्तरीकृत्यदिनं गणना  
रूपकालन्यमाना-प्रचारयन् इत्यादि प्रयत्ने रीदृशेषु कार्येष्वेव भारतीय ज्योतिःशास्त्रस्योन्नतिं  
दर्शयितुं तीव्रस्मारिकप्रयत्नाश्चर्यकरम् ।

९१ किंच ईदृशस्य प्रयत्नस्यासमाचीनत्वं इत्यतः ५५ ( पुनर्गुण सपातकांठे ) एव

इदं भारतं यं ज्योतिषं  
की उन्नतिं नईं दागे ।

पुलिशाचार्येण प्रतिपादितं तन्नाचोक्तं पौर्णिमाभिदा त—

“ रोमकं महर्गणं पादमर्कमिन्दुं च गणयतां ग्राह्या ॥

चैत्रस्य पौर्णिमास्यां नवमीं नक्षत्रमादित्यम् ॥ ३५ ॥

फाल्गुनेषु विधाय, औता स्मार्ताश्च तदपचारेण ॥

प्रायश्चित्ता भवन्ति द्वि-नो यतोऽतोऽधिगम्येन्म् ॥ ३६ ॥ \*

[ पञ्चसिद्धांतिकाया अध्याये ३ ]

इत्यतः सुधीर्भर्तृपतिमृष्य \* भूमी सम्मता, ज्योतिषाश्च शुद्धा, नात्र तद्व्यतिरेकं सपातयानां  
द्वगणितरूपस्यात्तयातां सकार्यं तथा एव शास्त्रशुद्धतां सूक्ष्मगणितरूपया नाक्षत्रपद्धत्या  
एव परवगप्राप्त्ययुक्तं अत्रत्यपञ्चांगं रचयन् भवनतोऽयत्रापि प्रचरयन् इत्यन्येन पद्धतेन—

गोपालमहिरे इन्दोर नमरे  
सभाया तारीख २४ ११-२९ }

विनात वसन्तदे विद्याभूषण  
दीनानाथ शास्त्री, चुल्लेट

\* अस्य प्रमाणस्य तात्पर्योक्त्याभि “वैदिकानिर्गये पौर्णिमा मिदा तारा निर्गये परवग”  
निरूपितं तत्प्रयोजनीयं श्रीमान्ति ।

पत्र नं० १५

ता. २४-११-२९ ईसवी

## पंचांग शोधन के मूलतत्व.

**लेखकः—** विद्याभूषण दीनानाथ आखरी चुण्डेड अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर

### वर्षमान शोधन.

१ उपरोक्त सस्कृत पत्र में ज्योतिष शास्त्र और धर्मशास्त्रक अनेक प्रमाण देकर शास्त्राय पद्धतिसे सिद्धकर के बताया है कि, शुद्ध एव सूक्ष्म गणित के पंचांग के उपयोग करने में धर्मशास्त्र की बाधा नहीं है। अतएव अत्यन्त प्राचीन ऐदिक काल से तो आजतक वास्तविक स्थिति दर्शक अर्थात् यथार्थ सूक्ष्म गणित का ह्वग्रतीति करके पंचांगकाही उपयोग किया जाता था। और जब १ उससे कालान्तर अन्य फर्क दृष्टगाचर होता था, तब २ सत्संगीन यातिर्निन्द उसे शुद्ध कर लिया करते थे। तथा अन्याय शास्त्रोंकी ज्ञानोन्नति के साथ २ ज्योतिषशास्त्र के मूल तत्वों का यानि इसके शुद्ध सूक्ष्म परिमाणों का जैसे २ शोध लगते गया है। वैसे २ पंचांग शोधन कार्य में उसका उपयोग भी होता गया है। क्योंकि आदिम शोधमें स्थूलता रहना स्वाभाविक बात है। किंतु कालाधवि गणित में सुधारणा हाते हाते अन्त्य में शुद्ध सूक्ष्ममान निश्चित होजाते हैं। तब बुद्धिमान पुरुषका कर्तव्य है कि समिश्र परिमाणों से शुद्ध परिमाणों को अलग अलग करके शुद्ध गणिमणों को ही उपयोग में लावे।

२ इस प्रकार की प्रणाली चलते हुए पहिले चंद्र के ऊंच और पात [ राहु ] का शोध लगा, तब उसके भगणभी कराए ९ व १८ वर्ष में पूर्ण होनेवाले वर्षमान शोध की यानी थोड़ेही वर्षों के होनेके कारण चंद्रोच्चपात की गतिभी यथार्थ निश्चित होगई, इसलिये चंद्रकी मध्यम गतिभी शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के अनुसार सूक्ष्ममानका निश्चित की गई। इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के ऊंच और पातों का भी शोध हमारे पूर्वजोंने लगा लिया है। किंतु इन उच्च व पातों के भगणों का काल बहुत बड़ा याना लाखों वर्षोंका होने। इन उच्च पाताक सूक्ष्म गति का यथार्थ पता अभीतर लगा नहीं था। इसीसे उन ग्रहोंके भगण अर्थात् प्रदक्षिणायात्र [ वर्षमान ] भी उच्चगति समिश्र यानी मंद केन्द्र के अक्षर के कटे गये है। इसी प्रकार फलमस्फार भा कुंड स्थूल हैं। इसलिये ग्रहोंके प्रत्यक्ष वेध में बहुतहा अंतर पड़ता है। किंतु अब हमें सब ग्रहोंके उच्च व पातों का अगर उनके गति का तथा ग्रहोंकी गण्य। गति पत्र उनके परम फलादिके सूक्ष्म परिमाणों का पता लग गया है। इसीसे हमारा पवित्र कर्तव्य है कि इन सब परिमाणों को सामग्री रीति से शुद्ध व मिश्र करके जलग अलग प्रतला दें। ताकि पंचांग का गणित

शुद्ध एव सरल होजाय । क्योंकि ग्रहों के भगणां [ वर्षमान ] को शुद्ध बतला देनाही पंचाग गणित का मुख्य कार्य है ।

३ लेकिन ग्रहोंके भगणां ( वर्षमान ) को शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के तब तक नहीं बता सकते, जब तक हम यह न बतादे कि इनके वर्षमान किस पंचाग गणितमें वर्षमान शोधन ही मुख्य कार्य है, तरह उच्चगति संमिश्र हुए हैं, चंद्रका वर्षमान शुद्ध कैसे किया गया है और हमारे पूर्व ग्रथकारों ने इसके सबध में क्या कहा है । क्योंकि हमें उसी प्रणाली का अनुकरण करके पंचाग का शोधन करना चाहिये कि हमारे सर्वमान्य ग्रथकारों ने जिसे अंगीकृत किया है ।

४ इस विषय के संबंध में भास्कराचार्य ने [ शाके १०७२ में ] बहुतही उत्तम प्रकार से वर्णन किया है । और गणेशदेवज्ञादिने [ शाके १४४२ ] वर्षमान के संबंध में अपने २ ग्रंथोंमें उमे गणित द्वारा मान्य किया है । इसलिये वह पक्ति इस प्रकार है कि उसमें मध्यमगति आर चंद्रोच्च के संबंध में लिखा है कि “ एव प्रत्यहं वेधं कृत्वा स्फुटगतयो विलोभ्याः । यस्मिन्दिने गते परमाल्पत्वं दृष्टं तत्रदिने मध्यमएव स्फुटचंद्रोभवति तदेवोच्चस्थानम् । यत् कच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमाल्पत्वम् । ततश्च तस्मादिनादारभ्यान्यस्मिंश्चंद्रपर्यये प्रत्यहं चंद्रवेधात् तथैवोच्चस्थानं ज्ञेयम् । तच्च पूर्वस्थानादग्रतएवभवति । यत्तयोरंतरं तज्ज्ञात्वानुपातः क्रियते । यद्येतावद्विरतरांदिनैरिदमुच्चयोरंतरं लभ्यते तदैकेन विभित्तिफलं तुल्यगतिः । तयानुपातात् कल्पभगणाः ।

( सिद्धान्तशिरोमणि प्र. ग. मध्यमाधिकार श्लो. ६ वामना देखो )

अर्थात् “ नित्यप्रति वेध लेते हुए चंद्रकी दिन गति को देखते जाना, जिस दिन समस्त धोड़ी गति दिमें उसदिन मध्यम चंद्र ही स्पष्ट चंद्र होता है । वहा उच्चस्थान है क्योंकि जब उच्च के समान ग्रह होता है तब फलका अभाव और उत्तरी गति परमल्प होती है । उसके बाद दूसरे उच्चस्थान जानेतक नित्यप्रति चंद्रनेत्रद्वारा उभी प्रकार उच्चस्थान को निश्चित करे तो वह पहिले के स्थान से आगे के स्थान पर होता है । उक्त दोनों उचातर के दिनों के गणित से-उच्चगति’ भगण और कल्पभगणों को निश्चित कर लेना चाहिये । ” इसीतरह शरके अभाव स्थानमे पात को निश्चिन कर लेना कहा है ।

भगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिताः । ” ( सि. शि. म. वातनां श्लो. ६ देखो )  
 अर्थात्— “ सूर्यादि ग्रहोंके उच्चता चलन मैरुहों वर्ष में भी दृष्टिगोचर नहीं होता।  
 ऐकिन आचार्योंने चंद्र के मन्दोच्चके सदृश सूर्यादिकों के उच्चता गति भी अनुमान से  
 कल्पित की है । वह इस प्रकार होता है कि जितने भगणों से सांप्रतिक अहर्गण या वर्ष  
 गण के गणित द्वारा के वेधसिद्ध उच्च स्थान आसकें उस युक्ति या कुट्टक गणितसे उच्चके  
 तथा इसी तरह शाशवाव स्थानके पताके भगण कल्पित किये हैं ।

६ इस कथन से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि; भास्कराचार्य के समय (शके १०७२)  
 तक चंद्र के शुद्ध नाक्षत्रमान की मध्यमगतिका तो पता लग गया  
 उच्चगति मध्यमगति में था क्योंकि चंद्र के उच्चपात के भगणादिमान सूक्ष्मपरिमाण के  
 मिलने से मंद मंदप्रस भगण बढ़े गये हैं तुल्य निश्चित हो गए थे किंतु सूर्यादिके उच्चगर्गण और भौमादिके  
 पातभगणयुक्ति से कल्पित किये हुए हैं अतएव वह स्थूल रहने के  
 कारण इनग्रहोंके भगण परिमाण भी उच्चपात गति मिश्रित कहे गए हैं और आजतक यह  
 वैसे ही उपयोग में आए जाते हैं जैसाकि भास्कराचार्य ने ( आपके साम्प्रतिक मानके तुल्य )  
 बतलाए हैं ।

८ \* कोष्ठक १ के दो भाग तथा दोनों भागोंमें पाच पाच कालम हैं । पहिले कालम  
 ( पंक्ति ) में शुद्धमद केन्द्राय याने उच्च भगणतुल्य, पांचवे कालम...  
 कोष्ठक परिचय में शुद्धनाक्षत्राय परिमाणके और २-३-४ कालम में सौर, आर्य व...  
 ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त ग्रंथों में लिखे ग्रहों के भगणदिन बतादिये हैं । तथा दूसरे भाग में उर्वी  
 क्रम से केन्द्रांतर — उच्चगति और नाक्षत्रांतर — शुद्ध परिमाण से अन्तर अलग २ बता-  
 दिये हैं ।

९ इसके देखने से आपको मालूम हो जायगा कि तीनों सिद्धांत ग्रंथोंके चंद्र के  
 तात्पर्य का अन्वेषण. गणनो शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के तुल्य हैं । इसलिये केन्द्रान्तर  
 चन्द्रोच्चगति के तुल्य वास्तविक होंगे मध्यमचंद्र, चंद्रकेन्द्र और  
 पातांपकरण सूक्ष्ममान के कहे गए हैं । और बुध शुक्र व मंगल के भगण स्वत्वान्तर से मंद-  
 केन्द्र तुल्य होकर गुरु व शनि के भगणों में कुछ थोड़ा अधिक अन्तर है किंतु वह उनके बड़े  
 भगणों के हिसाब में उन ग्रंथों के रचना काल में गुरु शनि के प्रख्यात आकर्षण संस्कार  
 कारनपर मंदकेन्द्राय गान के तुल्य ही हैं ।

\* \* : शक्यभाव से परतन यह कोष्ठक १ आगे के शृं में लिखा गया है । उक्त पदपर बाद  
 में कलम ८ को पढ़िये तो उधने अर्थ को स्पष्ट गति से समझ सकेगे.



१०. संपूर्ण भारतीय ग्रंथों में जहां जहां ज्योतिर्गोल का वर्णन है वहां वहां आकृति विशेष वाले नक्षत्रों से उन्नी गतिस्थिति बताई गई है। जैसा कि वेद में— चित्राणिसाकं दिविरोचनानि अहानिगीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥ अथर्व संहिता ( १९७ ) तैत्तिरीय संहिता ( ४४-१० ) तै. ब्रह्मण ( १-५-१ ), ( ३-१-८-६ ) तांड्य ब्रा. ( ११-५ ) इस प्रकार अनेक स्थल में आकृति द्वाग नक्षत्रों के नाम कहे गए हैं इतना ही नहीं तो तै. ब्रा. ( १-५-१ ) में २७ नक्षत्रों के आगे पीछे दिखनेवाले आकृतिरूप तारकापुंजों का ( २७।२७ ) वर्णन भगोलीय दृश्य के अनुरूप किया है।

११. वाल्मीकि रामायण में—शुभक्षेत्रे ह्येस्त्वाते तारेचोतरास्तुने ॥ सीतामुखे समुत्पन्ना सीताभीरिव रूपिणी ॥ २ ॥ ( बा. ६६-१४ टीका में पद्मपुराणोक्ति ) यहा भूतपको शुनासीर कहकर स्वाती के समीपवर्ति क-याशि के चित्र के संबंध में कहा गया है “मघाष्टममहोवाहो वृत्तीयदिवसे प्रभो ॥ फल्गुन्यामुत्तरे राजन्मृगस्मिन्वैवाहिकं कुरु-॥ २४ ॥ ( बा. कांड सर्ग ७ ) राज्ञः पुत्राश्च चत्वारः ॥ गुणवंतः सुरुपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः ( बा. कां. १८ १६ ) तस्मात्त्व पुण्ययोगेनयौवराज्यमवाप्नुहि । ( अयोध्या ३-४१ ) अवष्टब्धचमेराम नक्षत्रं दारुणमहैः ॥ आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्यागारकराहुभिः ॥ १८ ॥ अद्यचंद्रोभ्युपगमस्तुप्यात्पूर्वपुनर्वसु ॥ श्वःपुष्ययोग नियत वक्ष्यते दैवचित्तकाः ॥ २१ ॥” ( अ. कां. ४-२१ ) इस प्रकार दृश्यनक्षत्राकृतिपर चन्द्रादि ग्रहोंकी स्थिति कही गई है. इतना ही नहीं तो “विष्णुपादच्युतां दिव्यां ॥ शंकरस्य जटाजूटात् भ्रष्टां सागरतेजसा” ( अ. कां. ५०-२४ ) विष्णुपादच्युत यानी श्रवण नक्षत्र निकट से बहती हुई आकाशगंगा दक्षिण गोलार्ध में शंकर जटा आर्द्रा नक्षत्र को स्पर्श कर दक्षिण तर्फ सागर के माफक जाती हुई दिखती है।

१२. इसादि जो वर्णन है सो स्थिर ताराओं के आकृति विशेष के उपलक्ष्य में कहा गया है। तथा इसी के द्वारा महीनों के चैत्रादि नाम कहे गए हैं। सो यदि हम नाक्षत्रमान को छोड़कर कैद्रीय या सापतिक वर्षमान को लेंगे और उच्चस्थान से या संपात से राशिचक्र का आरंभ मानेकर तदनुसार नक्षत्रों को मानें तो इनके अन्वर्थक नामका ही व्यवय नहीं तो; आजतक का सब भारतीय शोध व इतिहास का पता जो नाक्षत्रमान से लगता है; प्रायः नष्ट हो जायगा। और सब धर्मशास्त्रीय ग्रंथ निरुपयोगी (व्यर्थ) होजावेंगे। इसलिये उक्त परंपरा को देखते हमने भी शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान का ही अवलंब करना चाहिये। केवल इनके संबंध के कार्य साधन के लिये नाक्षत्र में ही उच्चगति व अयनगति का संस्कार करके उसके द्वारा हम इन परिमाणों का साधन भी कर सकते हैं।

+ ऐसा ही भारत में गाँ ‘नक्षत्र सप्तशीर्षाम माति तद्वहि दैवतं ? ( वनपर्व अ. २३० श्लो. ११ ) कहा गया है.

## वर्षमान शोधन के लिये

७ मौसमप्रसन्न सिद्धलित्त भगवत् ३ अंतर्गत त्रैद्रीय और नाक्षत्र परिमाणों के हरएक पहलू को बतानेवाला कोष्टक ।

प्रद्वीक वर्षमान अर्थात् यणोंके दिन = गतिचक्र से परिभ्रमण के दिवस.

मर	शुद्ध त्रैद्रीय मान से	सूर्य सिद्धांत से	आर्य सिद्धांत से	ग्रहगुप्त सिद्धांत से	शुद्ध नाक्षत्र मान से
सूर्य	दिन ३६५.२५९७१	दिन ३६५.२५८६८	दिन ३६५.२५८४४	दिन ३६५.२५८४४	दिन ३६५.२५६३७
चंद्र	७७५५४५५	२७३७१६७	२७३७१६७	२७३७१६७	२७३७१६७
भीम	६६६.९९६५	६६६.९९२७	६६६.९९२७	६६६.९९७९	६६६.९९७९
सुग	८७.९९६७	८७.९९६९	८७.९९६९	८७.९९६९	८७.९९६९
शुक्र	४४३२.८५९२	४४३२.२७९२	४४३२.२७९२	४४३२.२७९२	४४३२.२७९२
शुक्र	२२४७००६	२२४.६९८५	२२४.६९८५	२२४.६९८५	२२४.७००८
शनि	१०७६२.९४६२	१०७६५७७३०	१०७६६.०६४७	१०७६६.८१५२	१०७६६.२१९८
बुध	चंद्रसंग्रहमान	३३३२.०९३७	३३३२.०९३७	३३३२.०९३७	३३३२.०९३७
राहु	चंद्रसंग्रहमान	६७९४.३९९८	६७९४.७४९५	६७९२.२५४०	६७९२.३९९८

[illegible]

१३. उक्त वर्षमानों में सूर्य का वर्षमान (भगण काल) बड़े महत्व का है। क्योंकि अन्यत्र ग्रहों के परिमाण सौर वर्षमान के आधार पर ही निर्भर हैं। इसलिये प्रस्तुत विवेचन में साम्प्रतिक वर्षमान का विचार करते हुए सौर वर्षमान की शुद्धता और विशेषता को बतलाते हैं।
- सौर वर्षमान के निर्णय में सांवातिक वर्षमान का विवेचन.

### कोष्टक नं० २

(अ) महायुग के ४३२०००० सौर वर्ष (भगण) मानकर उसमें नीचे लिखे प्रकार केंद्रांतर और अयनांतर के दिन होते हैं।

एक महायुग के.	सावन दिवसों में.	केंद्रांतर	व	अयनांतर	दिन.
१ शुद्ध मंद केंद्र	१८७७९२१९५७	—००००	॥	+७३९८४	॥
२ सूर्य सिद्धांत	१५७७९१७८२८	—४१२९	॥	+७१४५५	॥
३ आर्य सिद्धांत	१५७७९१७९००	—४४५७	॥	+७११२७	॥
४ ब्रह्म सिद्धांत	१५७७९१६४५०	—५५०७	॥	+७००९७	॥
५ शुद्ध नाक्षत्र	१५७७९०७४८०	—१४४७७	॥	+६११०७	॥
६ शुद्ध सायन	१५७७८४६३७३	—७५५८४	॥	+६००००	॥

(आ) उक्त परिमाणों के आधार से कल्प (४३२००००००० वर्ष) में उच्च और अवन के भगणादि मान तथा उनकी वर्ष गति सूक्ष्म गणितद्वारा निम्न छिन्नितानुसार निश्चित होती है।

कल्प में.			सौर वर्ष में रवि के दृश्य की	
सूर्य	व्यास	दृश्य भगण	अंशानुक्रमक गति	चिह्नित गति
१ मं. केंद्र	००००००	०००००	०००००००००	०००००
२ सूर्य सि.	४०६९४४	११३०४	००००९४१००	३३९१२
३ आ. सि.	४३९२७२	१२२०२	००१०१६८३	३११०१
४ ब्र. मि.	५४२७७२	१५०७७	००१२५६४२	४५१३१
५ नाक्षत्र	१४०६८६०	१९६१५	००३३०२९२	११८९०५
६ सायन	७४४९६२४	२०६९३४	००६७२४४५०	६२०८०२

7037

## ( ६ ) शुद्ध परिमाण से गत्यग गति

फलप में		सौर वर्ष में	
अयन के	भगण	अयनांश गति	अयन, गति विकला
१ मं. केंद्र	२०६९३४	+ ०१७२४४५	+ १२०८०२
२ स. सि.	१९९६२९	- ०१६३०२२	५८६८७८
३ आ. सि.	१९४७३०	- ०१६२२७५	५८४१९०
४ म. सि.	१९१८५६	- ०१५९८८०	५७५५६८
५ नाक्षत्र	१६७२९६	- ०१३९४१३	५०१८८८
६ सायन	००००००	- ०००००००	००००००

( ६ ) उक्त तीन सिद्धांत और तीन शुद्धपरिमाणों के एक सौर वर्ष में केंद्र और अयन के वर्ष गति के अंतर दिन

ग्रहों के	सौर वर्ष के दिन	केंद्रीय वर्ष गति	अयन वर्ष गति के दिन
१ मं केंद्र	३६९२३९७१२६	— ००००००० + ०१७४९१०	
१ स. सि.	३६५०५८७५६५	— ००००२९९७ + ०१६५३०३	"
२ आ. सि.	३६९२५८६८०६	— ००१०३१६ + ०१६४४४४	"
४ म. सि.	३६५१५८१३५५	— ००२७४७ + ०१६२२१३	"
५ नाक्षत्र	३६५२५६३६५	— ००३३५११ + ०१४१४४९	"
६ सायन	३६९२४२२१६१	— ०१७४९६० + ०००००००	"

१४. कल्प ७ कोष्टक १ में कहे हुए सूर्यभगण के केन्द्रान्तर और नक्षत्रान्तर को तथा उपरोक्त कोष्टक २ ( अ-आ-इ-ई ) में भगण उच्च, केंद्रगति व अयनगति को परस्पर तुलनात्मक पद्धति द्वारा देखने से निश्चित होना है कि सौर-अर्ध-वर्षसिद्धान्तों के वर्षमान यद्यपि नाक्षत्र मानके उपलब्ध में करे गए हैं किंतु भगण प्रद के स्थान में गति फलामात्र स्थानात्मा मंद केंद्र कहा जाने में उसमें उच्चगति मिश्रित हो गई है। इसीलिए हमने इसे मंदकेंद्रमान यह बड़ा शब्द नहीं लगाकर मंद केंद्रीय कहा है। किंतु उच्चसिद्धान्त ग्रहों के वर्षमान अयन सांख्यिक नहीं हैं। क्योंकि अयन संस्थान में इनमें बहुत अंतर है। अतएव जबकि हमारे पार्श्वीय ग्रहों के वर्षमान शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के अर्थ में कहे गए हैं तो अब हम उक्त परिमाणों से शुद्ध नाक्षत्रांश परिमाण के मा बचकरना है यह गणित से स्पष्ट करके कोष्टक द्वारा बताते हैं.

7037

## कोष्टक ३.

१५ सिद्धान्त ग्रन्थों के वर्तमान से शुद्ध नाक्षत्र वर्ष और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष से सिद्धान्तोक्त वर्तमान दर्शक कोष्टक—

एक वर्ष के सावयव दिन	दिन के घातांक	अंश के घातांक	
१ मं. केंद्र.	०००३३५११३३	७५१५१११७	७५१८८९१५
२ सू. सि.	०००३९५३७०	७३७९३७२६	७३७१०७७४
३ आ. सि.	०००३१९४४४	७३६५३८४०	७३५९०८८८
४ म. सि.	०००२०७३८८	७३१७३१८५	७३११०९३३
५ नाक्षत्र	०००००००००	००००००००	००००००००
६ सायन	००१४१४५१११	८१५०६०६४	८१४४३११२

एक वर्ष की अंशात्मक गति	तिथिगति घातांक	स्वाभाविक तिथि	विकलागति	
१ मंद केंद्र	०००३३०२९	७५३२०४१९	०००३४०४४	११८९०५
२ सू. सि	००२३६०९	७३८६२२२८	००२४३३५	८४९९२
३ आ. सि.	००२२८६०	७३७९२३४२	००२३५६३	८२२५८
४ म. सि	००२०४६९	७३२४१५८४	००२१०९४	७३३७५
५ नाक्षत्र	०००००००	००००००००	०००००००	०००००
६ सायन	०१३९४१६	८१५७४५६६	०१४३७००	९०१८९१

१४ जय कि वेद, वेदांग, तत्र और सिद्धांतादि संपूर्ण भारतीय ग्रन्थों में नाक्षत्र य भगणोंद्वारा यानी अचछ-ताराओं से पंचांग माधन X रहा है।  
 नाक्षत्र परिमाणका पर-  
 पत्र प्रामाण्य. तार का पुंजों के अक्षमुग्यादि आदिति दिशेय से अश्विनी आदि  
 नाक्षत्रों के और पौर्णिमात बालमें चित्रादि नाक्षत्रों के योगमें चित्रादि  
 महीनों के, इसीतरह गेपदि राशियों के अन्तर्धक नाम कहे गए हैं. इस प्रकार भारतीय  
 ग्रन्थों के परपर प्रामाण्य से सिद्ध होता है कि साकि आनतरक के पंचांग [माधन] शुद्ध नाक्षत्रों  
 गणनासे ही किये जाते थे। इसलिये नाक्षत्र गणनाही मुख्य है।

X नाक्षत्रों के ही आकृति की गणना हो सकती है ऐसा बद म डिग्रा है " सलित्वा  
 इदमंतरासीत् । यदंतरम् । तत्ताराकाणां तारसंख्यम् । यो वा इदमन्ते अमुं मन्त्रा नभो तन्मन्त्र-  
 प्राणां नाक्षत्रम् । देवगुह्यै नाक्षत्राणि । येषु वेद गृह्यमन्त्रा । यानिवाहमानि पृथि यार्थप्रमाण  
 तानिनभत्राणि । तस्मादभ्युपगम्यन्ति न सत्यमयजेत । यथायमदं कुर्वन् तददेवगत् ।"  
 (तेजोविपमाला १-५-२) इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

१७ गोल गणित से देखा जायतो नाक्षत्रसौर वर्षमान के यानी अचल आरंभ स्थान के बिना केंद्रीय या अयन सांपातिक मानसे शास्त्रशुद्धता आ नहीं सकती क्योंकि यह चलविन्दु होनेसे इनके गति में कालान्तर अन्य फर्क पडना स्वाभाविक बात है ।

### आकृति नंबर १ देखिये.

१८ आकृति १ के देखने से आपको मालूम हो जायगा कि जिस अचल तारेपर मध्यम सूर्य की स्थिति थी फिर दूसरे वर्ष में उसी तारेपर आने से गणित शास्त्र से शुद्ध ३६० अंश का चक्र भोग पूर्ण होता है । किंतु उतने समय में मंद केंद्रीय +११"९, सूर्य सिद्धान्तीय +८"९, आर्य सिद्धान्तीय +८"२ और ब्रह्मसिद्धान्तीय मान +७"४ विकला आगे बढ़ जाने से तथा अयन सांपातिक मान -९०"२ विकला पीछे हट जानेसे शुद्ध चक्र भोग ३६० अंशों से इनका वर्षमान ज्यादा कम होजाता है । तथा अयन गतिका कालान्तर संस्कार - (०°००'११"८९ वर्ष गण) - बहुत बड़ा होनेसे सौपचास वर्ष मेंही सायन वर्षमान और अयनगति में बहुत अंतर पड जाता है । इसलिये उक्त चल परिमाणों से निश्चयात्मक शुद्ध परिमाण समझने में बड़ी कठिनाई जाती है । इसमें दीर्घकाल के तथा सूक्ष्म परिमाण के गणित करने में गोलीय शास्त्र से यह अशुद्ध हैं । ×

१९ किंतु यहां ऐसा प्रश्न खड़ा होसकता है— "जब कि मंदफल, मंदकर्ण, रविमध्यशर दिनगति और शीघ्र फलादि भूगर्भीय परिमाणों की समानता मंदकेंद्रीय वर्षमान द्वारा." तथा - "ऋतु अयन, उदयास्त, नत, अग्र, दिनमान और छत्र साधनादि भूपृष्ठीय परिमाणों की समानता सायन वर्षमान द्वारा- से ही प्राप्त होसकती है । और वेधक्रिया से इनका संपातविन्दु भी निश्चित होसकता है । तब पंचांग गणित में इनके ही वर्षमान को मुख्य स्थान क्यों नहीं देना चाहिये ? क्योंकि इसी मानका विशेष उपयोग होता है । इसलिये इसमें यदि कुछ स्थूलता आगई हो सो सूक्ष्मगणित के वेध द्वारा निहाल कर इसे शुद्धरूप कर सकते हैं । और विलोम गति का संस्कार करके दूसरे परिमाणों को भी निश्चित कर सकते हैं.

२० इस प्रश्न का थोड़े से में यही उत्तर पर्याप्त है कि "सूर्य चंद्रादि ग्रहों का आकाशीय स्थान निर्देशका नाक्षत्र मान ले चाहे जब हजारों ताराओंमें से चाहे तंत्र वेध

× इस नियम का और भी विस्तृत विवेचन देखना हो तो हमारे वेद काल निर्णय ( पृष्ठ ६८-८०, १००-११०, १४३-१५२ ) में देखिये ।

द्राग अंतर नापकर जैसे सरलता से निश्चित होसकता है। वैसे केंद्रीय या सायन मान से हो नहीं सकता क्योंकि यह दोनों परिमाण चल हैं चलविंदु से अचल अनंतपदार्थों को चलित करने में प्रतिदिन का यह द्राविडी प्रणायाम किये बिना सूक्ष्मता आ नहीं सकती। उदाहरण के लिये नाटिकल ऑल्मनाक को देखिये उसमें सायन मान के प्रहादि होने से इसके कुल १५० पृष्ठों में से २२८ पृष्ठ '१५०४ ताराओं को प्रतिदिन का चालन देकर शुद्ध-अचल व निरयण ताराओं को अशुद्ध रूप के 'चल व सायन बनाने में' प्रतिवर्ष प्रकाशित किये जाते हैं। वह दूसरे वर्ष काम नहीं देसकते हैं।

२१ दूसरा उदाहरण घड़ी (वाच) का देखिये : इसके छोटे बड़े चल कांटे घंटा मिनट और सेकन आदि के अंकित अचल चिह्नों के बिना जैसे सूक्ष्मकाल के दर्शक नहीं होसकते हैं। इसी तरह केंद्रीय या सायन मान चल होने से इससे चल प्रहों के स्थान ठीक ठीक निश्चित नहीं होसकते। और शुद्ध नाक्षत्रीय मान के कदेव प्रोत भोग शर अचल नक्षत्रों के एक बार निश्चित करलेनेसे सेकड़ों हजारों वर्ष तक का गणित; यथार्थ व शास्त्रीय रीति से हो सकता है। और इसी नाक्षत्र परिमाण के द्वारा मंदकेंद्रीय तथा सायन मान भी उन २ के गति को धनर्ण करने से यथार्थ निश्चित होसकते हैं। इत्यादि कारणों से तथा पंचांग शोधन कार्य में शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मनिरयण वर्षमानका ही आज तक उपयोग किया गया है इससे; सिद्ध होता है कि हमने भी निरयण मान के गणित द्वारा पंचांग शोधन करना चाहिये।

२२ किंतु यह वर्षमान स्पष्ट सूर्य से नहीं बन सकेगा। क्योंकि उच्च गति और कक्षा केंद्रच्युति के गति के कारण अलग २ समय में मंदफल कम उत्पाद होने से हरएक राशि वंशसाम्य का वर्षमान अलग २ आवेगा। जैसे कि साम्प्रतिक सौरवर्ष शुद्ध सूक्ष्म नाक्षत्र परिमाण से नीचे लिखे कोष्टक ४ में करा राशियों का वर्षमान भिन्न २ रूप का बनता है। एक रूप का बनता नहीं है।

#### कोष्टक ४

२३ शुद्ध नाक्षत्र सौरवर्ष के ३६५ दिन २५ घटी और नीचे लिखे प्रकार पल होते हैं।

मेघ २३.०८४,	कर्क २२.५२६,	तुला २२.७९६,	मकर २३.३६७,
वृष २२.८५५,	सिंह २२.३००,	शुक्ल २३.०२६,	कुंभ २३.३६७,
मिथुन २२.६५२,	कन्या २२.५९५,	घनुः २३.२३२,	मीन २३.२७२,

२४ ऐसी स्थिति में हमें मध्यम मान का ही उपयोग करना चाहिये क्योंकि जैसे अचल नक्षत्रों के बिना एकवाक्यता शास्त्रसिद्धमान में निश्चित ही नहीं हो सकती वैसे ही मध्यम मान के बिना स्पष्ट मान से भी सभी के वर्षमान की एकवाक्यता नहीं हो सकती।



न उसमें शुद्धता आती है। और हमारे ग्रंथों में भगणादि मान मध्यम मानकेही कहे गये हैं। और अद्रप तिथि शुद्धि आदि भी मध्यम मान से किये जाने हैं। इससे यह बात सिद्ध है कि सूर्यादि ग्रहों के वर्षमान मध्यम गति से ही लेना चाहिये।

२२. वराहमिहिर ने (शाके ४२७ में) अपनी पंच सिद्धांतिका (अध्याय ९ व १९ में) में जो सूर्य सिद्धांत के भगणादि परिमाण लिखे हैं; वही मूल सूर्य सिद्धांत है। यह वराहमिहिर के समय में दृक्प्रतीतिकारक स्पष्ट गणित का था। इसलिये इसके उपलब्ध में वराहमिहिर ने “स्पष्टतरः सावित्रः” कहा है। आगे इसीके आधार पर मयासुर या आर्यभट्ट ने नव्य सूर्य सिद्धांत की रचना की है। क्योंकि उसमें इसके सम्बन्ध में कहा है कि—

“शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राहभास्करः ॥

युगानांपरिभेदेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥ (नव्य सू. मि. १-९)

अर्थात् “इस सिद्धांत को पहिले भास्कर (सूर्य) ने कहा था उसीके अनुसार यह बनाया गया है। किन्तु इसमें जो अंतर दृष्टिगोचर होता है वो युगों की भिन्नता से केवल कालान्तरजन्य भेद है”

२३. पंचसिद्धांतिका के आधार पर युगों के परिमाणों को देखना चाहें तो उसमें नीचे लिखे प्रकार युगों के वर्ष कहे गये हैं।

पितामह सिद्धांत में	५ वर्ष का युग	} इन में (चतुर्युग का) कृत त्रेता द्वापर व कलिका उल्लंघन तरु नहीं होकर वर्ष संख्या भी क्रम से बढ़ती गई है।”
यशिष्ठात्रिपराशर तंत्र में	१२ ” ”	
वार्हस्पत्य (बृहत्संहिता) में	६० ” ”	
मूल पौल्लिख सिद्धांत में	१२० ” ”	
” रोमक सिद्धान्त में	१५० ” ”	
” सूर्य सिद्धांत में	८०० ” ”	
वराहोक्त वरणाध्याय (शाके ४२७ में)		
रोमकानुसार	२८५० ” ”	
मूल सौरमतानुसार	१८०००० ” ”	

२७ किन्तु नव्य सूर्य सिद्धांत के अनुसार चतुर्युग मर्यादा का एक युग ४१,२०,००० तथा इसके हजार मंड्याना कल्प लिखा होने में तथा अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते सर्वमध्य गता भ्रष्टा (म. सि. १-५७) इस कथन से सूर्य सिद्धांत के कालसे आज (शाके १८९२) तक २२६५,८३२ ग्रंथ गताब्दों की अपूर्वोक्त बटौमांशी मंड्या होनेमें भगणों के स्वल्पांतर में भी वर्षमान में वेधभिदमाने द्वारा बहुत अंतर दृष्टि गोचर होना है। इस प्रकार का अंतर और दीर्घ गणित करने का परिश्रम मूल सूर्यसिद्धांत से करने में नहीं पड़ना है। इतना ही नहीं तो नव्य सूर्य सिद्धांतकी अपेक्षा मूल सूर्य सिद्धांत के भगण दिवमादि परिमाण शुद्ध

हैं क्योंकि वह शुद्ध नाक्षत्र परिमाणोंके स्वल्पान्तर से तुल्य है। इसीलिये गणेश देवज्ञादि कारण ग्रंथकारोंने मूल सूर्य सिद्धांतोक्त वर्षमान ( ३६५।१५।३।३० ) को तथा भास्वती कारण में सौगेक्त सभी ग्रहोंके परिमाणोंको प्रमाणभूत माने हैं।

२८ इसलिये अब हम मूल सूर्यसिद्धांत के भगणादिकों को ( आधुनिक वैधसिद्ध-मानोंसे बने हुए ) शुद्ध नाक्षत्र परिमाणों से तुलना करके बताते हैं। ताकि इसके देखने से पाठकों को स्वयं मालूम होजायगा कि; वास्तविक मूलमान से इसमें कितना रस्य अंतर है।

सिद्धांतोक्त परिमाण		न्याम.	
[ सूर्य सिद्धांतोक्त भगण दिन		+ संस्कार	= वास्तविक वारमान
		+ अंतर दिन	= शुद्ध नाक्षत्र सौर के दिन ]
बुध	८७.९७	० ००	८७.९७
शुक्र	२२४.७०	०.००	२२४.७०
सूर्य	३६५.२५८७५	-०.००२३८	३६५.२५६३७
मंगल	६८७.००	-०.०२	६८६.९८
गुरु	४३३२.३२	+०.२६	४३३२.५८
शनि	१०७६०.८६६	-०.८४६	१०७५९.२२०
चंद्र	२७.३२१६७३३	-०.००००११९	२७.३२१६६१४
चंद्रोद्य	३२३१.९८७७	+०.५८८	३२३२.५७५०
शुद्ध	६७९४.५२	-१ १३	६७९३.३९

२९ उपरोक्त न्याम में उताई हुई तुलना को देखनेमें निश्चित होता है कि बुध और शुक्र में तो बिल्कुल अंतर नहीं है। चंद्रोद्य, सूर्य व मंगल में थोड़ा अंतर है सो सूर्योद्य गति मिश्रित होने में तथा गुरु शनि में उनके परस्पर के आकर्षण में अंतर पड़ा है किंतु वह भी बहुत थोड़ा है। वन शुद्ध में एक दिनका अंतर पड़ा है, सो फल चतुष्टय माधिन शरद चंद्र के कारण हुआ है। मेभव है प्राचीन काल में यहमान शुद्ध हो किंतु वर्तमान में वैधसिद्ध परिमाणोंका तुलना में जर कि इतना अंतर आता है सो इतना अंतर पड़ा है। वशा न्याम के कारण वास्तविक वारमान में अंतर पड़ा है।

पेसा श्री मुसाफर द्वितीयो कृत् टीका में तथा इसी प्रकार का वराहमिहिर ने दूसरा बीजसंस्कार भगणकाल साधन में कहा है कि चर बीजसंस्कार भंडासत्र परिमाणका होने से तब वह शुद्ध नाक्षत्र परिमाण से दृष्टियोग्य (मध्यम ग्रह साधन में केंद्रस्थान से दृष्टि योग्य) होता था । इसलिये शुद्ध बीजसंस्कार देकर निम्नलिखितानुसार क्षेपक और चर्प की मध्यम गति आती है ।

पंच सिद्धांतिका के क्षेपकों में बीज संस्कार														ग्रहों की वार्षिक मध्यम गति के अंश	
शके ५०७ चैत्र ( वैशाख ) कृष्ण १४ सोमवार को इष्ट ४१० अर्धरात्र कालिक नोरोक्ष क्षेपक + बीज संस्कार = शुद्ध नाक्षत्र क्षेपक दर्शक कोष्टक.														सूर्य	३६०.०००
नियण	सूर्य			चंद्र			चंद्रोच्च			राहु				चंद्र	१३२.७४९
	के	सं	ना	के	सं	ना	क	सं	ना	क	सं	ना		चंद्रोच्च	४०.६७७
के=त्रैलोक्य प्रयोग सं=बीज संस्कार ना=शुद्धनाक्षत्र	११	—	११	११	—	११	९	—	९	०	०	०	राहु	१९.३५६	१९१.४०६
	२९	२	२७	२६	०	२६	९	०	८	२७	०	२७			
	५६	१५	४१	४३	१५	२७	४५	४८	५६	१०	०	१०			
	९३	११	४२	१२	३६	३६	७०	३६	२४	२३	०	२३			
मंगल	बुध			शुक्र			शनि							बुध	५४.७५३
	के	सं	ना	के	सं	ना	के	सं	ना	के	सं	ना		शुक्र	३०.३५०
मंगल	२	—	२	०	—	०	८	—	८	४	—	३	शनि	२२५.१८८	१२.२२२
	१५	२	१२	८	१	६	२७	१	२५	२	३	२९			
	३४	३६	५८	६	५१	१४	३०	३९	५१	२८	३	२५			
	४८	०	५८	२०	५६	२४	३६	३६	०	४९	१	४८			

“ एवं कृते दृष्टियोग्या ग्रहा भवन्तीति । अत्रोपलब्धिरेव वासना नान्यत्कारणं वक्तुं शक्यतेऽतः पूर्वं श्लोकानां शोधन मप्यशक्यम् । एवमेव लघोऽपि क्षिप्रधी वृद्धिदे धाजकर्म जगाद् ‘ शाके नखाधिरहित ’ इति ” पचसि [१५-१०-११] सुधाकरटीका

३१ उपरोक्त शुद्धनाक्षत्र मान के क्षेपको में वर्षगति का संस्कार देनेपर सी दोसी वर्ष की मध्यमगति तो ठीक आती है आगे उसमें फर्क पड़ने लगता है । इसलिये हजारों लाखों वर्ष के अहर्गण की शुद्ध मध्यमगति मालूम होने के लिये हमारे सिद्धांत प्रभाकर ( मध्यम गत्यधिकार ) के कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं । क्योंकि इनमें लिखे हुए ग्रहों के भगण काल दर्शक ध्रुवको द्वारा ग्रहोंका भगणादि परिमाण और दिन गतिका साधन सुलभतापूर्वक ज्ञात हो जाता है । वह पद्य यह है —

३२ सिद्धांत प्रभाकरोक्त शुद्ध मध्यमगति

“ सूर्यस्य वेदपर्वत—गुणरमपचाधिभूतस्त्रोकाः ॥

चतस्र रपरसपद्—दशानतुरगाध्विन त्रैव ॥ १ ॥

चद्वेक्षस्य गद्याष्टा—कममुद्रस्वराक्षरदशन्ताः ॥

राहो. हराष्टदिगंका—गरनयवत्तर्नयं दिवसाः ॥ २ ॥

भीमस्य पट्टशुगरम—मन्वन्तारापदन गुणसि ॥

युधर्ष प्रयाष्ट श्र—द्वन्द्व पञ्चाङ्गानुगमज ॥ ३ ॥

जीवस्य ग्गपयमसु—म ग नराक्षरक्ष तुरनद ॥

सितशीप्रम्य श्ररगज—गिरिगेग न गैर पक्षरमा ॥ ४ ॥

सौरस्पच मत्तदशा—द्विर्गिरिद्रुतिनवेन्द्रियनस्तदिशः ॥

इति गेढाना प्रयका—दश—क्षाने भगणदिवसा ॥ ५ ॥

दशलक्ष प्रगुगर्ण ध्रुवक मद् कणा प्रमाणमैभिरेत ॥

महन्ध ते भगणाः ज्ञेया मप्यग्रश क्रमेणैव ॥ ६ ॥

चक्रांश गणनदिवै र्गतेर्भागा मरा भवति मध्यमगतिः ॥

अग्रन्दुषुप्रमुनी तुल्यगता मध्यमऽर्धेण ॥ ७ ॥

( निम्नानु प्रयुक्त मध्यमगतिः )

इतः शब्दों का अर्थ नीचे लिखे गानादर्शनात्मा स्पष्ट म दृष्ट हो जाता है ।

## मध्यमगति के ध्रुवक.

ग्रहों के	भगण दिवस	जगत्मात्र दिवसगति.
सूर्य	३६५.२५६३७४	० ६८५६०९२
चंद्र	२७ ३२१६६१	१३-१७६३५८३
चन्द्रोच्च	३२३१.५७४९८९	०-१११३६६३
राहु	६७९६.३९१०८०	८ ०५२२९३३
मंगल	६८६.९७९६४६	०-१२४०३२८
बुध	८७ ९६९२५८	४ ०९२३३९०
शुक्र	४३१२.५८४८२१	०-०८३०९१२
शुक्र	०२४.७००७८७	१ ६०२१३०९
शनि	१०७९९ २१९८१७	० ०३३४२९७

३३. उक्त ध्रुवका में दशलक्ष का भाग देकर ऊपर के न्यास में भगणों के सायय दिन लिखे हैं। अर्हण में उक्त भगण दिवसों का भाग देनेपर जो लब्ध हों सो भगण; और बाकी को २६० से गुणकर उक्त भाग देने पर मध्यमगति के अंशादि लब्ध होते हैं। इसी तरह एक दिन में भाग देने पर जो अंश दि दिन गति अती है सो ऊपर लिख दी है। बुध और शुक्र यह अतर्ग्रह होने से मध्यम सूर्य ही इनका मध्यम भोग होता है। अतएव इन के मध्यम मानों को “शीघ्र” समझना चाहिये।

३४. इस प्रकार शुद्ध क्षेत्रक और ध्रुवको से चाहे तब के अर्हण में भगण दिवसों का भाग देनेपर शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के मध्यम ग्रह बन सकते हैं। किंतु यह मित्रात प्रभाकर ग्रह तो नब्ब है इसका हम प्रमाण कैसे मान सकते हैं ऐसा ० जो कह उनके स्थिये अब हम जैसे बराहमिहिरने (सूर्य मित्रात के परिमाणों में) बीज तस्कार कहा है; उभी के सङ्ग प्रजागतर से बीज तस्कार देकर उनकी उक्त मित्रात प्रभाकर के ध्रुवों से तथा शुद्ध दिनगति से तुलना करके बताते हैं।

## सूर्यमिद्धांतोक्त सूर्यज मध्यमगति

३५. बुध का भगण शोधन और शुद्ध मध्यमगति. “क्षतगुणिते बुधशोत्र स्वरनयस-  
प्ताष्टभाजिते क्रमशः ॥ “अत्रार्धपञ्चमास्त—अत्रार्ध भगण ह्वाः धेयः” प. मि ७ )  
अत्रार्धपञ्चमास्त—स्तत्पञ्च घट्टा गणे दीना ॥ १ ॥ “तस्मात्—“अर्हणं शत  
गुणिते स्वरनयसप्ताष्ट ८७९७ ना तत् क्रमो भगण यं बुधार्धं प्रच भवेत् । परतत्र  
अर्धपञ्चमास्त ( ०७४२ ) तत्रार्ध घट्टा = ८७९७ पण दिनरूपा अत्र गणे भगणदिव-  
सेषुदीन ॥ कार्यं स्तदा  $\frac{८७९७}{१००} = ८७.९६९७$  बुधार्ध भगणदिवसा भवतीत्यर्थः।

\* “पुलागमित्यनसाधुमयं न चापि नयमित्यर्थम् ॥ मतः पराक्षान्यतरङ्गजन्ते  
मूर्खः प्रत्ययनेष बुद्धिः ॥ १ ॥

( इति मातृनिर्वाहमित्रे काट्टिदास )

“प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्रमिति च उक्तम्.”

## अत्रोपपत्तिः

बुध शीघ्रं =  $\frac{अ. \times १००}{८७९७}$  अतः  $\frac{८७९७}{१००} = ८७.९७$  ग्रंथोक्त भगणदिन

संस्कारः ( तत्पराः तस्थानात्पराः होनाः ) - ००,०७४२ शीघ्रम्.

बुध भगणदिवसाः शुद्धाः .... ८७.९६९२६८ नाक्षत्रादन

अनेन चक्रांशाः २६०° भक्ता=बुध दिनगतिः ४.०९२३३९ अंशाः .

१६ शुक्र का भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति. "शितशीघ्रं दशगुणिते शुगणे भक्ते स्वरार्णवाश्रियमैः ॥ ( " अर्द्धेकादश देया विळितिका भगणसंगुणिताः " पं सि. ८ ) स्वरवसुनगाश्च देया खखपरा भगणसंगुणिताः ॥ २ ॥" वासना- ' शुगणेऽद्विगुणे दशगुणिते स्वरार्णवाश्रियमै २२४७भक्ते, सति भगणाचं मितस्म शुक्रस्य शीघ्रोच्च भवेत् । पान्त्वत्र तत्परा चतु भगणदिवसांशभागेषु दशस्थानात्पराः खखपराः स्वरवसुनगाश्च ००७८७ भगणसंगुणिता देया भगणदिवसेषु योज्या तदा ( २२४७ + ०,०७८७ = २२४.७००७८७ ) शुक्रशीघ्रोच्च भगणदिवसा भवतीत्यर्थः । "

## अत्रोपपत्तिः

शुक्रशीघ्रं =  $\frac{अ. \times १०}{२२४७}$  अतः  $\frac{२२४७}{१०}$  भगणदिवसा २२४.७ ग्रंथोक्ताः

संस्काराः ( तत्परा दशस्था नास्मि योज्याः ) + ०००७८७ = शीघ्र

शुक्र भगणदिवसाः शुद्धाः .... २२४.७००७८७ = नाक्षत्र

अनेनेचक्रांशा भक्ता=शुक्रशीघ्रोच्च दिनगतिः = १.६०२११ अंशाः

१७ सूर्यका भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति—

सूर्यस्यायुतनिमिषे भुविस्मयपंचाश्रिभूतमलोकैः ॥

भक्ते शुगणे मध्यः पराध्रुवेयात्रमपश्चा. ॥ ३ ॥ \*

\* " शुगणेऽर्धोष्टशतश्रिपक्षवेदार्यऽर्धमद्वाने ॥ स्वरगद्विदिनयमोद्वानेकमादिन दलेऽवमयाम् ॥ ( प मि. ९०१ )

वासना— " मंदकेंद्रीपरविमाधनमाह शुगणेऽर्कश्चि । अत्रोपपत्तिः—

केंद्रासनाधि =  $\frac{अ. \times ६००}{१९२२०७}$  अतः  $\frac{२१२२००}{८००} = ६५.२५८७५$  भगणदिवसाः

शुद्धकेंद्रार्धेभिद्वान्ताता उच्चगतिः ०००.९६२

शास्त्रशुद्धमंदकेंद्रीय वर्षमानम् २६५.२६९७१२

शुद्ध उच्चगतिदिवसाः ऊनिताकार्या— ००२३२८

१ नाक्षत्र सौरवर्षे भगणदिवसाः २६.५२५६३७४

इति प्रकाराभ्युपगम्योत्तरमात्रेण ( २६.६८ स्ववेक्तैः ) पुनरुत्पन्नमयम् .

वासना—“द्युगणेऽहर्गणे अयुतनिम्ने दशसहस्रैर्गुणिते श्रुतिरसपचाश्विभूतरसलोकै ३६५२५६४  
भक्ते सतिमध्य. मध्यमरवेर्भगणाव्यस्यात् । परन्तत्र लब्धोचराकपराः दशसहस्रस्थानात्परा-  
शस्थानेपुरसपक्षाः २६ हेयाऊनिताकार्यास्तदा वास्तवोमव्यमसूर्यः स्यात् ।”

### अत्रोपपत्ति

मध्यमरविः =  $\frac{अ. \times १०००}{३६५२५६४}$  अतः  $\frac{३६५२५६४}{१००००} = ३६५.२५६४$  भगणदिवसाः

संस्कारः — ००००, २६ बीजं,,

रवेर्भगणदिनताः ३६५.२५६३७४ नाक्षत्र,,

अनेन चक्रांश ३६० भक्ता रवेर्भगणदिनगति = ०.९८५६०९२ अंशः

३८. मंगल का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

द्युगण कुजस्य चद्राहन्तु सप्ताष्टपदभक्तम् ॥

कृतविषयक्रमकृतिस्त्वैस्तत्परै रूनिता घन्ताः ॥ ४ ॥ †

वासना—“चद्रेणैकेन गुणित द्युगणमहर्गण सप्ताष्टपदभि ६८७ भजेत् यल्लब्धं ते  
कुजस्य मंगलस्य भगण दिवसाः । परन्तत्र कृविषय क्रमकृतिस्त्वै (०.२०३५४) स्तत्परै  
रशैरूनिताः सन्त घन्ताः सायनभगण दिनमा वास्तविका भवेत्तीत्यर्थः ।”

### अत्रोपपत्तिः

भौमस्य =  $\frac{अ. \times १}{६८७}$  अतः  $\frac{६८७}{१} = ६८७$  भगण दिवसा ६८७.५२४०३२८ ग्रंथोक्ताः

संस्कारः — ०२०३५४ बीजं

भौमस्य भगण दिनमा. शुद्धाः ६८६.९७९६४६ नाक्षत्र.

अनेन चक्रांश भक्ताः = अश्रांशिका भौमस्य दिनगतिः ५२४.०३२८ अंशः

३९. गुरु का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

जीवस्य शताभ्यस्त द्वित्रियमाग्निनि सागरेर्विभजेत् ॥

प्रकृतिगजाब्धिरस्यमैर्दिवसपर्योजिते साम्राः ॥ ५ ॥ ‡

वासना—“गणकः शताभ्यस्त शतगुणित द्युगणमहर्गण द्वित्रियमाग्निनि सागरे ४३३२३२  
विभजेत् यल्लब्ध स्यात्तदंश दशमलवांश प्रकृति गजाब्धिरस्यमैर्दिवसपर्य २६४८२१  
योजिते सति जीवस्य गुरोः साम्रा सावयवा भगण दिवसा मन्तीत्यर्थः ।”

पच सिद्धांतिका में कहा हुआ भगण काल में बीज संस्कार—

† “दश दश भगणे भगणे सशोष्यास्तत्परः सुरेजस्य ॥

‡ मनव कुजस्य देयः

अत्रोपपत्तिः ।

गुरोः =  $\frac{\text{अ. ग. } \times १००}{४३३२३२}$  अतः  $\frac{४३३२३२}{१००} = \text{भगण } ४३३२.३० \text{ दिवसाः प्रथोक्तः}$

संस्कारेण ( अत्रतुदिनसपराशा उक्तत्वात् ) + २६४८२१ बीज  
 संस्कृता वास्तविका भगण दिवसाः ४३३२.३८४८२१ नाक्षत्र  
 एभिश्चक्राशाभक्ता गुरोर्दिनगण्यशाः ०.८३०९१२ "

४०. शनि का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

सौरस्य सहस्रगुणा-चतुरस्रशून्या ऋष्यपदकमुनिरै के ॥

त्रिवसुकुरसयुगगजे-दिवसपरैरुनितेशुद्धा. ॥ ६ ॥ ❀

यासना- " सहस्रगुण दहर्गणास्तकाशातः ऋतुरमशून्याभ्रपट-रुमुनिरै के १०७१-  
 ००६६ ऋताद्यलब्ध तदमयोक्त भगणदिवसाः स्युस्तस्मिन् सहस्रमक्त दिवसांशेषु दिनमपरि  
 दशमलब्धदिनसि-दुस्तत्तशै त्रैयसु कुग्रसयुगगजेः ८४६१८३ ऊनि ते सति सौरस्य जर्ग-  
 धरस्य सामयय भगणदिवसाः शुद्धा दृग्गणतैक्यरूपा वास्तविका मवन्तीत्यर्थः । "

अत्रोपपत्तिः

सौरस्य =  $\frac{\text{अ. ग. } \times १०००}{१०७६००६२}$  अतः  $\frac{१०७६००६६}{१०००} = १०७६०.०६६ \text{ भगण दिवसाः}$

बीज संस्काराः ०.८४६१८३ "

शनेर्भण दिवसाः १०७६०.२१९८१७ "

अनेन चक्राशा भक्त = शनरशाभिका दिनगति. ०.८३४५९७ अंश "

४१. चंद्र का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति

नक्षत्रानसहस्रगुनिते स्वरैकपक्षांवरस्वरतूने ॥

पदशून्ये त्रियनव वसुविषयजिनेभाजते चद्र. ॥

शून्याकक्षाभ्रषया दिवसपराश्रोणिता भागाः ॥ ७ ॥ ५

ऋ शनेश्च बाणा गिरि चरातु ॥ ४ ॥ ( पंच तिद्धाति का अध्याय १६ )

❀ "शून्यर्तुपट-रुमुनिरै के " इति मुद्रित पुस्तके पाठस्तत्र-

१०७६६.०६६

६.८४६१८३ } आर्याया उत्तरार्ध-

१०७६०.२१९८१७

} त्रिवसुकुरसयुगगजे. पददिनैश्चोनिताशुद्धाः ॥ ६ ॥

इति पाठ पठनीय ।

५ " शनिर्नक्षत्रानां दोः पार्क सिद्धानि मडयानि ऋणम् ॥

स्वेवे दिष्टा ण धन, स्वरनंदयमोद्धृते विरलाः ॥ ( पंचसि. ९.४ )

इस जगहमिहोक्त बीज संस्कार के तुल्य ही चंद्र और चंद्रोच्च में बीज संस्कार उपर  
 कहा गया है किंतु उममा पृथक् निर्देश सूक्ष्म परिमाणों की एकवाक्यता प्रस्थापित करने  
 के लिये है ।



वासना—“अहर्गणे नवशत सहस्र ९००००० गुणिते ततः स्वरैकपक्षांवरस्वरर्तुभि  
६७०२१७ विरहितेऽवशिष्टे ( इति क्षेपकार्यिकोक्तिः ) कथंभूते पट्शून्येन्द्रियनववमुविपय  
जिने २४५८९५०६ त्वेते भगणादिकश्चंद्रः स्यात् । पांचास्मिन्पूर्वानीत भगण दिवसपरभागे-  
पु शून्याकंखाभ्रखला ००००१२० दिवसपरभागा दिनाचिहितविन्दोः सकाशादुत्तराभागाः  
कानिताः कार्यास्तदाचंद्रस्यसाग्रा भगणदिवसा भवन्तीत्यर्थः । ”

## अत्रोपपत्तिः ।

$$\begin{aligned} \text{चंद्रस्य} &= \frac{\text{अ. ग. } \times ९०००००}{२४५८९५०६} \text{ अतः } \frac{२४५८९५०६}{९०००००} = २७३२१६७३४ \text{ म. दिवसाः} \\ \text{बीज संस्कारः} &= ००००१२० \text{ ”} \\ \text{शुद्ध नाक्षत्रमानेन चंद्रभगणादिवसाः} &= २७३२१६६१४ \text{ ”} \\ \text{अनेन चक्रांशभक्ता-चंद्रस्य दिनगतेः} &= १३१७६३५८३ \text{ अंशाः स्युः} \end{aligned}$$

४२ चंद्रोच्च का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति

नवशतगुणितेदद्या-त्रसविपयगुणांवरर्तुयमपक्षान् ॥

नववसुसप्ताष्टांवर-नवाश्विभक्ते शशांकोच्चम् ॥

स्वोच्चे दिग्गानि धनं, रसांकदशयमोद्धृते विकलाः ॥ ८ ॥

वासना—“अहर्गणे नवशत ९०० गुणिते ततः रसविपय गुणांवरर्तुयमपक्षान् २२६०३५६  
प्रक्षिप्य योगे नववसुसप्ताष्टांवरनवाश्विभि १९०८७८९ भक्ते भगणार्थं शशांकोच्चं भवति ।  
परं त्वत्रस्वोच्चेदिग्गा नीत्यनेन धनसंस्कारेण संस्कृतं वास्तविकमुच्चं भवतीत्यर्थः ”

## अत्रोपपत्तिः ।

$$\begin{aligned} \text{चंद्रोच्चस्य} &= \frac{\text{अ. ग. } \times ९००}{२९०८७८९} \text{ अतः } \frac{२९०८७८९}{९००} = ३२३११९८९ \text{ भगणादिवसाः} \\ \text{संस्कारः} &= \frac{\text{भगण} \times १०}{२१०१६} \text{ अतः } \frac{२१०१६}{१०} = २१०१६ \text{ विकला} = \text{पलरूपं बीजं} \\ \text{”} &= \frac{२१०१६}{३६००} = \text{कलाभिरंशाः संस्कारः} + ५८६ \text{ स्वल्पान्तरादेन रूपः} \\ \text{शुद्धनाक्षत्रमानेन चंद्रोच्चभगणादिवसाः} &= ३२३११५७५ \text{ ” ”} \\ \text{अनेन चक्रांशा भक्ता} &= \text{चंद्रोच्चदिनगतेः} ०११३६६३ \text{ अंशाः स्युः} \end{aligned}$$

४३ राहुवा भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति.

त्रिघनदशमे नवकै—कपक्षरामेन्दुदहशब्दाः

सहिते यमवसुभूता—र्णघगुणधृतिभिः क्रमाद्राहो ॥

हेयो भगणे परत—संस्कारास्त्रिघनेन्दुदिनैकयुतः ॥ ९ ॥

वास्तना—“ अहर्गणे त्रिघनदशभिः ७० गुणिते । क्षेपयुक्ते । यमवसुभूतार्णघगुणधृतिभिः १८३४५८२ भेक्ते राहोर्भगणस्य दिवसरूपः कालः स्यात् । परंतुत्र भगणे प्रतिभगणे त्रिघनेन्दु दिनैरयुतः ११२७ संस्कारः परतः दिनचिह्नाद्गुत्तराश स्थानेषु हेयः ऊनितः कार्यस्तदा राहोर्वागतदिकभगणदिवसा भवतीत्यर्थः । ”

अत्रोपपत्तिः

राहोः— $\frac{अ. ग. १२७०}{१८३४५८२}$  अतः  $\frac{१८३४५८२}{२७१} = ६७९४५१८$  भगणदिवसाः

बीजसंस्कार = — ११२७ ”

शुद्धनाक्षत्रमानेन राहुभगणकालः ६७९३३९१ ”

अनेन चत्वारंश भक्ता राहोर्दिनगतिः ०००१२९९३३ अंशाः

४४ अत्र जत्र उक्त प्रकार से वराहमिहिरने ही सूर्य मिद्धान्त के मूलों से दो जगह बीजसंस्कार देकर उसे शुद्ध बनाने का अर्थार्थ एकप्रत्यय में लाकरा प्रपत्त किया है । किन्तु इसको अब जबकि कागज १॥ हजार वर्ष हो गए हैं तब इसमें भी कहीं पड़ना स्वाभाविक है। यानी अब यह मान बेघडेने से एकप्रत्ययमें आनहीं सकते. इसीलिये हम पराक्त ( सिर्फ एकही ) बीज संस्कार देकर सूर्यसिद्धांतोक्त परिमाणों को एकप्रत्यय में आने लाकर शुद्ध करके उपपत्ति सहित बता दिये हैं । से इससे या भिद्धान्त प्रमाण के शुद्ध मूलों से प्रहों के वर्तमान यानी भगणदिवसों का साधन करके उसके द्वारा प्रहोंकी शुद्ध मध्यमगति का निश्चयकर पचमिद्धान्तिका के शुद्ध किये हुए उपरोक्त क्षेपकों द्वारा शुद्ध नाक्षत्रमान के रूपमें प्रहोंको बना सकते हैं ।

## ग्रह लाघव में बीज संस्कार

१ आज भारतवर्ष में जितने पंचांग बनने हैं वे सब प्रायः ग्रहलाघव नामक करण-ग्रंथ के ही आधार पर बनाए जाते हैं । इस ग्रंथको केनच देवत्र के पुत्र गणेश देवने संवत् १५७७ शके १४४२ में बनाया है । इस समय वराहमिहिरान्त बीज संस्कार देकर प्राचीनसूर्यसिद्धान्तके तथा लट्टाचार्य व भाररुआचार्य के बड़े हुए बीज संस्कार देकर आर्यभट्ट, भय, ब्रह्मगुप्त इत्यादिग्रन्थोंके आधारपर पंचांग बनाए जाते थे किन्तु उस

समय उक्त ग्रंथों के काल को बहुत वर्ष होजाने से उस पद्धति के गणित में बहुत अंतर पडने लगगया था, इसलिये गणेश देवज्ञने वेधद्वारा प्रहों के स्थान को तपासकर प्रहों के साधन में जिस पक्षसे सबसे कम अंतर पडता था उनमें उतनाही बीज संस्कार देकर शक्य उतने शुद्ध करके ग्रह लाघव में उनके ही ध्रुव और क्षेपकों को लिख दिये हैं। अतएव अन्यान्य प्राचीन ग्रंथों की अपेक्षा ग्रह लाघव शुद्ध है।

२ इसी प्रकार ग्रहलाघव के बाद “ नागेशकृत ग्रहप्रबोध ( शाके १५४१ ), नित्यानन्दकृत सिद्धातराज ( १५६१ ), कृष्णकृत करण कौस्तुभ ( १५७१ ) निर्णयसिंधुकार कमलाकरभट्ट कृत सिद्धात तत्त्वविवेक ( १५८० ), रत्नकठ कृत पचाग कौतुक ( १५८० ) जयपुराधीश्वर महाराजश्री जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, काशी, मथुरा और उज्जैन में वेधशाला स्थापन करके जगन्नाथ नामक पंडित द्वारा बनाया हुआ सिद्धात सम्राट् [ १६५१ ], माणिरामकृत ग्रह गणित चिंतामणि ( १६९६ ) और इसके बादभी आजतक भारतीय तथा आँग्ल पद्धति के कई ग्रंथ बने हैं। और उनमें से कतिपय ग्रंथों में ग्रहलाघव से कई बातों में विशेषता व सूक्ष्मता भी साधित हुई है किंतु जिस शैलीका ( बीज संस्कारादि एव गणित पद्धति का ) गणेश देवज्ञने अंगीकार किया है. उस त ह किमीने किया नहीं है। इसलिये कहना पडता है कि “ जो प्राचीन श्रुतिस्मृत्युक्त प्रणाली से यानी हमारे धर्मशास्त्र के अनुसार बना होते हुएभी, जिसके पार्श्वण शुद्ध गणित के, सत्ता से बनाने लायक और वेधक्रिया में टीन्टीक दृढरूप मिलते हों ऐसा ग्रंथ ग्रह लाघव के अतिरिक्त उपलब्ध नहीं है। इसीलिये आजतक ग्रहलाघव के ही पचागों का प्रचर बहुधा सर्वत्र प्रचलित है। अतएव हमारा अब यह कर्तव्य है कि उगीको; बीज संस्कार देकर शुद्ध नक्षत्र मानका एव दृग्गणितैक्ययुक्त सूक्ष्मगरिमाणों का कर देना योग्य है. ताकि इसके पडने वाले लोग प्रस्तुत शोधनयुक्त इसी ग्रंथ के द्वारा शुद्ध सूक्ष्म गणित का पचाग सरलतासे बना सकें।

३ इसके लिये पहिले हम यह बता देना चाहते हैं कि तीन्ही सिद्धांतों के आधार पर बनाए हुए ग्रहलाघवोंके क्षेपक व ध्रुवों में मुख्यभूत मानसे कितना अंतर था, उसे निकालने के लिये गणेश देवज्ञने कितना बीज संस्कार दिया है और अब हमें कितना देना बानी है सो निम्नालिखित कोष्टों से ज्ञात होगा।

## कोष्टक नं.-१.

### ग्रहलाघवोक्त क्षेपकों में बीज संस्कार.

( ग्रहलाघव प्रचारभ समय के यानी शाके १४४१ फाल्गुन ( चैत्र ) कृष्ण ३० सोमवार प्रातःकाल के प्रयोक्त और चालन देकर शुद्ध किये हुए प्रहों के क्षेपक )

## संस्कालीन मध्यम ग्रह.

सिद्धांत प्रकरण.	ग्रहलाघव कालीन मध्यम ग्रह.				बीज संस्कार.		
	क्षेपक नियम.	(१)	(ख)	(ग)	क - ग	क - ख	ख - ग
		(ग्र+आ+प्र) सिद्धांतसाधितग्रह	ग्रहलाघव में वृद्धे हुए क्षेपक	शुद्ध नाक्षत्रमान स तत्कालीन क्षपक			
(३.) ग्रहगुप्त सिद्धांत सांख्यिक प्रह	ग्रह	रा। अ। क। वि।	रा। अ। क। वि।	रा। अ। क। वि।	अ। क। वि।	अ। क। वि।	अ। क। वि।
(आ) भार्य भट्ट सिद्धांत के आधार से बनाये हुए मध्यम प्रह	सूर्य	११२०५३३३६	११२०५३३३६	११२०५३३३६	- २०१२०५३३६	- २०१२०५३३६	- २०१२०५३३६
	चंद्र	८१ ८१ ३०२२	८१ ८१ ३०२२	८१ ८१ ३०२२	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८
	शुक्र	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	- २० ०१२८	- २० ०१२८	- २० ०१२८
	शनि	११ ११ ३०२२	११ ११ ३०२२	११ ११ ३०२२	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८
(प्र) प्रचलित सूर्य चंद्र चंद्रांच	सूर्य	११२०५३३३६	११२०५३३३६	११२०५३३३६	- २०१२०५३३६	- २०१२०५३३६	- २०१२०५३३६
	चंद्र	८१ ८१ ३०२२	८१ ८१ ३०२२	८१ ८१ ३०२२	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८	+ २० ०१२८
	चंद्रांच	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	- २० ०१२८	- २० ०१२८	- २० ०१२८
	चंद्र का धर्मा उपकरण	चंद्रांच	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	७१ ७१ ३०२२	- २० ०१२८	- २० ०१२८

उपरोक्त कोष्टक को देखने से स्पष्टतापूर्वक मात्तम हो जाता है कि शुद्ध नाक्षत्रमान से सिद्धांतीय ग्रहों में जो कुछ [क-ग] अंतर या उसमें का बहुतसा भाग [क-ख] बीज संस्कार देकर गणेश देवज्ञ ने शुद्ध कर दिया था इसलिये अब हमें सिर्फ महलाघव [ख] में थोड़ाही संस्कार [ख-ग] देने से यह क्षेपक शुद्ध नाक्षत्र परिमाण [ग] के तुल्य शुद्ध हो जाते हैं।

५ यदि कहें कि ऐसा करने से प्राचीन ग्रंथों का उपयोग ब महत्व कम हो जायगा किंतु ऐसी बात नहीं है ऐसा करने से तो उनका महत्व कायम रहा है क्योंकि ललाचार्य और भास्कराचार्य ने जो बीज संस्कार कहे हैं वह उसके उपयोग को कायम रखने के लिये कहे गये हैं और वह बीज संस्कार देते रहने से ही आजतक पंचांग साधन में उन सिद्धांत ग्रंथों का महत्व कायम रहा है। यदि तुलना करके देखा जायतो लल्ल व भास्कर बीज से हमारा बहादुआ बीज संस्कार बहुत थोड़ा है। सो निम्नलिखित कोष्टक में स्पष्ट करके बताते हैं।

### कोष्टक नंबर २

ग्रंथोक्त बीज संस्कार और बीज संस्कृत क्षेपक.

मध्यम ग्रह	भास्कराचार्य की बीज	लल्लोक्त बीज.	हमारा बहादुआ बीज संस्कार	बीज संस्कृत क्षेपक	अंशात्मक क्षेपक
क्षेपक	० । ॥	० । ॥	० । ॥	२१ ० । ॥	०
सूर्य	-१।९।१९	० । ०	-०।३९। ६	११।१८।५१।५४	३४८ ८६५
चंद्र	-१।५।३१	-१।४२।१२	-०।३६। १	११।१८।१९।१९	३४८ ३३३
चंद्रोच्च	-०।४६।१३	-४।४९। २	-०।४३।१२	५।१६।४७।४८	१६६ ८३
राहु	+०।४६।१३	-६।३२।२७	-०।३४।४६	०।२७। ३।१४	२७० ५४
मंगल	+०।२३। ६	+३।१६।१३	-०।३१।२४	१०। ५।३८।३६	३०५ ६१
बुध	+२।०। १।२७	+२।८।३८।१८	+२।००।१२	८।१०। ४।१२	२५० ०७
शुक्र	-१।५।३१	-३।१२। ८	-१।३६।३६	७। ०।२९।२४	२१० ४९
शुक्र	-५।४६।१३	-१।०।२५।२८	+०।२०।३८	७। ७।४०।४८	२१७ ६८
शनि	+५। ०। ०	+१।२१।४६	-२।१५। ॥	९।१३। ६। ०	२८३ १०
बुधकेंद्र	+२।१।१।३६	.....	+८।१०।४२	८ २१।१२ १८	२६१ २१
शुक्रकेंद्र	-३।३७।१६	.....	+१।२०। ६	७।१८ ४८।५४	२२८ ८२
राधिकेंद्र	-१। ९।१९	.....	+०।१९।३८	९। १।२१।२२	२७१ ३५६
उप ४ असं- स्कृत चंद्रोच्च	-०।३६।१३	-४।४९। २	-२।३९। ०	५।१४।५४। ०	१६४ ९०

## कोष्टक नं० ३.

बीज संस्कृत ध्रुवक और अहर्गण ४०१६ की शुद्ध नाक्षत्रीय मध्यम गति.

तुलनात्मक पद्धति से.	तीनों सिद्धांत प्रयोगों से मापित होनेवाले.	ग्रहलाघव के स्वीकार किये हुए.	ग्रहलाघव में लिखे हुए.	शास्त्रशुद्ध गति अन्य संस्कार.	बीज संस्कृत शुद्ध नाक्षत्रमान के (चक्रशुद्ध)	अहर्गण ४०१६ की शुद्ध नाक्षत्र मान की
ग्रह.	ध्रुवक	+ बीज	= ध्रुवक	+ बीज	= ध्रुवक.	मध्यम गति.
प्रमाण	रा. अ. क. वि.	कला.	वि. क.	कला.	वि. रा. अ. क. वि.	अंशः
सूर्य	० १ ४९ ८	+०	३	१ ४९ ११	० १ ४७ ३४	३५८.२०७
चंद्र	० ३ ४६ १०	+०	१	३ ४६ ११	० ३ ४४ ४२	३५६.२५५
गोच	९ २ ४१ ११	+३	४९	९ ४३ ८	९ २ ४५ ११	८७.२४७
राहु	९ २ ४६ ३०	+३	२७	९ २९ ०	७ २ ४९ ६	१४७.१७९
मंगल	१ २५ २७ १४	+४	४६	१ २५ ३२	१ २५ २९ ३	३०४.५१६
बुध	४ ५ १७ ४२	-१	३१	४ ५ १६ ११	५ ६ १० =	२३४.८३३
शुक्र	४ २६ १६ ३२	+१	८	० २६ १८ ८	० २६ १८ २१	३३३.६९४
शनि	१ २५ ४५ ५८	+५	१३	१ २५ ५१ ११	१ २५ ५० ३८	३१४.१५६
शु. कै. १	७ १५ ४० ४१	-०	४१	७ १५ ४२ ०	७ १५ ३७ ३६	१३४.३७४
शु. कै. २	४ ३८ ३४ ४४	-१	३४	४ ३८ ३७ ०	४ ३८ ३२ २४	२३६.६२६
शु. कै. ३	१ १३ १६ ५०	+५	१०	१ १४ ३ =	१ १४ ३ २	३११.९४९
र. कै. १	४ २७ १३ २७	....	२७	४ २७ १२	० ४ १९ ४६	३१८.१७१
चक्रशुद्ध राहु		-३		४ २७ १०	४ २७ १० ४४	२१२.८२१

६. उक्त कोष्टक (२) को देखने से आपको मालूम हो जायगा कि ग्रहलाघव कालिक क्षेपकों में भारद्वाज्याचार्य और लल्लाचार्य के बीज की अपेक्षा हमारा कहाहुआ बीज कितना अत्यल्प है। इसमें सिद्ध होता है कि ग्रहलाघवोक्त क्षेपक वास्तविक मानके 'स्वल्गान्तर' से शुद्ध हैं। अतएव उक्त बीज संस्कृत क्षेपकों में ग्रहलाघवोक्त मध्यम दिनगति को जोड़ देनेपर तत्कालीन मध्यम ग्रन्थी शुद्ध नाक्षत्रमान के हो जाते हैं। क्योंकि ग्रहलाघवोक्त दिनगति में वास्तविक मानसे विशेष अंतर नहीं है, किंतु करीब ११ वर्ष के बाद उसमें थोड़ा थोड़ा फर्क होने लगता है। इसलिये गणेश दैवज्ञने ग्यारह वर्ष के अहर्गण ४०१६ का एक चक्रमानकर जो ध्रुव कहें हैं; उनमें हमारा बताया हुआ बीज संस्कार करने पर कोष्टक नंबर ३ के अनुसार बीज संस्कृत=ध्रुवक निश्चित होते हैं।

७. उक्त कोष्टक नं. ३ में जो मध्यम गति और बीज संस्कृत ध्रुवक लिखे हैं, सो एक चक्र के अहर्गण ४०१६ को उपर्युक्त सिद्धांत प्रमाणोक्त भगण दिनों का भाग देकर लब्ध भगणों को त्याग कर शेष भाग को ३६० गुणा करके उसी भगण दिनों का भाग देते हुए अंशात्मक मध्यम गति लाई है। इसी को चक्र ३६० अंशों में शुद्ध करके ध्रुवक लिखे गये हैं सो प्राचीन सूर्य सिद्धांतोक्त परिमाणों के तुल्य है। तथा प्रचलित सिद्धान्तत्रय ग्रंथों के मान से भी (११ वर्ष में इतना स्वल्प यानी ४-६ कलाओं के अंदर ही बीज संस्कार होना मानों स्वल्पांतर से तुल्य एवं शुद्ध हैं।

८. ग्रह लाघव के भौमादि मध्यम ग्रहों में शीघ्र फलार्ध भाग (प्राइममध्यमे चक्रफल-मंद स्पष्ट एवं २५ दलं विदध्यात्—प्र. ला. ३१०) मिलाकर बाद में मंद केंद्र साधन रविमध्य ग्रह कहा है इसलिये प्र. ला. में मंदोच्चों की राशि मात्र कहा है। अंशादि कहे नहीं हैं, किन्तु शुद्ध गोलीय गणित से ग्रहों की वास्तविक रविमध्य दृश्य कक्षाओं को देखते ऐसा करना 'सूक्ष्म दृग्गणितव्य' कारक नहीं है। तो भी यह प्राचीन शोध है जबकि इतने सूक्ष्म यंत्रादि नहीं थे उस समय में भी स्वल्गान्तर से स्पष्ट ग्रहों को मिला देना कुछ छोटी बात नहीं है। बागद में लिखे अंशों से चाहे सूक्ष्माति सूक्ष्म अंश छान साधारण गणितज्ञ भी कर सकता है लेकिन आकाश में वेध लेकर ग्रहों के प्रमेयों को निश्चित करना बहुत कठिन बात है।

९. इसलिये अब आगे हमने ग्रहों का साधन तो रवि को मध्य केंद्र में मानी हुई कक्षाओं से किया है लेकिन ग्रह लाघवोक्त परिमाणों की साध्यता बतलाने के लिये तुलनात्मक पद्धति से कोष्टक लिखकर बाद में रविमध्य गणित और भूमध्य गणित बतला दिया है। ताकि कोष्टकों के सहारे शुद्ध सूक्ष्म गणित के स्पष्ट ग्रहों का साधन हो सकता है।

१०. ग्रह लाघव में लिखे हुए गणित क्रम से इष्ट दिन का चक्र और अहर्गण मध्यम ग्रह साधन. साधन करके कोष्टक ३ में लिखे हुए बीज संस्कृत शुद्ध नाक्षत्र मान के ध्रुवकों को चक्र से गुणकर, कोष्टक २ में लिखे हुए बीज संस्कृत क्षेपकों में घटा देनेपर वह शुद्ध मानके ध्रुवक क्षेपक होते हैं। जैसे ३७ चक्र से गुणे

हुए धवकों को क्षेपकों में घटा देनेपर सवत् १९८७ शके १८७२ के (चक्र वर्ष ११×३७ = ४०७+१४४२=१८४९ के) आरम्भ के यह मध्यम ग्रह हुए। इस प्रकार ग्यारह ग्यारह वर्ष के ध्रुवोर्ध्व क्षेपक तैयार कर लेने से बाकी अहर्गण जोड़ी लेने से शुद्ध मध्यम ग्रह बन सकते हैं।

कक्षावृत्तीय मध्यम ग्रह साधन के लिये समीकरण.

$$\begin{aligned} \text{ध्रुवोर्ध्व क्षेपक} &= \text{बीज संस्कृत क्षेपक}-\text{चक्र गुणित ध्रुव} \\ \text{अहर्गण गति} &= \text{ग्रह लाघव साधित गति} + \frac{\text{विकलात्मक ध्रुव बीज} \times \text{अहर्गण}}{४१६} \end{aligned}$$

$$\text{मध्यम ग्रह} = \text{ध्रुवोर्ध्व क्षेपक} + \text{अहर्गणे त्यज मध्यम गति}$$

$$= \text{बीज संस्कृत क्षेपक} + \left( \frac{\text{अखंडाहर्गण} \times ३६०}{\text{प्रभाकराच्च भगण दिन}} \right) \text{भगणादि मध्यम गति}$$

११ उक्त प्रकार से उद्ध नाक्षत्र मान के कक्षावृत्तीय मध्यम ग्रह साधन किये व द शुद्ध मरेश साधन उनका मदफल और शीघ्र फल होने के लिये प्रदलाघयोक्त उच्च व फल परिमणों का त्रैस्तविक मान से तुलना करते उनमें नितना बाज दन से ग्रहों के शुद्ध मरेश मदफल और शीघ्र फलदि हा सकते हैं सो निष्प्राप्ति कोष्णों द्वारा स्पष्ट मालूम हो जाता है।

### मरेश कोष्टक नं० ४.

तुलना के लिये स्थूल मरेश के अंश		प्रगणना के लिये सूक्ष्म मरेश			
मरेश	शके १४४२ में ग्रहों के मरेशांशों बीज संस्कार	शके १४४२ में सूक्ष्ममानमें	चक्र (११ वर्ष) गति	सौर वर्ष गति	शके १८५२ में सूक्ष्ममान से
ग्रह	ग्रह बीज सूक्ष्ममान लाघव में	अंश	कला	पिकरा	अंश
सूर्य	७८° ००' = ७८°	७७.००९	२। ९.०४	११ ८१२	७८.८०३
मंगल	१२० + १० = १३०	१३०.०००	३। ८०	१६ ०००	१३१.९२४
बुध	२१० + २३ = २३३	२३२.८२७	१। ७६६	६ १-२	२३३.५२१
शुक्र	१८० - १० = १७०	१६०.६६०	१। १००६	६ ६३१	१७०.३१६
*शुक्र	२७० + १८ = २८८	२८७.८१	- १६ ४०	१ ४०९	२८७.६४४
शनि	२४० + ७ = २४७	२४६.८६२	२। ८७ ६७	१ ०७०	२४८.९८१

\* ग्रह लाघव में शुक्र के मरेश की अनुगम गति मानकर मरेश की ३ राशि अर्थात् ९० अंश लिखे हैं। वस्तुतः उसका विगम गति होनेसे तुलना के लिये चक्र शुद्ध परके २७० अंश लिखे हैं।





## कोष्टक ६.

ग्रह वायव्योक्त शीघ्रमूल की आयुनिक सूक्ष्ममान से तुलना.

उपकरण शीघ्रमूल = ( स्पष्टरवि-मंद स्पष्टग्रह ).

क्र.सं.	मौल.		युव.		युव.		युव.		शनि.	उपकरण.
	मौल.	आयुनिक.	मौल.	आयुनिक.	मौल.	आयुनिक.	मौल.	आयुनिक.		
०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	१६०
१५	५.८	५.९	५.१	५.२	५.५	५.७	५.३	५.५	५.५	३४५
३०	११.७	११.८	८.१	८.३	१०.७	१०.७	१०.७	१०.७	१०.७	३३०
४५	१७.५	१७.६	१३.७	१३.९	१६.७	१६.७	१६.७	१६.७	१६.७	३१५
६०	२३.८	२३.९	१९.७	१९.७	२३.७	२३.७	२३.७	२३.७	२३.७	३००
७५	२९.९	२९.९	२५.८	२५.८	२९.८	२९.८	२९.८	२९.८	२९.८	२८५
९०	३६.५	३६.६	३१.९	३१.९	३६.९	३६.९	३६.९	३६.९	३६.९	२७०
१०५	४३.५	४३.६	३८.९	३८.९	४३.९	४३.९	४३.९	४३.९	४३.९	२५५
१२०	४९.९	४९.९	४५.९	४५.९	४९.९	४९.९	४९.९	४९.९	४९.९	२४०
१३५	५६.९	५६.९	५२.९	५२.९	५६.९	५६.९	५६.९	५६.९	५६.९	२२५
१५०	६३.९	६३.९	५९.९	५९.९	६३.९	६३.९	६३.९	६३.९	६३.९	२१०
१६५	७०.९	७०.९	६६.९	६६.९	७०.९	७०.९	७०.९	७०.९	७०.९	१९५
१८०	७७.९	७७.९	७३.९	७३.९	७७.९	७७.९	७७.९	७७.९	७७.९	१८०

## मंदकर्ण कोष्टक ७.

( सूर्य से पृथ्वीपर्यंत ९५,०००,००० माइल अंतर को  
= १ मानकर अंक लिखे हैं )

ग्रहों के मंद वर्ण ( ग्रह से सूर्य तक रेखाकार अंतर ) उपकरण मंद केंद्र.

उपकरण	रवि.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	उपकरण.
१०	०.९८३२	१.१८१६	०.१०७५	४.९५२	०.७१८३	९.०१०	३९०
१५	०.९८३८	१.१८७५	०.१११८	४.९६२	०.७१८६	९.०३०	३४५
३०	०.९८५५	१.१८८४	०.१२३६	४.९८९	०.७१९१	९.०९०	३१०
४५	०.९८८३	१.१८३०	०.१४१०	५.०३२	०.७१९८	९.१८२	३१५
६०	०.९९१८	१.१८६३	०.१६१४	५.०८७	०.७२०९	९.३०१	३००
७५	०.९९५९	१.१९१७	०.१८२६	५.१४९	०.७२२१	९.४१५	२८५
९०	१.०००३	१.१९६९	०.२०३०	५.२१४	०.७२३४	९.५७६	२७०
१०५	१.००४६	१.५७१३	०.२२१५	५.२६८	०.७२४७	९.७१२	२५५
१२०	१.००८६	१.६०४०	०.२३७३	५.३३६	०.७२५९	९.८३६	१४०
१३५	१.०१२०	१.६३०१	०.२५००	५.३८५	०.७२६९	९.९३२	२२५
१५०	१.०१५६	१.६४७७	०.२५९२	५.४२२	०.७२७६	१०.०१७	२१०
१६५	१.०१६२	१.६६५७	०.२६४८	५.४४३	०.७२८२	१०.०६६	१९५
१८०	१.०१६८	१.६६५७	०.२६६७	५.४५३	०.७२८३	१०.०८२	१८०

## पात कोष्टक ८

लुलता के लिये स्थूल पात के अंश

ग्रह गणित के लिये ग्रहों के सूक्ष्मपात.

पात स्थान.	शाके १४४२ में ग्रहों के पातों में बीज संस्कार.	शाके १४४२ वर्ष ११ की सूक्ष्ममानसे	वर्ष ११ की चक्रगति.	सौरवर्ष गति	शा. १८५२ सूक्ष्म मानसे.
ग्रह	ग्रहलाघवमें बीज ० सूक्ष्ममान ०	अश ०	कला. वि	विकला	अंश ०
सूर्य	१७ ० = १७	१७.१४९	९१२२५९	५०.२३६	२१.८१७
मंगल	४० - १४ = २६	२८.६९४	४१०४७	२२.७७०	२६.१०१
बुध	२० + ५ = २५	२५.४२६	११४४.५९	६७२९	२४.१५२
गुरु	८० - ३ = ७७	७८.५०२	२३८.४०	१४.०००	७६.८१२
शुक्र	६० - ७ = ५३	५५.३२८	३३०.०९	१९.०९९	५३.१५४
शनि	१०० - १० = ९०	९२.३२५	३२४.०५	१८.५५०	९०.२१२

पात कोष्टक में सूर्य का क्रांतिपात यानी अयनांश और भौमादि ग्रहों के कक्षा पात स्थान; कहे गये हैं। रवि क्रांतिपात ऋण लिखा जाने से उसकी गति धन; बाकी के ग्रहों की वर्षगति ऋण है।

### परिणति कोष्टक ९.

ग्रहोंका कक्षापरिणति संस्कार । उपकरण = मंद स्पष्टग्रह - पात.

उपकरण		मंगल	बुध	शुक्र	शुक्र	शनि	उपकरण	
अं.	अं.	—	—	—	—	—	अं.	अं.
०	१८०	.००	.००	.००	.००	.००	१८०	३६०
१५	१६५	.०१	.११	.००	.०३	.०१	१९५	३४५
३०	१५०	.०१	.१८	.०१	.०४	.०२	२१०	३३०
४५	१३५	.०१	.२१	.०१	.०५	.०३	२२५	३१५
६०	१२०	.०१	.१८	.०१	.०४	.०२	२४०	३००
७५	१०५	.०१	.११	.००	.०३	.०१	२५५	२८५
९०	९०	.००	.००	.००	.००	.००	२७०	२७०
अं.	अं.	+	+	+	+	+	अं.	अं.

### रविमध्यशर कोष्टक १०.

उत्तरशर		मंगल	बुध	शुक्र	शुक्र	शनि	दक्षिणशर	
अं.	अं.	फला	फला	फला	फला	फला	अं.	अं.
०	१८०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	१८०	३६०
१५	१६५	२८.७	१०८.५	२०.४	५२.७	३८.८	१९५	३४५
३०	१५०	५५.८	२०९.६	३९.५	१०१.७	७४.९	२१०	३३०
४५	१३५	७८.५	२९६.६	५५.६	१४३.९	१०५.९	२२५	३१५
६०	१२०	९६.२	३६३.५	६८.५	१७६.३	१२९.८	२४०	३००
७५	१०५	१०७.३	४०५.६	७६.७	१९६.६	१४४.८	२५५	२८५
९०	९०	१११.१	४२०.०	७९.०	२०३.६	१४९.९	२७०	२७०
महलयशर		११०.०	१५२.०	७६.०	१३६.०	१३०.०	परमशरसे तुलना	

## शीघ्रकर्ण कोष्टक ११.

अर्द्धिके शीघ्रचर्य उपकरण सौम्यचन्द्र.

( सूर्यसे पृथ्वीतक का अंतर = १ मानकर अंक लिखे गए हैं. )

उपकरण	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	उपकरण
०	अंक	अंक	अंक	अंक	अंक	३६०
१५	२.५२४	१.३८७	६.२०३	१.७२३	१०.५३९	३४५
३०	२.९०३	१.३७८	६.१७४	१.७०९	१०.९०८	३३०
४५	२.४४१	१.३४९	६.०८९	१.६६६	१०.८१७	३१५
६०	२.३४०	१.३०३	५.९५२	१.५९६	१०.७७०	३००
७५	२.२०१	१.२४०	५.७६८	१.४९९	१०.७०६	२८५
९०	२.०२७	१.१६२	५.६४६	१.३७७	९.८४५	२७०
१०५	१.८११	१.०७२	५.२९८	१.२३४	९.५९१	२५५
१२०	१.५९१	०.९७४	५.०३७	१.०७२	९.३३०	२४०
१३५	१.३४१	०.८७३	४.७८१	०.८९४	९.०८०	२२५
१५०	१.०८०	०.७७१	४.५५१	०.७०७	८.८६०	२१०
१६५	०.८२६	०.६९२	४.३१५	०.५२०	८.६८७	१९५
१८०	०.६१५	०.६३४	४.२४५	०.३५१	८.५७६	१८०
	०.५२४	०.६१३	४.२०३	०.२७७	८.५३९	

## गतिफल कोष्टक १२.

महोके भूमध्य गतिफल । उपकरण शीघ्रचन्द्र.

( रवि मध्यगति ५९१ + गतिफल = स्पष्टगति )

व्यपकरण		मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंश	अंश	कला	कला	कला	कसा	कला
०	३६०	— १६.७	+ ५२.२	— ४५.९	+ १५.९	— ५१.८
१५	३५५	१६.८	५१.४	४५.६	१५.४	५१.९
३०	३३०	१७.०	४९.६	४६.०	१५.३	५२.४
४५	३१५	१७.३	४६.५	४६.९	१४.९	५२.९
६०	३००	१७.६	४१.०	४८.२	१४.६	५३.९
७५	२८५	१८.३	३३.५	५०.०	१३.८	५५.०
९०	२७०	१९.४	२३.०	५१.४	१२.७	५६.५
१०५	२५५	२१.१	+ ७.९	५४.९	१०.८	५८.०
१२०	२४०	२४.०	— १३.०	५८.०	७.४	५९.६
१३५	२२५	२९.९	४१.६	६१.२	+ ०.९	६१.१
१५०	२१०	४०.७	७५.८	६४.१	— १.४	६२.७
१६५	१९५	६२.१	१०६.१	६६.३	५१.८	६३.४
१८०	१८०	— ८०.१	— ११७.४	— ६७.०	— ९५.०	६४.८

काण्डक नं. १३.

अन्यान्य उपकरणों द्वारा साधित होनेवाले चंद्र क ५ संस्कार और चंद्रका शर.									
उपकरण.	रवि केंद्र.	तिथि केंद्र.	च्युति केंद्र.	मंद केंद्र.	पात्र राहु.	चंद्र-राहु.	चं. रा. रवि.	रवि स्पष्ट दिनगति और विच.	
संस्कार.	१ उदयानर (गति)	२ तिथि.	३ च्युति.	४ मंदफल	५ परिणति	चंद्रका शर.	शर संस्कार.	उपकरण रवि केंद्र.	उपकरण
								रवि की दिन गति.	रवि विच
केंद्रांश.	अंश	अंश	अंश	अंश	अंश	अंश	अंश	स्पष्ट	कला
०	-०.००	+०.००	+०.००	+०.००	-०.००	०	०	६१.१	३२.६
१५	.०५	.२९	०.३३	१.७४	.०५६	१	२३	६१.०	३१.६
३०	.०९	.५०	०.६३	३.३४	.०९६	२	४४	६०.९	३२.५
४५	.१३	.५७	०.८८	४.६७	.११०	३	६२	६०.६	३२.४
६०	.१६	.४८	१.०८	५.६३	.०९६	४	७६	६०.१	३२.३
७५	.१८	.२६	१.२०	६.११	.०५६	५	८५	५९.६	३२.२
९०	.१९	.०३	१.२३	६.२७	-०.००	५	८८	५९.१	३२.०
१०५	.१८	.२३	१.१८	५.९७	+०.५८	४	८५	५८.६	३१.९
१२०	.१६	.५४	१.०६	५.२६	.०९७	४	७६	५८.६	३१.८
१३५	.१३	.५२	०.८७	४.२४	.११०	३	६२	५७.७	३१.७
१५०	.०९	.५२	०.६१	३.९६	.०९७	२	४४	५७.४	३१.६
१६५	.०५	.३०	०.३२	१.५३	.०५८	१	२३	५७.३	३१.५
१८०	-०.००	-०.००	+०.००	+०.००	+०.००	०	०	५७.१	३१.५

कला	केंद्रांश
३२.६	३१०
३१.६	३४५
३२.५	३३०
३२.४	३१५
३२.३	३००
३२.२	२८५
३२.०	२७०
३१.९	२५५
३१.८	२४०
३१.७	२२५
३१.६	२१०
३१.५	१९५
३१.५	१८०

## कोष्टक नं. १४.

चंद्र की दिन स्पष्ट गति । उपकरण २११४ केंद्र.									
उपकरण, तिथि केंद्र	उप कला	उपच्युति केंद्र.	उप. मंद केंद्र.	उपकरण	उप तिथि केंद्र	उप. च्युति केंद्र.	उप. मंद केंद्र.	उपकरण चंद्र स्पष्ट गति.	चंद्र विव्र. कला
अस	कला	कला	कला	कला	कला	कला	कला	उपकरण.	कला
०	११४६	११६०१	६८२०३	१८०	११६०२	८४०५	५१००४	०	कला
१५	११००३	११०००	६७४३३	१९५	१११०५	८५०५	५१४०७	६८०	५३०१
३०	१०४००	११००१	६६००८	२१०	१०४०८	८६०८	५१२३४	७१०	५४०२
४५	९६५	१०९०९	६४२०१	२२५	९७०९	९००२	५१३६३	७४०	५५०४
६०	८९०७	१०६०४	६२००५	२४०	९०००	९३०७	५०२०७	७७०	५६०५
७५	८६००	१०२०६	५९७५५	२५५	८६०५	९७०५	५०२०७	८००	५७०६
९०	८००७	९८०२	५७५५४	२७०	८५०७	१०१०६	५९४०७	८३०	५८०७
१०५	८१०२	९४०१	५५५०३	२८५	८८०८	१०५०४	६१७०६	८६०	५९०८
१२०	९५०६	९००५	५३८००	३००	९५००	१०९०२	६३९०७	८९०	६००९
१३५	१०३०५	८७०७	५२५००	३१५	१०२०७	११२०२	६५८०९	९२०	६२००
१५०	११००३	८५०५	५१५०९	३३०	१०००६	११४०६	६७३०१	९५०	६३०१
१६५	११४००	८४०६	५१३००	३४५	११३०७	११६००	६८१०३	९८०	६४०२
१८०	११९०२	८४०५	५१००४	३६०	११४०४	११६०१	६८२०३		६४०३



### रविमध्य गणित.

१२ उपर्युक्त कोष्टक ४ से इष्ट वर्ष के सूक्ष्म मंदोच्च और कोष्टक ८ से सूक्ष्मपात साधन करके मध्यम ग्रहों के नीचे लिख लें। आगे मंदोच्च में मध्यम ग्रह कम कर देने पर [ मंदकेंद्र = मंदोच्च - वक्षा वृत्तीय रवि मध्य ग्रह ] मंदकेंद्र होता है। इस मंदकेंद्र के उपकरण से कोष्टक ५ से सूक्ष्ममान का मंदफल छाकर मध्यम ग्रह में जोड़ देवे तो यह मंदस्पष्ट ( विलेप वृत्तीय रवि मध्य ) ग्रह होता है। आगे उपरोक्त पात को उक्त मंदस्पष्ट ग्रह में कम कर देने पर पातोन रवि मध्यग्रह बनाने के उपकरण में कोष्टक ९ से परिणति संस्कार तथा कोष्टक १० से रवि मध्यशर लेआना चाहिये। और पूर्व साधित मंदस्पष्टग्रह में इस परिणति संस्कार को करने से सूक्ष्ममान का जातिवृत्तीय रवि मध्यग्रह हो जाता है।

१३ पूर्व साधित ग्रहों के मंदकेंद्र के उपकरण से कोष्टक ७ द्वारा मंदकर्ण साधन करके मध्यम ग्रहों के नीचे क्रम से उनके मंदकर्ण लिखलेना चाहिये.

### सूक्ष्ममान से भूमध्य गणित

१४ सूक्ष्ममान से शीघ्रफल साधन करके जातिवृत्तीय रविमध्यम ग्रह में फल संस्कार करनेपर भूमध्य दृश्य ग्रह होता है इसके लिये नीचे दिये प्रकार गणित करना चाहिये। उसमें कुछ और शुन यह दो ग्रह अंतर्ग्रह हैं क्योंकि सूर्य से भू-रक्षा का अंतर ( मंदकर्ण ) एक अंक मानने से इन दोनों ग्रहों की मध्यम वक्षा ० ३८७१ और ० ७२३३ होने से एक से घनी पृथ्वी वक्षा के अंदर है। इसके लिये ग्रह लाघव में इनके मध्यम भाग को ध्रुव शीघ्र, व शुन शीघ्र नाम से लिखा है तथा इनका शीघ्ररूप संस्कार भी स्पष्ट सूर्य में देनेपर यह दोनों स्पष्ट हो जाते हैं।

### समीकरण।

१५ अंतर्ग्रह ( ध्रुव व शुन ) को स्पष्ट करने के लिये गणित —

$$\text{शीघ्रकेंद्र} = \text{रविमध्यग्रह} - \text{मंदस्पष्ट रवि} = [ क ]$$

$$\text{कार्ध} = \text{ग्रह के शिथिलकेंद्र का अर्धभाग।}$$

$$\text{कार्ध स्पर्शरेखा} = \text{शीघ्रकेंद्रार्ध की छाया।}$$

$$\text{साध्या} = \frac{\text{रविमंदकर्ण} - \text{ग्रहमंदकर्ण}}{\text{रविमंदकर्ण} + \text{ग्रहमंदकर्ण}} \times \text{कार्ध-छाया।}$$

$$\text{शीघ्रफल} = \text{कार्ध} - \text{साध्या।}$$

$$\text{स्पष्टग्रह} = \text{मंदस्पष्टरवि} + \text{शीघ्रफल।}$$

इसकी उपपत्ति मादूम हाने के लिये आकृति सत्रहमें इसकी निर्दिष्ट आकृति ( आलेख्य ) बताई गयी है ताकि उसके सहारे शीघ्रफल की उपपत्ति पाठभंग्य मरलता से समझ जायगे.

१६. मंगल, गुरु और शनि यह बहिर्ग्रह हैं क्योंकि सूर्य से इनकी कक्षा का मध्यमान्तर ( मध्यम मंदकर्ण ) क्रम से मंगल का १ ५२३७, गुरु का ५ २०३ और शनि का ९ ५५० है । सो भू कक्षा एक से अधिक होने से इनको बहिर्ग्रह कहें हैं । इनके शाप्र फल साधन के लिये त्रिलोम रीति से शीघ्र केंद्र बनाकर फल सस्कार इनके ( क्रातिवृत्ताय ) रात्रिमध्य ग्रह में देने पर यह भूमध्य दृश्य ( स्पष्ट ) होते हैं ।

१७ बहिर्ग्रह ( मंगल, गुरु और शनि ) को स्पष्ट करने के लिये—

### समीकरण

शाप्र केंद्र = मंदस्पष्ट रवि — रवि मध्य ग्रह = (क)

खार्ध-छाया = ग्रह मंदकर्ण — रवि मंदकर्ण  $\times$  खार्ध-छाया

शीघ्रफल = खार्ध — खार्ध ।

स्पष्टग्रह = रवि मध्य ग्रह + शीघ्र फल ।

### स्थूलमान से भूमध्य गणित ।

१८ उपर्युक्त समीकरणों से सूक्ष्ममान का शीघ्र फल आता है किंतु हमें ज़िरोवा चाप का गणित और अश कला तक की भुज्या, कोटीय व, स्पर्श रेखा ( छ या ) के बने हुए कोष्टों ( टेबल ) से हो सकता है । उसमें भी छाप्रथम् ( छात्रात गणित ) के आश्रय से उक्त गणित किया जा सकता है । इसलिये जिनको यह गणित आता नहीं है उन्होंने प्रह्लादयोग्य पद्धति से ग्रहा के शीघ्र केंद्र साधन करके उसके उपकरण से कोष्टक नंबर ६ के द्वारा ( सूक्ष्म मानका ) शाप्र फल लेकर मध्यम ग्रह में सस्कार ( धनर्ण ) को तो भूमध्य दृश्य क्रातिवृत्तीय स्पष्टासन्न ग्रह होता है । और यह ग्रह छाप्र साधित ग्रह से सूक्ष्म अतएव दृक्प्रत्यय कारक होता है ।

१९ ऐसा ही उपर्युक्त ग्रहों के शीघ्र केंद्र के उपकरण में कोष्टक ११ द्वारा ग्रहों का शीघ्र कर्ण ( ग्रह से पृथ्वी तक का सरल रेखाकार अंतर ) ज्ञात हो सकता है ।

२० उपर्युक्त रवि मध्य ग्रहों के मंद कर्ण में गुणकर शीघ्र कर्ण का भाग देने पर भूमध्य दृश्यग्रह होता है अर्थात् भूमध्यग्रह = रविमध्यग्रह  $\times$  मंदकर्ण — शीघ्र कर्ण ।

२१ उक्त शीघ्र केंद्र के उपकरण से कोष्टक नंबर १२ के द्वारा ग्रहों के भूमध्य गति फल लेकर, रवि मध्य गति ( ५९२ ) + गति फल नया = स्पष्ट दिन गति पता होती है ।

## चंद्र गणित ।

२२ जिस प्रकार मध्यम रवि में सिर्फ एक मंदफल संस्कार करने पर वह स्पष्ट ( भूमध्य दृश्य ) हो जाता है; ऐसा मध्यम चन्द्र में एक मंदफल संस्कार करने पर वह स्पष्ट नहीं हो सकता क्योंकि स्पष्ट रवि करने में पृथ्वी और सूर्य इन दो गोल के आकर्षण से गोलद्वय प्रश्न के शास्त्रानुसार सिर्फ एक ही फल संस्कार करना पड़ता है। किंतु चंद्र स्पष्ट करने में केवल चंद्र और पृथ्वी इन दो गोलका ही विचार करना नहीं है। इसमें एक तीसरे गोल सूर्य के आकर्षण का भी विचार करना पड़ता है। इसलिये गोलत्रय प्रश्न के शास्त्रानुसार ( १ ) सूर्य के मंद फल के ( धनर्ण के ) कारण उत्पन्न होनेवाला उदयान्तर ( गति ) संस्कार, ( २ ) तिथ्यंतर के कारण उत्पन्न होने वाला तिथि संस्कार, ( ३ ) दीर्घवर्तुलीय कक्षा के कारण उत्पन्न होने वाला व्युति संस्कार, ( ४ ) चंद्रोच्च के कारण उत्पन्न होने वाला मंदफल संस्कार और ( ५ ) चंद्रशर के कारण उत्पन्न होनेवाला कक्षा परिणति संस्कार यह पांच संस्कार करने पर भूमध्य दृश्य स्पष्ट चंद्र हो सकता है। सिर्फ एक मंदफल से नहीं हो सकता ऐसा सब गोल गणितज्ञों का सिद्धांत है। इसके सब भाव को बतलाने के लिये चित्र नम्बर ९ में स्थूल तिथि गोलाकृति एवं सूक्ष्म तिथि अणुाकृति रूप बताई है ।

## बीज और संस्कार.

बीज.	संस्कार.
दृग्गणितैक्य के लिये अवश्य है. इसकी उपपत्ति शास्त्र से नहीं रहती.	दृग्गणितैक्य के लिये अवश्य है. इसकी उपपत्ति शास्त्र से रहती है.

२३ ग्रहलाघव के क्षेपक और ध्रुवकों में भास्कराचार्य और जल्लाचार्य आदि का कदा हुआ कितना बहुत बीज दिया जाता था और हमने कितना अत्यल्प कहा है सो कोष्टक ( १-४ ) से ज्ञात होगा और कोष्टक ( ५-१४ ) से त्रिंश प्रयोज्य असहकार्य के देखने से आपको ज्ञात होगा कि हमारे कहे हुए फलसंस्कार एवं उनके मूलानु शास्त्रीय उपपत्ति से कितने युक्त और थोड़े हैं कि जिनके द्वारा दृक्त्रय युक्त ग्रहस्पष्ट होसकते हैं। ऐसे ग्रहलाघव से हो नहीं सकते तथापि कोष्टक ( ४-६ ) में उनकी तुलना करके बताया है।

२४ यद्यपि चंद्रको त्रिकल संस्कार के अतिरिक्त ग्रहलाघन में उपर्युक्त ५ संस्कार वहे नहीं है तोभी मध्यम चंद्र में “ अंक कलिकोनाब्जः ” नौकला कम करने का वीज कहा है। और दूसरे ग्रंथकारों ने संस्कार भी कहे हैं \* तथा प्रो० छत्रे ज्यो० केतकर आदि आधुनिक ज्योतिर्विदों ने चंद्र को यही पाच-संस्कार कहे हैं। दृक्प्रत्ययावह सूक्ष्मचंद्र साधन के लिये इस प्रकार के संस्कार करने का जबकि शास्त्रीय निषेध न होते हुए इसीसे ही सूक्ष्मचंद्र साध्य होता है तब हमने भी कोट्टक ( १३-१४ ) में पाचों संस्कारों के फल लिख कर उसी के द्वारा सूक्ष्मगणित का दृक्प्रत्ययावह चंद्रमाभन कहा है। अर्थात् फल ९ में लिखे प्रकार मध्यमग्रहसाधन पद्धति से सूक्ष्माना के मध्यमचंद्र, चंद्रोच्च और राहु का साधन वरके नीचे लिखे प्रकार ( कोट्टक १३ ) द्वारा चंद्रका स्थापन करें.

२५ पूर्वानीत रविचंद्र ( रव्युच्च - मध्यमरवि = केंद्र ) से लाए हुए रविचंद्र फल का दशांश-अथवा कोट्टक ( १३ ) से [ १ ] प्रथम उदयान्तर यानी वार्षिक गतिकल संस्कार [ २ ] मध्यमरव्यूनचंद्र तिथि केंद्र होता है इस उपकरण से मभिरुगति संस्कार, [ ३ ] चंद्रोच्चयुक्त मध्यमचंद्र में द्विगुणमध्यमरवि घटाने पर व्युत्ति केंद्र होता है इस उपकरण से व्युत्ति संस्कार लेकर, [ ४ ] उक्त तीनों संस्कारों को - चंद्रोच्च से मध्यमचंद्र कम करने पर मदकेंद्र होता है उसमें उक्ततीन संस्कार युक्त कर देने पर त्रिकल संस्कृत चतुर्थ उपकरण होता है इससे मदफल संस्कार लेकर यह चारों संस्कार चारों केंद्रों के धर्मानुसार मध्यमचंद्र में जोड़ देना चाहिये तो कक्षावृत्तीय भूमध्यदृश्य स्पष्टचंद्र होता है। [ ५ ] इसमें राहु कम करने पर पात केंद्र होता है इस उपकरण से कक्षा परिणत नामक पाचवा संस्कार कर देने पर प्राप्ति वृत्तीय भूमध्य दृश्य स्पष्टचंद्र सूक्ष्मना के चंद्रमेग होता है।

२६ इसी पाचवे उपकरणसे तथा चंद्र + राहु - २ रवि अथवा द्विगुणद्विगोपकरण में पाचवा उपकरण कम करने पर ये इसी कोट्टक १३ के छठी व सातवीं कलमें चंद्रशर और चंद्रशर संस्कार लेकर स्पष्टशर बना लेंगे।

\* “ इन्द्रोनाक कोटिज्ञा गन्धता विमता त्रिधा ॥ गुणो व्यर्थेन्दुतो. कोटयो मय-  
पंच तयो. कमात् ॥ १ ॥ फले शनोक्त तद्व्योमिति चे स्वर्णयोर्ये ॥ रुणचंद्रेभन शुकी  
स्पर्शमध्यधेऽन्यथा ॥ २ ॥ ” ऐसा सुनाउ ते जिया है। तथा “ पञ्चादशभिः भागैर्विभजि-  
तेः शुद्धचंद्रगतभागः ॥ शुद्धसूर्य चन्द्रोऽन्यत्रा त्रैविंशतिः ॥ १ ॥ गुणित स्यादगुण-  
कार्थिनर्णो मेषा प्रयत्नेना ॥ २ ॥ ” ऐसा ज्योतिषी उचुनानेन वीरा में और “ शुद्धो  
शुद्धसूर्य विदोध्यकोविजरा सुमन्वाच ॥ ज्योतिषोऽनाम्यमृगमंजरा यथोचिता कृपा  
॥ ३ ॥ सुतकोटिअधुगितेन गुणैरेवं शुद्धमनसः ॥ ज्योतिषच नये विमतेनामोश्चवर्तनी  
॥ ४ ॥ तथा रामधीजादि ( १ ) देशान्तर ( २ ) अष्टमी ( ३ ) समश्राव ( ४ ) मानसत-  
( ५ ) उदयान्तर और ( ६ ) चरकर्म इत्यादि चंद्र में संस्कार कहे गए हैं।

२७ रविकेंद्रोपकरण से कोष्टक १३ में लिखे प्रकार रवि की स्पष्ट दिनगति व रवि-विष और चंद्रके ३।४।५ से कोष्टक १४ द्वारा चंद्र की स्पष्ट दिनगति का साधन करे। आगे इसी चंद्रगति के उपकरण से चंद्रविष और क्षितिजलवन का साधन करलें। ताकि इसके द्वारा तारा चंद्रयुति, ताराग्रह युति, ग्रह ग्रह युति, उदयास्त, और ग्रहण इत्यादि यथार्थ काल में स्पष्ट देख सकते हैं। \*

२८ कोष्टक ८ में सूर्य का क्रांतिपथ याने अयनाश कहे गए हैं। उसके द्वारा शाके १८५० सवत् १९८० के मेघ सक्रमण के समय के अयनाश २२°।५०'।२५" होते हैं। उसके आगे पीछे के अयनाश बनाना होतो अयन वर्ष गति ५०'।२३५७२ धिकला मान कर इष्टदिन के अयनाश बना सकते हैं। यह अयनाश " तथा वर्षगति ३६५० २५६३७४ दिन; ३७१°०६२४१४ तिवि " इस कमेटी की चौथी मितिग ( ताराख १६-११ २९ ) में प्रेफेसर गोले साहन की उप सूचना से सर्व सम्मति से पास किये गए हैं। इस समय रवि की परमक्रांति २३°।२६' ८ है।

### भूपृष्ठीय गणित

२९ इस प्रकार स्पष्टग्रहों के भोग और शर आदि का जो साधन किया गया है वह सब भूमध्य दृश्य यानी भूगर्भीय है। किंतु दिनमान आदि बनाने के लिये भूपृष्ठीय परिमाणों का गणित करना पड़ता है वह सब उक्त परिमाणा द्वारा किंवा ग्रहलाघवपद्धतिसे कर सकते हैं। यदि वह सूक्ष्मगणित से करना होतो नीचे लिखे समीकरणों द्वारा करें।

- ( १ ) पचागस्य स्पष्टग्रहोंमें अयनाश मिला देने पर साधन ग्रह होजातेहैं।
- ( २ ) त्रिपुराशस्पर्शरेषा = सायनभागस्पर्शरेषा × परमत्राति कोतिज्या।
- ( ३ ) त्रिपुराकालघट्य = त्रिपुराशा - १
- ( ४ ) सायनरवि भोगस्पर्शरेषा = त्रिपुराशज्या × रविपरमत्रातिच्छेदनरेषा
- ( ५ ) इष्टकालिक रवित्राति = भुज्यारवि परम त्राति × भुज्यासायनरविः
- ( ६ ) चरभुजज्या = अक्षाशम्पर्शरेषा × त्रातिस्पर्शरेषा उसका धनु = चराश होत है। चराश को दशगुणित करने पर चपल होते हैं।

### भवदीय दीनानाथ शास्त्री चुलेट,

अध्यक्ष पचाग कमेटी इन्दौर.

\* ताराग्रह युति क लिये नक्षत्रों के शुद्धनाक्षत्रीय भोग शर तथा आरम्भस्थान निर्णय आदि बातें हमारे वेद काल निर्णय के परिभाषा प्रकरण में विस्तृत रीति से सप्रमाण लिखे गए हैं। सो उन नक्षत्र भोगों में अयनाश मिला कर साधन करके त्रिपुराश त्राति आदि का साधन करें।

अध्यक्ष की बनाई हुई सारणी.

कोष्टक नंबर १५-

प्रभाकर सिद्धान्तानुसारेण वर्ष प्रवेश सारणीः\*

पृष्ठ नं० १६

[illegible]

# कोष्टक नं० १६.

मध्याह्नकालः उपकरणं साधन रविः

	३०	६०	९०	१२०	१५०	१८०	२१०	२४०	२७०	३००	३३०
० मे.	१ वृ.	२ मि.	३ स.	४ सि.	५ क.	६ तु.	७ वृ.	८ घ.	९ म	१० कुं.	११ मी.
घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.	घ.प.
०	१५ १८	१४ ५६	१४ ५२	१५ ३८	१५ ३५	१५ ७	१४ ४३	१४ २२	१४ २५	१४ ५६	१५ २९
१	१७	५६	५१	५	१५	६	४२	२१	२६	५७	३५
२	१६	५५	५१	६	१५	६	४१	२१	२७	५६	३५
३	१५	५५	५३	५	१५	५	४०	२१	२७	५५	३४
४	१४	५४	५२	५	१५	४	४०	२१	२८	५४	३४
५	१३	५४	५२	६	१५	३	३९	२०	२९	५३	३३
६	१२	५३	५२	७	१५	३	३८	२०	३०	५२	३३
७	११	५३	५३	८	१५	२	३८	२०	३०	५१	३३
८	१०	५२	५३	९	१५	२	३७	२०	३१	५०	३३
९	१०	५२	५४	१०	१५	१	३७	२०	३१	५०	३३
१०	९	५२	५४	१०	१५	१	३६	२०	३२	४९	३३
११	८	५१	५५	१०	१५	१	३६	२०	३२	४९	३३
१२	७	५१	५५	१०	१५	१	३५	२०	३३	४८	३३
१३	६	५०	५६	११	१५	१	३५	२०	३३	४८	३३
१४	५	५०	५६	११	१५	१	३४	२०	३४	४७	३३
१५	४	५०	५७	१२	१५	१	३४	२०	३४	४७	३३
१६	३	५०	५७	१२	१५	१	३३	२०	३५	४६	३३
१७	२	५०	५८	१३	१५	१	३३	२०	३५	४६	३३
१८	१	५०	५८	१३	१५	१	३२	२०	३६	४५	३३
१९	०	५०	५८	१३	१५	१	३२	२०	३६	४५	३३
२०	१४ ५६	१४ ५२	१५ ३८	१५ ३५	१५ ७	१४ ४३	१४ २२	१४ २५	१४ ५६	१५ २९	१५ ३५

### कोष्टक १७

**इन्दौर नगर का दिनमान और सूर्योदय व सूर्यास्त की स्टैंडर्ड टाइम उपकरण साधनरविः।**

[illegible]



राशीमान	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
४ मेष ११ ०	२ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ५	५५ २ १० १८ २६ ३४ ४२ ५० ५८ ६ १४ २३ ३१ ३९ ४७ ५६ ०४	९ ५९ ५१ ४४ ३९ ३६ ३५ ३४ ३८ ४३ ५१ ०० ११ २५ ४२ १ २३														
४ वृषभ ५५ ३८ १	७ ७ ७ ७ ७ ७ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ९ ९ ९ ९	६ १५ २४ ३३ ४२ ५२ १ १० २० २९ ३९ ४९ ५८ ८ १८ २८ ३८	१६ २० २९ ४० ५४ ११ ३२ ५७ २५ ५६ २९ ६ ४६ ३० १७ ७ १														
५ मिथुन ३२ ५८ १	१२ १२ १२ १२ १२ १२ १३ १३ १३ १३ १३ १३ १४ १४ १४ १४ १४	१ १२ २३ ३३ ४४ ५५ ६ १७ २८ ३९ ५० १ १२ २३ ३४ ४५ ५६	५४ ३२ १३ ५७ ४३ ३१ २२ १५ १० ७ ६ ७ १० १५ २२ ३१ ४१														
५ कर्की ३९ ४१ ३	१७ १७ १७ १८ १८ १८ १८ १८ १९ १९ १९ १९ १९ २० २० २० २०	३४ ४६ ५७ ९ २० ३१ ४३ ५४ ६ २८ ४० ५१ २ १४ २५ ३६ ४८	५२ १५ ३८ १ २५ ४० १३ ३७ ० २३ ४६ ८ ३१ ५४ १६ ३७ ५७														
५ सिंह ३९ ३३ ४	२३ २३ २३ २३ २३ २४ २४ २४ २४ २४ २४ २५ २५ २५ २५ २५ २६	१४ २५ ३६ ४८ ५९ १० २१ ३२ ४३ ५४ ५ १६ २७ ३८ ४९ ० ११	३४ ४४ ५३ १ ८ १४ १९ २४ २८ ३१ ३३ ३५ ३६ ३६ ३६ ३६ ३७														
५ कन्या २६ १९ ५	२८ २८ २९ २९ २९ २९ २९ ३० ३० ३० ३० ३० ३० ३० ३१ ३१ ३१	४४ ५४ ५ १६ २७ ३८ ४९ ० १० २१ ३२ ४३ ५४ ५ १५ २६ ३७	६ १७ ४८ ३९ २९ १९ १० ० १५ २१ ३१ २१ १२ ३ ५४ ५५ २६														
५ तुल ३५ १८ ६	३४ ३४ ३४ ३४ ३४ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३७	१० २१ ३२ ४३ ५४ ५ १६ २७ ३८ ४९ ० ११ २३ ३४ ४५ ५६ ७	२५ २४ २४ २५ २७ २९ ३२ ३६ ४१ ४६ ५२ ५९ ७ १६ २६ ३७ ४८														
५ वृश्चिक ३९ ५४ ७	३९ ३९ ४० ४० ४० ४० ४० ४१ ४१ ४१ ४१ ४१ ४१ ४२ ४२ ४२ ४२	४५ ५७ ८ १९ ३१ ४२ ५४ ५ १६ २८ ३९ ५० २ १३ २५ ३६ ४७	४४ ६ २९ ५२ १४ ६७ ० २३ ४७ ११ ३५ ५९ २२ ४५ ८ ३१ ५३														
५ धन १६ ५ ८	४५ ४५ ४५ ४५ ४६ ४६ ४६ ४६ ४६ ४६ ४७ ४७ ४७ ४७ ४७ ४७ ४८	२५ ३६ ४७ ५८ ९ २० ३१ ४२ ५३ ४ १५ २६ ३६ ४७ ५८ ८ १९	३८ ४५ ५० ५३ ५४ ५३ ५० ४५ ३८ २९ १७ ३ ४७ २८ ६ ४१ १४														
४ मकर ३० ३५ ९	५० ५० ५१ ५१ ५१ ५१ ५१ ५१ ५१ ५१ ५२ ५२ ५२ ५२ ५२ ५२ ५३	४१ ५१ १ १० २० ३० ३९ ४९ ५८ ७ १७ २६ ३५ ४४ ५३ २ ११	४३ ३० १४ ५४ ३१ ४ ३५ ०३ २८ ४९ ६ २० २१ ४० ४४ ४६ ४४														
३ कुंभ ५५ ३ ३	५५ ५५ ५५ ५५ ५५ ५५ ५६ ५६ ५६ ५६ ५६ ५६ ५६ ५६ ५६ ५७ ५७	१२ २० २८ ३७ ४५ ५३ १ ९ १७ २५ ३३ ४१ ४९ ५७ ४ १२ २०	१८ ३५ ४९ ०० ९ १७ २२ २४ २५ २४ २१ १६ ९ १ ५१ ४० २७														
३ मीन ४७ ८ ११	५९ ५९ ५९ ५९ ५९ ५९ ५९ ५९ ० ० ० ० ० ० ० ० ० १	७ १४ २२ २९ ३७ ४४ ५२ ० ७ १५ २२ ३० ३७ ४५ ५२ ० ७	२१ ७३ २५ ७७ २८ ७९ ३० ० ३० १ ३२ ४ ३५ ७ ३९ ११ ४४														

१८

अक्षांशः अंश २२ कला ४१

१७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९														स्वदेशी दयाः
५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	६	२५१.१
१२	२१	२९	३८	४६	५५	४	१२	२१	३०	३९	४८	५७		
४७	१५	४५	१७	५१	२८	९	५३	३९	२८	२१	१६	१४		
९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	२९५.६
४७	५७	८	१८	२८	३८	४८	५९	९	१९	३०	४०	५१		
५८	५८	१	७	१६	२८	४३	२	२४	४९	१६	४६	१९		
१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७		३३३.०
७	१९	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४९	०	१२	२३		
५२	५	१९	३४	५०	■	२५	४४	४	२४	४५	७	२९		
२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२३	३३९.७
४८	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	२९	४१	५२	३		
१७	३६	५३	१३	३०	४७	३	१९	३४	४८	१	१२	२३		
२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८		३२९.५
२२	३३	४४	५५	६	७	२८	३८	४९	०	११	२२	३३		
२९	२६	२२	१७	१२	१७	१	५५	४८	४०	३२	२४	१५		
३१	३१	३२	३१	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३३	३३	३२६.३
४८	५९	१०	२१	३१	४२	५३	४	१५	२६	३७	४८	५९		
२८	२०	१२	५	५९	५३	४८	४३	३८	३४	३१	२९	२७		
३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	३९	३९	३९	३३५.३
१८	३०	४१	५२	३	१५	२६	३७	४९	०	११	२२	३३		
५९	१२	२६	४१	५७	१३	३०	४७	५	२४	४३	३	२३		
४२	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५		३३९.९
५९	१०	२१	३३	४४	५५	७	१८	२९	४०	५२	३	१४		
१५	३६	५६	१६	३५	५३	१०	२६	४०	५५	८	१९	२९		
४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०		३१६.१
२९	४०	५०	०	११	२१	३१	४१	५१	२	१२	२१	३१		
४४	११	३६	५८	१७	३२	४४	५३	५९	२	२५	५३			
५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५		२७०.६
२०	२९	३८	४७	५५	४	१३	२१	३०	३८	४७	५५	३		
३९	३२	२१	७	५१	३२	९	४३	१५	४५	१३	३७	५१		
५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८		२३५.१
२८	३५	४३	५१	४९	६	१४	२१	२९	३७	४४	५२	५९		
१२	५६	३९	२१	१	४०	१८	५५	३१	७	४२	१६	४९		
१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२		२२७.८
१५	२२	३०	३८	४५	५३	०	८	१६	२४	३१	३९	४७		
१८	५३	२९	५	४२	२०	५९	३९	२१	४४	३३	२०			



भाव सारणी ।

कोष्टक १९

हुये विपुल घटी पल्ले अंकोंके समान कोष्टसे दशम भावका साधन होजाता है ।

१७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ | लं. मो. दयाः शब्दांशा

२१ २१ २१ २१ २१ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २२ २३ २३	२७९०
१५ २५ ३५ ४५ ५५ ५ १५ २५ ३५ ४५ ५५ ५ १५	० ५
४८ ४२ ३० ३० १८ १८ १८ १८ १८ १८ ३० ४२ ४८	२१ ४७
२६ २६ २६ २६ २७ २७ २७ २७ २७ २८ २८ २८ २८	२९९०
२३ ३४ ४५ ५५ ०६ १७ २८ ३८ ४९ ०० ११ २२ ३२	१ ९
४२ १८ ०० ४२ १६ १८ १२ ०० ४२ ३० १२ १२ ४८	१४ १८
३१ ३१ ३२ ३२ ३२ ३२ ३२ ३२ ३३ ३३ ३३ ३३ ३३	३३१०
४८ ५९ १० २१ ३२ ४२ ५३ ०४ १५ २५ ३६ ४७ ५७	२ १५
४८ ४८ ३० १८ ०० ४८ ४२ १८ ०० ४२ १८ ०० ४२	१७ ८
३७ ३७ ३७ ३७ ३७ ३७ ३८ ३८ ३८ ३८ ३८ ३८ ३९	३३१०
४ १४ २४ ३४ ४४ ५४ ४ १४ २४ ३४ ४४ ५३ ३	३ १९
३० ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ३० ३० १८ १२ ४८ ४२	८ ६
४१ ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३ ४३	२२९०
५५ ४ १४ २३ ३२ ४१ ५१ ० ९ १८ २८ ३७ ४६	४ ३६
१८ ४२ ०० १८ ४२ ४८ १२ ३० ४२ ४८ १२ १८ ४२	१८ ३२
४६ ४६ ४६ ४६ ४७ ४७ ४७ ४७ ४७ ४७ ४८ ४८ ४८	२७९०
३१ ४१ ५० ५९ ८ १८ २६ ३६ ४६ ५५ ४ १४ २३	५ ३०
४८ १२ १८ ३० ४८ १२ १८ ४२ ०० १८ ४२ ०० १८	८ १०
५१ ५१ ५१ ५१ ५१ ५२ ५२ ५२ ५२ ५२ ५२ ५३ ५३	२७९०
१५ २५ ३५ ४५ ५५ ०५ १५ २५ ३५ ४५ ५५ ५ १५	६ ३८
४८ ४२ ३० ३० १८ १८ १८ १८ १८ १८ ३० ४२ ४८	२४ ३८
५६ ५६ ५६ ५६ ५७ ५७ ५७ ५७ ५७ ५८ ५८ ५८ ५८	२९९०
२३ ३४ ४५ ५५ ६ १७ २८ ३८ ४९ ० ११ २२ ३२	७ ४२
४२ १८ ०० ४२ १८ १२ ०० ४२ ३० १२ १२ ०० ४८	१२ २
१ १ २ २ २ २ २ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३	३३१०
४८ ५९ १० २१ ३२ ४२ ५३ ४ १५ २५ ३६ ४७ ५७	८ ४८
४८ ४८ ३० १८ ० ४८ ४२ १८ ० ४२ १८ ०० ४२	१७ ३०
७ ७ ७ ७ ७ ७ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ९	३३१०
४ १४ २४ ३४ ४४ ५४ ४ १४ २४ ३४ ४४ ५३ ३	९ ५४
३० ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ४२ ३० ३० १८ १२ ४८ ४२	१४ ५२
११ १२ १२ १२ १२ १२ १२ १३ १३ १३ १३ १३ १३	२९९०
५५ ४ १४ २३ ३२ ४१ ५१ ० ९ १८ २८ ३७ ४६	१० ५८
१८ ४२ ० १८ ४२ ४८ १२ ३० ४२ ४८ १२ १८ ४२	२६ ३७
१६ १६ १६ १६ १७ १७ १७ १७ १७ १७ १८ १८ १८	२७९०
३१ ४१ ५० ५९ ८ १८ २६ ३६ ४६ ५५ ४ १४ २३	११ ०
४८ १२ १८ ३ ४८ १२ १८ ४२ ० १८ ४२ ०० १८	८ ७

छ विद्यादादि मंगल कार्य में जहाँ पदवर्गों शुद्धि देखना हो वहाँ इसमें शिखे जैसे मेप के २१ अंश (०२०) के विपुल घटी ५ पल ४७ पर पांचवर्गों ६ शुद्ध मिलेंगी। यूपमें के १४ अंश [ ११४ ] के विपुल य. ९ प. ४० पर वर्गों ६ शुद्ध मिलेंगे। इस विपुल काल में से लभसावर्णी द्वारा सूर्याश के विपुल घटी पक्ष कम कर देनेपर सूर्योदय से शुद्धरातक का दृष्टकाल बन जाता है.

सम्पादक,  
विद्यागुण दीनानाथ शास्त्री चुलेट,  
अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर,

पंचांग शोधन कमेटी के सभासदों के अभिप्राय.

आ. नं. ३८

श्री. इन्दौर, तारीख ९ डिसेंबर १९१९.

**श्रीमान् प्रोफेसर गोळे साहब का पत्र.**

श्री० अध्यक्ष मोहदय पंचांग कमेटी इन्दौर स्टेट.

शु. सा. न. वि. वि.

आज के सभा को, कुछ जरूरी काम होने से, मैं नहीं आसकूंगा. इसकी क्षमा करें. आप जिस रिपोर्ट पर मेरी सही चाहते हो, वो रिपोर्ट मेरे पास भेज देना तो मैं सही कर दूंगा. जिन बातों में मैं आपसे सहमत हूँ वह सब बातें भेजे गत सभामें आपको निवेदन कर दी थीं. अब तिथि और पाक्षिक पंचांग के बारे में मेम्बर महाशयों ने आप आपने भिन्न मत लिख देना ऐसा ठहरा था. उसके अनुसार मेरा मत मैं नीचे लिखता हू.

ग्रहलाघवीय याने "स्थूल तिथि" और "सूक्ष्म तिथि" ऐसे दोनों कालम पंचांग में देना. बाकी नक्षत्र, योग, करण, वगैरा शुद्ध तिथि के अनुसार देना अब रिमार्क कालम में जो व्रत, उपोषण, छुट्टीया (जैसे दीपावली, दसेरा, डोलग्यारस, गणेशचतुर्थी, प्रदीप, एकादशी, वगैरे) बतलाना, उसमें अगर स्थूल तिथि और शुद्ध तिथि के मान से फरक आता हो तब यह ताल पर चलना के, जब दिन निर्णय, वह तिथि कोई मर्यादित काल-विभाग में व्याप्ति करती है या नहीं, इस बात पर अवलम्बित हो, तब स्थूल तिथि से निर्णय लगाकर रिमार्क कालम में बतलाना. और जब दिन निर्णय यह बात पर अवलम्बित हो की चंद्रमा कालके कोई विवक्षित क्षण में (जैसे सूर्योदय क्षण, अथवा चंद्रोदय क्षण) कितने अंश पर है, तब सूक्ष्मतिथि से निर्णय बतलाना इसअलम्. भवदीप नम्र

**विश्वनाथ गोपाल गोळे**  
प्रोफेसर होलकर कॉलेज.

श्रीमन्त राज ज्योतिषी पंडित धालकृष्ण जोशी के पत्र.

आ. नं. ३९

ता. १८-११-२९ ई.

बेदमूर्ति राजमान्य राजेश्री. श्रीमान् विद्याभूषण दीनानाथजी शास्त्रीजी जुळे  
इन्की सेवामें.

साष्टांग नमस्कार विनती विशेष. आपके तरफ से जानक नंबर २१ ता. १०-११-२९ ई. का "हमारे सिद्धांत ग्रंथों के मूलाको में कितना धीज सरस्वर दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हों जिमके द्वारा दृग्गणितकय हो जाय" वगैरा मजबूर का आने से सजिनय प्रार्थना है कि.

अपने यहाँ सिद्धांत ग्रंथ तो बहोत से हैं व उनके मुताबिक में फरक करना यह भी सोचने की बात है. जूनी सिद्धांतोक्त आमनाथ वैसी ही रख के मध्यम मदों में अभी जितना अंतर आता होय उतना धीज संस्कार कमेटी में जो ठहरे व वेधोपलब्ध करने

की जो क्रिया आगे लिखी है वो करने से वेधतुल्य आवे ऐसा करना ठीक होगा. कारण हमारी जूनी आमना बदलना मायने उनके मुलाको में गड़बड़ करना कोई भी उचित नहीं समझेगा. वो आमनाय चली आई हुई चलाना यही तो मुख्य सिद्धांतों का हेतु है सिद्धांतरीत्या मध्यम ग्रह घने बाद उसमें संस्कार करना योग्य है. ऐसे मंदफल संस्कृत रथिचद्रो पर से पचाग बनना भी युक्त है पचाग के लिये छायातुल्य ही सूर्यचंद्र होना. किश वैसे करे हुवे पचागों के समान होना यह भी अवश्य नहीं ऐसी सिद्धांतकारों की मनशा गालूम पड़ती है.

छाया तुल्य ग्रहों पर से जो जो कार्य लेना सिद्धांतकारों ने ठहराया है वही कार्य दृक्प्रत्ययतुल्य ग्रहों से होना ठीक है. और जो संस्कार किया जाना कमेटी में ठहरे वो सर्वमान्य होना भी अवश्य है. सो विदित किया है. यह विनती. ता. १८ माहे नवंबर सन १९२९ ई.

### वालकृष्ण केशव जोशी.

श्रीमंत होममिनिस्टर एवं डेप्युटी प्राइम् मिनिस्टर साहब के सामके  
श्रीयुत वालकृष्णजी ज्योतिषी इन्दौर का कहा हुआ वृत्तांत ।

तारीख ९-२-३० ई.

पंडित वालकृष्णजी का कहना है कि जहातक सिद्धांत ग्रथ के मूलक में किनना बीजमस्कार करने से दृक्प्रत्यय ग्रह आयेगे यह मुझ था और उसपर बाद विवाद भी हुआ परंतु उसका निर्णय नहीं हुआ । पंडित दीनानाथजी के कहने में आया कि सभी सिद्धांतों में अंतर पड़ता है उसपर मेरा निवेदन है कि सिद्धांत ग्रथ को हान लगाना याने मूलकों में फरक करगा हमारे प्रकृति के बाहर है । जो उसमें हम फरक करेंगे तो हमारी जूनी सिद्धांत आम्नाय बिगड़ जायेगी. उसका पठन पाठन व्यर्थ हो जायगा । वास्ते सिद्धांत के मध्यम ग्रह साधन करे उपरांत बीजमस्कार देना ये ग्य है वो किनना दिया जाय सोभी आकाक्षा में दिखा दिया जय कि उस रीति से स्पष्ट ग्रह करे उपरांत दृक्प्रत्ययतुल्य करने की आगे जो क्रिया लिखी है वह करे बाद दृक्प्रत्यय बराबर आवे; वह संस्कार सर्वमान्य होने उसकी रचना (अभीतरु) कमेटी में नहीं हुई.

तारीख ९-२-३०

### प्रफ़ुट पत्र और कमेटी के सभासदों के अभिप्राय ।

उपरोक्त सूत्रम गणित पद्धति के एन विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री के बनाए हुए सिद्धान्त प्रभाकरोक्त गणित के आधारपर ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मगलजी जोशी के बनाये हुए सं.त् १९८७ श्राके १८९२ के पचाग को कमेटी में तपासने के लिये श्रीमंत सरकार के तरफ से आया हुआ पत्र । [ पेज १४६ में देखिये ]

## श्रुति सम्मत.

(ज्योतिषाचार्य विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट के बनाये हुए सिद्धांत प्रभाकर के अवलोकन एवं अभिप्राय के लिये

संपादक ज्योतिर्कुलभूषण ज्योतिषतीर्थ पं० नीलकंठ मंगलजी

हस्ति श्री संवत् १९८७ शके १८९२ चैत्र शुक्लपक्षः । उदगयनम्																			
ति	वा	घ	प	न	घ	प	वा	घ	प	क	घ	प	दि	र	र	अ	मु	इ	चंद्र
१	चं	१३	१४	रे	११	१३	ऐ	१६	५	ब	१३	१४	३०	३१	३२	३३	२९	३१	१५ मेप
२	मं	१२	५४	अ	१९	३८	वै	११	५२	कौ	१२	५४	४३	२३	४०	१	१	१	मेप
३	बु	११	४०	भ	१९	५०	वि	९	४७	ग	११	४०	४७	२२	४०	२	२	२	३३ वृषभ
४	शु	९	३१	कु	१९	२७	मी	५	१०	वि	९	३१	५०	२१	४०	३	३	३	वृषभ
५	शु	६	४१	रो	१८	१५	आ	७	३	वा	६	४१	५३	२०	४१	४	४	४	३३ मिथुन
६	श	१८	५१	मृ	१६	११	मो	४७	१७	ने	३	७	५६	१९	४१	५	५	५	मिथुन
८	र	५४	१०	आ	१३	४१	अ	४१	५५	वि	२३	२२	३१	१८	४२	६	६	६	३३ कर्क
९	चं	४८	३७	पु	१०	३६	सु	३३	५५	वा	२१	२३	३०	१७	४२	७	७	७	कर्क
१०	मं	४२	४७	सु	६	३०	घृ	२६	२४	ने	१५	१२	६	१६	४२	८	८	८	कर्क
११	बु	३६	३२	आ	७	३३	शु	१८	१२	व	९	५०	९	१५	४३	९	९	९	३३ सिंह
१२	शु	३०	०	पू	५२	५६	गं	९	५८	व	३	३७	१३	१४	४३	१०	१०	१०	सिंह
१३	श	२३	१०	उ	४८	१५	घृ	३	१०	ने	२३	१०	१६	१३	४३	११	११	११	३३ कन्या
१४	श	१७	१२	ह	४४	२७	व्या	४६	५८	व	१७	१२	२९	१०	४४	१२	१२	१२	कन्या
१५	र	११	३५	चि	४१	४०	ह	४०	३९	व	११	३५	३३	३५	५०	१३	१३	१३	३३ तुल

गोच(प्रहा):

चैत्र शुक्ल ८ रवी.

अयनादा: २२°१५.२'४७"

र	चं	मं	बु	शु	श	रा
११	२१	११	१	०	८	-
२३	१६	२३	१५	१९	७	११
१५	१६	३०	३३	१६	१४	१
११	३३	३६	३६	१२	४८	१३
५९	५९	४१	१००	१०	७४	१३
३४	४२	५४	३०	१८	३६	११



### पञ्चवंत पंचांगम्.

आधार पर बनाए हुये पंचांग में का चैत्र शुक्ल पक्ष का एक पृष्ठ संपूर्ण विद्वानों के प्रकाशित किया जाता है।)

महाराजा होलकर राज्याश्रित ज्योतिषी इन्दौर.

वसंतक्रतुः । एप्रील सन १९३०

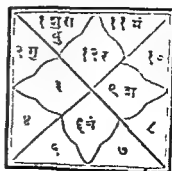
सूर्य	
२२ १६ ५४ २१	ध्वजारोपणं वत्सरारंभः घटस्थापन चंद्रदर्शनं मेघेभृगुः १८।२३
२२ १७ ५३ ३०	मत्स्यजयंति जिरहाद ११ एप्रील ३० अमृत १९।३८
२२ १८ ५२ ४०	म प्र ४०।३५ गौरीपूजनम् मन्वादिदश ११।४० पू.भा.यांभौमः २३।२५
२२ १९ ५१ ५६	म. नि ९।३१ यमघट १९।२७ कल्पादि
२२ २० ५१ ६	यमघट १८।१५ प.
२२ २१ ५० १६	म. प्र. ५८।५४ रामानुजायतारः
२२ २२ ४९ २१	मत्स्यपुत्ति म. नि. २६।३२ दुर्गा ८ २३।४१ नं. अशोक क. प्र.
२२ २३ ४८ ३१	श्रीराम जयन्ती मेघे बुधः २९।५०
२२ २४ ४७ ४२	म. प्र. ९।५० म. नि. ३५।३२ कामदा ११ दोहोत्सवं
२२ २५ ४६ ५१	प्रदोषः दमनोत्सवं
२२ २६ ४५ ६	अनंगवृत्तं X दमना रोपणं भरणी भृगु ६।१०
२२ २७ ४४ ५५	म. प्र. १७।१२ म. नि. ४४।१५ ज्योतिषिग यात्रा यमघट ४४।४७
२२ २८ ४३ ५६	अश्विनी मेषार्कः २९।२८ हनु. ज. मन्वादि वै. ग्रा रं. सर्वेश्व X

मध्यम सूर्योदये गोचर ग्रहः

र	जं	मं	कु	शु	शु	श	रा
११	५	१०	०	१	०	८	०
२१	३६	२८	११	२०	१५	१३	१०
३१	४०	०	५	५	४०	१६	३१
३४	४०	०	२८	२४	८०	१२	२५
५८	२३	४१	०	१०	४६	१	३
४८	११	४३	४८	१२	०	११	

चैत्र शुक्ल १५ रथो.

अयनांशः २२१°५१'४८"





रिपोर्ट पेज १४३ के आगे—

होम ऑफिस इंदौर.

नंबर ७८९४

ता. १९ अक्टोबर सन १९२९ ई.

राजमान्य राजश्री पंडित दीनानाथ शास्त्री एलिचपुरवाले

प्रेसिडेंट साहेब पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इंदौर.

राम राम विनती विशेष पंचांग सशोधन के संग्रह में यहाँ से आपके तरफ छत नंबर ५५९७ ता १०-८-२९ ई. का भेजा गया उसीके सिलसिले में आपको विदित किया जाता है कि—

पंडित नीलकंठ मंगलजी जोशी इन्होंने जो पंचांग बनाया है उसका भी विचार आप कमेटी में करें. यह विनती.

A. Eduljee,  
होम सेक्रेटरी.

**प्रस्तुत पंचांग को प्रकाशित करने की कमेटी की सिकारिश.**

रा० रा० सेक्रेटरी साहेब,  
होम ऑफिस इन्दौर.

सप्रेम आशिर्वाद पश्चात् निवेदन किया जाता है कि तारीख १० ८-२९ के नंबर  $\frac{५५९७}{७००\text{पृष्ठ } २८}$  पत्र द्वारा और तारीख १९-१०-२९ न.  $\frac{७८९४}{१९२९}$  पत्र द्वारा श्रीयुक्त बालकृष्ण जोशी-एच. ज्योतिषतीर्थ नीलकंठजी ज्योतिषी इन दोनों के पंचांगों को सरकार की आज्ञा के मुताबिक शोध करने पर कमेटी के अदर पाम हुये प्रस्ताव के अनुसार ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषी इनका बना हुआ 'श्री-यशवन्त पंचांगम्' नामक सूक्ष्म पंचांगहाँ चालू करना ऐसी कमेटी का राय है। क्योंकि श्रीयुक्त बालकृष्ण जोशी जिन आधार पर पंचांग तयार करते हैं वह प्रह्लादजी मान को मर सदस्यों ने ज्योतिष्य बताया है इससे इनका पंचांग प्रुटियुक्त है। इसका सुझाव- इसी पत्र में आगे खुलासे धार लिख दिया है अतः दोनों पंचांगों के मारासार विचारों को तोलते हुये पंचांग प्रकाशित करोगे ऐसी उम्मीद है। इतिशम्. तारीख १३ १-३० ई०

मधदीय,

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री सुलेट.

विश्वनाथ गोपाल मोले.

नीलकंठ मंगल जोशी.

जा. नव. ४७

पचाग प्रवर्तक कमेटी

तारीख १३-१-३० ई.

## पंचांग प्रवर्तक कमेटी के सभाओं की संक्षिप्त रिपोर्ट.

हिज हाइनेस महाराजा होलकर्स गवर्नमेंट का प्रथम आज्ञा पत्र ( रा. रा. होम सेक्रेटरी साहेब का पत्र न.  $\frac{७५९७}{७७० H २८}$  का ) प्राप्त होने पर पचाग प्रवर्तक कमेटी का कार्य ता. २९-९-२९ को प्रारंभ किया गया। कुल १५ मीटिंग्स हुईं.

पहिली मीटिंग्स के प्रारंभ में अध्यक्ष महोदय ने सम्माननीय होलकर सरकार की ओरसे प्राप्त हुए पत्र का महत्त्व समझाते हुए यह बतलाया कि आज भारतभर में सूक्ष्म पचाग की कितनी आवश्यकता है और इसी पचागवाद से इस देश के अनेक धार्मिक कार्यों में बाधा उपस्थित हो रही है तथा इसी विषय का निर्णय करने के लिये ऑनरेबल प्राइमिनिस्टर साहेब ने यह "पचाग प्रवर्तक कमेटी" कायम करके इस गुरुतर कार्य को यथा योग्य रीति से पूर्ण करने की आज्ञा हम लोगों को कृपा पूर्वक प्रदान की है, ऐसी अनुरा में हमारा यह प्रधान कर्तव्य है कि इस कार्य को हम धर्मशस्त्र एवं ऋषिप्रणित ग्रंथों के आदेशानुसार निर्णित करके दृढप्रत्यययुक्त शास्त्रसिद्ध सिद्धांतानुसारी पचाग निर्माण करने का मार्ग सरल बना देने का प्रयत्न करें। इस जगह यह बात खामतौर से ध्यान देने योग्य है कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य का प्रभव देश में सर्वत्र होने की संभावना है, और यह भी निश्चित है कि अन्य राज्यों में भी इस नूतन शोध के प्रचार का प्रयत्न होगा। मुझे आशा है कि आप महानुभावा बिना किसी दुराग्रह या पक्षपात के सत्य का अनुसंधान कर इस परमोपयोगी कार्य को शीघ्र ही पूर्ण कर उस श्रेय को प्राप्त करेंगे, जिसे प्राप्त करने का सुअवसर ऑनरेबल होलकर गवर्नमेंट ने हम लोगों को प्रदान करने की कृपा की है। इसलिये इस दुर्बोध्य विषय को सर्वसाधारण के समक्षने योग्य मरल बना देना चाहिये।

इसके पश्चात् कमेटी के विषयों का योग्य रीति से निर्णय होने के लिये अध्यक्ष महोदय ने चार मुद्दे उपस्थित किये \*। उन चारों मुद्दों में से प्रत्येक मीटिंग में एक एक मुद्दा हल करने की सूचना की जो सर्व सम्मति से स्वीकार की गई। एवं उसी क्रम से आगे काररवाई आरंभ हुई।

\* तारीख २९-९-२९ ई. की पहिली मीटिंग का प्रोसिडिंग तथा इस रिपोर्ट का पेज २३-२४ देखिये।

पहिला मुद्दा:—इस मुद्दे के संबंध में दूसरी, तीसरी, और चौथी मीटिंग तक प्रश्नोत्तर होते रहे; जिसमें कमेटी के सब सदस्यों से इन्दौर शहर का सूक्ष्म गणितानुसार रवि का उदयास्त और दिनमान का गणित मंगाया था। परंतु वह गणित कोई भी तैयार करके नहीं लाया। “पंडित रामसूचितजी से नहीं पूछा जा सका क्योंकि वे यहाँ नहीं थे। क” प्रचलित पंचांग में जो रवि का उदयास्त दिनमान इत्यादि छपना है वह सूक्ष्म गणित द्वारा जाँच करने पर ग्रह लाघव पद्धति त्यागकर बनाया हुआ पाया गया। इस संबंध में पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि “गणित ग्रहलाघवादि है फक्त स्टैंडर्ड टाइम के अनुसार से लिया है और यह आज से नहीं है। पहिले लोकल टाइम लेते थे।” परंतु इसमें भी अध्यक्ष द्वारा निर्मित पत्र नं. १६ वाली सारणी के सूक्ष्म मानों से भी ३-४ मिनट तक का अंतर पड़ता है यह प्रो. गोले साहेब व अध्यक्ष ने गणित करके स्पष्ट दिखा दिया।\* जब यह तप हो गया कि प्रचलित पंचांग में उदयास्त दिनमान सूक्ष्म होना चाहिये; तब अध्यक्ष द्वारा निर्मित रवि के उदयास्त और दिनमान की सारणी के विषय में यह प्रस्ताव हुआ कि:—(१) “पंचांग में जो सूर्य का उदय-अस्त और दिनमान दिया जाता है वह सूक्ष्म चरपलों से अति परिश्रम के साथ अध्यक्ष द्वारा बनाया हुआ दिया जावे।” इस संबंध में “पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि हम जो उदयास्त देते हैं वह अशुद्ध नहीं हैं जितना सूक्ष्म होवे उतना अच्छा है। पंडित दीनानाथजी ने जो दिया है उससे भी सूक्ष्म हो सकता है। मध्याह्न को दश पल पूर्व और दश पल पीछे निकला है इसलिये हमारा करा हुआ जास्त सूक्ष्म है।” ख

२ दूसरे मुद्दे के विषय में वादविवाद के पश्चात्—इसी चौथी मीटिंग में सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि §:—

“पंचांग में जो लग्न सारणी और भावसारणी दी जाती है; वह सूक्ष्म चरपलादि से शके १८५२ की स्वयं अध्यक्ष महोदय के द्वारा निर्मित पत्र नं. १६ में उपस्थित है। उसीको कमेटी स्वीकार करती है और साथ ही साथ सिफारिश करती है कि प्रतिवर्ष पंचांग में यही प्रसिद्ध होती रहे।”

“पंडित बालकृष्णजी के मतानुसार दोनों में विशेष अंतर नहीं है।” ग

३ तीसरा मुद्दा:—तीसरे मुद्दे के विषय में वाद विवाद होने के पश्चात् अंत में तारांश १६-११-२९ की आठवीं मीटिंग में सर्व सम्मति से जो प्रस्ताव पाम हुआ वह निम्नांकित है:—

फ ख और ग यह कथन भीमन्त होम मिनिस्टर साहेब के सामने कहा गया है।

\* तारीख १६-१०-२९ की चौथी मीटिंग का प्रोसिडिंग देखिये।

(१) तारीख १६-१०-२९ की “ “ “ “

§ तारीख १६-१०-२९ की मीटिंग ४ थी देखें।

“ सूर्यचंद्रादि के ग्रहण, ग्रहों के उदय अस्त, चन्द्रगुणोन्नति, ग्रहयुति, चतुर्थी एवं कालाष्टमी का चन्द्रोदय इत्यादि २ गणित सूक्ष्म पद्धति से किया जाय । ”

४ चौथा मुद्दा:—इसी प्रकार कई प्रकार के वदविवाद होने के पश्चात् यह प्रस्ताव बहु सम्मती से पास हुआ कि:—

“ पंचांग में दिये जाने वाले तिथि, वार, नक्षत्र, योग और, करण, इन पाँचों अंगों का साधन सूक्ष्म गणित के ग्रंथों से भूमध्य दृश्य होना चाहिये । जिससे पंचांग की बातें दृक् प्रत्यक्ष युक्त हो सकें । ”

इस प्रस्ताव में “ अनुकूल ( १ ) पंडित दीनानाथजी ( २ ) पंडित नीलकंठ मंगलजी जोशी ( ३ ) प्रोफेसर गोळे ; विरुद्ध ( १ ) पंडित रामसूचितजी सिद्धांतानुमार चाहते हैं ( २ ) पं. रामकृष्णजी शास्त्री धर्मशास्त्रानुकूल होंगे तो लेना । ( ३ ) पंडित बालकृष्णजी के मन से यह हो नहीं सकता । पंचांग ग्रह-भूमध्यस्थ को ही स्पष्ट ग्रह कहते हैं और उसी से पंचांग साधन लिखा है । ” घ ( इस प्रकार बहुमतने प्रस्ताव पास हुआ )

५ पाँचवां मुद्दा:—धर्मशास्त्राध्यापक पंडित रामकृष्णजी शास्त्री “ साठे ” महोदय ने अत्यंत ही आग्रह के साथ भीटिंग में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि:—“ आपके मतानुसार तिथि में १० घड़ी का क्षय होवे तो धर्मशास्त्रानुसार श्राद्धादि कार्यों में बाधा आती है क्या । वास्ते इसका निर्णय होना आवश्यक है । ”

इस प्रस्ताव के समर्थन में उपोतिपाचार्य पंडित रामसूचित जीपाठी कहने लगे कि—“ यदि पंचांग के सब ही विभाग दृक् प्रत्यक्ष से बनाना चाहते हैं तो आर्य सिद्धांत का विरोध होने से, धर्मशास्त्र का विरोध होता है; इसलिए सुझे मान्य नहीं है । ” इत्यादि २ बातें लिखकर लेखी पत्र नं. २३ पेश किया । इसी सिलसिले में श्रीयुक्त साठे शास्त्रीजी कहने लगे कि—“ बाण वृद्धि रसक्षयः ” में बाधा आती हो तो हमें ऐसी शुद्धि मान्य नहीं ”

इस प्रमाण के संबंध में उनसे प्रार्थना की गई कि प्रमाण के साथ रूपया ग्रंथ का नाम, प्रकरण, पृष्ठ, पंक्ति और वक्तव्यानुसार प्रमंगपूर्ण उदाहरण सहित विवरण लिखकर दीजिये । साठे शास्त्रीजी के पत्र नं. २९ से स्पष्ट हो जाता है कि “ बाण वृद्धि रसक्षयः ” यह वचन किस ग्रंथ का और कहा पर है इसे वे प्रमाणित नहीं कर सके ।

“ घ ” यह कथन श्रीमन्त होम मिनिस्टर साहब के समक्ष कहा गया है ।

इस प्रश्न को महत्व देने का दूसरा यह भी कारण है कि यही मुद्दा बंबई, पूना, आदि की अनेक सभाओं में उपस्थित किया गया था, तथा कुछ ग्रंथों में इसका अस्तित्व बतलाने का प्रयत्न किया जाने पर भी उन सभाओं में इस प्रश्न की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। अतः इसके संबंध में शास्त्रीय रीत्यानुसार अन्वेषण होजाने से कई वर्षों से उल्लेखन में पड़े हुए विवादग्रस्त प्रश्न का भी निर्णय होजायगा।

अध्यक्ष ( पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट ) महोदय ने अपने हिन्दी पत्रों में इसी मुद्दे पर वास्तविक प्रकाश डालने के लिये वैदिक काल से लेकर श्रुति, स्मृति, भारत, पुराण और अनेक कालमाध्यादि शास्त्रीय ग्रंथों के प्रमाणों से निर्णय कर यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया कि “ वैदिक काल से लगातार आज तक ऐसा ही पंचांग बनाया जाता था ” जैसा शुद्ध पंचांग निर्माण करने की योजना यह कमेटी कर रही है।

( “ इसके नाँवे का मजमून प. रामसूचितजी त्रिपाठी ज्योतिषाचार्य और भीष्टत सठि शास्त्रीजी के मतानुसार शास्त्र सिद्ध नहीं है। ) ” च

व्योंकि बोधायन आदि ऋषियों के द्वारा बतलाये हुए तेरह और सत्रह दिन के पक्ष को देखते “ बाण वृद्धि रस क्षयः ” के स्थान में “ अकवृद्धिर्दस क्षयः ” ही निस्सन्देह सिद्ध होता है।

इस संबंध में “ पंडित बलकृष्णजी का कहना है कि ” १३ दिन का पक्ष यद्यपि शास्त्र में शुभकार्य के लिये वर्ज्य है। १७ दिन का पक्ष २-३ हजार वर्ष में भी देखने में नहीं आया। ” छ

“ किन्तु बोधायन और आपस्तम्ब आदि ऋषि ग्रंथों में १३ और १७ दिन का पक्ष अन्वधान में निपिद्ध लिखा है वह सूक्ष्म गणित के पंचांगों में मिलेगा। स्थूल गणित के पंचांगों में नहीं। ” ऐसा पंडित दीनानाथजी ने कहा।

इत्यादि २ विवादों के निर्णय में सभा की ९, १०, ११, १२, १३, १४, वी समा हुई। [ इन सभाओं में निर्णीत विषयों पर शास्त्र के आधारों के लेख अण्यक्ष, साठे शास्त्री और त्रिपाठीजी के हस्ताक्षर सहित रिपोर्ट में ज्योंके त्यों अंकित हैं ] इसके पश्चात् अण्यक्ष महोदय ने संस्कृत और हिन्दी में एक बड़ा पत्र निकाल कर इस विषय का स्पष्टीकरण विस्तार पूर्वक कर दिया है।

साठे साहेब का यह प्रस्ताव २ विरुद्ध मत से विमा ही रह गया। पश्चात् प्रो० गोत्रे साहेब ने यह उा सूचना उपस्थित की कि;

“ च ” और “ छ ” यह कथन श्रीमन्त होम मिनिस्टर साहेब के समक्ष कहा गया है।

यद्यपि सूक्ष्म गणित से ' अंक वृद्धिर्दसक्षयः ' ही का मान आता है और इसी प्रकार जो सूक्ष्म तिथियाँ आवें वह पंचांग में देना जरूरी है; तो भी ग्रहलावच की रथूल तिथि का फिल हाल ( जय तक की मध्यम तिथि के एक सुलभ क्यालेंडर की योजना न होसके तब तक ) काळम देदिया जावे ।

### ( प्रोफेसर साहय की सूचना )

तिथि के विषय में आपने एक अति महत्व की उप सूचना करी कि ( जैसा कोर्ट में मुकदमे की तारीख लगाने, या ( पगार ) तनखा वांटने की तारीख मुकर्रर करने, अथवा हुंडी चिट्ठियों का ठीक दिन के हिसाब से ब्याज जोड़ने आदि ) कई दिनोतर जन्म कर्मोंमें अभी हमारा पंचांग क्यालेंडर ( Calender ) की तरह आसान-उपयोग; तिथियों के लिये नहीं पहुँच सकता ।

यदि माहनों के सिर्फ नामाभिधान के लिये मध्यम चंद्र से निकली हुई; यानि जिसमें ० वृद्धि और ० क्षय हो और उसमें सूर्य और चान्द्र मास वा मेल मिटाने के लिये किमी निश्चित तिथि का ( माहने के आरंभ या अंत में ) क्षय; प्राप्ते दो दो मास के हिसाब से नियम बांधकर उसी तरह निश्चिन किये लीप वर्ष ( Leap year ) की तरह (समान) कोई आसान व पूर्व निश्चित व सर्व साधारण को गम्य ऐसी योजना कर दी जावे तो मुझे विश्वास है कि समस्त भारतवर्ष में अपनी यह योजना; आदर्श रूप धारण कर लेवेगी ।

इस योजना को गणित से उत्तम प्रति की बैठाने के लिये, हमारे विद्वान गणितज्ञ अक्षय महाराज एवं कमेटी के अन्य समासद बना सकते हैं; अतः होडकर की माननीय सरकार ऐसे उपयुक्त तिथि मान को कमेटी द्वारा बनवाने पर ध्यान पहुँचावेगी। ऐसी आशा रखता हूँ ।

उपरोक्त पांच धृष्टों का निर्णय और प्रो. गोले साहय की उप सूचना दिवाई है । और आदि से अंत की मीटिंग तक का समस्त व्योम प्रत्येक समाजों के अनुक्रम से रखा गया है । जो माध्य में प्रेषित है । “ ज

---

ज “ उपरोक्त मज्मून हाजर समासदों को पढकर सुनाया गया और उन्होंने जो कुछ कहा वैसी सुधारणा प्रश्नों प्रश्नोत्तर से टिखी गई । यह ज्योतिषी बालकृष्णजी के पास भेजा जावे और उनकी भी अनुमति सामिल करजी जावे ” ( माधवकृष्ण किवे ) १५० “ बालकृष्णजी की अनुमति उनके पत्रोंके साथ सामिल करडी गई है । ” सम्पादक-

उपरोक्त मुद्दों का सूक्ष्म रीति से विवेचन करके निम्नांकित निर्णय किया गया ।

## सभापति का किया हुआ अंतिम निर्णय

१. जबकि प्रो. गोळे साहेब स्पष्टतया मान्य कर रहे हैं कि:—\* 'काल गणना के मूल मान जोकि आरंभ स्थान, अयनांश, और अयन गति, परम फल, तथा परम क्रांति इत्यादि बातों में मैं आपसे सहमत हूँ' तिथि मान किम गणित से लेना इसमें मेरा फहना नहीं वह चाहे किसी भी मान के हों किंतु होथे दृक् प्रत्यय युक्त ।

२. 'वेमेही ज्योतिषाचार्य पंडित राम सूचितजी त्रिपाठी स्पष्ट कह रहे हैं कि + ग्रह छाषव बहुत स्थूल होने से उस पर से पंचांग योग्य नहीं ।

३. इसी अनुमार तीसरे सभामद पं. बालकृष्ण जोशी प्रचलित पंचांग कर्ता भी इस बात को स्पष्ट तया मन्थ कर रहे हैं कि:—x "मध्यम ग्रहों में अभी जितना अंतर आता-हो उसना बीज संस्कार कमेटी में जो ठहर जाय वह वेधोपलब्ध करने की क्रिया आगे डिली हो वह वेधतुल्य होने से ठीक होगा ।"

४. इसी प्रकार प. ज्यो. नलकंठ शास्त्री ज्योतिषनीति अंतःकरण पूर्वक मान्य कर रहे हैं कि ६ पंचांग स्थित ग्रहों को दृक् कर्म संस्कृत करके बार बार वेधोपलब्ध करते रहना, पंचांग कर्ता को आवश्यक है । और उस मुताबिक होते रहना ही शास्त्रोक्ति का मार्ग है

५. इसी प्रकार पाचवे सभामद धर्मशास्त्राध्यापक पंडित रामकृष्ण शास्त्री साठे के दिये प्रमाणों से ही जबकि अंकुशवर्द्धिस क्षय. ही का मान भिन्न होता है ।

ऐसी समस्या में कमेटी के सभी सभामदों का मत इस ओर एक साथ ही एक रहा है कि प्रचलित महालाघवीय पंचांग स्थूल है । और उस स्थूलतासे क्षिप्रान्ति क्षिप्र गृह और सूक्ष्म मनाने का आवश्यकता का ताजा नमूना यह है कि प्रचलित पंचांग कर्ता ने महालाघवीय मान के रति का उदयास्त और दिनमान को त्याग कर गत पांच वर्षों से जो

\* तथा प्रो. गोळे साहेब का पत्र नंबर ३८ पृष्ठ १४२ देखो.

+ पत्र नं. ४२ पृष्ठ ३६ पंक्ति ७ देखें.

x पत्र नं. २४ पृष्ठ १४२ ज्यो. बालकृष्णजी के पत्र पृष्ठ १४२।४३ देखें.

६ अमिप्राय ज्यो. ती० नलकंठ जोशी का ता० १।१।२९ का पत्र पृष्ठ ६० पंक्ति १४।१५ में पत्र नं. ३८ देखें

सूक्ष्ममान के दिनमान आदिका स्वीकार किया है; इतना ही प्रमाण पंचांगशुद्धताकी परमावश्यकता बताने के लिए पर्याप्त है। अतः इस विषय में मेरी नम्रभाव से सूचना है कि केवल रवि के उदयास्त और दिनमान ही को ठीक जोड़ देने से काम नहीं चल सकता। इसलिये हम को तो सर्वोप ही सूक्ष्मगणित का पंचांग बनाना चाहिये।

क्योंकि उत्तम समय में किये धर्मानुष्ठान तीर्थ, व्रत, उपवास, जन्म, उपनयन, विवाहादि संस्कार-व आदि कुल बातें ( ठीक ठीक समय में होने ही से ) योग्य फल की सिद्धि को प्राप्त कर सकती हैं। अन्यथा नहीं। इसलिये कमेटी के पास सरकार की आज्ञा से ' पं० नीलकंठ शास्त्री का तैयार किया पंचांग ' जो पेश हुआ है वह चुलेटकृत प्रभाकर सिद्धांत के आधार पर बना होने से वह श्रुति सम्मत है। और अपने को जितनी शुद्धियाँ आवश्यक हैं, वे सब पूर्ण कर पंचांग सर्वोप परिपूर्ण कर दिया है। और वह कौपी बिल्कुल तैयार ( कंस्टीट ) है अतः—

शास्त्रीय दृष्टिसे एवं कमेटी के बहुमत से संवत् १९८७ शके १८५२ से सूक्ष्म गणित का चुलेटकृत प्रभाकर सिद्धांत के आधार पर बना हुआ श्रुति सम्मत पंचांग ही प्रतिष्ठा छापना अवश्य है। ऐसी हमारी पूर्ण राय है।

भवदीय,

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

अध्यक्ष पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर

विश्वनाथ गोपाळ गोळे.

नीलकंठ मंगलजी जोशी.

पं. कमेटी जा. नं. ५०

श्री.

ता. १३-१-३० ई.

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट का परिशिष्ट ( अ )

प्रोफेसर साहव का अंतिम निवेदन.

लेखक रा० रा० प्रोफेसर विश्वनाथ गोपाळ गोळे.

इन्दौर दरबार नियुक्त पंचांग कमेटी के अध्यक्ष महोदय भीषुत पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट इन्होंने कमेटी का रिपोर्ट पेश करते हुये कमेटी के सब सभासदों का तथा अन्य सज्जनों का अभिनेदन किया है यह योग्य ही है। किन्तु कमेटी के कार्य में भारी परिश्रम खुद अध्यक्ष महोदय ने ही किया है इसलिये कमेटी के सब सभासदों के ओर से उनका अभिनेदन इस पत्रद्वारा करने में मुझे बहुत दुर्प होता है। प्रत्येक सभासद जो जो शंका



अगर पृच्छा करते रहे उसका पूर्णतया और विद्वत्ता पूर्वक समाधान -करना, बने जब तक सबको अपना अपना मत प्रतिपादन करने की संधि देना, उनमें एक वाक्यता करने का प्रयत्न करना, इत्यादि बहुमूल्य गुण जो अध्यक्ष महोदय ने अपने बर्ताव में दिखाये हैं उनके लिये मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

किन्तु यह बड़ी खेदकी बात है कि हम सब सभासद एक मत से रिपोर्ट पर सही न कर सके। अध्यक्ष महोदय ने अपना मत समझाने में कोई बाकी न रखी। मगर मुझे अफ़सोस के साथ लिखना पड़ता है कि बाकी के सभासदों ने न तो दिलचस्पी से उनका मत समझा, और न उनके मतका जोरसे विरोध करके अपना कोई निश्चित मत प्रतिपादन कर सके वैसेही उन बातों के पुष्ट्यर्थ न वे सूक्ष्म दृष्टमद गणित करके अन्य सभासदों को समझाने की कोशिश कर सके।

अन्त में इन्दौर दरबार से मेरी यह प्रार्थना है कि आज करीब करीब पांच महीने से अध्यक्ष महोदय पंडित दीनानाथ शास्त्रीजी ने दिनरात परिश्रम करके जो झिष्ट गणित के सैंकड़ों कागज तयार करके सभामें पेश किये हैं, और साथ में सभा के रिपोर्ट का एवं कुछ सभाओं का प्रोसिडिंग व पत्र व्यवहार का एवं लेखन कार्य का बोझा सिरपर उठाया है उसका आर्थिक मोबदला आशा है दरबार उन्हें जरूर दिलावेगी।

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट में बताई हुई यथायोग्य निर्णित शुद्धियाँ और उसका उपयोग अब आगे पंचांग में सरकार मान्य करेगी ही यदि न भी करी तो अभी तक उन्होंने जो दरबार के हुकुम से अत्यन्त परिश्रम के साथ कमेटी की इतनी सभायें बुलाकर प्रतिदिन करीब करीब पाच-छ घंटे का अपना अमूल्य समय इस कार्य में लगाया है उसका यथायोग्य पारितोषिक; प्रति सभाके हिसाब से ( चाहे बाकी के सभासदों को कुछ भी न दिया जाय तोभी ) अध्यक्ष महोदय को मिलना बहुत न्याय है।

क्योंकि जोभी प्रत्यक्ष पंचांग साधन गणित में मैं अनभिज्ञ हूँ तोभी इसमें मुझे संदेह नहीं है कि शुद्ध और सूक्ष्म पंचांग बनाने का समस्त गणित अध्यक्ष महोदय ने ( अपने सुपुत्र पंडित गोपीनाथजी की सहकारिता से ) स्वयं अपने ही पद्धति से किया हुआ है ( Original and not copied ) और रिपोर्ट के साथ जोड़ दूँ बहुत से कोष्टक सारणी व आलेख्य (figures, tables and graphs) ऐसे हैं कि केवल इन्दौर के लिये ही नहीं वरन उनके छपाने से ये समस्त भारतवर्ष में बहुत उपयोगी होंगे। इसलिए अध्यक्ष महोदय को हार्दिक धन्यवाद देते हुये सविनय निवेदन करता हूँ कि मेरा यह पत्र भी रिपोर्ट के साथ दरबार में भेज दिया जावे तारीख १२ जनवरी १९३० ई.

अरदीप नम्र

चिम्बनाथ गोपाळ गोळे  
प्रोफेसर, दौण्डर कॉलेज.

इंदौर. ता. १३-१-३० ई.

जा. नंबर ४९

पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर.

ता. १३-१-३०

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट का परिशिष्ट ( व )

## कमेटी के कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन ।

( लेखक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट. )

१ अत्यंत हर्ष का विषय है कि आज उन्नतिशील संसार के उत्कान्ति युग में श्रीमंत महाराजा होलकर की माननीय सरकार की दृष्टि पंचांग शोधन की ओर आकर्षित हुई है। इसके लिये कमेटी माननीय होलकर सरकार को शतशः धन्यवाद देती है।

२ इसके अनंतर कमेटी के आरंभ के ता. २५-९-३१ ई. के दिन से अंतिम समा ता. ९-१२-३९ की पंद्रवीं समा तक हमारे प्रभाकर कार्यालय के सेक्रेटरी चिंजीव बंझित गोपीनाथ शास्त्री चुलेट ने प्रत्येक सभा के सदस्यों के बाद विवादों का संक्षिप्त व्योरा ( प्रोसिडिंग ) लिखने गणितादि व लेखादि में कई प्रकार की सहायिता पड़ूचने; एवं कमेटी के स्फुट कार्य करने तथा वृत्तान्तों को व्यवस्थित लगाने आदि के कामों में सेक्रेटरी की भांति सुचारु रूप से काम किया है। इसलिये सभा की तरफ से उनको धन्यवाद देते हैं।

३. इसी प्रकार रा. रा. महार गोपाळ सुरिन्टेन्डेंट साहेब रि. ए. व चारिटेबल ने इस कमेटी को आवश्यक स्टेशनरी सामान प्रदान आदि कार्य करने की जो कृपा की है; उसके लिये यह कमेटी उनको सहर्ष धन्यवाद देती है।

४. इसी तरह इस कमेटी के पहिले सदस्य श्रीमान् होलकर कॉलेज के प्रो. रा. रा. विश्वनाथ गोपाळ गोले- ने प्रत्येक गणित के विषय को जिसको कि वे अच्छी तरह जानते थे ऐसे विषयों के हर रीति से जानने की एवं बार बार समयानुसार हमसे गणित रीत्या समझने में अभिलाषा दिखाने की कृपा की है। और उसको नाटिकल-चेम्बर्स टेबल-इत्यादि साधनों से जांच जांच कर प्रस्तावों पर सम्मति प्रदान करने की कृपा की है। इसलिये यह कमेटी उनके जांचने के परिश्रम की तारीफ करते हुये गोले साहब को हार्दिक धन्यवाद देती है।

५. इसी अनुमार दूसरे सदस्य ज्योतिष विद्यालय के अध्यापक श्रीमान् ज्योतिषाचार्य प. रामसुचितजी त्रिपाठी ने ज्योतिष के संबंधी ग्रहगति-मन्दफल-अपनाश-वर्षमान-अयनगति इत्यादि विषय गणित के कई प्रकारों से समझने की एवं उसका अर्थ आप्रह छोड़ अंत में सत्य को स्वीकार करने की कृपा की एतदर्थ यह समा उनका गौरव करती हुई सहर्ष धन्यवाद देती है.

६. इसी प्रकार तीसरे महानुभाव चालू पंचांग कर्ता पं. वालकृष्ण केशव जोशी ने पांच वर्ष से स्थूल मानके रवि के उदयास्तकी स्टैंडर्ड टाइम् और दिनमान को बनाना त्याग कर सूक्ष्मता का अवलंब किया है। इसके लिये यह कमेटी उन्हें बढ़ाई देती है। और समय समय पर ग्रहगणित इत्यादि के मामलोंको तथा हमारे बनाए हुए प्रभाकर सिद्धान्त के परिमाणों को भी जाँचते रहे इसलिये यह सभा उन्हें प्रेम पूर्ण धन्यवाद देती है।

७. इसी तरह चौथे सदस्य सूक्ष्म पंचांग के कर्ता ज्योतिर्कुल रत्न पं. नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषसीध ने गहरा परिश्रम कर हमारे प्रभाकर सिद्धान्त के आधार पर एक सूक्ष्म पंचांग बनाकर कमेटी में प्रदान किया है, और सूक्ष्मता के मान जैसा कि अयनांश वर्णमान इत्यादि सूक्ष्म ही मान्य करने की कृपा की है। अतः यह कमेटी प्रेमान्तःकरण से उन्हें धन्यवाद प्रदान करती है।

८. इसी रीति से पाचवे सदस्य धर्मशास्त्राध्यापक श्रीमान् रा. रा. पण्डित रामकृष्णजी साठे ने धर्मशास्त्र के आधार से आज कल सूक्ष्म पंचांग के तिथि में लोगों की क्या मनोभावना होती है; इसका विचारमय प्रस्ताव खड़ा करने की कमेटी पर बड़ी अनुकंपा करी है। क्योंकि यह पाचवा प्रस्ताव खड़ा न करते तो संभव था लोगों की समजूत होजाती कि कमेटी ने, तिथि के और ध्यान ही नहीं दिया किंतु इन्होंने मुद्दा खड़ा करने ही कि कृपा हुई की इतना महत्त्व का मुद्दा हल होगया। क्योंकि जो कार्य अन्य मुबई-पूना इत्यादि सभाओं में हल नहीं हुआ था वह यहाँ हल होगया। अतः कमेटी की ओर से हम उन्हें अन्तःकरण पूर्वक सहर्ष धन्यवाद देते हैं।

९. इसी प्रकार मऊ निवासी पं मूलचन्द्रजी शर्मा एवं हमारे होनहार विद्यार्थी पं. हरिराम शर्मा यह प्रत्येक मिटिंग में बराबर आते रहे इतना ही नहीं बरन मेरे लिखे गणित के कोष्टक सारणी आदि की नकल करने, और पत्र आदि को समय समय पर कमेटी के सदस्यों के समीप पहुँचाने लाने का कार्य, अत्यंत उत्साह पूर्वक किया, इसलिये यह सभा इनको धन्यवाद देती है।

१०. इसी प्रकार मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिती के उपमंत्री पंडित शिवसेधकजी तिवारी ने अपने अमूल्य समय को व्यय करके इस कार्य में जो बहु मूल्य सहायता अंतिम रिपोर्ट के हिन्दी भाषा संशोधन में दी है; एतद्दर्थ यह सभा उनको धन्यवाद देती है।

मधुदीप,

दीनानाथजी शास्त्री चुलेट.

विश्वनाथ शास्त्री गोळे.

नीलकंठ मंगलजी जोशी.

जा. नं. ४८

पंचांग प्रवर्तक कमेटी.

ता. १३-१-३०

श्रीमन्त होलकर सरकार की सेवामें भेजा हुआ धन्यवादयुक्त अंतिम निवेदन.

रा. रा. सेक्रेटरी साहब होम डिपार्टमेंट,

होलकर सरकार इन्दौर.

प्रिय महाशय !

अनेक राम राम के पश्चात् आपका पत्र नं.  $\frac{१५९७}{७०००} H २८$  इसकी का प्रात होने पर

रा. रा. माननीय होम मिनिस्टर साहब की सेवामें उपस्थित करने के लिये निवेदन है कि:-

आज्ञाऽनुसार कमेटी का कार्य सम्पन्न करके उसके निष्कर्ष की रिपोर्ट साथमें प्रेषित है। उसके अवलोकन से ज्ञात होगा कि लोकप्रिय श्रीमान् प्राइम् मिनिस्टर साहब के मनोनीत किये हुए कमेटी के विद्वान सदस्यों ने बड़ी तल्लीनता और गंभीरता के साथ वाद-विवाद करके, अन्त में इस निर्णयपर पहुँचे हैं; कि प्रचलित पंचांग के सुधार की आवश्यकता है। और उसके सुधार के लिये सूक्ष्मगणित का आश्रय लेना आवश्यक है। तथा उस के लिये आगे सूचित किये जाने वाले साधनों की भी अत्यन्त आवश्यकता है।

मुझे यह लिखने में बड़ी प्रसन्नता होती है, कि होलकर राज्यकी अनेक विशेषताएं भारत में हा नहीं वरन समस्त जगत में प्रसिद्ध हैं, और उस राज्य से अब तक पंचांग का प्रकाशित होना भी एक विशेषता ही है; परन्तु उसकी मुठियों के सुधार के लिये इस समय के पश्चिमीय विचारों की चक्काचीध में भारतीय शास्त्रियों की गणित ऐसे क्लिष्ट विषय में श्रय देने के लिये जो कृपा की गई है, उसके लिये भविष्य बतलावेगा कि माननीय "होलकर सरकार" महाराजा जैसिंह की भांति वेधशाला आदि स्थापन कर ज्योतिष के शोध से सदा यशस्वी रहेगा। अस्तु

आजकल जो पंचांग बनाए जाते हैं वह तथा इस राज्य से प्रसिद्ध होने वाले प्रस्तुत पंचांग; ग्रहलाघव के आधार पर स्थूल मान से बनाए जाते हैं। स्थूल रुद्ध ही बतलाता है कि उस गणित में पूर्ण वास्तविकता नहीं है, और थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जावे तो ग्रह लाघव जो शके १४४२ में बना था कितना पुराना ग्रंथ है। और ग्रह लाघव के पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि पुराने ग्रंथों के आधारपर किये गए गणित में जब अन्तर पढ़ने लगा, तो ऋषि प्रणीत ग्रंथों के आधार पर ही पढ़नेवाले अन्तर को दूर करके सूक्ष्म गणित करने की इस ग्रंथ में योजना की गई है। और इस के देखने से यह भी पाया जाता है कि, ग्रह लाघव बनाने वाले गणितज्ञ शिरोमणि, गणेश दैवज्ञ को कुछ वर्षों के पश्चात् अनुसन्धान करने पर ग्रहगणित में पुनः अन्तर ज्ञात हुआ था, जो उन्होंने स्वयं लिख देने की कृपा कर दी है। ५

(रिपोर्ट पृष्ठ १२ कलम २१ देखिये)

अब विचार करने की बात यह है कि, जब श्री गणेश दैवज्ञ के समय में ही अन्तर आगया था तो अब तो ग्रह लाघव को बने ४०९ वर्ष के निकट हो गए हैं, तब अन्तर पडना संभव ही नहीं, आवश्यक है। और प्रसन्नता की बात है कि इस बाबत भारतवर्ष में जहां तहां उद्योग भी हो रहा है।

हमारे ऋषियों ने प्रत्येक शास्त्रों को इस विधि से पूर्ण करने की कृपा की है, कि उसके आदेशानुसार हम उस शास्त्र में सम्योचित सुधार करते जायें, तो किसी प्रकार अन्तर न पड़े।

इसी नियमानुसार इस कमेटी में पांच प्रस्ताव पास किये गए हैं कि जिसके अनुसार शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मगणित का दृक्प्रत्यय कारक श्रीमन्त महाराजाधिराज श्री सर तुकोजीराव महाराज द्वितीय के आदेशानुसार पंचांग बन सके \* और वह धर्म शास्त्र सम्मानित होवे।

एक ही साल का पंचांग शोधन करना और बात है किंतु इस कमेटी ने ऐसा महत्व का कार्य करके बताया है कि इस पद्धति से साधारण ज्योतिषी भी हममें के कोष्ठकों के सहारे केवल ग्रहलाघव पर से भी शुद्ध पंचांग बना सके।

सूर्य सिद्धान्त को चालन और सिद्धान्त प्रभाकर के अनुसार ग्रहलाघव को भी चालन देकर शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने के समीकरण (सारणी) कोष्ठक वगैरे में ही कुल काम किया है लेकिन इस काम को करने का अवकाश सभी समासदों को एवं विशेषतया ज्योतिः शास्त्राचार्य और धर्मशास्त्राचार्यजी को मिलन के लिये—“ हमारे सिद्धान्त ग्रंथों के मूलोंकों में कितना धीज संस्कार दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विदग्ध न होते हुए जिसके द्वारा दृग्गणितैक्य हो जाय ” × ऐसा प्रश्न तारीख १०-११-२९ के प्रथम पत्र में ही मैंने लिख दिया था। और इस विषय में प्रोफेसर गोळे साहब + ज्यो. ती. पं. नीलकंठ जोशी A और रा. उपा. प. बाटकृष्ण जोशी B इन्होंने अपनी सम्मति भी देदी है। किंतु ज्योतिःशास्त्राचार्य प. राममुत्तजी त्रिपाठा और धर्मशास्त्राचार्य प. रामकृष्णजी साठे महोदयों का बीच केन्द्र विशेष के तर्क ही सुना हुआ A देवस्तर फिर दूसरी बार सूचित किया कि “ ग्रहण इत्यादि में भी क्यों न हो ! किंतु नया धीज संस्कार उसमें देना इस आपस का जो ता. १६-११-२९ को प्रश्न भेजा था उसका शीघ्र ही उत्तर

\* रिपोर्ट पृष्ठ १७ कलम ३३ में सवत् १९६० के साल के पंचांग की प्रस्तावना देखिये  
× रि. पृष्ठ १४२ में श्री राजज्योतिषी प. बाटकृष्णजी के पत्र के आरंभ की काठम देखिये  
+ रि. पृ. १५४ पंक्ति ५-१० में प्रोफेसर साहब का अभिप्राय देखिये।

A रि. पृ. ६२ पंक्ति १५-२४ में ज्यो. ती. पं. नीलकंठ जोशी का पत्र देखिये।

B रि. पृ. १४३ पंक्ति ४-१० में रा. उपा. पं. बाटकृष्ण जोशी का पत्र देखिये।

A रि. पृ. २४, २८-३२, ४३-४७ में शास्त्री द्वय के पत्र देखिये।

लिख भेजें।" + तथापि अन्यान्य प्रश्न करने के अतिरिक्त सभा के अंत तक भी 'कितने अंकों का किसमें किस प्रकार वीज दिया जाय, इसका उत्तर न आया। तथापि इनके प्रश्नों के उत्तर देने में ज्योतिःशास्त्रीय S व धर्मशास्त्रीय हिन्दी पत्र + पृष्ठ ३१ का संस्कृत पत्र A और करीब ५० पृष्ठ में पंचांग शोधन के मूलतत्त्व II आदि लेख लिखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसमें यह अत्युक्ति न होसकेगी कि आज तक भारतवर्ष में हजारों रुपये लगाकर कई सभाएं हुई कई रुपियों के पारितोषिक की घोषणा की गई किंतु किसी भी सभा में मूल सिद्धान्त ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव कितना शुद्ध है और उसमें कितना चालन देने से उसके द्वारा सूक्ष्म दृक्प्रत्यय गणित का पंचांग बन सकता है यह कार्य निश्चित रूप से एवं धर्मशास्त्रीय वैदिक ग्रंथों के आधार से आज तक कहीं भी पूर्ण न होसका था वह कार्य विद्याविलासी इन्दोर सरकार की कमेटी ने पूर्ण करके दिखा दिया है यह हमारे सरकार की कुछ थोड़े गौरव की बात नहीं है।

किंतु इतने से ही पंचांग वाद मिट नहीं सकता उक्त कार्य तो नमूना मात्र है अभी इसके लिये सूर्य सिद्धान्तादि १८ सिद्धान्त ग्रंथों की सट्टा प्रत्यक्ष वेधसिद्ध मान से मिलता हुआ (१) सिद्धान्त ग्रंथ, (२) करण ग्रंथ और सारणी ग्रंथ ( टेबल बुक Tables Book ) यह तीन ग्रंथों के निर्माण की बड़ी आवश्यकता है। यदि ये बनवा लिये जायें तो केवल इन्दौर के ही पंचांग को शुद्ध करने के लिये नहीं बरन समस्त भारत वर्ष के लिये अत्यन्त उपयोगी होंगे।

मैं तो नम्रता पूर्वक यह भी दावा है कि हमारे ग्रंथों के आधारसे बने पंचांगमें दो मिनिट तक का अंतर न होते हुए उक्त ग्रंथों का मान जगत् प्रतिष्ठ प्रिनसिपल की वर्तमान वेधशाखा से बने हुए नाटिकल आत्मनाक से ठीक ठीक मिल सकेगा। इतना ही नहीं तो भारत के उन ऋषियों की योग्यता का भी अनुमान हो सकेगा कि जो हजारों लाखों वर्ष से प्रत्यक्षदर्शी की भाँति किस प्रकार के उच्च पंचांग बनाते आए हैं।

माननीय होलकर सरकारने हमारे परिश्रम के लिये निवार करने का भी आपके पत्र द्वारा आश्वासन दिया है।

+ रि. पृ. २७ में विशेष सूचना देखिये।

+ रि. पृ. २५-२७ व ३३-३५ सभापति का ज्योतिःशास्त्रीय उत्तर देखिये।

+ रि. पृष्ठ-३७-४३ व ४७-५४ सभापति का धर्मशास्त्रीय उत्तर देखिये।

A रि. पृ. ६३-९३ सभापति का संस्कृत पत्र देखिये।

B रि. पृ. ९४-१४१ में पंचांग शोधन के मूलतत्त्व देखिये।

जिस लोक प्रिय होलकर सरकार का इतने आवश्यक कार्य के लिए ध्यान आकर्षित हुआ है, उससे हमारे लिये आश्वासन की भी आवश्यकता न थी। हम ऐसों का सम्मान संदे से ही धर्म प्रिय और गुण प्राही राज्यों से ही होता आया है।

विशेष बातें आपको मेरी रिपोर्ट और सत्संबंधी पत्रों से ज्ञात होगी।

अंतमें निवेदन केवल इतना ही है, कि उपरोक्त महत्व पूर्ण तीनों ग्रंथ सुयोग्य विद्वानों द्वारा ही तयार कराए जावें। इस अनुपमेय कार्य के लिये मैं अपनी और कमेटी की ओर से गाननीय होलकर सरकार का अभिनन्दन करता हू।

मैं यह निवेदन कर देना भी आवश्यक समझता हूँ कि कमेटी के विद्वान सदस्य की भांति मुझे प्रभाकर कार्यालय के सेक्रेटरी ज्योतिभूषण पं. गोपीनाथ शास्त्री चुलेट से भी बहुमुख्य सहायता मिली है। सच बात तो यह है, कि यदि पं. गोपीनाथ चुलेट से पर्याप्त सहायता न मिलती तो मैं अकेले इतने शीघ्र यह कार्य समाप्त न कर सकता। शुभमिति।

भवदीय,

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री,  
“अध्यक्ष पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर.”



## परिशिष्ट

### अथात्

पंचांग शोधन संबंध के लेख और पत्र व्यवहार,

जो लेख व पत्र व्यवहार उक्त पंचांग कमेटी के समाओंके अंतर्गत हुआ नहीं है। किंतु पंचांग शोधन कार्य से उसका संबंध है। और उसके प्रकाशन से पंचांग वाद के ऊपर प्रकाश डाला जासकता है। ऐसे लेख पत्रों को छपवाकर उक्त रिपोर्ट के साथ परिशिष्ट में प्रकाशित करने की आज्ञा श्रीमन्त सरदार ऑनरेबल होम मिनिस्टर साहब द्वारा प्राप्त होने से यह परिशिष्ट जोड़ा गया है।

### पत्र नंबर १

सायन मेयार्क के समय के छायांक से साप्रतीय सूर्यमिद्धातोक्त सूर्य का अन्तर रूप अयनाश साधन के लिये ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मंगलजी जोशी का श्रीमन्त माननीय होम मिनिस्टर साहब की सेवा में भेजा हुआ पत्र.

(सम्पादक बुलेट.)

## अयनाश संबंध में पत्र.

छायार्क वेध स्थान इंदौर राजवाडा.

लेखक:— श्रीमन्त महाराजा होलकर राज्याश्रित ज्योतिर्कुलभूषण  
ज्योतिष तीर्थ पं० नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषि.

स्वस्ति श्री विक्रम संवत् १९८४ शके १८४९ फा. क. ३० सोम्यधसे ता २१-३-१९२८ ई०

अहर्गण — ७१४४०१३३४८८

- १ कल्प सौर वर्षगणः—४३२०००००००
- २ कल्प सौर मासगणः—५१८४ ०००००
- ३ कल्प अष्टक मासाः—१५९३३१०००



४ कल्प चांद्र दिवसाः—१६०३०००००००००००

५ कल्प क्षयाहाः—२५०८२६५१०००

६ कल्प सावन दिवसाः—१५७७९१७८९८०००

कल्पसौर गतान्दाः—

१९७२९४९०२८

— सृष्टि वर्षगणः

—१७०६४१००

१९५५८८५०२८

सृष्टि गतान्दाः

× १२

२३४७०६२०३३६

+ ११

२३४७०६२०३४७

गत सौर मासाः

+ इष्ट अधिक मासाः

+ ७११३८४७१८

२४१९२००५०७५

गत चांद्र मासाः

× ३०

७२५७६०१५६२५०

+ २९

७२५७६०१५६२७९

चाद्राऽहर्गणः

— ११३५६—१८७९१

क्षयाहाः

७४४०४१३३४८८

= इष्टाहर्गणः

क अधि मा × इ सौ मा १५९३३३६००० × २३४७०६२०३४७

क सौ मा

५१८४००००००००

= ०२१३८४७२८ लब्धाधि मासाः

५१८४००००) १७२९६५८४३४१२०७५९२ (७२१३८४७२८ लब्धाधि

मासाः

३६२८८००००

१५९३३३६

११८५८४३६

× २३४७०६२०३४७

१०३६८०००

१११५३३५०

७१७८४३४१

६३७३३४४

५१८४००००

४७८०००८

१९९४४३४१२

०००००००

१५५५२००००

३१८६६७२

४३९२३४१२०

१५६००१६

४१४७२००००

०००००००

२४५१४१२०७

१११५३३५२

२०७३६००००

६३७३३४४

३५७८१२०७१

४७८०००८

३६२८८००००

३१८६६७२

१४९३२०७५९

३०३९६५८४३४१२०७५९२

१०३६८००००

४५६४०७५९२

४१४७२०००

४१६८७२००० = अधि दीप.

क अ व म × इ चा दि = २५०८३१५३ × ७५५७६०१५३३७३

क चा दि १६०३०००८०००० = ११३५६०१८७९१ क्षय

क्षय १६१३

१६०३००००) १८२०३६९९०३१०२०२५२१.८ ( ११३५६ १८७९१

१६०३०००८००

११७३६९८२३१

१६०३०००८००

५७०६९८१५१०

४८०९०००२४०

८८७९८१२७०३

८०१५०००४०

९६४८१२३०६०

९६१८०००४८०

३०१९२५४०२५

१६०३ ०००८००

१४ ६२५३९४५२

१२०२४ ००६४०

१२६८५१८८१२३

११२३१०० ५६०

१४६८३८७५६३०

१४४९७०००७२०

२१६८७४९१०८

१६०३०००८००

५६५७४९०२८ क्षय शेष

२५०८३२५२

× ७२५०६०१५७२७५

२३५७४०२६८

१७५५७५७६४

५०१६४५०४

५० ६४५०४

१२५४११२६०

२५०८३२५२

००००००००

१५०४९३५१२

१७५५७५७६४

१२५४११२६०

५०१६४५ ४

१७५५७५७६४

१८२०३६९९०३१०२०२५२३०८

सिद्धान्त रित्याकल्पादि तौ गणितागताऽर्क साधनेन्यासः

अहर्गण. - ७१४४०४१३३४८८

क र म × इ चा दि = ४१९०००००० × ७१४४०४१३३४८८

क सा दि १५७७९१७८२८०००

मगण.

रा.

= १९५५८८५०२८ । ११ । ५' । ४" । ३९ = मध्य रात्र कालिको मध्यमो रविः

त्रिशत घटि चालनेन मध्याह्न कालिको मध्यमो रविः = ११ । ५' । ३४" । १५"

सिद्धान्त सिद्धं रवि मंदोद्यं = मगण २१९ रा. ३ । १७° । ५८'

रवि मंद केन्द्रं = ३ । १२' । २३" । ४५" । रम के म्रु = २ । १७° । ३६' । १५" = ७७ । ३६' । १५"

र म के मुजग्या ३३५६ । परिध्यन्तरं ०° । २०' ।

$$\frac{\text{परिधन्तर} \times \text{इ भुज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{(0120) \times 3346}{3836} = 10' 12'' = \text{इष्ट परिधन्तर}$$

$$\begin{array}{r} 12' 12'' \\ - 0' 19' 12'' \\ \hline 11' 53' 12'' = \text{स्पष्ट परिधि} \end{array}$$

$$\frac{\text{इ भुज्या} \times \text{इ पक्ष}}{\text{भाज्य}} = \frac{3346 \times 11140129}{360} = 103' 12'' 128'' = \text{ज्यात्मक मंद कल}$$

$$\text{मध्यम रवि: } 111' 54' 128''$$

$$+ \text{मंद कल} + 2' 17' 128''$$

$$111' 56' 128'' = \text{स्पष्ट रवि: अत्र चराभावः}$$

$$\text{सिद्धान्त सिद्ध कल्पादितो स्पष्ट रवि: } 111' 56' 128''$$

छायाऽर्केसाधनेन्यासः

छाया चित्र नं. २

स्वस्तिथी विक्रम संवत् १९८४ शके १८४९ फा. क. ३० सोम्य घण्टे ता. २१-३-१९ ई.

सू. सि. त्रि. छो. १४-१९

१ शंकु द्वादश अंगुल कोटि:

२ शंकु छाया अं. ४।५९ भुजः

३ छाया कर्ण अं. १२।५९।३६ कर्णः

$$\begin{aligned} \text{को} + \text{भु} \text{ कर्ण} &= (१२)^2 + (४।५९)^2 = १४४ + (२४।५०।१) = १६८।५०।१ = \text{कर्ण}^2 \\ \sqrt{\text{कर्ण}^2} &= \sqrt{१६८।५०।१} = \text{कर्ण} = १२।५९।३६ \end{aligned}$$

$$\frac{\text{छा भु} \times \text{त्रि कर्ण}}{\text{छा क}} = \frac{(४।५९) \times ३४३८}{१२।५९।३६} = १११८।३४ \text{ रविनताशा}$$

$$१११८।३४ \text{ अत्यधनुः रविनताशा:} = २२^{\circ}।३४' \text{ रविनताशा:}$$

$$\text{इन्दौर अक्षांश: } २२^{\circ}।४२' - \text{रविनताशा } २२^{\circ}।३४' = \text{रवि उत्तर क्रान्ति: } ०^{\circ}।८'$$

$$\frac{\text{त्रि भु} \times \text{इ को. ज्या}}{\text{परम तान्तिज्या}} = \frac{३४३८ \times ०^{\circ}।८'}{१३९७} = ०।०।१९।४१ = \text{रवि भुज्या। प्रथम}$$

$$\text{पदे स्थिति: अतो अयमेव स्पष्ट सायन रवि: } = ०^{\circ}।०'।१९'।४१'' = \text{लम्ब छायाऽर्क: } ०।०'।१९'।४१''$$

गणितागत अयनांश साधनेन्यासः

सूर्य सिद्धांतोक्त प्रकारेण अयनांश साधनार्थं महायुगादितोऽहर्गणः ११८५२७९२३२

शंकादौ महायुगादितो गतब्दाः ३२४३१७९ + शकाब्दाः १८४९ सौ गताब्दाः ३२४५०३८

सौ व ३२४५०२८ × १२ + ११ = गत सौ मासाः ३८९४०३४७

$$\frac{\text{यु अधि मा} \times \text{इ सौ मा}}{\text{यु चा मा}} = \frac{१५९३३६ \times ३८९४०३४७}{५१८४००००} = ११९६८५६ \text{ अधि मासाः}$$

अधिशेष ४१६८७५९२

$$\frac{\text{यु क्ष दि} \times \text{इ चा दि}}{\text{यु चा दि}} = \frac{२५०८२२५२ \times १२०४१६११९}{५१८४००००} = १८८४०८८७ = \text{लघ क्षय हाः}$$

क्षय शेषः ५६५७४९०२८

ग सौ मासाः ३८९४०३४७ + अधिक मासाः ११९६८५६ = चांद्र मासाः = ४०१३७२०३

चां मा ४०१३७२०३ × ३० + २९ = १२०४१६११९ चांद्रऽहर्गणः

चांद्रऽहर्गण = १२०४१६११९ - क्षयाहाः १८८४०८८७ = सावनऽहर्गणाः

= ११८५२७५२३२ = ३४ सावनऽहर्गणाः ११८५२७५२७५२३२

$$\frac{\text{यु अ प न म} \times \text{इ कु दि}}{\text{यु कु दि}} = \frac{६००० \times ११८५२७५२३२}{१५७७९१७८२८} = \text{अगण ४५०।७५'।२६'।३५''}$$

$$\frac{\text{अत्र मु जानु पातेन } ७५'।२६'।३'' \times ३}{१०} = २२'।३७'।४९'' = \text{लघ्वाः गणितागतायनांशाः}$$

छाया गणितागतार्कयोरन्तरम् अयनांशतुल्यं भवति अतः

$$\text{छायाः} = ०।०'।१९'।४१''।०'''$$

$$\text{गणितागतार्क} = ११।७।४१'।४३'।४४''$$

$$०।२२'।३७'।५७'।१६'' = \text{वेधोप लघ्वायनांशाः}$$

वेधोप लघ्वायनांशः २२'।३७'।५७'।१६'' गणितागतायनांशाः २२।३०'।४९''

उभयोर्मध्ये ८'।१६'' अन्तरम् । इदं गणितावयवशेषेण तदपि स्वल्पम् ।

## सौगर्गाद्यनांशनिर्णये क्रोड पत्रम्.

लेखकः—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेंट.

हेतुः "स्फुटं दृक् तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ॥ प्राक्चक्रं चलितं हीने छायाकार्त्तरणा गते ॥" इति सूर्यसिद्धांतो (३.११) के अयनद्वये कर्क मकरे, विषुवद्वये मेघ तुलार्के सायने स्फुटं उदयादिना स्पष्टतया दृक् तुल्यतां गच्छेदन्यदिनेषु अत्रादिना नतांशछायाया वा छायाकं करणा गताकार्त्तरं अयनांशा भवेयुरित्यतः—

दृष्टितोऽहर्गणः मध्यम सूर्योदयार्थे १५ घटी युतः कार्यः ७,१४,४०,४१,३३,४८८ तः ७,१४,४०,४१,३३,८५७ पर्यंतम् प्रस्तुत वर्षस्य क्रोडकः

क्र. सं.	संवत् १९८४-८५ शके १८४९-५०	सूर्यसिद्धांतोक्तः सूर्यः	इन्दौर नगरे छायाकः	अंतरम् स्थूला यनाशाः	सूक्ष्म गणिता-दंतरं	दृगणित शुद्धाय नांशाः
दिन	पंचांगोक्तावधिः	रा. अ. क. वि.	रा. अ. क. वि.	अ. क. वि.	क. वि. अ. क. वि.	क. वि. अ. क. वि.
४८८	फा. कृ. ३० बुधे	११ ७ २८ २३	० ० ८ ५३ २२ ४० ३० +	१ ५१ २२ ५० २१		
५०३	चैत्र शु. १५ गुरो	११ २२ १७ १४	० २५ ६ २४ २२ ४९ १० +	१ १३ २२ ५० २३		
५१८	" कृ. ३० शुक्रे	० ६ ५८ १	० २९ ४२ ३१ २२ ४४ ३० +	५ ५५ २२ ५० २५		
५३२	वैशाखे १५ शुक्र	० २० ३२ १७	१ १३ १९ १७ २२ ४७ ० +	३ २७ २२ ५० २७		
५४७	" ३० शनी	१ ४ ५८ १६	१ २७ ४७ १७ २२ ४९ ४१ +	० ४८ २२ ५० २९		
५६२	ज्येष्ठ १५ रवी	१ १९ १७ १४	२ १२ ११ ५५ २२ ५४ ४१ -	४ १० २२ ५० ३१		
५७६	" ३० रवी	२ २ ३६ ४२	२ २५ ३४ ५१ २२ ५८ ९ -	७ ३६ २२ ५० ३३		
५९२	आषाढे १५ भीमे	२ १७ ४६ ४२	३ १० ५० ४३ २३ ४ -	१३ २६ २२ ५० ३५		
६०६	" ३० भीमे	३ १ ३३ ३	३ २४ ११ ४१ २३ ८ १० -	१७ ३३ २२ ५० ३७		
६२१	अधि ब्रा. १५ बुधे	३ १५ १९ २९	४ ८ ३१ २६ २३ ११ ५७ -	२१ १८ २२ ५० ३९		
६३५	" ३० बुधे	३ २८ ४२ १९	४ २१ ५६ ४५ २३ १४ २६ -	२३ ४५ २२ ५० ४१		
६५१	श्रावणे १५ शुक्रे	४ १४ ६ २८	५ ७ २६ १५ २३ १९ ४७ -	२९ ४ २२ ५० ४३		
६६५	" ३० शुक्रे	४ २७ ४१ ५१	५ २० ५७ ३७ २३ १५ ४६ -	२५ १ २२ ५० ४५		
६८०	भाद्रपदे १५ शनी	५ १२ २३ २४	६ ५ ३८ २२ २३ १४ ५८ -	२४ ११ २२ ५० ४७		
६९४	" ३० शनी	५ २६ १३ ४९	६ १९ २७ २२ ३१ १३ -	२२ २४ २२ ५० ४९		
७०९	अश्विने १५ रवी	६ ११ ११ ४५	७ ४ २२ १६ २३ १० ३१ -	१९ ४० २२ ५० ५१		
७२४	" ३० सोमे	६ २६ १७ १९	७ १९ २४ ४१ २३ ७ २२ -	१६ १९ २२ ५० ५३		
७३९	कार्तिक १५ सोमे	७ ११ २८ ५१	८ ४ ३३ २१ २३ ४ ३० -	१३ ३५ २२ ५० ५५		
७५४	" ३० बुधे	७ २६ ४६ ५३	८ १९ ४६ ४५ २२ ५९ ५२ -	८ ५५ २२ ५० ५७		
७६८	मार्गशीर्ष १५ बुधे	८ ११ ६ १०	९ ४ ० ५५ २२ ५४ ४५ -	३ ४६ २२ ५० ५९		
७८३	" ३० गुरो	८ २६ २७ ४४	९ १९ १९ १८ २२ ५१ ३४ -	० ३३ २२ ५१ १		
७९८	पौषे १५ शुक्रे	९ ११ ४७ २९	१० ४ ३५ ३५ २२ ४८ ६ +	२ ५७ २२ ५१ ३		
८१३	" ३० शनी	९ २७ २ ५५	१० १९ ४८ ४२ २२ ४५ ४७ +	५ १८ २२ ५१ ५		
८२७	माघे १५ शनी	१० ११ १२ ३३	११ ३ ५६ ३७ २२ ४४ ४ +	७ ३ २२ ५१ ७		
८४३	" ३० सोमे	१० २७ १५ २८	११ १६ ५८ ५५ २२ ४३ २७ +	७ ४२ २२ ५१ ९		
८५७	फाल्गुने १५ सोमे	११ ११ १० ५३	० ३ ५४ १६ २२ ४३ २३ +	७ ४७ २२ ५१ ११		

## सभापति का कोष्ठ पत्र.

—प्रकृत कोष्ठकस्य रचना कृता ।

उपरितने कोष्ठके केंद्रीय वर्षानुसारेण कालान्तरजन्य संस्कारसंस्कृतोच्च २१११'५८  
अयनांश-निर्णयः स्थानेन, प्राक्काष्ठान् परिध्यया १४" चलच्चफलस्य मध्यमार्के संस्कार  
-साधितार्केस्य दृष्टत्ययशुद्धाच्छायाकार्कदंतरभागेषु स्थूलायनभागेषु नाक्षत्र  
वर्षसाधितवस्तविकमध्यमार्केष्वफलजन्यसूक्ष्मगणितातरसंस्कारात् साधिता धर्मपत्तौ शुद्धा  
अयनांशः । शुद्धायनगति युताः लिखिता संति ! अन्यथातु स्थूलमानेन भिन्न भिन्न दिनेषु  
छायाकार्ककरणागताकार्कान्तरस्य भिन्नत्वे विभिन्नायनांशोपलभादस्ते दये, याम्योत्तलंघने,  
अग्रायां, नतांशदिगंशाभ्यां शकुच्छाया, छायाकर्ण भुज कोटि साधनाविधौ अनवस्थाप्रसंगः  
स्याद्द्वयं, दशम, चर, क्रांति, विषुवकालऽसाधने पिस्थूलत्वमन्वित्य एव । करणागतार्क  
स्यस्थौत्वात्साधितायनभागान्त सायनार्कस्य स्थूलत्वात् ।

इत्यतश्चरम पक्ति पठित्वा क्षेत्रादिमासपर्वणा सूर्यसिद्धान्तगम शुद्धाक्षेर्भायकरणागतार्का  
कोष्ठकोक्काः शुद्धायनांशाः चित्राभिमुखार्भाच्च शुद्धा अयनांशा प्रमाकरसिद्धान्त तुल्या एव  
संतीति जानीते ।

विनीत वशंवदो

दीनानाथ शास्त्री चुलेटः ।



( लेखमें पत्र संघर २९ पं ८ इतिविवेकः इसके भागे पढा जावे. )

तिथिकोष्ठम	इदंशोचित निबीजग्रहैःपंचागशोधन - ॥ सर्वांगैर्ग्रहणादीनां
सूर्य सिद्धान्त वाचना- भाष्य	पुण्यकर्मणिशरते मुनिभिरपितयैवोपदिष्ट प्रत्यहं-तिथिनक्षत्र योगस्या- नयनेविधुः ॥ अर्वाज संकृतोप्राहो ग्रहणादौसर्वाङ्गकः ॥२॥
यंत्रदीपिका व्याख्याने छात्रार्थः	शृंगोनतौ ग्रहयुनौग्रहणे तथास्ते छायानिर्गन्तव्यविधाबुद्धयेचदेयं ॥ बीजफल तिथियोग विधौचदेयं चन्द्रे प्रदेयमखिलाक्षिति जादिकेषु ॥ ३ ॥
बोपदेवः	दृक्सिद्धग्रह फलेन ग्रहादि तिथिनिर्णयम् ॥ शास्त्र सिद्धग्रह- गतिःअदृष्टार्थेषु कर्मसु ॥ आगमो बाधते चक्षुर्निर्दुष्टो दोष द्वयितम् ॥ ४ ॥
कमलाकरः	अदृष्टफल सिध्यर्थं निबीजाकीर्त मेवहि ॥ प्रमाणं सुतिवत् प्राज्ञं फर्मानुष्ठान तपारैः ॥
धर्मशास्त्र	रवीदु मंदसंसिद्धात्तच्च तिथ्यादि भोगतः ॥ स्यातां तत्कालबीजो त्यौ बाण वृद्धिरसक्षयौ ॥ १ ॥ अतःपैतृक कर्मादौ तत्काल चर बीजकैः ॥ बाण वृद्धिरस क्षीणा ग्राह्या नान्यातिथिःकचित् ॥ २ ॥
गणका-न्दे	कर्तव्या पंच संस्कारामच्यखेटेषु सर्वदा पूर्व ध्रुवःप्रथमतस्त्रिगुणा- न्दस्ततःपरं ॥ देशान्तरं बीजफलं बाहोःफलमिति क्रमात् । सूर्यज्ञयो बीजफल मनुक्तशास्त्र कर्तुभिःचन्द्रोच्चस्य तथाराहोःचन्द्रार्क ग्रहणादिषु ॥ आवश्यकत्वधर्तव्यं नतिष्यानयनदिषु ॥
कालार्क	मादिक कर्म संसिद्धव्यक्तैर्दूत्पादितातिथिः ॥ आद्यादिपुपरिग्राह्या ग्रहणादौ तु बीजयुक्त
कर्मशास्त्र	ग्रहार्हीनेतरं यत्तत् बीजमविवकाष्टज । कर्मार्हं खचरंशुद्धं नाशयत्यधभावलात् ॥
तत्त्वविवेक	रविणात्पांतरत्यक्तं तद्बीजं विधिनादत्तम् यंत्रैश्चक्षुभिःतज्ज- स्तुखेटो दितौचयै ॥ दृष्टयर्थं निर्णयादेशो अदृष्टार्थं नतीहातः ॥ अदृष्टफलसिध्यर्थं यथाकामं गणितंयुक्त ॥ गणितंविदितार्थतत् दृष्टयुद्धवत्तसदः ॥ १ ॥

शाक्य संहिताया  
खचर दर्पणे

तिथ्यादिमाधनेकापि नाकेद्वोर्वीजयोगिता ॥ अन्यथा सायनाकस्य  
राशि संक्रम संभवे

ग्रहणग्रहोदयास्तशृंगोच्चातिखचरयोगकालेषु । द्वासिद्धेदुःसाध्यः  
स्यादेवंनंतर क्रिया सुबुधैः ॥

मगवानव्यासः

सौरपनिपदेवाद्यक्षये स्वस्मिन्सनातनायामादित्यखयं प्राह  
मयापरिपृच्छते ॥ कालज्ञानतुतसिद्धं विशुद्धं नान्यदुच्यते ॥  
तद्विद्वत्तुयत्सर्वे अपरिग्राह्यमेवतत् ॥

करणोत्तमतते

इन्द्रोस्तिथ्यर्क्षे योगादेरन्य चेष्टा चलक्रिया ॥

केरलीयज्ञसंभवे

ग्राह्योयमेवमूस्थानां द्रष्टव्यं चंद्रमाःसदा ॥ तिथिनक्षत्रयोगादौ-  
नैवचान्योविधियते ॥ १ ॥

विद्वान्ततत्वे

मान्दकर्मव्यमकौशे कुर्यात्तिथ्यादिसाधने ॥ चतरप्रउदयास्ता-  
दौग्रहणे पंचमंस्क्रयः ॥ १ ॥

विद्वान्तमणे

एकेनाधनेनतु कर्मणातौस्फुटौभवेज्जातिथि योग योग्यौ ॥ १ ॥

भार्गवः

सूर्योशपुरुषेणोक्तं तत्रतिथ्यादिसमतं ग्रहणादौ तुवक्ष्यामि  
सविपेक्ष मघोनृगु

स्कांदेकलिमहात्म्य  
वर्णनावधरे पार्वती  
प्रतिहक्षरोक्ति

द्वासिद्ध खेहग्रहमाधितासु कुर्वति केचित्तिथिपुप्रगादात् ।  
ब्राह्मदेकं तत्पितृश

पतस्ते पुण्यक्षयं दुर्गतिमाप्नुवन्ति ॥ तथापिसंतो बहवोत्र  
धार्मिकाःपुरातन चारम

धनहंतः ॥ सूर्यश जोक्ता जितेकालेव कर्माणि कुर्वन्ति सुखं  
लभन्ते ॥ १ ॥

ज्योतिषिदान्ते  
बभिविचारे सत्रेव  
स्फुवादिकारेपत्र १५५

चंद्रार्कशशितुंगानां बीजं तिथ्यादि साधने नृकर्तव्यं तु कर्तव्यं  
चन्द्रार्क ग्रहणा दिषु ॥

शीतांशुधरार्थजेन संस्कृतो दृक्समोभवेत् ॥ दृक्सिद्धेदुसमानीतं  
विध्याद्यं नैव युज्यते ॥ वैदिकेष्ववगीतेषु हव्यकव्यादिकर्मसु ॥  
आस्तिकैः शास्त्र शरणैर नुष्ठानेषुमम्पतं ॥ १ ॥

करणोत्तमतने

व्यकंदोस्तिथ्यर्धे गृहाह्वान्यनुपाततः ॥ विष्कंमायोरविन्दैवया  
चदाद्यंतौ स्वमुक्तिः ॥ इन्द्रोभाह्मदिकेन्यत्र भूमयेष्टा शुद्धक्रिया ॥९॥



खचर दर्पणे

मांदैककर्म संस्कृत चंद्राकीर्तिथिभयोग करणानां योग्यास्या-  
ताग्रहणे चंद्रोन्मैः संस्कृतोप्राश.

अतमहोदधोनारदः

यथाश्रुतेन सिद्धान्त वर्त्मनासाधितग्रहैः पंचांग कर्मणिग्राह्यं  
स्वस्वदेशेद्विजोत्तमैः ॥ सार्धत्रयोदशैर्देशैः योजनेर्भुविगण्यते ।  
गणकास्तत्र तत्रस्युस्तत्कृतं कर्म नेतरत् दृग्गुण्येपि खेटानां कि-  
चिन्युनतिरेकतां । त्यक्त्वा मूलोक्तमार्गेण कालं कर्मणि साधयेत् ।  
इत्येषां ज्ञानदृक्प्रोक्ता वेदवेदांगसम्भता चर्मचक्षुर्भवज्ञान सहेपकरणं  
चदकृ । लौकिकीसापरिज्ञेया देशारिष्टादिशांतये ग्रहणग्रहयुद्धादि-  
हेतुभिः फलसूचने ॥ ॥ ह्यः सधीजदकृसद्धः ग्रहजः समयोद्बुधैः

स्याकल्प्य सठितावां

ग्रहणेग्रहयोगेच कालभा लभ साधने शृंगोक्तश्रुदयास्तेषु  
ग्रहबीजविधीयते

विष्णुधमीत्तरे

यंत्र वेधादि नाज्ञातं यद्धीनं गणकैस्ततः ॥ ग्रहणादिपरीक्षेत  
नातिथ्यादिकदाचन्न

पयोतिर्विदामरणे

तिथि वृद्धिष्यनियमा

तंत्र संप्रदायाद्यायां;

वृद्धिक्षयोस्तः परमौतिथौ सदा व्यर्धरासासाधिरसाधनाहिका  
विधुयमुपराने खेचराणांच योगे निजत नुसितमानाष्टगुणादि प्रसंगे  
कुतल गजनवर्यै रप्रगण्योप्यगण्यः सकलतिथि भयोग स्यापिवृद्धया-  
दिकेषु

सिद्धान्तशिरोमणौ

तिथ्यन्तनाडी नत बाहुमौर्व्यालध्मार्क शीतांशुकले विनिघ्ने ॥  
क्रमेणभक्तेन खगोसमुद्रैः कङ्कानिवेदैः फलहीनयुक्तः ॥ १ ॥ प्राक्-  
पश्चिमस्थस्तरणेविधुः प्रागृणेफलेयुक्तस्तोऽन्यथोनः मुहुः स्फुटातो-  
ग्रहणरवीन्दोस्तिथिस्थिदं जिष्णुमुतो जगाद.

ज्यो. पं. रामसुचित त्रिपाठी.

टिप्पणी= यद्यपि पं० त्रिपाठीजी का यह तर्ज पेज का लेख सन १९१२ में आया है  
जब रिपोर्ट का पूर्वाभ. भाग छप गया था. किंतु यह वही प्रमाण है कि जिनकी समालोचना  
में संस्कृत पत्र में की गई है । और इस लेखमें कुछ विशेषता नहीं है ।

भवदीय.

सम्पादक=ह्रुलेट शास्त्री.

The Panchang Committee's  
**REPORT.**

VOL. II

शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इन्दौर की  
**रिपोर्ट का परिशिष्ट ४**  
**उत्तरार्ध भाग.**

अयनांश वाद निर्णय का शंका समाधानरूप शास्त्रार्थ, भारतीय शास्त्रों की प्रामाण्यता, खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति का शोध, रवि परम क्रांति की चक्रगति दर्शक प्रमाणों का संग्रह, ज्योतिःशास्त्रीय गणित के शतशः प्रमाणों के आधारपर तीन लाख वर्ष पूर्व का वैदिक एवं भारतीय इतिहास काल की पूर्व मर्यादा का निश्चय, वेदों का निर्माण एवं मानव जाति मात्र की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई है एवं संसार के अन्य धर्म ग्रंथ वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं।

समाप्त

गणितोपयोगी कोष्टक, नकशे, खगोलीय चित्रों समेत

शास्त्रीय पद्धति से

समस्त वेद पुराणादि और संसार के धर्म ग्रंथोंक प्राचीनतम गूढ़ बातों का सरलता पूर्वक अर्थ लगाने की नई प्रणाली का शोध

सम्पादक:- कमेटी के अध्यक्ष

ज्योतिषाचार्य और वेदार्थ-तत्त्व-प्रतिष्ठापनाचार्य  
वेदकाल निर्णय, युगपरिवर्तन आदि ग्रंथों के कर्ता  
विद्याभूषण पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट-गौड

प्रकाशक

माननीय श्रीमन्त हुलकर गव्हर्नमेन्ट की आज्ञा से

मुद्रक

श्रीमन्त हुलकर गव्हर्नमेन्ट प्रेस, इन्दौर.

संवत् १९९१ ईसवी सन १९३४.

[ मूल्य ३ रुपये ]

## रिपोर्ट के उत्तरार्ध भाग परिशिष्ट ४ की

### विषय-सूची.



अ. नं.	विधान संख्या
१ अयनांशवाद निर्णय की शंकाओं का समाधानरूप शास्त्रार्थ, और भारतीय ज्योतिःशास्त्र की शुद्धता और व्यापकता का विस्तृत निरूपण.	१-१९
२ खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति का नया शोध.	११-६८
३ निरुक्त, मीमांसा, एव भाष्य आदि में कहा वैदिक अर्थ पूर्ण नहीं है.	६९
४ पुराण ग्रंथों आदि में कहे हुए ऐतिहासिक पुरुषों का वैदिक काल बहुत प्राचीन सिद्ध होता है.	७०
५ वेदों में ३ लाख वर्ष तक का खगोलीय वर्णन शब्दार्थों में परिवर्तन.	७०-७१
६ कृतिका नक्षत्र की स्थिति से शतपथ ब्राह्मण का काल निश्चय करने में आधुनिक विद्वानों की दिशाभूल, और प्रमाण वाक्यों का शुद्ध अर्थ.	७३-८०
७ सरस्वती नदी एव भारत के उत्तर समुद्र का ज्वालामुखों के प्रकोप से सूख जाना हिमालय का प्रादुर्भाव और परमक्रांति द्वारा शतपथ का स्थल.	८१-८३
८ और कोष्ठों द्वारा शक पूर्व ५४६९८ वर्ष का काल निश्चय.	८४-८६
९ महाभारत के प्रमाण से पूर्वोक्त काल, स्थल का समर्थन	८७-९५
१० ब्राह्मण ग्रंथोक्त प्रमाणों की भारतोक्त कथा भाग की एक वाक्यता	९६-९७
११ राविवरमक्रांति के गति के संबंध में ससार के विद्वानों के लेखों में लाभ	९८
१२ कालावधि गणितोपयोगी पाश्चात्य विद्वानों का मत.	९९
१३ भारतियों के सहस्रावधि लेखों का शोध और उससे लाभ होना है.	१००
१४ पौलिश सिद्धान्त, कर्कभाष्य, सूत्रग्रन्थ, वेदांग, ब्राह्मण, संहिता ग्रंथों का काल.	१०१-१
१५ डो. तिलक के कथनानुसार उत्तर घन प्रदेश में वेदों के निर्माण कहने में असंगतता । खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति का दिग्दर्शन.	१०३-६
१६ तारकापुत्रों के प्रसिद्ध नामों के अनुसार वेद और पुराण ग्रंथों में कथाएँ लिखी हैं, सो आकाशंय ऐतिहासिक घटनाएँ हैं.	१०७
१७ ययाति चरित्र का गणितगण कालियों द्वारा ( सत्य ) समर्थन.	१०८-११०

- १८ शकपूर्व ७५०९४ वर्ष में ययाति का स्वर्ग से पतन का स्पष्ट कारण १११-१२
- १९ इसी पद्धति से वेद पुराणादि में कही घटनाओं का काल और स्थल आदि का निश्चय गणित द्वारा हो सकता है ११२
- २० रवि-परमक्रांति की गति के निर्णय में दस दस हजार वर्ष से तीन लाख वर्ष तक की वसंत संपात स्थिति एवं परम क्रांति कोष्टक (नंबर ५)
- २१ शक पूर्व २२०७०० वर्ष की क्रांति ५२५५२' व तारों की क्रांति (नंबर ६-७)
- २२ वेदों का निर्माण भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में हुआ है ११६
- २३ संसार के धार्मिक ग्रंथ वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं ११७-१८
- २४ मानवेतिहास का आरंभिक काल, प्रस्तुत लेख का उपमंडार ११९-२१
- २५ क्रांतिवृत्त के मध्य में चित्रा तारे को मानने की अखंड परंपरा १२२-२५
- २६ चित्रों का विभाजन, सारथी, देवयानी, तारों का जत्था ययाति शर्मिष्ठा, उश्वश्रवा, धनिष्ठा, कन्या, भूतप, शीरा, ( जत्था ) भरत, नरतुरंग यम और नौका और बड़े ४ नक्षत्र हैं. (पृ. १-४)

### सहायक ग्रंथोंकी सूचना.

धर्मातक वैदिक मंत्रों का जो अर्थ एवं वैदिक काल व स्थल बताया जाता है इसके संबंध में ' वेद काल निर्णय ( ओशयन ), आर्टिकल होम दि वेदाज, ऋग्वेद इंडिया, भारत का प्राचीन इतिहास आदि पुस्तकें छपी हैं उन सबकी समालोचना करते हुए हमने ( तत्त्व-ज्ञान संचारक मंडल एलंघपुर बरार द्वारा ) कई पुस्तकें निर्माण की हैं उनमें प्रकाशित पुस्तक ये हैं:- " वेदकाल निर्णय " कि जिसमें १० लाख वर्ष पूर्व तक के विभिन्न कालों के एशिया खंड के नक्षत्र ४ और चित्र १९ देका वैदिक विभाग के अन्यान्य ग्रंथों का तीन लाख वर्ष पूर्व तक का काल ऐतिहासिक रीति से बताया गया है ।

" यगदस्वितर्तन " में:-उपोति: शास्त्र के आधार में वैदिक मंत्रों का सरल अर्थ बताया है । काल ज्ञान के लिये सुपूर्ण चित्ति आदि पंचांग कैसे बनाए जाने थे सो भी स्पष्ट करके बताये हैं । संपादक:-दीनानाथ शास्त्री और गोपीनाथ शास्त्री चुलेट के पते से यह पुस्तक मिलती है ।

# परिशिष्ट ४

## अयनांशवाद निर्णय.

### प्राक्कथन

इस ( शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर ) की चौथी मीटिंग ( ता. १६-११-२९ ई. ) में—“ शाके १८५० के आरंभ के अयनांश २२°-१०'-२५", अयनगति-५०"-२३५७२ और नाक्षत्र सौर वर्षमान ३६५ २५६३७४ दि., = ३७१.०६२४१४ ति.” इत्यदि परिमाण सर्व सम्मति से पास किये गए हैं । किंतु बिना वाद प्रतिवाद के अयनांश वाद रूप जटिल प्रश्न का इससे पूर्ण निर्णय नहीं होसकता इसलिए इस कमेटी के सभापति पं. चुडेट शास्त्री ने श्रीमंत सरदार किन्ने साहब से प्रार्थना की । तदनुसार श्रीमंत महोदय ने योग्य योजना करके इस कमेटी की सोलहवीं मीटिंग श्रीमंत के सरस्वती निकेतन में करवाई । उसमें सज्जन के श्रीमान् प्रिंसिपल गोविंद सदाशिव आपटे साहब बुलाए गए थे । आपने सहर्ष झीटा पक्ष की ग्राह्यता व समर्थन करना और विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुडेट ने विश्रामिमुख रेवत्यतबिन्दु से गिने हुए अयनांशों की ग्रहवाचरादि ग्रंथोक्तों से एक नाक्यता को प्रमाणित करते हुए इनकी ग्राह्यता तथा झीटा की अग्रह्यता को सिद्ध करना स्वीकार किया ।

### भाग १ =आरंभिक वाद-विवाद.

१

प्रभ प्रि. प. आपटे—“ यदि यह गणित इन्ने वडे अहर्गण से प्राचीन सिद्धांत की सत्यता स्थापित करने की इच्छा मे किया तो उसमें नव्याविष्कार का भिषण व्यर्थ ही किया है । ”

२

प्रि. प. आपटे:—‘ग्रह लाघव का मध्यम रवि सूर्यसिद्धान्त के रवि से २ विकलाके अंतर से आता है। यह गणित कर मैंने देखा है; फिर १२ अंकों का अहर्गण लेने की आवश्यकताही क्या थी.’

वि. भू. चुल्टः—‘स्मृति ग्रंथों में कहे प्रकार कल्पादि में शून्यशेष बतानेकी आवश्यकता थी क्योंकि शून्यशेष से शुद्ध ग्रह साधन करने वाले ग्रंथही सिद्धान्त कहते हैं किंतु थोड़ा क्यों नहो ग्रह लाघव में अंतर क्योंकि है। क्या आपने इसके संबंध में कुछ सोचा है।’

३

प्रि. प. आपटे:—‘रश्चुक्के भगणों से उच्च लाकर उससे मंद केंद्र साधन करना चाहिये था इस गणित की रीति इस न्यास में शामिल नहीं है.’

वि. भू. चुल्टः—‘प्रयोक्त भगणोंद्वारा रश्चुक्क वहांतकही लाया गया है कि शुद्ध केंद्रीय और शुद्ध नाक्षत्रमान अलग २ नहीं किये गए थे। यदि गणित करके देखें तो आपको ज्ञात होगी कि वह प्रस्तुत न्यास में शामिल है।’

४

प्रि. प. आपटे:—‘मंदफल अंशादि १५९५२ एकदम कहा से लाया गया ज्ञात नहीं होता है।’

शास्त्री चुल्टः—‘यह वास्तविक कक्षा न्हाम से परिधिगत करके लाया है जोकि सूक्ष्म मानसे भिन्नता है।’

५

प्रश्न:—प्रांश्या नयन के छिये मापन सूर्य छानमें सिद्धान्तानुसार बड़ी भूछ कीगई है। यह भूछ २२°४३'४६" अयनांशों की है।

जवाब:—उक्त अयनांश छाने में भूछ नहीं है। वह तो संपूर्ण अयोध्या के प्रयोक्त प्रमाणों की निम्न तबियर एक वाच्यता है नही है उन दृक्प्रत्यय शुद्ध मानमें लाये गये हैं। जोकि हमारे वनायें हुए सिद्धान्त प्रमांशर के आधार में फेलाग्न बने हैं। उनका संस्कार १७१२९ काने पर शुद्ध नाक्षत्र मान के अयनांश २२°४३'४२" वहां की कमेटी में पाम हुए प्रमाणानुसार है।

६

प्रश्न —“अयनगाने किम ग्रह के आधार पर अवश्रंभित है.”

उत्तर:—“ उक्त अयनगति शुद्ध नाक्षत्र मान से बनाई गई है। सभी सिद्धांत ग्रंथों से शुद्ध अयनगति इतनी ही आती है। इसका स्पष्टीकरण इस रिपोर्ट (पृष्ठ १०४) में किया गया है।

७

प्रश्न:—‘ इससे आपके गणित में पुराण ग्रंथों का वह महत्व-जिते आप रक्षित करना चाहते हैं-जाता रहा और इसमें नवीन प्रकार का एक छोटा व्यर्थ ही लगाया गया: ’

उत्तर:—यह आपका कथन असंगत है क्योंकि हमने छोटा नहीं सिद्धान्तोक्त मूलों में कालान्तर संस्कार देकर दृक्तुल्य किया है। इससे इतने दिन की आई हुई विसंवादता को दूर कर प्राचीनों के शोधों को उपयोगी बनाने से उनका महत्व गया नहीं बढ़ाया गया है।

८

प्रश्न:—‘ यह प्राचीन और नवीन के मिश्रण की खिचड़ी तो सर्वथा त्याज्य है। ’

उत्तर:—‘ नाक्षत्र वर्पमान में जो केंद्रीय भाग मिश्रित था उसको सिद्धान्तोक्त भगणों में मिला घटाने से शुद्ध केंद्रीय मान और शुद्ध नाक्षत्र मानों को अलग २ शुद्ध करने से खिचड़ी के दाढ़ चावलों के मोति अलग २ शुद्ध परिमाण के कर दिये गए हैं। तब भी क्या मि. साहब की दूर दृष्टि इस ओर पहुंची नहीं है। या प्राचीन प्रमेयों का इस प्रकार से उत्कर्ष होना आपको असह्य माद्धम होता है ?

९

प्रश्न:—‘ जब स्पष्ट रवि सूर्यसिद्धान्तानुसार कल्पादि से अहर्गणसिद्ध है। तब अयनांश भी उसी ग्रंथ के अनुसार लाना उचित है।

उत्तर:—‘ हां उसी अनुसार “ प्राक्चर्क चलितं हीने छायाकर्माकरणागते ” (सू. सि. ३.११) से लाया गया है। ’

१०

प्रश्न:—‘ सूर्यसिद्धान्त के अ. २ श्लो. १० में “ वदोक्षिमा दशांशाः ” इत्यादिरिति स्वयं सूर्य ने प्रगट की है। उसके लिये पूरा आदर प्रगट होता है। ’

उत्तर:—पूरा आदर तो “ यथा दृक्तुल्यतां महाः ” (अ. २ श्लो. १४) इस आज्ञाको माननेसे ही हो सकता है; जो कि प्रत्यक्षमें सूर्य के वेधद्वारा हमें ज्ञात हुआ है। किंतु हमें माद्धम नहीं कि इसमें आपकी इतराजी क्यों है।

११

प्रश्न:—‘जिस वस्तु को (आप) सम्हालना चाहते हैं। उसी को दूसरी ओरसे गिराना अनुचित है।’

उत्तर:—‘प्राचीन ग्रंथोंका योग्य उपयोग करना आपको अनुचित दिखना स्वाभाविक है क्योंकि आकाश के बिना देखेही नाटिकल आत्मनाक से ग्रहस्थिति माध्यम हो ही जाती है। लेकिन प्राचीन प्रमेय पर्याप्त होते हुए भी इस प्रकार परावर्तकी होना अनुचित है।’

१२

प्रश्न:—‘पूनामें ग्रहलाघव पंचांग मंडलने धके १८५१ का पंचांग प्रकाशित कर प्रतिष्ठा किया है। और १८५२ से १८५६ तक पांच वर्ष के पंचांग की एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। उसके प्रस्ताविक कथन में दी हुई चर्चा देखने योग्य है। “ किजोंसकर थिएटर चे समोर बुधवार पेठ पुणे शहर ” इस प्रकार इस ग्रहलाघव पंचांग मंडल का पता है। के० ना० भयालकर शास्त्री इस मंडल के संचालकसे माध्यम होते हैं। बहुत कर आपने यह चर्चा देखी होगी। न देखी हो तो देखें देखने योग्य है।’

उत्तर:—यह तो देखी नहीं। किंतु इसी मंडल के अधिवेशनमें शिष्टाक्ष के समर्थन के लिये बातों की भर्ती के सिवाय सिर्फ एक जो आपने जातकार्णव का प्रमाण शब्द कल्प द्रुमने उद्धृत कर के दिया है। उनी ग्रंथमें ग्रंथ निर्माण कालिक अयनांश १९° लिखे हुएोंको दबाकर ( शब्द कल्पद्रुम शाके १८०८ में छापेगया है ) मानो उक्त अयनांश आपकी सेवा के लिये गतिस्तीम होकर जैसे के वैसे शाके १८४८ में प्रगट हो गये हों और अयन गति कलांभी देने में साठ देनेमें पचास के तुल्य चाहे जहा चाहे जैसा मनमाना अर्थ करते हुए देखें हैं। “ पंचांगैक्य मंडल पूना रिपोर्ट पेज ९७ तथा चित्रदाख्य प्रेस पुणे ”—पुस्तक सिर्फ III में मिलती है।

१३

प्रश्न:—‘सिद्धान्तोक्त परममंद फल व परमश्रुति आज कल बेधोपलब्ध नहीं मिलते हैं। तो भी सिद्धान्त ग्रंथ का महत्व रचने के लिये गणितामें उन्हीं का अंगीकार किया है तो सिद्धान्तोक्त अथवा ग्रहलाघव के अयनांशों का अन्याय क्यों किया।’

उत्तर:—जिम अयनांशों के देने से मर्याद कुठ ज्योतिष ग्रंथों के गणितागत आरंभ एगन की छुद्र नाशत्रय व वैद्रीय मान में एक वक्ष्यता हो जाती है उन्हीं नाशत्रय अयनांशों के माध्यन में परम मंदरुत और परम श्रुति बेधोपलब्ध ही ली गई है। इसमें सिद्धान्तोक्त ग्रहलाघवदि कुठ ग्रंथों का उपयोग होने में उनका आदर बताया है.



१४

प्रश्न:—सच्चादिक साधन करना यह यदि साध्य है तो प्रत्यक्ष मानों को स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर:—हमने शंकु यंत्र से शुद्ध दिक् साधन किया है तभी उसके द्वारा लाई जाति अन्य वेधोपलब्ध मानों के तुल्य है। क्योंकि हमने सभी प्रत्यक्ष मानों का अंगीकार किया है और वही प्राचीन ग्रंथों से अविरुद्ध ही नहीं; युक्त हैं।

१५

प्रश्न:—छाया प्रवेश के समय नाटिकल से जो प्राप्त होती है वह क्रांति- $8^{\circ}11'10''$  ४४"५। छाया निर्गम क्रांति- $8^{\circ}11'31''$  ५०"५ इसमें अंतर- $0^{\circ}13'14''$  है।

उत्तर:—यह अंतर छाया प्रवेश निर्गमकाल के दिन गत्यंतर के तुल्य है। तब हमारे वेधसिद्ध परिमाण नाटिकल के तुल्य मिल जाने से आपने उसकी प्रशंसा करना चाहिये।

१६

प्रश्न:—आपका प्रयत्न स्तुत्य है। दृक्सिद्ध उपकरणों का अंगीकार करना यही शास्त्रोन्नति का मार्ग है।

उत्तर:—आपका कथन स्तुत्य है; किंतु प्राचीन ग्रंथों को ही योग्य चालन देकर दृक्सिद्ध करने में ही भारतीय शास्त्रोन्नति का मार्ग है न कि उसे छोड़कर पराबलंबन में।

## भाग २ = लेखी शास्त्रार्थ प्राक्कथन

इस अयनांश निर्णय-संबंध के शास्त्रार्थ में प्रथम विधान और अंतिम प्रत्युत्तर रूप समाधान के लेखक प्रस्तुत कमेटी के समापति विचारमूषण दीनानाथ शास्त्री चुंटे हैं और परीक्षण के लेखक प्रिंसिपल गोविंदरावजी आपटे साहब हैं।

### पहला विधान ( अ )

१ (अ) मैंने अब तक जो ग्रंथ देखे हैं—और मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करने का साहस कर सकता हूँ कि; मैंने कराब २ सब ग्रंथ देखे हैं— उनके अनुसार किसी सिद्धान्त या करण ग्रंथ में रेवती योग तारे का भोग शून्य अंश एवं शून्यशर नहीं माना है।

### परीक्षण.

१ (अ) हैं विधान साफ़ खोटे आहें। कारण—(१) सिद्धांत शिरोमणि भग्न युत्थधिकारांत लिहिंलें आहें की "सप्तमयः खमिति यांत खं म्हणजे शून्य अंश हा रेवती

भोग होय. (२) प्रला. "खं दत्तायन दृक्कृया" यांतील खं म्ह. शून्य अंश हा रेवती भोग होय. (३४) ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त, द्वितीय आर्य सिद्धान्त यांत ही रेवती भोग शून्य लिहिळा आहे. (५, ६) दामोदरार्य सिद्धान्त सुंदर सिद्धान्त, यांत ही रेवती भोग शून्य मानिला आहे. (७) गोलानन्द "रेवती योग तारास्तु सदा मीनाज संधिना" यांत ही रेवती योगताराभोग शून्य मानिला आहे. हे सात ठळक शास्त्राधार रेवती भोग शून्य असल्या बद्दल दिले आहेत. शिवाय आणखी आधार हा धुंडल्यास सापडतील. रेवतीचा शर शून्य असल्या बद्दल सर्वत्र ग्रंथांची साक्ष आहे. काही उदाहरणें देतो.

१ सि. शि. "त्रिभागोजिना उत्कृति ख" यांत खं=० हा रेवती शर होय. २ प्र. ला. "कर्णाक्षिशद्विचयः ख जिनभाऽभ्रं" यांत अभ्रं=० हा रेवती शर होय. ३ सू. सि. ४ द्वि. आर्य सि. ५ ब्रह्मगुप्त सि. ६ सार्वभौम सि. ७ प्र. ला ८ प्र. सि. ९ पितामह सि. १० सू. सि. ११ सोम सि. इत्यादि सर्व ग्रंथात रेवती शर शून्य सांगितला आहे.

भा. उपो. पृ. ३३९ "ब्रह्मगुप्त आणि त्या पुढील लल्लाखेरिज बहुतेक उद्योतिपी रेवती भोग शून्य मानितात." तसेंच पुढे पृ. ४५७ वर लिहिले आहे की "सर्वीच्या मतें रेवती योग तारा शर शून्य आहे; भोग ही शून्याजवळ आहे. तेव्हां रेवती योग तारे शिष्यांस मत्त भेद नाही "

असे ठळक ठळक आधार असतां दीनानाथजी सकल ग्रंथावलोकन करून ही असले विधान [ १ अ ] करण्याचें साहस करितात याचें आश्चर्य वाटतें.

### समाधान.

उपर्युक्त प्रि. साहब का परीक्षण प्रमाण विहीन एवं असंगत है। आश्चर्य तो यह है कि जो प्रमाण परीक्षण के पुष्टि में बतलाए गये हैं वे सब परीक्षण के नितान्त विरुद्ध हैं क्योंकि उक्त विधान के लेख से लिखे संबंध का यहां प्रश्न नहीं हो कर ग्रंथकारों के मानने का है। और उक्त ग्रंथकारों ने जो ध्रुवक कहे हैं वह तारे के उपलक्ष्य में न हो कर गणितागत आरंभ बिन्दु के अर्थ में हैं। क्योंकि इनका गणितागत आरंभ स्थान अलग २ होते हुए भी बिन्दु के ही अर्थ में सब की एक वाक्यता हो सकती है। तारे के अर्थ में अनेक रेवती योग तारे माने बिना; शून्य का लिखना निरर्थक हो जाता है। तथा अनेक तारे शून्य भोग शर के हो नहीं सकते। इतनाही नहीं तो उक्त ग्रंथकारों ने नक्षत्रों के साथ युति के प्रसंग में लिखित नक्षत्रों के ध्रुवों को स्थूल (आमचमान के), अस्पृष्ट और गणितागत को मुख्य कहा है अर्थात् उक्त ग्रंथकारों ने रेवती योग तारे का शून्य भोग शर नहीं माना है। इस कथन का स्पष्टीकरण नीचे लिखे अनुसार है।

आपने जो पहले १ से ७ संख्या तक के प्रमाण बताए हैं सो ब्रह्मगुप्त और द्वितीय आर्यभट्ट मूलक कारण ग्रंथ होने से वस्तुतः इनके ही नक्षत्रों के ध्रुवक उनमें कहे गए हैं। उसमें ब्र. सि. मूलक सि. शि. (गोलाध्याय द्दकर्म प्र०) में—“ब्रह्मगुप्तादिभि स्वल्पान्तर-त्वाच्चकृतः स्फुटः ॥ स्थित्यर्थं परिच्छेदादौ गणितागत एव हि ॥ ११ ॥ नक्षत्राणां स्फुटाएव स्थिरत्वात्पठिताः शराः ॥ द्दकर्मणायनेनैषां संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः ॥ १२ ॥ अर्थात्= ” ब्रह्मगुप्तादि सिद्धान्तकारोंने स्वल्पान्तर के कारण स्फुट (दृक्प्रत्यय में गणितागत के तुल्य) ध्रुवाभिमुख स्पष्ट करके नक्षत्रों के ध्रुवक नहीं कहे हैं; इसलिये युति कालीन स्थित्यर्थ के परिच्छेदादि लिखने में ग्रंथोक्त गणितागत ग्रह ही लेना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि नक्षत्रों के शरः स्थिर प्राय होने के कारण ध्रुव सूत्रीय स्पष्ट ही हैं। नितु उनके साथ २ द्दकर्म और अयन भागोंसे युक्त ही उनके ध्रुवक पड़े गए हैं। ” पुनः इसी का स्पष्टीकरण (भग्रह युत्यधिकार में) किया गया है कि— “ इत्यभावेऽयनांशानां कृतद्दकर्मका ध्रुवाः ॥ कथिताश्च स्फुटा वाणाः सुखार्थं पूर्वं सूरिभिः ॥ १७ ॥ अयनांशवशादेवा मन्याद्दकर्वच जायते ॥ शरज्या अस्फुटाः कार्याः स्फुटीकृति विपर्ययात् ॥ १८ ॥ ताभिरायन द्दकर्म सुदुर्व्यस्तं ध्रुवेष्वथ ॥ अयनांश वशात्कार्यं तद्दकर्म यथोदितम् ॥ १९ ॥ एवंस्तु ध्रुवकाः स्पष्टाः शरज्याश्च तवः स्फुटाः ॥ २० ॥ ततो भग्रह योगादि स्फुटं ज्ञेयं विजानता ॥ इत्याधिक्येऽयनांशानां मत्पत्वेत्वल्पमन्तरम् ॥ ११ ॥ “ यदा तैः पठितास्तदाप्रायस्तेषा-मयनांशानामाशः संभाव्यते ये पाठ पठितास्तेऽथूलाः ॥ अत्रायनांशानां मत्पत्वेऽल्प-मन्तरं कृतेऽपि तस्मिन् कर्मणि भवति । बहुत्वेतु बहु ॥ ” “ अथ च येवा तेषा भगणा भवन्तु । यदायंशानिपुणै रुपलभ्यन्ते तदा सएव कांतिपातः ”

इस प्रकार भास्कराचार्यने नक्षत्रों के ध्रुवकों की अपेक्षा गणितागत आरंभ स्थानको मुख्य माना है। उसी के अनुसार शके १०७२ के पूर्व ११ अयनांश और ७७ रव्युच्चको-तथा इसी के ध्रुवक म. डा. में लिखे गए हैं, और उसमें शके १४४२ के अयनांश १६°१८' एवं रव्युच्च ७८ को-लिखकर जो ग्रहोंके भगणारंभ स्थान कहे गए हैं उनसे स्पष्ट है कि शून्य भोगशरवाले किसी भी तारेका उससे संबंध रहताही नहीं है।

अब द्वि. भा. सिद्धान्त भग्रहयुत्यधिकार में क्या लिखा है सो भी सुन लीजिये—“ योगः-प्रायोदश्योऽदृश्यत्वे नामहः कार्यः ॥ तदुदीरयामि गोले नो साम्यं हेतुना येन ॥ ९ ॥ नायं व्यर्थोऽध्यायो यस्माद्भग्रह योगजेऽहि शुभकर्म ॥ नेष्टखगादिक् स्थितिजं फलं निरुक्तं च गर्गाद्यैः ॥ १० ॥ रजनीकरसंयोगाज्ज्ञेयाः स्पष्टा महीजायाः ॥ पाराशर्यादि मते विवरं नेच्छति दृष्टिफले ॥ ११ ॥ ” अर्थात् “ नक्षत्रों के लिखे हुए ध्रुवकों के अनुसार ग्रहों की युति कभी तो दृश्य होती है कभी नहीं होती। यह हम गोलाध्याय में कहेंगे कि किस कारण भग्रह युति ठीक ठीक नहीं मिलती ॥ ९ ॥ यदि यह कहे कि ऐसे नक्षत्रों के स्थूल

ध्रुवकों से ग्रह युति का यह अध्याय इत्यर्थ ही क्यों कहा गया ? किंतु यह ध्रुवक इतने स्थूल नहीं हैं कि जिसमें दिनों का अंतर हो जाय । और गर्गादि ऋषियों ने ग्रहयुति का दिन \* ( पूर्ण नक्षत्र १२° । २०' ) ही शुभ कार्य में वर्ज्य एवं युति की दिकस्थिति से फलित कहा है ॥ १० ॥ यदि किसी को नक्षत्रों के साथ ग्रहों की दृश्य युति को देखनी हो तो गणितागत चंद्र के नक्षत्र भोग से मौमादि स्पष्ट ग्रहों की युति देखें, क्योंकि पञ्चशरोक्त करणागत ग्रहों के दृक्प्रत्यय में अंतर नहीं रहता यह सर्व सम्मत है" ॥ ११ ॥ तथा आगे गोलाध्याय में स्पष्ट कह दिया है कि " दिनगण भगणाः स्पष्टा यदि तज्जाता ग्रहाः स्फुटा न कुतः ॥ १६ ॥ " अर्थात्—“गणितागत दिनगणों से शुद्ध किये भगणों ( योग ताराओं ) के स्पष्ट होने पर स्पष्ट ग्रह के युति कालादि शुद्ध ( दृग्गणितैक्ययुक्त ) कैसे नहीं होंगे ? ”

इस प्रकार बड़े बड़े देदीप्यमान ताराओं के ध्रुवक भी युतिदिन दर्शक मात्र स्थूल ( आसन्नमान के ) कहे गए हैं; तब निःसंदेहरूप एक तारा नक्षत्रों के अतिरिक्त आंखों में पहिचानने में नहीं आने वाले; छोटे छोटे ३२ ताराओं के पुंज ( झुंड ) में से एक ( भगणांत रूप रेवती ) योगतारे के भोगशर के संबंध में वह खं खं=शून्य=बिन्दु नहीं कहें तो क्या कहें ?

जबकि इसी आर्य सिद्धान्त के ध्रुवक दामोदरभट्टतुल्य सि० सुंदर करण और गोलानंद में—कहे गए हैं । इससे तथा उक्त गोलानंद के “ सदा ” के कथन से; बिंदु के अतिरिक्त तारेके संबंध का अर्थ हो नहीं सकता । क्योंकि मीन और मेष राशिके दृश्य तारका पुंजके संग्रहमें बिन्दुही सदा रह सकता है ताराओं के ध्रुवक दृक्कर्म संस्कृत होने से अयनभागोंसे एवं निजगतिसे इधर उधर हटे बिना सदा स्थिर नहीं रह सकते ।

कोप ग्रंथों में भी “ खं शून्ये, बिन्दौ, मुखे, ॥ इति हैमः ” ऐसा लिखा होनेसे यहां बिन्दु और शुद्ध यानी आरंभस्थान के अर्थ में “ खं ” शब्द कहा गया है । ऐसा पूर्व कथनसे सिद्ध होता है । क्योंकि यदि रेवती तारे के अर्थमें कहा होता तो उक्त ग्रंथों के गणितागत भगणारंभस्थान से उसकी एक वाक्यता होनी चाहिये थी । या रेवती तारे के द्वारा भ ( नक्षत्र ) गणोंका भेळ कर लेना लिखा होता किंतु ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है ।

उक्त ग्रंथों के गणितागत ( भगणों ) द्वारा रेवत्यंत बिन्दु का स्थान शास्त्र शुद्ध सूक्ष्म-गणित के नाक्षत्रमान के तुल्य ही निश्चित होता है सो उनमें से १ सि. वि. भास्करा-

\* यस्मिन्धिष्ये भवेच्छंद्रोऽग्रहस्तत्रयदामवेत् ॥ युति दोषस्तदाज्ञेयः ॥ १ ॥ इति ज्योतिर्निघन्धेगर्गः । मु. वि. पायूपधारा आदि में कृप क्रांत य युति दोष में भी पूर्ण नक्षत्र नेष्ट कहा है ।

चार्य के एवं (२) प्र. छाघव के उच्च और अयनांश बताए गए हैं; उनसे और (३) ब्रह्मगुप्त के शक ५८७ अधि चै. ३० शनिवार अर्ध रात्रि के म. रवि ०°०३२'१२" में उसी के उच्च व परम फलांतर +१°११'०" का संस्कार करने पर म. रवि १११२८।४।१३ हो जाने आदिसे, (४) आर्य भट के शक ८७५ में अयनांश ७°१८' उच्चांतरों २१६' द्वारा शुद्धायांश १।१४ और अब्दप ५।४३।३५ ति. शु. ६.८७ होनेसे, (५) आर्य भट तुल्य दामोदर के शक १३३९ चै. शु. ४ रवाधिष्ट ४९।१४ अयनांश १४।४०, (६) ज्ञानराज सि. सुंदर करण के श. १४२५ में म. रवि ६।०।१४।१७ आदि क्षेपकों द्वारा म. मेपार्क चै. क. १३ गुरी १२।२८ अयनांश १६।२, (७) चिन्तामणि दीक्षित कृत स. सिद्धांतानुसारी गोलानंद करण के श. १७१३ चै. शु. ७ भौमे ३३।३७ के क्षेप व अयनांश २०।४३, इन सब का शुद्ध नाक्षत्र मान के आरंभ स्थानसे मेल हो जाता है।

इतनाही नहीं तो म. म. सुधाकर द्विवेदी कृत प्रि. ला. की टीकामें तीनों सिद्धांत ग्रंथों के कहे हुए सभी ग्रंथों के भगणों से प्रस्तुत आरंभ स्थान की एक वाक्यता तथा हमारे वेदकाल निर्णय पृष्ठ ८० में; इनसे बने हुए नक्षत्रों के शुद्ध कदंबाभिमुख भोग शर आदि एवं प्रस्तुत पंचांग कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ ९५-१०३ में उच्चांतर जन्म मंद केन्द्रीय संस्कार के कारणको देखेंगे तो विधान साफ़ खोटा है या परीक्षण बिलकुल गलत है तो गोविंदरावजी को स्वयं मालूम हो जायगा।

अब रहा भा. ज्यो. पृ. ३३९, के दीक्षित कथन का सारांश जो कि प्रि. साहव की लिखी पंक्ति के ही भागे इस प्रकार लिखा है:- परंतु त्यांचे आरंभ स्थान रेवती योग तारेशीं कधींच नव्हते व असणार नाहीं. साम्प्रतच्या सूर्य सिद्धांताचे स्पष्ट मेप संक्रमण होण्याचा वेळीं प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योग तारेशीं (सिंहापिशियमर्शी) कधीं होता हें काढून पाहतां असें वर्ष शक १७७ येतं. किंतु प्रि. साहव बहादुर ने इस कथन को छुपा (लुका) कर ऊपर तो शून्य भोग बताना; फिर उसी कालम के नीचे "भोग ही शून्या जवळ आहे" ऐसे आसन्नमान को स्वीकारना मानों हमारे ही विधान का प्रमाणों में समर्थन और बताने में परिक्षण करते हुए उक्त ग्रंथों में से ही नहीं बरना भारतीय कुछ सिद्धांतादि ग्रंथों में से एक के भी भगण या अयनांशों से आपकी स्वीकृत (झोटा) रेवती को तनिक सा भी आधार नहीं बताते हुए मेरे सकल ग्रंथावलोकन के ऊपर एक कलम की फटकार से पानी फेरने के प्रयत्न करने में एवं यथार्थ कथन को साहस बतारने में ही गोविंदरावजी की बहादुरी का आश्चर्य है।

### विधान १ (आ)

किन्तु रेवती पुंज के ३२ तारों में से एक तारा आसन्न भोग शर का माना गया है।

## परीक्षण.

(आ) रेवती पुंजांत सर्वांत दक्षिणे कडे असून क्रांति वृत्तावर स्थित असलेला जो तारा तोच रेवती योग तारा होय. " भरण्या भ्रम्य पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा " असे सू. सि. सोम. सि. लिहिले आहे. " तथैव भरणी पित्र्य रेवतीनांच दक्षिणा " असे वृद्ध वसिष्ठ सिद्धांतात ही लिहिले आहे या वरून हे अवश्य लक्षांत ठेविले पाहिजे की रेवती पुंजांतल सर्प तारे क्रांति वृत्ताच्या उत्तरेसच असले पाहिजेत- व ते सर्व रेवती योग ताऱ्याच्या पश्चिमेसच मानले पाहिजेत. त्या पैकीं काहीं तारे क्रांति वृत्ताच्या दक्षिणेसही आहेत असे कोणी म्हणेल तर ते चुकीचे आहे. अशीच चूक शं. बा. दीक्षित यांनी केले आहे. ( पुणे शके १८४७ च्या पंचांग समेचा रिपोर्ट पृ. ८९-९० व १०७ पाहा. The conjunctions of the groups रेवती is said to be its southernmost member. अर्थात् खरा विचार करताना आपण ही चूक टाळवी पाहिजे. गिहटने-चेही मत महत्वाचे आहे. ( सदर रिपोर्ट पृ. ८९ पाहा. )

## समाधान १ (आ)

इस परीक्षण की तो हँसी आती है। क्योंकि जिस गलतीको समझकर ज्यो. दीक्षित जी की गलती बताई गई है वहा उनकी गलती न होकर यहा जो प्रि. साहब ने भा. ज्यो. शा. पृ. ४९४-५५ में की रेवती के भोग को लुकाकर उसके शरकी पक्ति उद्धृत की है उसमें उत्तर की जगह दक्षिण लिखा जाने से ) हो स्वयं आपही गलती खा गए हैं। देखिये— " (१) सू. सि. अ. ८ श्लो. ९, (२) सोम सि. पृ. २१ श्लो. ८, (३) वृद्ध वसिष्ठ सि. ८-८ पृ. ४७, उदगृदिशस्ते चक्षराः सपूर्णम्, (४) द्वि. आर्य सि. पृ. ११९ श्लो. ८, (५) सि. शि. पृ. २१९ श्लो. १ उत्तरा शेषमानाम्, (६) प्र. टा. (७) ब्रह्मगुप्त, (८) सार्वभौम सि, (९) पितामहसि, ' रेवतीनामुत्तर ' और (१०) ब्रह्मसि. पृ. ३९ " इत्यादि सब ग्रंथों में पुष्य और मघा की तरह रेवती का शर ग्रह्य लिखा होते हुए भी उनकी उत्तर दिशा मतलाई है। तब जिस प्रकार पुष्य की ४-४ और मघा की २७-६ उत्तर शर कहा है। उसी प्रकार रेवती की योग तारा भी क्रांति वृत्त के उत्तर में कुछ तोभी कक्षाओं से अनरित होनी चाहिये। अन्यथा उत्तर शर के संग्रह में सभी ग्रंथों की एक वाक्यता हो नहीं सकती।

किंतु प्रि. साहब महानुभावन की पत्थित [ झीटा ] रेवती बहुतही छोटी तारा होने हुए भी क्रांति वृत्त में ११°० कटानागत दक्षिण शर वाली है इसलिये वह रेवती की योग तारा हो नहीं सकती। बाकी अरंभ स्थान में मुख्य मन्वे यात्री या. वृ. के उत्तर में कुछ कटानागत दुसरी कुछ बड़ी तारा नही है अर्थात् बहुत छोटी है इसलिये और " इति चारामदानस्युध्व संख्यामेषोह ॥ प्रयोजनविशेषोऽस्ति न जानि तत्र कारणम् ॥ ११ ॥

[ ' न जाने तत्र गण्यते ' इत्यपि मुदित पुस्तके पाठ ] इस सोमसिद्धान्त ( पृ २१ ) के एव " दृश्यते यस्य तस्यास्ति न स्वप्नेऽपि शिवस्मृतिः ॥ १६९ ॥ इस ब्रह्मसिद्धान्त [ पृ ३२ ] के कथन से तो स्पष्ट हा जाता है कि घुस्कों में कहे हुए कई तारे निजगति से इधर उधर हो गए हैं, कई एको की प्रति छोटी हो गई है, जिनके स्थानों की ठोक १ स्मृति भी नहीं है-इसलिये अब हमने उसे बिन्दुरूप रूढ़ा है । क्योंकि इतनी छाटी तारा वेध लेने में निरुपयोगी है ।

प्रो. विटने के कथन का खंडन ( भा. उयो. शा. पृ. ४२८ में तथा पृ. ४९४ ५१८ में " युरोपियनाचे अभिप्राय " तथा " वरील मताचे परीक्षण " में ] किया गया है इस विष्टपेयण की यहा कुछ आवश्यकता नहीं है ।

## विधान २

२ मेरे इतने लिखने से प्रि साहब का मसाधान न होगा इसलिये मैं विस्तार पूर्वक लिखता हू वह इस प्रकार है कि,— सोमसिद्धान्त में ३५९.३० ब्रह्मसिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त में ३५९.१५०, बृह वसिष्ठ सिद्धांत में ३५९।० आदि प्रकार से आरम्भ स्थान से १ अंश कम तक रेखा की योग तारा कहा गई है । और सूर्यसिद्धांत तथा अन्य ग्रंथों में इसके शरके संबंध में कई जगह " ख " अर्थात् कुछ नहीं ऐसा लिखा हुआ है और कई जगह अन्य तारों के शर कहकर रेखती शर के सत्रध में कुछ लिखा भी नहीं है ।

## परीक्षण २

रेवती भोग ३६० न मानणारे प्रथ थोडे आहेत ब्रह्मगुप्तानंतरच्या सर्व ग्रहकारानी रेवती भोग ० मानला आहे. यास फारतर १ किंवा २ अपवाद सापडतील. रेवती शर शून्य तर सर्वानच सम्मत आहे ( भा. उयो. पृ. ४५० पाहा ) एखाद्या ठिकाणीं दिवा नसल्यास तो शून्या शिवाय काही आहे असे मानता येत नाहीं. कारण ज्यानीं दिवा आडे त्यानीं शून्यच दिवा आहे. " ख " म्हणजे शून्य ही परिभाषा तर प्रसिद्धच आहे " पैत्रर्क्ष पुण्यान्तिम चारुणानामृ क्षुद्रय नेमिगतं यथास्यात् ॥ " अशा रीतानें चक्र यत्र धरायें म्हणजे तें कालिवृत्ताच्या पातळीत ( धरातळात ) येतें असें सि. शि. त. लिहिळें आहे. त्यावरून रेवती शर शून्य हें स्पष्ट आहे.

## मसाधान २

बडी आनंद की बात है क्यों कि — पर्याय से क्यों न हो आपने स्वीकार कर लिया है कि ब्रह्मगुप्त के पहले के कुछ ग्रंथों में तथा बाद के एक दो ग्रंथों में रेवती का शून्य भोग

नहीं लिखकर आसन्नमान कहा है। और सि. सि. के “पैत्र्यर्क्ष०” श्लोक के भावार्थ से यह भी अर्थ निकलता है कि वेध लेने में रेवती मुख्य न होकर पुष्य, मघा और शतभिषु की योग ताराओं के ऊपर यत्र रखने पर उस यत्र के रेवत्यत विभागपर जो तारा दिखे सो रेवती तारा है। लेकिन उक्त तीनों नक्षत्रों की ताराओं के अन्य शर लिखे होते हुए भी सूक्ष्म गणित से कुछ कलारूप इनका जैसा शर उक्त दिशा में है ऐसा रेवतीका भी प्रयोक्त उत्तर दिशा में शर चाहिये इसका विचार आपने नहीं किया है। अब यदि आप इसे तारा मानते हैं तो चित्रा के १८० अंश के क्रांति वृत्त के कुछ उत्तर दिशा में एक छोटी तारा आकाश में दिखाई देती है जोकि सात आठ प्रति के सूक्ष्मताराओं के पुंज दर्शक बड़े तारों के पट्टासोंमें भी लिखे गई है। और यदि बिन्दु मानते हैं तो “बिन्दो ख रोहिते” इति हेमा। “ख” का अर्थ बिन्दु भी होता है।

### विधान ३. (क)

गोल बन्ध में रेवती तारे को वेधकर उसे आरभ स्थान में मानकर उसके द्वारा दृश्य ज्योति. का गणिता गत से ऐक्य कहा भी नहीं बताया गया है।

### परीक्षण ३. (क)

• (१) यस्तु स्थिती यात्र्या उलट आहे. सि. शिरोमणीत भास्कराचार्य लिहितात की “रात्रौ गोल मध्यग चिन्ह गत या दृष्ट्या रेवती तारा विलोक्य क्रांति वृत्ते यो मीनान्तस्त रेवती ताराया निरेश्य—मध्यगतयेत्र दृष्ट्या अश्विन्यादिर्नक्षत्रस्य योगतारा विलोक्य तस्योपरि वेध बलम निरेश्यम्।” मध्यमाधिकारामध्ये ही हेंच वचन दिले आहे. महेश्वरीने प्रं. ला. टीकेंत ही हेंच वचन उद्धृत केले आहे. सू. सि. मुधावर्णिणी टीकेमध्ये ही पं. मुधाकरजींनी ही तेच घेतले आहे. असे हे गोत्र्या विद्वानांना समत असलेले वचन पं. दीनानाथ फर्से नाकबूल करू शकतात ? हे वचन व गोलानशतील वचन “रेवती योग तारातु सदा मीनाऽजसंधिगा ॥ विघ्नाताशकले नाथ विध्योद् दात्रादिमान्यथि ॥” (रिपोर्ट पृ. ८९) या वरून रेवती तारे पामूनच वेध घ्यावेत असे स्पष्टपणे सांगेतले आहे. रंगनाथानें ही रेवती तारा सानिध्याचा उल्लेख केला आहे. (सू. सि. अ. ८ टीका)

### समाधान. (क)

यह परीक्षण बिल्कुल असंगत और प्रमाण रह्य है। क्योंकि आपने (१) मि. सि. (२) महेश्वरी (३) मुधाकर द्विवेदी (४) गोलानन्द और (५) रंगनाथादि टीकाकारों के अपूर्ण वाक्य उद्धृत करके रेवती से उस समय वेध लिया जाता था ऐसा बताने का प्रयत्न



कर वस्तुस्थिति को उलटी बताई है। लेकिन वस्तुतः आपकी ही समझ उलटी है। भास्कराचार्य और आर्य सिद्धान्त के कथन से (समाधान १ में) बताया गया है कि ब्रह्मगुप्त के इधर के ग्रंथोक्त ध्रुवको मैं अयनभाग मिश्रित होने से बड़ा स्थूल और केवल नक्षत्र विभाग दर्शक मात्र होगए हैं। किंतु सूर्य, सोम, पराशर, वृद्ध वसिष्ठ और ब्रह्म सिद्धान्त एव बराहोक्त प्राचीन ग्रंथों में शून्यायनाश कालिक ध्रुवक व भोग लिखे हैं। उनमें भी आपकी झीटा रेवती से वेध नहीं लिया जाता था। उदाहरण सू. सि. का ही लीजिये 'गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवक स्फुटम्. (८१२) इस कथन में रेवती द्वारा अन्य ध्रुवकों को जाँचना नहीं लिखकर गणितागत से ध्रुवों को जाँचना ध्वनित किया है। अतएव रगनाथ ने (आपके उद्धृत वाक्य के आगे) "अश्विन्या दे यौग तारां विलोक्य तस्या उपरि तद्वेध बलं निवेद्यम्" "कद्व प्रोत वेधबलयन वेधतु सदास्थिरा ध्रुवका आयन दृक्कर्मा सस्कृता.। परन्तु कद्व तारयोरभावादशक्यमिति" रेवती को आतन पड़कर अश्विनी के ध्रुवक ८ अंश से उसका मेल करना लिखा है। झीटा से अश्विनी का सापेक्ष अंतर  $१०^{\circ} ११' २''$  होने से ग्रंथोक्त से  $+ २^{\circ} ५१' २''$  आगे है। किन्तु इनही ग्रंथों में लिखे हुए चित्राभिमुख त्रिन्दु से अश्विनी भोग  $७^{\circ} १४'$  होने से वह सिर्फ  $१०'$  बड़ा न्यून (स्वल्पन्तर तुल्य) आज है। इससे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उस समय में झीटा को रेवती नहीं मान कर उसके निकटवर्ती त्रिन्दु से ८ अंशपर अश्विनी योग तारा को मान कर अथवा ताराओं का वेध लिया जाता था यह आपके ही प्रमाणों से सिद्ध होता है।

तथा आपके पाँचों प्रमाणों के गणितागत का झीटा को रेवती मानने से मेल न हो कर चित्रा के समुच्च त्रिन्दु से मेल मिलता है। (१) शके १०७२ में भास्कराचार्य ने अयनाश  $११^{\circ}$ , (२) शक. १५२४ में महाराजने स्वयं  $७७^{\circ} १५' ४१''$  व अयनाश  $१८^{\circ} १२'$  (३) म. सुधाकर द्विपदीने दिङ्भीमासा (पृष्ठ ११) में चित्रा के  $१८^{\circ}$ , अश्विनी के  $८^{\circ}$  ध्रुवक तथा म. ला. टीका में शक १४४२ के अयनाश  $१६^{\circ} १८'$  उच्च  $७८^{\circ}$ , और यही परिमाण (४) गोलानन्द में लिखे हैं एव शके १५१३ ई. शु. ९ शानिवारेष्ट घटी ४५ का म रेखि  $११.१७^{\circ} १५' ४१''$  उच्च  $७८^{\circ}$  अयनाश  $१८.१२'$  आदि लिखे हैं। सो शुद्ध नाक्षत्र मान के अयनाश  $१८^{\circ} १८' १६''$  का सिर्फ  $३^{\circ} १४'$  स्वल्पान्तर में तुल्य हैं। किंतु झिटा से गिनने में कर्गव ३४ अंश का अंतर सभी परिमाणों में है। इसमें चित्राभिमुख त्रिन्दुरूप रेवती की सार्धकता और क्षियानारा रूप रेवती की अनर्थकता स्पष्ट नक्षित हो जाती है।

### परीक्षण (ख)

(२) रवीश्या उच्चाया उपपत्ताच्च उपपादनांत सि. शि. कार भास्कराचार्य लिहतात को "मिथुनस्थे रवौ कस्मिंश्चिद्दिने रेवती तारको दया ध्यान्ती मिघटिकाभीरविकदितस्ताव

तीभिर्भिन्नास्ता ह्यनं साध्यम्” या वचनांत ही नक्षत्रारंभस्थानीं रेवती योगतारा असल्या वल्ल स्पष्ट उल्लेख आहे-

### समाधान. ( ग्व )

(२) यह उल्लेख झोटा के संबंध में बिल्कुल नहीं है किंतु क्रांति वृत्त से कुछ कलांतर्गत उत्तर शरयाली रेवती तारा के उपलक्ष्य में है जोकि-समाधान २ के अंतिम पंक्ति में बताया गया है।

लेकिन इस प्रकारके वेध के कथन; केवल याचनिक हैं। जैसाकि भास्कराचार्य ने ही स्वयं कहा है:-“मंदोच्चानांतु वर्षशतेनैकैः ॥ ३. तोनायमर्थः पुरुषसाध्य इति अतएवाति प्राज्ञागण-  
काः सांप्रतोपलब्ध्यनुमारिणं “ कमप्यागम मंगीकृत्य प्रहगणितभारमनो गणितगोळयो-  
निरतिशयं कौशयं दर्शयितुं ” प्रधानरचयति । यथान्नप्रथे ब्रह्मगुप्तस्वीकृतागमोङ्गीकृत  
इति । ” “ तस्योच्चस्य चलनं वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यते । किंत्वाचार्यैश्चंद्रमंदोच्चवदनुमानात्  
कल्पितागतिः । सा चैवम् । वैभगणैः साम्प्रताहर्गणाद्वर्षगणाद्वा एतावदुच्चंभवति तेभ्यः  
युत्तया कृद्वेकेन वा कल्पिताः ” इत्येव सांप्रतिक अहर्गण या वर्ष गण से उच्च का निश्चय  
कर देना कहा है । उनके भ्रमण तो अनुमान कल्पित हैं । यदि झोटा से उच्च गिना जाता  
तो ८० अंश १७ कल कहना था लेकिन वह तो ७७°१६' कहा गया है । जो कि वैद्वंश भाग  
निकाळ देने पर ५६° १७' के बराबर आता है । और उत्तरी चित्राभिमुख दिष्टरूप रेवती  
से एक वारयता होती है ।

### परिक्षण. ( ग )

( १ ) भा. ज्यो. पृ. २०१ मध्ये असे स्पष्ट लिहिले आहे की-“ शके ४९६ व्या  
सुमरास रेवती योग तारा संपाती होती है गों. ” यांतही तो तारा आरंभस्थानी मानल्याचा  
स्पष्ट उल्लेख आहे.

### समाधान. ( ग )

( ३ ) उक्त परिक्षण बिल्कुल गलत है । क्योंकि ऊपर जो वाक्य लिखा है सो  
अपूर्ण (अपूर्ण) है । इसी कालमें इस कथन के विरुद्ध लिखा है जैसाकि; “ हें खरे. ’  
बलाप्रमाणे त्या वर्षी अयनांश शून्य मानवें अर्भे क्षणतात्, परन्तु भरतीयांनी शक ४४५  
व्या सुमारे शून्य मानले तेच त्याच्या पद्धतींम अनुमळून बरोबर आहे असे पुढे अपन  
चलन विचारांत दाखविले आहे. ” इस कथन में सूर्य सिद्धान्तदि के मंदवैद्वंशमान के  
मेयार्क काळ संबंध के शून्यायनांत शक वर्ष ४४५ में कहे गये हैं ।

झांटा तारे के रेवती संबंध में तो (भा. पृ ३३८-३९) में ऐसा लिखा है:- “छायेवरून सूर्याचे भोग काढण्याची रीति सूर्यसिद्धन्तांत त्रिभ्राधिकारांत १७ पासून १९ पर्यंत श्लोकांत दिलेली आहे. आणि तो रवि सायन होय हे निर्विवाद आहे. या वरून सायन रवि आणि ग्रंथावरून आलेला रवि यांचे जे अंतर ते अयनांश असे अयनांशाचे लक्षण आमच्या ग्रंथांत आहे. ”

“ वरील श्लोकावरूनच आणखी असे दिसून येईल की रेवती योग तारेची अयनांशाचा किंवा अयनगतीचा काही संबंध नाही. या विषयी थोड्या जास्त विचार करूं. सांप्रतच्या सूक्ष्म शोधावरून नाक्षत्र सौर वर्षांचे मान ३६५ दि. १५ घ. २२ प. ५३ विपळे १३ प्रति विपळे आहे. इतके जर आमच्या ग्रंथांतले वर्षमान असते तर रेवती योग तारेचा किंवा दुसरी एकादी तारा आरंभस्थानी धरली असती तर तिचा अयनगतीशी संबंध असता. म्हणजे रेवती योग तारा ( झिटापिडियम ) हे आरंभस्थान धरिले तर ती तारा शक ४९६ मध्ये संपाती होती म्हणून ते वर्ष शून्या अयनांशाचे मानले पाहिजे होते. व पुढे रेवती योग तारेचे संपाता पासून जे अंतर ते अयनांश मानले पाहिजे होते. परंतु आमचे वर्ष मान वर सांगितल्या इतके नाही. या मुळे ते नक्षत्र सौर आहे असे अगदी खात्रीने झगवत नाही. तसेच रेवती योग तर हे आरंभस्थान म्हणावे तर सूर्यसिद्धन्तांत आणि लल्लाच्या ग्रंथांत तिचा भोग शून्य न हो.

आरंभस्थ आणि वराहमिहिर यांनी योग ताराचे भोग दिलेच नाहीत. ब्रह्मगुप्त आणि त्यापुढील लल्लुखरीज बहुतेक उद्योती रेवती भोग शून्य मानित त; परंतु त्यांचे आरंभ स्थान रेवती योगतारेची कधीच नव्हते व असणार नाही. सांप्रतच्या सूर्यसिद्धान्ताचे स्पष्ट सेप संक्रमण होण्याच्या वेळी प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योगतारेची ( झिटापिडियमशी ) कधी होता हे काढन पाहतां असे वर्ष शक १७७ येते

आणि तेव्हा पासून दर वर्षास सूर्यसिद्धताचे आरंभस्थान रेवती योग तारेच्या पूर्वेस ८।५१ विकला जात आहे... म्हणजे आमच्या ग्रंथांतले वर्षमान निराळे असल्यामुळे परिणाम तसा होत नाही. अ.णखी असे की झिटापिडियम असे नाव युरोपियन उद्योतीची मित्र देतात व ती रेवती योगतारा असे कोलब्रूक इत्यादि युरोपियन विद्वानांनी ठरविले आहे, ती तारा फार बारीक आहे. ताऱ्याचे महत्त्व आणि तेजस्विता यांवरून त्यांच्या प्रती ठरल्या आहेत, चित्रा, खती, रोहिणी, ह्या फार ठळक तारा पडिल्या प्रतीच्या आहेत. रेवती तारा ४ धा आणि ५ धा प्रत यांच्या मधील आहे. कोणी ती सहाव्या प्रतीची देखील मानितात. हिच्या बगेवरीच्या किंवा हिच्याहून लहान तारा २७ मध्ये दोन तानव आहेत. सांप्रत ती आपांशांत दोखविणारे जुने जोशी कचित् मांडली.

सारांश ती इतकी लहान आहे की वेधाच्या कार्भी तिचा उपयोग होण्याचा संभव फार थोडा, अयनांश काढण्याकरिता तर तिचा उपयोग करीत नाहीत. हें वर (पृ. ३३८) दिलेल्या भास्कराचार्योक्ती वरून व सू. सि.तील वाक्यावरून स्पष्ट आहे अमच्या ज्योतिष्यांनी अयनगतीचा सबंध रेवती तारेशी ठेविला असता तर ह्यणजे तिचें सपातापासून चलन एका वर्षांत सुमारे ५०।५ बिकला होतें, तितकी वार्षिक अयनगति मानली असती आणि इष्ट-काळी सपातापासून तिचें जें अंतर तितके अयनांश मानिले असते तर परिणाम कसा चुकीचा झाला असता याचें एक उदाहरण दाखवितो.

शके १८०९ मध्ये आश्विन शुद्ध ७ शुक्रवारी तारीख २३ सप्तर १८८७ रोजी प्रातः स्पष्ट रवि प्रह्लाघवावरून ५।७.२।३७ येतो. या वर्षी अयनांश २२।४५ आहेत. ते त्यात मिळविले म्हणजे सायन रवि ५।२९।०.०।३७ झाला. म्हणजे सूर्योदयानंतर सुमारे ९ घटिकांनी सायन तुला राशीचा झाला. आणि त्यामुळे त्याच दिवशी विषुव दिन झालें आणि त्याच दिवशी ३० घटिका दिनमान प्रह्लाघावि पचागात आहे. केरोपती पचाग, सायन पचाग, त्यात या दिवशीच ३० घटी दिनमान आहे. यावरून प्रह्लाघांरी पचागातलें दिनमान बरोबर आहे हें उघड आहे केरोपती (पटवर्धनी) पंचागात या सुमारास अयनांश १८।१८।१३ आहेत. आणि हे रेवती तारेचें सपात पासून जें अंतर तितके आहेत हें अयनांश वरील प्रह्लाघागात राशीत मिळविले, तर सायन सुमारे ४।५ दिवसांनी ३० घटिका दिनमान होईल. परंतु तें चुकीचें होय तेन्हा छापादिकावरून काढलेला रवि आणि प्रभागात रवि यांचे जें अंतर ते अयनांश आणि सधनुसार अयन गति आमच्या ज्योतिष्यांनी मानली तेंच योग्य केलें वसे सिद्ध होतें "

इस प्रकार समग्र लेख के पढने मे स्पष्ट होता है कि, जिस टीक्षित ने झोटाके रेवती पक्ष का सर्वस्व सखन कर दिया है, ऐसा होते हुएभी प्रि० साह्य ने इसकाही आधार बताना माना 'इसके सिवाय अब हमें झोटाके निराधारता के और दूसरे प्रमाण ढूँढने की आवश्यकताही क्या है' ऐसा बतला दिया है। जैसे जल में दूधता दूधा मनुष्य घबराकर फाई (मग्न) का तभी आश्रय लेना चाहता है कि जब उसको अन्य कोई निशाने का भी आधार नहीं मिलता है।

यहां अब मुझे कहने में सफाच नहीं कि जो आपने "यातही तो ताग अरमधानी मानसका स्पष्ट उद्देश्य है" ऐसा उनमें उद्देश्य नहीं होत हुए भी लिखुट अमय परीक्षण वरके आपकी और आपके अगीटन पक्षकी अपनी आप हमी बराते हुए इसमें झोटापक्ष को झूठापक्ष या शुद्ध पचाग प्रचर में भेदे-वादापक्ष कहना देना मरीखा होता नहीं तो क्या है !!

### परीक्षण ३ ( घ )

भा. ज्यो. पृ ३३२ वरून हें लक्षात येईल कीं “सूर्यादि पंच सिद्धांताच्या मते संपाताची पूर्ण प्रदक्षिणा होत नाही. तो रेवती तारेच्या पूर्वमे २७ अंशपर्यंत जातो आणि दुसऱ्या आर्य सिद्धांताच्या मते तो रेवतीच्या पूर्व पश्चिमेस २४ अंश पर्यंत मात्र जातो ” असें जे दीक्षितानीं लिहिलें आहे त्यावरून रेवती योग वाराच नक्षत्र चक्रांभी मानिली आहे. हें स्पष्ट आहे, न याच तांत्र्यावरून इतर नक्षत्र तांत्र्याचे वेध घ्यावेत या बदल ही घचनें घर दिलीच आहेत.

### समाधान ( घ ).

यह परीक्षण भी निराधार, निरर्थक और अमत्य है। क्योंकि दीक्षित ने तो — “संपात विलोम गतीनें सर्व नक्षत्र मंडळात फिरते। असें मुंजालाचें मत आहे. तसेंच संपाताची पूर्ण प्रदक्षिणा हाते अशा अर्थाचें वसिष्ठ सिद्धांतकार विष्णुचंद्र याचें-एक वाक्य ... पृथूदक ' नृमिह यानां दिलें आहे. ” “संपाताची पूर्ण प्रदक्षिणा होते असा अर्थाचीन युरोपियन ज्योतिषाचा सिद्धांत आहे. हें प्रमिद्वच आहे. ” इत्यादि लिखून दीक्षितन संपात की पूर्ण प्रदक्षिणा को ही मिद्व किया है। फिर किस आधार से आप “त्यावरून रेवती योगताच नक्षत्र चक्रांभी मानिली आहे ” इत्यादि असत्य लिखते हैं। और झीटा ( रेवती ) के वेध से गणितागत आरभ स्थान का मेल कोई एक भी ग्रह से नहीं मिलानर केवल निराधार व निरर्थक बातों की भर्ती कर रहे हैं। किंतु इससे कोई मतलब नहीं निकलता है.

### विधान ४ ( अ )

( अ ) नक्षत्रमग्न का सापातिक मान से अंतर भोजने का मुख्य साधन जो अयनाश है उसका साधन भा प्रयोक्त गणितागत सूर्य का छायांक के अंतर से ही निम्न लिखितानुसार बताया गया है — “छायांक साधन ( सूर्यसि. अ. ३ श्लो. १७-१९ ) में ‘मभ्यान्हेऽर्कः स्फुटो भवेत्’ और उस सूर्य से मध्यमार्क मापन ‘वामंफले मज्यो दिवाकर ।’ में रेवती तारेका संबंध नहीं रखा है। आगे अयनाश साधन में भी—

सूर्यसिद्धांत-प्राक्चक्रं चलिष्वहीने छायाकार्ता करणागते ॥

सोमसिद्धान्त-प्राक्चक्रं चलिष्वहीना छायाकार्ताकरणागते ॥

वृद्धसिद्धसि.—छाया गणिताग्नयोर्भान्वोर्विवरंचलांशकास्तेवा ॥

.सि. शिरोमणि—छायातोऽमातो वा भानुः संक्रांतिपातएवस्यत् ॥

पातोऽनः स्फुटभानुःस्फुटभानूनोभवेत्पातः ॥ १ ॥

इस प्रकार गणितागत भगवद्भक्त छायाकसे अंतरका अपनांश कहे हैं । रेवतीसे कहे नहीं ।

### परीक्षण ४ ( अ )

हैं विधान दिख शक्य नहीं “ छायाकार्कणागते ” हे वचन ( सू. सि. अ. २ श्लो. ११ मध्ये आहे. या वरील टीकेत रंगनथ म्हणतो की—“ अत्रोपपत्तिः । छाया तो वक्ष्यमाण प्रकारेण सूर्योवर्तमान संपाताद्विगतागतस्तु रेवती योग तारासन्नाचावधितोऽनस्तयोरंतरमयनाशाः ” म्हणजे रेवतीच्या जवळच्या दशरुलान्तरित स्थानापासून जो गणितागत रेवती असतो तो व संपातस्थानापासून जो छायाकार्क येतो त्याचेपधाल अंतर ते अपनांश असे स्पष्ट आहे. सूर्य सिद्धांतात रेवती तारेच्या पूर्वेत १० कलाचे अंतरावर आरंभ स्थान आहे म्हणून ‘ रेवतीयोगतारासन्नाचावधि ’ असे म्हटले आहे. अर्थात उग्रा अनेक ग्रंथान रेवती योगताराचे आरंभस्थानी मानिले आहे. त्याच्या संबंधी “ रेवती योगतारावधितः ” असेच म्हणावे लागेल व तसेच स्पष्टपणे भास्कराचार्यांनी पर्यायाने म्हटले आहे ते असे भ्रमहसुतीत “ क्रांतिवृत्तेयोमीनान्तरं रेवती ताराया निदेश्य “ म्हणजे आशय हा की रेवती तान्यावर त्यांनी मीनान्त किंवा मेपादि सांगितले आहे. याबद्दल भास्कराचार्यांनी जेथे जेथे निरयण मेपादि सांगितले आहे तेथे रेवती ताराचे समजावयाचा यात शक्य नाही. गोलग्रन्थाधिकार श्लोक १७ चे वाक्य टीकेत म्हटले आहे की “ येऽयन चलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विभोगस्य क्रांतिपातस्य भागाः । मेपादेः पृष्ठतस्तान्नागन्तरे क्रांति वृत्ते विपुनद्वयत उग्र मित्यर्थः । ” यावरून अपनांश निश्चयात रेवती तारेचा संबंध वाचनिक प्रमाणाने निश्च होतो. तसा चित्रा तारेचा किंवा इतर कोण याही तारेचा संबंध दाखित हो केलेला नाही.

### समाधान. ४ ( अ )

इस परीक्षण में दो प्रमाण लिखे गए हैं उनसे जो आपने निष्कर्ष निकाला है सो बिल्कुल गलत है । वस्तुतः उन्हे उनमें दो नामें निश्चित होती हैं—(१) ‘ रेवती तारा और संपात इनमें जो अंतर वह अपनांश ’ ऐसी व्याख्या को बतलाने वाला कोई भी ग्रंथकावाचनिक या औपयोगिक प्रमाण नहीं है, और ( २ ) छांटापिसिपम यह रेवती की योग तारा न होकर चित्राभिमुख बिन्दु ही भ्रमणका आरंभ स्थान है । क्योंकि विधान में बताए प्रमाणों में रेवती योग तारे का उल्लेख ही न होकर उगमे उग्र

करणागत आरंभ स्थान का उपयोग बताया गया है। किसी प्रकार उसका खंडन न होता देख आपको विश्वास होकर उसके मंडन करने वाले रंगनाथ की टीका का आश्रय लेना पड़ा है। रेवती एकोनाशीतिः ३५०'५०' रेवती को आरंभ स्थान से १० कला कम होने से राशिचक्र के आरंभस्थान के आसन की ओर चित्रायाश्चत्वारिंशत् चित्रा को ठीक भाई में राशिचक्र के ठीक २ मध्य की सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मसिद्धान्त में लिखे भोगों से इसी रंगनाथ ने सिद्ध किया है। तब जो चित्रा के १८० अंश से दस कला कम हो और उसका करणागत भगणारंभ स्थान से मेल होता हो उसके अर्थ में रंगनाथ ने रेवती कहा है। इसीलिये प्रस्तुत अयनाश साधन में छायाकार्कत्= "मध्याह्न छायातो वक्षमाण ( सू. अ. ३ श्लोक १७-१९ ) प्रकारेण सूर्य. साध्यस्तस्मात्. ।" करणागते=" प्रागुक्त ( अ. १ श्लो. ५३ ) प्रकारेणोक्तः स्पष्टः सूर्यस्तस्मिन्. " न्यूने=अंतरांशैः सूर्योऽंतरांशैश्चक्रं क्रांतिवृत्तप्राक्पूर्वस्मिन् अलितमिति" रेवती का सपात से अंतर नहीं बताकर केवल करणागत के अंतरांशों को अयनाश कहे हैं। और शाके १५१३ में अयनाश १८'११' य उच्च ७८° कहकर भगणमध्यवर्तीचित्रा के वाचनिक को औपयोगिक बतला दिया है।

भास्कराचार्यने तो नक्षत्रों के ध्रुवों के संबंध में ये पाठ पठिवास्ते स्थूलाः कहकर विधानोक्त श्लोक में गणितागत स्फुटभानु का उपयोग किया है। वहा 'युक्तायनांशोऽश शतं १०० दशीचैदशीति ८० रक्तः ( पात.ध्याय ) चंद्र १००°-११°=८९° अंश और सूर्य ८०°-११°=६९° अंश इसमें ११ अयनाश कहनेमें नती सीटा रेवती हो सकती है और न इसमें रेवती तारे का संबंध रहता है।

### विधान ४ ( आ )

उससे चित्रा नक्षत्र के क्रांति वृत्तीय बिन्दु के सम्मुख राशि चक्र का आरंभ त्रिदु मानकर प्रहों के भगणारंभ कहे गए हैं।

### परीक्षण ४ ( आ )

( १ ) चित्रेच्या समोरच्या बिन्दूपासून प्रहांचे भगण सांगितले आहेत हे विधान अगदीच निरधार आहे. तो एक कल्पना तरंग आहे; हे सिद्ध करण्याची फारशी गरज नाही. कोणाही प्रयकाराने एखाद्या काल्पनिक निस्तारक बिन्दूपासून भगण सांगितले असतील असे कधीही कोणासही पटणार नाही कारणही मगान किंवा टीपेन अयनाशा फिरितां चित्रेचा उपयोग किंवा आरंभ स्थानाकरिता चित्रेपासून मोजदाद मुचरिटी नाही या संबंधात चित्रा समर्थनार्थ जितका पुगवा येत आहे तो मारून मुटून आणजेला प हसू येण्यासारखा आहे।

## समाधान ४ ( आ )

( १ ) यह परीक्षण गलत है । जबकि सूर्य सिद्धान्तादि संपूर्ण ग्रंथों में जोभी भगणों के आयन्त के संबंध में ' मेपादौ ' पौष्णान्त लिखा है किंतु ठीक उनके कला विकला रूप भोग नहीं लिखकर चित्राके ही १८० अंश शून्य कला शून्य विकला स्पष्ट लिखे हैं । टीकाकार रंगत ध ने भी ' अश्विन्यादेयोगतारोपरि वेधवल्यं निवेद्यम् ' ' स्टब्बादौ क्रांतिवृत्ते रेवती योग तारा सन्नाभिमस्थान आयन्तरूपं । ' अधिना आदि और रेवत्य के निकट वा बिन्दु भगणारंभ बिन्दु है । ऐसा अर्थ करके चित्रा को १८० पर कही है । सौम सिद्धान्तादि में चित्रा को भगण के ठीक ठीक मध्य में कहा है । इतना ही नहीं तो वर्तमान कालीन कुछ पचागोक्त ग्रंथों के भगणों के मध्य; चित्रा भोग से मिलते हुए हैं । इतने पुष्ट प्रमाण होते हुए भी गोविंदरावजी के यह नजर में नहीं आना आश्चर्य है ।

## परीक्षण ४ ( इ )

( २ ) कृत्तिका, पुनर्वसु, मघा, चित्रा या तान्यामधील हल्लों वेधोपलब्ध अंतरें चित्रेचे १८० गानणान्या प्रयात दिखेली असती तर त्या पैकी कोणत्याही तारे पासत आरंभस्थान एकच आलें असतें पण तसें नाही. उदा० चित्रेपासून १८० अन्तरावरील स्थान मघापासून १२६ अंतरावर असलें पाहिजे कारण त्याचे अंतर ५४ आहे । परंतु सू० वि० नांत मघाचित्रांतर १८०° ४८' - १२९° = ५१° ४८' असल्या कारणानें या दोन्ही तान्यांवरून येणारी आरंभस्थानें भिन्न येतात व तीं २° १२" इतकी अंतरित असतील वामुळे तान्यांच्या भोगावरून आरंभ स्थाना कडे जाणें युक्ति युक्त नाही.

## समाधान ४ ( इ )

( २ ) यह कथन भी असंगत है । ताराओं की निज गति के तथा योगताराओं की भिन्नता के कारण कालावधि होने से सभी ताराओं के भोग में एक दो अंशों का अंतर पड़ना स्वाभाविक बात है लेकिन चित्रा की निजगति अव्यल्प ( एक हजार वर्ष में एक कलामात्र ) होने से इसमें विशेष अंतर पड़ा नहीं है । और वैदिक काल से ही चित्रा को क्रांति वृत्त में के ठीक मध्य में मानते आए हैं ( ऋग्वेद निषिद्ध अध्याय में संपूर्ण नक्षत्रों की गणना चित्रा से ही की गई है. ) इन्हिले चित्रा को ठीक क्रांति वृत्त के मध्य में मानकर नक्षत्रों के वर्तमान वेधोपलब्ध अंतर मा. उयो. पृष्ठ ४५२-४५५ में मन्मत ( दीक्षित का मत ) की पक्ति में, नक्षत्र विज्ञान ( काण्डक ६ ) में ज्योतिर्विद् केतकर ने और वेदकाल निर्णय ( पृष्ठ ८० ) में येने योगतावओं के भोग शर लिखे हैं ।



नक्षत्र तारा	भोग	चित्रांतर	इसमें को ही भी तारे से आरंभ स्थान
कृत्तिका	३६ ९	१४३ ५१	एक ही आता है। और वह भी तेजस्वी निःसंदेह तारों से।
पुनर्वस	८९ २४	९० ३६	लेकिन यहां आपने प्रयोज्य और
मघा	१२६ ०	५४ ०	आधुनिक वेधोपलब्ध में जो भिन्नता दर्शा-
चित्रा	१८० ०	० ०	कर तारों के भोग पर से आरंभ स्थान को

निश्चित करना युक्त नहीं कहा है। उसमें आज हजारों वर्षों का अंतर होते हुए भी ताराओं का दृश्य निजगति का विचार तक नहीं करना आश्चर्य ही नहीं अमोत्पादक है।

### परीक्षण ४ ( ई )

( ३ ) विशेषतः आरंभ स्थानी सागितलेख्या रेवतीतान्याचे भोगशर जंर उपेक्षणीय मर्यादेत क्षीटातारेशो जुळत आहेत तर वरील द्वाविडी प्राणायामाची गरजच काय ? शिवाय भगणारंभ रेवती तान्यापासूनच सांगितले आहेत ही गोष्ट कित्येक वचना वरून ही सिद्ध होत आहे. पण ज्या ग्रंथांचे या गोष्टीला प्रमाण आहे त्याप्रमाणे रेवती पासून चित्रेचे अंतर  $1८३^{\circ} ४८'$  आहे,  $1८०^{\circ}$  नाही. सि. शि. त मेपादि रेवती तारा हें वर दाखविलेच आहे. यावरून मध्यमाधिकारांत वासना टीकेंत “चंद्रार्क योर्मेपादिस्थयोश्चैत्रस्य शुक्ल प्रतिपदादिः प्रतिपत् । अतोमधोः सितादेर्दिनानां सौरादिमासानां वर्षाणां युगानां मन्वतराणां कल्पस्यच तदैव प्रवृत्तिः । ” असें जे विवरण केले आहे. त्यांत रेवती तान्या पासून भगणांचा प्रारंभ केलेला आहे व तो चित्रासमुख निस्तारक बिन्दुपासून केलेला नाही हें उघड आहे.

### समाधान. ४ ( ई )

(३) जबकि क्षीटा के भोग से किसी भी तारे के भोगशर दो तीन अंशों से कम मिलते ही नहीं हैं उससे यदि कोई कम है सो तारा भेद से है। कोई भी प्रयोज्य गणितागत से इसमें ३।४ अंशों का अंतर रहता है। ऐसी स्थिति में क्षीटा से भगण मिलाना मानों भारतीय ग्रंथों का उच्छेद करना है।

आप लिखते हैं कित्येक वचनों से सिद्ध होता है किंतु अभी तक किजूल बातों की भर्ती को शिवाय आपसे मुद्देयुक्त एक भी आधार बताया गया नहीं है।

आप समझ रहे हैं भास्कराचार्यादि के चित्राभोग को  $1८३^{\circ} ४८'$  बतानेवाले ध्रुवक आधार हैं किंतु (समाधान १ में) सिद्ध किया गया है कि भास्कराचार्य ने इन्हें “स्यूल” और अर्धमंड ने भ्रमर युति की व्यर्थता को मिटाने के लिये युति दिन दर्शक मात्र ही इन

ध्रुवकों को बताये हैं। इस प्रकार झीटा का न तो गणितागत से मेल है। न वाचनिक है। इसलिये आपको विवश होकर चित्रायुक्त पौर्णिमावाले चैत्र मास के आरंभ के साथ मेपादि के वचनों का आश्रय लेना और बिना प्रमाण बताये ही अश्विनी के स्थल में रेवती का झूटा नाम कहना पंडा है। क्योंकि आपके लिखे प्रमाण के आगे ही भास्कराचार्य ने "भान्यश्विन्यादीनि। ग्रहास्तु भगणादावश्विनीमुखे निवेशिताः ॥ भचक्रेऽश्विनी मुखे" इस कथन में ३२ ताराओं में से एक; ऐसी संशयास्पद रेवती से आरंभ नहीं बताकर 'निःसंदेह रूप ब्र. गु. के समय + १०° शर; निजगति से वर्तमान में भोग १०°। ८' शर + ८। २९ वाली ऐसी बीटा एरेटॉस नामक देदीप्यमान अश्विनी की योगताप मानी है। इसी सि. शि. टिप्पणी में विष्णुधर्मोत्तर वचन लिखा है उसमें भी "चैत्रादौ। अश्विन्यादौ काल प्रवृत्ति" कहा है। तब क्या इस अश्विनी से भगण गणना में निस्तारक भ्रूण माना जासकता है और ग्रथ में अश्विनी लिखा होकर उसे रेवती कहना और उससे झीटा का झूटा नाता लगाना क्या असत्य नहीं होता ?

### विधान ५

इसके सम्बन्धमें व्यास तत्र '१' सिद्धान्त देवज्ञ कामधेनु (अ.२) में लिखा है कि—  
 "पूर्वार्धमुत्तर गोलमाचित्रा वर्ध मादिशेत् ॥ चित्रान्त्वाद्धं प्रहृत्यैव पश्चिमार्धं दक्षिणम् ॥४॥ पादोनास्तारका सप्त पाद इत्यत्र निश्चितः ॥ सपादं सारकाद्वन्द्वं राशिरित्यभिधीयते ॥५॥ सपादताराद्वन्द्वस्य गुणमेकं समुद्धरेत् शोधयेदपरार्धं तु योजयेत् स रथिस्फुट. ॥१०॥ " "गोलराशिचक्रम्" (शद्धकल्पद्रुमभाग १ पृष्ठ ९१.) 'गोलमध्येतथापराः संक्रांतय इत्युक्तत्वात्.

अर्थात् राशिचक्रके पूर्वार्ध, उत्तगर्ध की मर्यादा चित्रा तारे तक और चित्रा तारे से ही आरंभ करके राशिचक्रके पश्चिमार्ध, दक्षिणार्ध की गणना कहनी चाहिये ॥४॥ इस प्रकार निश्चित किये हुए चित्राभिमुख (१८०°) आरंभ स्थान में (१) = ६॥, (२) = १३॥, (३) = २०॥, (४) = २७ नक्षत्रों के विभागों पर राशिचक्र के चार पाद निश्चित किये जाते हैं। इसी ही चित्राभिमुख = आरंभ स्थान से सवादी सप्तदो नक्षत्रों की राशियां निश्चित की गई हैं ॥५॥ (उदाहरण के लिये—) सवादी नक्षत्रों के गुण को साथ कर; पूर्वार्ध में कम करे और अपगर्ध में जोड़ देवे तो वह स्पष्ट मूर्ख होता है ॥१०॥ उक्त श्लोकों में गोल शब्द का अर्थ राशिचक्र = क्रांतिवृत्त, और श्लोकक तारा शब्द का अर्थ = नक्षत्र; मानकर-तात्पर्य निर्णय के सिद्धान्तानुसार—उपरोक्त अर्थ लिखा गया है।

### परीक्षण ५ (क)

(१) याचा अर्थ पंडित दीनानाथ यानी दिवा आदि ने अमा "चित्रा नक्षत्र के अर्थ विभाग पर्यन्त के क्रांति वृत्त के पूर्वार्ध को उत्तर गोल और चित्रा नक्षत्र के अर्थ विभाग

क्रांति वृत्त के पश्चिमार्ध को दक्षिण गोल कहना चाहिये, " यांत चित्रा विभागाच्या अर्धा पर्यंत उत्तर गोलार्ध व तदनन्तर दक्षिण गोलार्ध असे सांगितले आहे. या वृत्त चित्रा सायन विभागात्मक आहे असे स्पष्ट दिसते. अर्थात् हा आधार चित्रा पक्षात कोणत्या ही प्रकारे अनुकूल नहीं।

### समाधान ५ (क)

( १ ) प्रस्तुत विधान में क्रातिवृत्त के मध्यमें मर्यादारूप चित्रा तारेका स्पष्ट प्रमाण देखकर प्रि. गोविंदराव यश चकरा गए हैं। और विवश होकर उन्हें क्रातिवृत्त के मध्यमें चित्रा तारेको मानना पड़ा है। लेकिन इस विषय में कुछ तो भी भ्रम पैदा करने के लिये " यह चित्रा सायन विभागात्मक है " ऐसा कहकर स्वयं आपही भ्रममें पड़ गए हैं। क्यों कि सायन और निभागात्मक यह दोनों बातें जुदी जुदी होती हुए भी आपने एक जगह कह दी हैं। तब चित्रा तारे पर संपात की स्थिति हुए बिना वह मर्यादादिशत सायन हो नहीं सकता। और शून्यायनांश वर्ष के बिना अपने विभाग के मध्यमें चित्रा नक्षत्र के मायन भोग का चित्रा तारेसे मेल हो नहीं सकता। अन्यथा चित्रा तारेके व्यतिरिक्त केवल सायन या केवल निभागात्मक विवक्षित होता तो " पूर्व परिस्थानो मानाभाव " के अनुसार अश्विनी मेघार्म आदि का नाम छोड़कर चित्रा को क्राति वृत्त के ठीक २ मध्यमें कहने का प्रयोजनही नहीं रहता है।

जब कि चित्रा यह एक अच्छा तारा है। इसको सायन और विभागात्मक में मुख्य कहने से; इसपर संपात की स्थिति विवक्षित होती है। ऐसी स्थिति- [ वेदकाळ निर्णय पृष्ठ १५१ पंक्ति १२ देखिये सूक्ष्म अयनगति के गणित से शक पूर्व १३१९१ वर्ष में या शाब्द संपात शाके २०८ वर्ष में; अथवा स्थूल मान से ] शाके २१३ वर्ष में आती है। किंतु दैवज्ञ कामधेनु ग्रंथ शाके ११६३ में बनाया गया है। ऐसा उसकी भूमिका में स्पष्ट लिखा है। तब प्रस्तुत श्लोकद्वारा ९५० वर्ष पूर्वके सायन मानको यह अपने काल में चित्रा तारेसे मेलकरके निश्चित करने आमत कोह ऐसा कदापि हो नहीं सकता।

वस्तुतः सायनमानमें तो संपात ही आरंभ बिन्दु होने से; वहाँके-अर्थ. तुरीय, तन्त्र अंशादि विभाग-अकात्मक कहे जाते हैं। उसमें उपर्युक्त २।४।१२ विभागों की वनत्राने के लिये; कोई भिन्न अवधि=सीमा बताने की आवश्यकता रहती नहीं है। और समका आरंभ समाप्ति बिन्दु वस्तुतः संपात तथा मध्यबिन्दु शब्द संपात रहवा दे। किन्तु यहां तो प्रस्तुत श्लोकार्गत (१) आह उपसर्ग के विधानसे चित्रातारेको मर्यादारूप, (२) प्रहृत्य शब्द के विधानसे चित्राको ही राशिचक्र का आरंभस्थान दर्शक, और (३) एव अन्यत्र के इत्यादिधारणार्थ रूप विधानसे क्रातिवृत्तीय पूर्वापर और दक्षिणोत्तर गोलार्धों की तथा तदंतर्गत राशिनक्षत्रदिकों के विभागों की सीमाको निश्चिन करनेवाली मुख्य तारका चित्राको ही कहा है। इससे यह कथन सायन या निभागात्मकरूप हो नहीं सकता।

क्योंकि व्युत्पत्ति शास्त्रसे श्लोकोक्त तीनों विधानों का अर्थ और आचित्रात् पदकी शुद्धता इसी प्रकार सिद्ध होता है। जैसे—(१) आह् मर्यादाभि विधोः ( पा. २.१.१३ ) आच्छिद्यतभर्यादायामभिघ्नौच वर्तमानं पञ्चम्यन्तेन सह विभाषा समस्यते, अन्यथी भावश्च समसो भवति 'अन्यथी भावश्च' ( पा. २.४.२८ ) अन्यथी भावश्च समसो नपुंसकलिङ्गो भवति। तेन चित्रामर्यादी कुलेत्याचित्रं तस्मादाचित्रादित् व्युत्पत्त्या मर्यादा रूपायाश्चित्रा तारकायाः सकासादर्थं राशिचक्रं पूर्वार्धे उत्तरार्धे च आदिशेत् निर्दिष्टमर्यादा नुसारेण कथयेदित्यर्थः आचित्रादाविरोदिति निर्बचनम्यागनुरोधेन राशि नक्षत्रादीनामपि योग विधेर्पाद विभाषा यद्वापि एकास्ततश्चित्राया एवोपदेशात्। किंचाचाद् मर्यादायां नाभिविधावित्यनेन चित्रा ताराया विम्वार्धं व्याघोडपि पूर्वोपस्थापि चक्रादौ द्वे दिग्भागे गोलाध्वजभागे १८० अंशाः। प्रविकला मातृमपि चित्रा विवार्धे उक्त गोलाधां द्वादिर्गतत्वात्, प्रहृत्येति विधानाच्च। (२) 'अयारभे ॥ आरभते प्रतीति प्रक्रमते चाप्युपक्रमते ॥ उपनयोत दौकयत्युपहृतौ' इति क्रियाकलाप ( म. ३ श्रौ. ७ पृ. १९ ) निर्देशात्—चिधान्तादर्थं चिधान्तार्धं गोले = राशचक्रं प्रहृत्य आरभ्य (३) एव दक्षिण पश्चिमार्धे च निर्दिशेत्। इत्यत्र "एवौपन्ये परिभव ईपदर्थेऽप्यधारेण", इत्यनेन अवधारणार्थरूपस्य एवावधारणस्य बलात् आचित्रादादिसेदिति मर्यादार्धाय आह निषेधन सामर्थ्याच्च आचित्राध्वजान्तादारभ्य च कुलस्य राशि चक्रस्य विभागादिरागना कुण्डादिति निष्कुर्येथं संपद्यते। गोले मर्यादादीनां भागविधेर्पाद गणना कुण्डादित्यर्थः। गोलाध्वजेन मण्डल, चक्र, वृत्तादयः शाब्दपर्यायाः कतिवृत्ताये ज्ञेयाः एकान्ततो निश्चय तारकाया मध्ये अत्यल्प नैजगतमित्यादि- त्तारकाया एवात्रोपदेशात्."

इत प्रकार चित्रा तारे के विवार्ध को उपलक्ष्य में रगकर उसके आगे पीछे के क्रांति- वृत्त पर १८०°।१८०° अंश के समान दो भाग उक्त श्लोकों द्वारा बताए हैं। इस प्रकरण से राशिचक्र का आरम्भस्थान चित्रामिमुन १८०° बिन्दु निश्चिन होकर वही से ९०।९० अंश के पार चक्रपाद और ३०।३० अंशों की मेपादि बारह राशि तदनुसार २३।२०° के अश्विनादि २७ नक्षत्र और ३।२०° के नक्षत्रनाद आदि कुछ परिमाण चित्रा से ही बताए गए हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह सब शुद्ध नाक्षत्र परिमाण हैं। अन्यथा वास्तविक चक्र भोगसे राशि का औसिक भगण ( ३६०° + १।१° = ३६०।१।१° ) अधिक होने से तथा सायन भगण ( ३६०° - ५०.२' = ३५९।५९।९.५' ) कम होने से वह उक्त श्लोकों में कहे चक्रभोग से शुद्ध नहीं हैं।

इतना भी होकर क्षणभर के लिये मान भी लेवी श्लोकोक्त गणना मायन विभागामक चित्रा बिन्दु से है, सामी सायन मान में पूर्वोपरार्ध व दक्षिणोच्चार्ध दोनों परिमाण एकही बिन्दु से परिगणित नहीं हो सकते हैं। क्योंकि "गोलीय. गोम्ययाग्यौ क्रिय घट रमभे केचरेऽमाय ने से तका कर्कोच पदमे ॥ ( म. ला. स्प. श्रौ. २२ ) पूर्व पश्चिम गोळ की

गणना सायन मेघ तुलारंभ से और उत्तर दक्षिण की गणना अयन नाम से सायन मकर कर्करंभ से की जाती है सारांश इसमें रवि के परम क्रांति के तीर्थक्य की अपेक्षा रहने से गोल से अयन में ठीक ९० अंशों का फासला रहता है ।

उक्त श्लोक में जो पूर्वापर गोल शब्द कहा गया है वह क्रांति वृत्त के अर्थ में है और दक्षिणोत्तर गोल शब्द कहा गया है वह कदम्बाभि मुख शर के \* अर्थ में है । विपुवांश-क्रांति या ( सायन ) गोलायन विभाग के अर्थ में नहीं हैं । इसी लिये मैंने विधान-में " गोलो राशिचक्रम् " एक उदाहरणरूप प्रमाण बना दिया है । तथा राजमार्तण्ड [ पृ. १३० श्लो. ८२ ] में " गोल मध्य गताः पराः " विष्णुपदाह्वयः ( वृ. मि. मि. क. वृ. ध. कुं. मी. ) संक्रातिषां गोल मध्यगत = क्रांति वृत्तान्तर्गत कहाती हैं । सारांशः—गोल = मण्डल = वृत्त वर्तुल = चक्र आदि शब्द पूर्वापर व दक्षिणोत्तर के भेद से शुद्ध नाक्षत्र मोग और कदंबामिमुख शर के यानी क्रांति वृत्त के अर्थ में कहे गए हैं । इसी लिये पूर्वापर व दक्षिणोत्तर गोलों की एक स्थल से गणना नाक्षत्र मानसे ही हो सकती है सायन मान से नहीं ।

तथा इस ग्रंथ में जहां सायनमान का प्रयोजन आया है वहां 'विपुवन्मण्डलादूर्ध्वम्' विपुवान या छायार्क शब्द आदि का प्रयोग करके नाक्षत्र मान से उसकी भिन्नता बता दी है + इतनाही नहीं तो जिस ग्रंथ में—मंद फल साधन के लिये उच्च व मंद वेद का, शर साधन में पात व पातोन ग्रह का, चर छाया लब्धादि साधन में अयनांश एवं सायन ग्रह का; अलग अलग उपयोग किया गया है । वीर्णिमान्त काल की नक्षत्र प्रयुक्त चंद्र स्थिति के मन्मुल ( १८० ) सूर्य का साधन × लिखा है, उस ग्रंथ के अन्दर अधिनी आदि २६

\* " इन्द्रानिलादिसप्तसौम्ये शाकी हि वारुणः ॥ चित्राश्व याम्यगोलाः स्युः शेषाध्वो-  
त्तर गोलकाः ॥ १५॥ " [ का० पृ० १४-१४ ] ।

+ " आधिनी तारकांगच्छेदुत्तरस्यां दिशाकरः ॥ दक्षिणस्यास्तु संक्रांतमन्तरांशं  
दिवांशकम् ॥ २० ॥ [ दसौ यमोऽनञो घाना... पूषाच दिनदेयता ३० १३१० इत्यनेन  
एक नक्षत्र मितं १३१२० संक्रांतमन्तरांश मेवायनाशार्थः ] विप्रमण्डलादूर्ध्वमधस्ता-  
याम्यसौम्ययोः ॥ चतुर्विंशतिमागान्ते प्रवृत्तमयमण्डलम् ॥ २१ ॥ येष दि विनये संज्ञा मध्यवृत्ता  
दुदीक्यु ॥ २५ ॥ कोणतो गिनिवृत्तिः स्यादयने नाम माग्ननः ॥ ऽयने मध्यमूरस्य  
गोलोच्चलनं मुच्यते ॥ २८ ॥ " तथा मायन सूर्य को छायार्क या छाया [ पृष्ठ ९ श्लो. २२ ]  
कहा है.

× विधाय पञ्चानीयन्धोः स्फुटं विषट्टिकामयम् ॥

भाजदेवहन गभोर्यदिनै कोऽपि लभ्यते ॥ २० ॥



‘ मध्ये गंगायाः ’ ऐसे छीलिंगी प्रयोग होने चाहिये । मानो आपका छीलिंग के विषय में इतना प्रेम है कि ‘ अव्ययीमाद्य समास करने परमां आप उसका नपुंनकलिंगो रूप नहीं होने देते ! आश्चर्य है !! ऐसी मनमानी स्थिति में विचार्य कामधेनु की क्या कथा; व्याकरण कार महर्षि पाणिनिकोभी भ्रष्ट अशुद्ध कह देना या स तरह नितात असत्य परीक्षण कर देना साद्व्य बहादुर के लिये क्या बड़ी बात है ।

‘ यदि देखा जाय तो:— ‘ इस ग्रंथ के कोई भी परिमाण न तो आपने देखे हैं; यदि देखे हैं तो न उनका अर्थ समझे हैं तब आप इसके शुद्धाशुद्ध का निर्णय कैसे कर सकते हैं । इस ग्रंथ को तनिकभी समझते तो क्या आप शुद्ध नाक्षत्रान के ग्रह साधन करने में अनेक जगह गोल शब्द का उपयोग वर्णन किया होते हुए भी उसे साधन विभागात्मक कदापि नहीं कह सकते थे । तथा प्रत्यक्ष मानों के तुल्य शुद्ध गणित का ( कामधेनु ) ग्रंथ होते हुए भी उसको अत्यन्त अशुद्ध बताकर आगे इस तरह अव्यक्त कथनकर अपना उद्दाम बदापि नहीं कर सकते थे । अस्तु.

यह ग्रंथ कैसा शुद्ध और कितना उपयुक्त है इसको बतलाने के साथ साथ गोलदि शब्दों का ग्रह साधनादि में कैसा उपयोग किया गया है उसका यहाँ दिग्दर्शन कराता हूँ । जैसे:— “ तदिद्वार्थीकृतं गोलवशादेतस्य मध्यमे ॥ ( अ. ४ श्लो. १ पृ. ३८ भौम साधन प्रकरणे ) विद्यागोलपदं तथा ॥ तदप्यर्थी कृतं गोलम् ॥ ७ ॥ गोलक्रम विद्योमतः ॥ १० ॥ निशार्ध चंद्रगोलज्ञः ( ११\*३ ) विश्लेषमाहुः शशिनस्त- चन्द्रोलाख्यया श्रुतम् ॥ ( ५१\*२६ ) गोलपादविधिम् ॥ २९ ॥ शेषे गोलपदम् ( अ. १\*४ ) पूर्वोपरार्थयोः ( अ. २\*५३-५७ ) गोलवित् [ पृ. ५१ ] ” ऐसी केवल राशिचक्र के अर्थ में गोल शब्द कहा गया है ।

साधन गणित के उपयोग में— “ विषुवद्वयंगुले नाथ क्षिणोत्तर गोलयोः ( अ. १ श्लो. ४८ ) विषुवन्मंडलादूर्ध्वमधस्ताद्याम्यसौम्ययोः ( १\*११ ) ” इस प्रकार विषुवत् विशेषण लगाकर चर-दिनमान, छाया-पलमा, लग्न भावादि साधन योग्य गणित से बताया गया है । सूक्ष्म गणित से उस समय [ शके ११६३ में ] अयनांश १३\*११\*५\*२ थे और कामधेनु में [ अंतराल दिवांशक ] एक नक्षत्रमित १३\*१२०' अंतराल = अयनांश; सिर्फ ५ कला के अंतर से शुद्ध है । ऐसे ही ग्रहों के मगण, उच्च, पात, मद शीघ्र परिधि आदि सिद्धान्त ग्रंथों के तुल्य नाक्षत्रमान के कहे गए हैं । भुजको नागालयाख्य कहा है । विभागात्मक नक्षत्रों को तारा नाम से कहकर उनके ताराओं की सत्या और पुंज के शर की दिशा ॥ शिष्टिगुणरसंद्रियानल ॥ द्वात्रिंशत्त्रैतितारकामानम् ॥ क्रमशोऽधिन्यादीनां वराहमिहिरेण निर्दिष्टम् ॥ [ पृ. १३\*६२ ] वराहोक्त श्लोकों से ही बताया है ।

दृग्गणितैक्य शुद्ध करने के लिये " इदंवाबीजकर्मोक्तं चक्षुसाम्य प्रतीतये [पृ. ८१८] चंद्रार्क दृष्टि नक्षत्रे विलिप्ति कृत्य लिप्तिकाम् ॥ लब्धं नीति विशुद्धं तत् दृष्ट नक्षत्र नाडिका, [ पृ १३८ ] स्वर्गमध्यमतोहित्वालिप्तायां पौर्णमासतः ( ९५३ ) भानूनेदुंकली कृत्य प्रतिलब्धा तिथिर्भवेत् ॥ तत् दृष्ट तिथिं नाडिका. [ १९१-२ ] चंद्रमर्केण संस्कृत्य दृष्टो योग उदात्ततः. [ १९१ ] इस प्रकार बीजकर्म और शुचरचार के माफक वेध प्रक्रिया उत्तम प्रकार से बताई गई है ।

नक्षत्र ग्रहों की युति के लिये—प्राजापत्येन संयोगे तस्येन्दुर्दक्षिणस्थित ( पृ. २५१ ) रोहिणी मुत्तरेणेन्दुः स्पृशन् याति यदात्तदा. ( पृ. २६ मध्ये सप्ताष्ट उदाहरणानि सन्ति ) सप्तानां यदि मध्येन निर्गच्छेत्सोदितस्तदा ॥ १० ॥ भिदन्मघां विशाखां च ॥ भिनत्ति रोहिणीं यद्वा ॥ रोहिणीयाम्यगो भौम ( ३३१२ ) ऋक्षस्योत्तर पार्श्वेण विचरन् वृद्धां पति ( ३८ २४ ) वस्वादितारां वक्र. स्थात् ॥ आद्यमंशं धनिष्ठायां प्राप्यमाघं यदागुरु ॥ उदयं यात्यसौ विष्णुयुगे प्रथम वत्सर ( ३९३४-३९ ) रोहिणी शकटेभिन्ने, शुक्रेण [ ४४ १७ ] राहोः । नीचलघास्तु तारका ॥ १८ ॥ राहुलं बाट्रवेत्समाकेतो सशोभ्य गोलवित् ॥ ५१ ॥ " इस प्रकार नक्षत्रों की स्थिरप्राय आकृति विशेष से ग्रहों की युति बताई गई है ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि देवज्ञ कामधेनु ग्रन्थ तत्कालीन शोध की अपेक्षा बहुत उपयुक्त एवं शुद्ध है । दृष्टि दोष से जेने अन्य ग्रंथों में थोड़ी बहुत अशुद्धता वरचित रह जाती है इसी प्रकार इसमें हुई तो इतने पर से ' ग्रन्थ बहुत अशुद्ध है ' ऐसा प्रि. साहव का कहना प्रमाणशून्य एवं असत्य है ।

### परीक्षण ५ ( ग )

" ३१ श्लोक बृहत्संहिता ( ब्राह्मिहिहिर कृत ) अध्याय १०१ श्लोक ३।४ या आधौ निहिलेला दिसती. ते मूळचे श्लोक अस आहेत " सिंहास्थ मघापूर्वाच कल्गुनीपाद उत्तरायाथ ॥ तत्परितोष हस्तश्चित्राचार्यवरुण्याख्य. ॥ ३ ॥ तौलिनि चित्रन्यायं स्वाति पादत्रय विशालाया ॥ अलिनि त्रिशाखा पादस्तयानुरागान्विताऽपेष्टा ॥ ४ ॥ " यात ' चित्राचार्य, चित्रान्यार्य ' अमे व्याकरण शुद्ध प्रयोग आहेत. ते शब्द येथे देवज्ञ कामधेनु पुस्तकात अपभ्रष्ट झाले आहेत.

### समाधान ५ ( ग )

यह परीक्षण असत्य और अमरु है । क्योंकि कामधेनुके उक्त श्लोक में — १ मघापूर्व दर्शक " आङ् " उपनर्ग, २ प्रारम्भ दम्भक " प्रहृत्य " शब्द, और ३ एक



चित्रा तारेसे ही राशिचक्र के अवधारणार्थ में प्रयोजित “एव” अव्ययका प्रयोग होते हुए भी मानों उक्त श्लोकमें इनका अस्तित्वही नहीं है; ऐसी चलाखा करके प्रिं. साहब चित्रा के महत्त्वको उठाना चाहते हैं। तथा प्रस्तुत श्लोकमें जबकि आठ प्रहस्य, एव शब्द प्रयुक्त हैं; तब व्युत्पत्ति शास्त्र के आधार से इन शब्दों के माथ जो श्लोक का वास्तविक अर्थ होता है उसे (पक्षपात से हो या अज्ञता से) अन्त तक आपने छुआ; तरु नहीं है। इतना ही नहीं तो बराहमिहिर प्रोक्त शुद्ध पदों का ‘चित्रार्थ’ का ‘चित्रार्थ’ और ‘चित्रान्त्यार्थ’ का ‘चित्रान्त्यार्थ’ इस प्रकार अशुद्ध किंतु निष्कारण कल्पित पाठ बनाकर कामधेनु में के शुद्ध पदों को भ्रष्ट बताकर आपने इनके यथार्थ अर्थ करने में एक प्रकार का भ्रम पैदा कर दिया है।

वस्तुतः बराहमिहिरने पंच सिद्धान्तिका ( १४.३७ ) में “चित्रार्थसंभवागे” भभाग= राशि चक्र के “अर्धास्त्र” आधे पहलुर यात्री ठीक ठीक मध्य भाग में चित्रा के तारेको ही मर्षादर्शक=मुख्य माना है। तदनुसार अनवदर्शीने कामधेनु में “आचित्रादर्धमादिशेत्” के द्वारा “पूर्वास्त्र” का “चित्रान्त्यार्थप्रहस्य-एव के द्वारा “अपरास्त्र” का, “पादोनास्तारकाः सप्त” के द्वारा क्रांतिवृत्तीय “चतुरस्त्र” मग का और “सपाद तारकाद्वन्द्व” के द्वारा मेपादि राशि “द्वादशास्त्र” विभाग का निश्चय चित्राके तारे को क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानकर ही किया है।

जबकि इन दोनों ग्रंथों के उपर्युक्त प्रमाणों से चित्राभिमुख बिन्दु १८०° ही राशि चक्र का एकान्तरूप आरंभ स्थान सिद्ध होता है तब इनके ही कहे हुए राशिविभागाध्याय में “अध्विन्याय भरण्या बहुलापादश्च कीर्त्यते मेघः” इत्यादि विभागात्मक सर्वसाधारण गणना में बराह राशियों के नामों के साथ साथ सत्ताबीस नक्षत्र नामों के वर्णन प्रसंग में “चित्रा के दो पाद कन्या में और दो पाद तुला राशि में” कहे जाने के कारण एव चित्राभिमुख बिन्दु द्वारा राशिगणना क्रम से चित्रा का तारा अपने नक्षत्र विभाग ए२ (विकला रूप क्यों न हो) अपने किंच विभाग के भी ठीक ठीक मध्य में निर्धारित होती है। इसीलिये राशि चक्र के ठीक मध्य भाग में कहे हुए चित्रा तारे के सर्वत्र में अनेक ग्रंथों के अनेक प्रमाणों की एकवाक्यता हो जाना ही स्वाभाविक एवं युक्तियुक्त है। क्योंकि राशिचक्र की सीमा एक चित्रा के तारा द्वारा ही अंकित होने से अध्विन्यादि २७ नक्षत्रों के और मेपादि १२ राशियों के; क्षेत्र, चित्रा के ही द्वारा सीमित हैं। अतएव वह गौण हैं। इसलिये क्रांतिवृत्तीय गणना के कार्य में; बराह मिहिर और अनवदर्शी आदि वेधज्ञ ग्रंथकारों ने; चित्रा के सिधाय अन्य किसी नक्षत्र दि का इस संबंध में चलेख ही किया नहीं है। इतना ही नहीं तो; इसी गणना से ही इन ग्रंथों के गणितागत भगणों के आरंभ स्थान की एक वाक्यता होती है। अन्य किसी रीति से नहीं।

इस प्रकार शास्त्रशुद्ध परंपरागत व गणितागत रीति से सिद्ध होते हुए भी उक्त नाक्षत्र गणना पद्धति को प्रि० साहब चाहे सायन कहें या केवल नक्षत्र विभागात्मक समझें तथा कामधेनु ग्रथ को अत्यन्त अशुद्ध कहे या भ्रष्ट बतलावें किंतु उपर्युक्त प्रमाणों के आधार से यह निःसंदेह रीति से सिद्ध हो चुका है कि “भारतवर्ष में तो अत्यंत प्राचीन काल से चित्रा के देदीप्यमान तारेको क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानने की परंपरा प्रचलित है जो कि वराहमीहिर के कथनानुसार व्यक्त भी गई है। तथा भारत के उपद्वीप लंका में भी जिस समय केवल ताराओं के चित्र द्वारा “लघुकालिक” अहर्गण से ग्रहसाधन किये जाते थे उस प्राचीन काल में भी तुला (कैंटे) की मध्य डोर के तुल्य=क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा के तारे को मानते थे ऐसा दैवज्ञ कामधेनु के उक्त निर्वचनों से निःसंदेह सिद्ध हो गया है।

### विधान ६.

वराहमिहिने पचमिह्यातिका ( अ. १४ ) में ताराभा के साथ चंद्रमा की युतिका काल बताने के उद्देश्यसे नक्षत्रों के कदम्बाभिमुख क्रांतिवृत्तीय भोगश' कहे हैं।

“ बुद्ध्या शशिविक्षेप दृष्ट्वा ताराशशाङ्कविवर च ॥ ससाध्वैवं वाच्य.  
पञ्चात्तारासमायोग ॥ ३३ ॥ बहुलापयशान्ते सार्द्धे हस्तत्रये च भगणोदक् ॥  
रोहिण्यष्टदलान्ते दक्षिणतश्चार्धपष्ठेषु ॥ ३४ ॥ हस्तेऽष्टमेऽष्टमंशे पुनर्वसौ ( सोः )  
दक्षिणोत्तरे तारे ॥ अर्द्धचतुर्थे हस्ते पुष्यम्योदक् चतुर्थे ॥ ३५ ॥ दक्षिणतारा हस्ते  
सार्पस्यांशे तथोत्तरा तारा ॥ पित्र्यस्य स्र ( छि ) क्षेत्ने पष्ठे वाशे समायोग. ॥ ३६ ॥ चित्रार्धाक्ष  
( म ) भभागो दक्षिणत. संस्थिते त्रिभर्हस्तेः \*

● टिप्पणी और टीका के पाठ भेद तथा संशोधित पाठ — बहुला पयशान्ते =  
' शान्ते ' । रोहिण्यष्टद ' लान्ते = ' लान्ते ' । पुनर्वसौ दक्षिणोत्तरे = पुनर्वसौ दक्षिणोत्तरे ।  
' पुष्यस्योदक् ' चतुर्थे = चतुर्थे या ' स्वतुर्थान्ते ' । ' सार्पस्यांशे = ' सार्पस्यांशे ' वा  
सार्पेन्द्र्यंशे ' पित्र्यस्य- ' स्रष्ट्रे ' = ' स्रष्ट्रे ' वा ' स्रष्ट्रे ' । पष्ठे ' वाशे ' = ' वाशे '  
या ' पष्ठे वाभशे = पष्ठे ' वाशेनमायोग. । टिप्पण्यच ' पित्र्यस्य स्रष्ट्रेच पष्ठे ' संशोधित  
पाठः ' पित्र्यस्यस्त्राष्ट्रार्द्धे । द्विर्देदी स्त्रीरन पाठः—चित्रार्द्धमभागं मूत्र पुलकस्यपाठः  
चित्रार्धाक्ष भभागो इति ' म अक्षरको छद्मपित्र्यमे कम करके शुद्ध पाठ लिखा  
गया है.

निसलिलित कोष्टक में उपर्युक्त स्थानों का अर्थ स्पष्टतया यता दिया है ।

नक्षत्र.	नक्षत्र योग ताराओं के		शुद्ध नाक्षत्र मान के		शतमाजित	वेधतुल्य शुद्ध गणितागत विभाग की	
	धार्म नाम	प्रीक नाम	भोग	शर	भमोग कला	प्रयोजित परिमाणों से एकवाक्यता	
नंबर	वैर्वालय नाम	वाक्यालय नाम			कला: १००	विवरण	
१	कुत्तिका	ईटादारी	३६	०	५.६९	पक्षां शान्तैश्च्यष्टां शस्योत्तिमभागे.	
२	रोहिणी	आरिइबरान्	४५	४.	३.५७	अष्ट दलस्य चतुर्थस्यात्तिमभागे.	
३	द. पुनर्वसु	प्रधा नं. ४६६	९२	६.	७.२०	अष्टमेशे दक्षिण तारा पुनर्वसो मध्ये.	
४	च. पुनर्वसु	पोलक्स	८९	४.	५.६४	१.३६ भागोनाष्टमेशे उत्तर तारा पुनर्वसो मध्ये.	
५	पुष्य	A नं. ५१७	१०१	४.	४.९४	चतुर्थेशे=चतुर्थे भागस्य सामीप्ये.	
६	द. अश्लेषा	आस्ता कांक्ती	१०९	५.	१.८८	प्रथमांश सामीप्ये दक्षिणाक्षेपा.	
७	च. अश्लेषा	नं. B ५५९	१०९	५.	१.५९	प्रथमांश सामीप्ये उत्तराक्षेपा.	
८	मघा	रेगुलस	१२६	४.	३.६०	षष्ठे वा अंशे ( चक्र ३६० भागे )	
९	चित्रा	स्पायका	१८०	४.	४.००	अर्धालिभभागे ( चक्रमध्ये )	

अर्थात् सूक्ष्म गणित के निरयण भोगों की उक्त तुलना करनेसे सिद्ध होता है कि; वराहमिहिर के बताए हुए तारों के विभाग ठीक ठीक मिल गए हैं। इसीलिए पंच सिद्धांतिका का चंद्र और ग्रहों के भगणों के आरंभ स्थान इन की चित्रा तारे के १८० अंश स्थानीय बिन्दु से एकवाक्यता हो जाती है। अर्थात् चित्रा का तारा क्रांतिवृत्त के ठीक २ मध्यमें माना गया है। इसी कारण ग्रंथोक्त ( गणितागत ) भगणों के मध्य बिन्दु की चित्रा तारे के विवर्ध बिन्दु से एकवाक्यता हो जाती है। सिर्फ गणितैक्यता सम्पादन के लिये उनमें मिश्रित हुए केंद्रीय भागको निकाल कर उनको शुद्ध नाक्षत्रमान के कर लेना चाहिये.

### परीक्षण ६ ( अ )

पुट्टे ३८ वां श्लोक असा आहे:-“ विक्षेपात्मसदशापनीयतिथि संगुणात् कृतान्वंशः ॥ विद्यादिगुलमानं कालं दिन भोग विवरेण ॥ ३८ ॥ वरील विवानाचे प्रास्ताधिक वाक्यामध्ये “ वराह मिहिरौक्त भोगार कदम्बाभिमुख क्रांतिवृत्तीय आहेत ” असे स्पष्ट अस्त्य लिहिण्याचें धाडस पं. दीनानाथ यानीं केलेले पाहून आश्चर्य वाटते. पुना कॅमेट्री रिपोर्ट पृ. १४६ वर त्यांनीच लिहिले आहे की हेचभोग ध्रुवसूत्रोप आहेत व ते खरे आहे. चित्रा पक्षाच्या मुख्याधारासंबन्धी अशी दळदळीत चलाखी करण्याने ते सर्वस्वी निराधार व अप्रमाण आहे हीच गोष्ट पुनः सिद्ध होत आहे.

### समाधान ६ (अ)

गुहे के अनुसार प्रमाण मिलता हो चाहे न मिलता हो या प्रतिपाद्य विषय का समर्थन होता हो चाहे न होता हो उससे कुछ मतलब नहीं किंतु योग्य कार्य में कुछ तो भी पथर फेंक देने के बावत तो प्रि० गोविंदराव का हात हतपंडा है उसी का ताजा उदाहरण यह श्लोक है। यह ( श्लोक ३८ ) आपके प्रतिपाद्य विषय के संबंध विरुद्ध है तो भी उसे देखे कौन? अज्ञ जनता को तो माझम हो सकता है कि माहव बहादुरने एक प्रमाण बताया है। फिर क्या है कोई पंडित इसका यथार्थ अर्थ भी बना देगा तो उसे पक्षपाती कहकर हटा सकते हैं। बस इस हेतुमे यह स्वनमर्थनहीन श्रेय भी लिखा गया है। क्योंकि वराहोक्त ज्ञानियों के भोगक्षरों को आप तो ध्रुवसूत्रोप बताया चहते हैं और कहते हैं कि वराहमिहिर ने इस संबंध में कुछ लिखा ही नहीं है। किन्तु वराहमिहिर के ही इस श्लोक से कदम्बाभिमुख सिद्ध होते हैं।

यह इस प्रकार से सिद्ध होते हैं कि प्रस्तुत चारों श्लोक नाराचंद्र युक्तिज्ञ के निर्णय करने के उद्देश्यको लेकर कहे गए हैं। उनी के अनुसार \* उनके गणन की प्रक्रिया

\* वर्तमान के सूक्ष्म गणित के प्रयोगों में भी ताराचंद्रयुनि काठ निर्णय का संबंध में ऐसी ही गणिता प्रक्रिया की जाती है। जैन:-“ युतिकाले भमोमेन नुत्त्य. स्यात्पट

श्लोक ३३ में बताई गई है, जिसकी टीका ( म. द्विवेदी ने ) इस प्रकार लिखी है कि:—  
 “ चंद्रस्य विक्षेपं शरं बुद्ध्वा ज्ञात्वा तथा ताराचंद्रयोरन्तरं च दृष्ट्वाऽर्थात् वेधेन प्रथमं सर्वं निश्चित्य ततश्चकले गणितयुक्त्या तत्सर्वं संप्राप्य पश्चाच्चन्द्रेण सह तारासमायोगो वाच्य ” अर्थत् “ चंद्र और ताराका शर तथा भोगान्तर को वेध द्वारा देखकर गणितागत से उसकी एकवाक्यता एवं ‘ यह युति किस समय होगी ’ गणित द्वारा उसका निश्चय करके बाद में चंद्र के साथ तारा के युतिकाल को कहना चाहिये, ” इस कथन में स्पष्ट चंद्र से ही तारा का अंतर देख लेना कहा है ।

करणागत ग्रह सदाही कदंब सूत्रीय बनाए जाते हैं तदनुसार स्पष्ट चंद्र के भोग शर भी कदंब सूत्रीय ही रहते हैं तथा वह अश कलात्मक होने से एव नक्षत्रों के भोग भी अशात्मक कहे जाने के कारण सजातीय से इनकी सम्यक्ता कब होगी सो गणित से अंतर नाप सकते हैं किंतु नक्षत्रों के शर अंशकलात्मक नहीं कह कर अंगुल हस्तात्मक कहे गए हैं । तब अंगुलात्मक परिमाण से कलात्मक का समीकरण प्रस्तुत श्लोक में बताकर दोनों शरों को सजातीय कर लेना कहा है । उसकी टीका इस प्रकार है:— “ अथ दशांशस्य चंद्रस्य मध्यास्केन्द्राद्याविक्षेपकलास्तदन्ताद् अंगुलात्मक शरः कृतः । कथमङ्गुलात्मक शरः करणीयस्तदर्थं प्रकारं लिखति ग्रंथकार । विक्षेपात् शरात् सप्तदशायनीयं त्यक्त्वा पचदशगुणाच्छेषाद्य कृतान्वयशस्त्रतुस्त्रिंशदशस्तदेवाङ्गुलमानं विद्याजानीयात् । तथा दिनभोगविवरेण कालं च विद्यात् । अथादभोष्टदिने चन्द्रतारयोरन्तरं विज्ञाय चन्द्रस्य दिनगत्या युतिकालोक्ष्य इति ॥ अत्रोपपत्ति । उपलब्धिरेव । उपलब्ध्या योगताराणां या शरकला उपलब्धास्तदङ्गुलानि २८ श्लोकयुक्त्या संप्रसाध्य चतुर्विंशत्यङ्गुलैरेकोहस्य इति शरो हस्तात्मक कृत ॥ अंगुलसाधने तु नक्षत्राणां याः शरकला उपलब्धास्ताभ्य-  
 आन्द्रविम्बदलं १७ विशोध्य चन्द्रविम्बपरिधिप्रान्तस्य नक्षत्राविम्बस्य चान्तरकलाः साधितास्ततोऽनुपातो यदि चतुस्त्रिंशत्कलाभिः पंचदशाङ्गुलानि लभ्यन्ते तदा शेषकलाभिः किमित्यनुपातेनाङ्गुलीकरणं स्फुटमुपपन्नमिति ॥ युतिकालसाधनेऽपि चन्द्रः स्वगत्या प्राग्वच्छन् नक्षत्रमेति यतो नक्षत्राणां दिनात्मिका गतिर्नास्ति तत इष्टसमये चन्द्रनक्षत्रा-

चंद्रमा. ॥ नक्षत्र भोगांशद्वाराहु सूर्यस्तथैव च ॥ अयनशयुता प्राज्ञाः प्रस्तुते गणिते सदा ॥ १ ॥ यथाहि सायन चित्राचंद्रौ २०२° १३,०', चित्राशर-२° २७' । चंद्रशरः-२° ३१' ९ इत्यादि. ” ज्योतिर्गणित ( पृष्ठ ३१२ ) इस में ( पृ २३२ ) के कोष्ठक ३ के अनुसार चित्रा सायन भोग और पंचांग साधित सायन चंद्र ऐसे दोनों परिमाण ( सायन क्यों न हो ) कदंब सूत्रीय कहे गए हैं । और बराहमिहिर ने वृत्तमंडिता ( अ. ५ ) आदि में शुद्ध नाक्षत्र मानके कहे हैं । अतः दोनों गौ परिमाण उद्भूत हैं । धृर सूत्रीय नहीं हैं ।

न्तरकला विज्ञाय ताभिश्चन्द्रगत्या चानुपातोयदि चंद्रगातिकलाभिः षष्टिषटिकास्तदाऽन्तर-  
कलाभिः किमित्यनेन कालत्रयसिध्यति परन्तु शशंकगतेः प्रतिक्षणविभक्षणत्वात्पुनस्ता-  
त्कालिकं चन्द्रं कृत्वा युतिकालः साध्य एवमसकृत्कर्मणा स्फुटोयुतिकालो भवतीति । ”  
सारांश—नक्षत्रों की शरकला में चंद्रबिंबदल—१७' कम करके शेष बिंब प्रान्तान्तर  
कला १४ के = १९ अंगुल इस हिसाब से दोनों के अंगुलमान करके सजातीय  
परिमाणोंसे चंद्र के साथ तारा के युति काल का गणित कहा है। किंतु इसमें यदि  
नक्षत्रों के भोगशर ध्रुव प्रोतीय लिखे होते तो जैसे कलात्मक शरका अंगुलात्मक करने  
का ( समीकरण ) लिखा है उसी प्रकार कदंब प्रोतीय चंद्रभोगको नक्षत्र भोग के तुल्यही  
ध्रुवसूत्रीय कर लेना भी कह देते किंतु यहां तो कदंबप्रोतीय स्पष्ट चंद्रभोग के तुल्य  
नक्षत्रों के भोग शर भी कदंबप्रोतीय कहे होने से दोनों का आपस में (सजातीय रीति से ही)  
अंतर कर लेना कहा है। और ऐसा ही मैंने पूना कमेटीमें निर्णय दिया है।

तब जबकि तारा चंद्र युति काल के साधन के उक्त श्लोकों में ही ऐसा स्पष्ट रीतिसे  
लिखा होते हुए भी उसको न समझने से या समझें हों तो भी उसे छुड़ानेसे विधान को  
संप्रोक्ष ( नितांत ) असत्य कहने की धुनमें उक्त परीक्षण ही नितांत भ्रमपूर्ण एवं  
असत्य प्रलयमान कहा गया है जिसका वर्णन ऊपर सविस्तर रीतिसे किया गया है।

### परीक्षण ६ ( आ )

तथापि पं. दीनानाथ याच्या समजुतीकरिता ते भोगशर कदंबाभिमुख आहेत असें  
समजून त्यांनी काढलेल्या अनुमानाचे परीक्षण करून या उताऱ्यातील मुख्य वचन चित्र  
संबन्धाचे. तिचे स्थान “ अर्धा भ्रमभागे ” असें लिहिले आहे. आद्यम याचा अर्थ  
नक्षत्रचक्र असे कोठेच नसल्याकारणाने त्या वचनाधारे चित्रचा भोग १८० मानणे  
चुकाचें आहे.

### समाधान ६ ( आ )

जो भी मूल पुस्तक का शुद्ध पाठ “चित्रार्धाभ्रमभागे” है तोभी जब कि पं. मुष्काट  
द्विवेदीने प्रकाशित किया हुए पुस्तक ( पेज ४२ ) की पट्टी काटनेमें “ चित्रार्धाभ्रम  
भागे ” टिप्पणीमें “ चित्रार्द्धाष्टभागे ” और दूसरे काटने में आनेने संशोधित  
पाठ “ चित्रार्द्धाष्टभागे ” प्रकाशित किया है। इनके द्वारा चम प्रकार के पाठ होते  
हूए भी उन सबों से निम्न निष्कर्षानुसार पट्टी निदान का अर्थ निश्चय होता है  
कि चित्राकी भोग तारा प्रोति वृत्त के दीर्घ कोण मध्यमें है।

१. 'चित्रार्धास्त्रभभागे पाठ (पहली कालम में के छंदाधिक्य के कारण 'म' अक्षर निकालकर दंती 'स') से अर्थ निष्पन्न होता है कि:— "चित्रायाँ अर्धास्त्र भभागे 'अस्त्र कोणे शिरसिजे' इति विश्वान् ज्यस्य चतुरस्र वदत्रभानां नक्षत्राणा-मर्धास्त्रोभागेमण्डलार्धस्तस्मिन् शिरसिजे पूर्वपश्चिम गोलाधर्ममध्यमर्यादारूपे मुख्ये भागे क्रांतिवृत्तस्यार्धभाग इत्यर्थः ।" अर्थात् ज्यस्य चतुरस्र पहलू के तुल्य मभाग=क्रांति वृत्त के अर्धास्त्र आधे पहलू पर यानी क्रांति वृत्तके ठीक ठीक मध्य में चित्रा के तारे की स्थिति है ।

२. "चित्रार्धाश्रय भभागे" पाठे तु 'पाल्याभ्रकोटय' इत्यमरोक्त्या अश्रव्याप्तौ (स्वा० आ० से०) अभ्रकोटैकदेशयो 'रिति धरणिधरात् भभागे चित्रा नक्षत्र विभागे अर्धाश्रि, यस्यास्तीति अर्धाश्रयस्तस्मिन्नर्धाश्रयभभागे स्वविभागमध्य एव चित्राया योगतारास्तीति बोध्यम्" अर्थात् चित्रानक्षत्र के ठीक ठीक अर्ध विभाग में चित्रा के योग तारे की स्थिति है ।

३. 'चित्रार्धाश्रमभागे' पाठे 'तु' चत्वारोऽन्विधृतिर्युगकृताऽश्रमचतुष्टयाः' इति चतुष्टय संख्याज्ञापकेभ्यः । 'चतुष्टये ॥ आश्रमोऽस्त्रीः' इत्यमरात् । चत्वारोऽवयवायस्य । 'संख्याया अवयवे तयप् (पा.५।२।४२) चतुरवयवसमुदाये आश्रमः ॥ आश्रमो ब्रम्हचर्यादौ वानप्रस्थे वने मठे इति मेदिन्याः कथनेन च आश्रमाधत्वारः । आश्रमाणां चतुर्णामर्धभागोऽर्धाश्रमभागस्तास्मिन्नर्धाश्रमभागे द्वितीय भागान्वे स्वमठमध्ये स्वक्षेत्रमध्येच चित्राया योगतारास्तीति बोध्यम् ॥

अर्थात् 'चार, अश्वि, समुद्र, ध्रुति, युग, कृत, आश्रम, चतुष्टय आदि शब्दों से ज्योतिषिक रीति से चार की संख्या का ग्रहण होता है, अमरकोष में चार के अर्थ में आश्रम शब्द तथा मेदिनी में मठ के अर्थ में भी आश्रम शब्द कहा गया है । इससे चित्रा नक्षत्र के चार पादों में से अर्ध में यानी दूसरे पाद के अंत में अथवा स्वक्षेत्र विभाग के मध्यमें चित्रा के योग तारे की स्थिति है ।

४ 'चित्रार्धाष्टमभागे' इति टीकाकारेणोक्तेन पाठेनाऽपि रोहिण्यष्टदलान्त इति चान्यत्र विधानात्कालाग्रजशुक्लसूत्र (७९) कर्कभाष्येऽपि आयोभिरर्धाष्टम पुरुषप्रमाणः । प्रपदोच्छ्रिते चतुर्हस्तप्रमाणकमित्यर्थः । 'ततदिभांशकाः ॥ शवोयुका च लीक्षा च बालाग्रं चैवमादयः ॥' 'राशिलिप्ताऽष्टमोभागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते' [सू. सि. २।१५] इति सर्वेषु ग्रंथेषु राशिनक्षत्रांगुलादीना मष्टाष्टमविभागस्यैवोपादानात् । नक्षत्रभोगानां ८०० कलाप्रमितत्वात्तेषामष्टमोभागः शतकलामितो गणितसौकर्यायात्रा-

चार्येणोक्तः । तेन भभोगाष्टमभाग (१'४०') एव अंशत्वेन वेदितव्यः । इत्यतश्चित्राया अर्धाष्टमभागे । अर्धं नपुंसकम् (पा. २।२।२) समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्षीये संप्राग्वदित्यनेन अर्धं अष्टमभागः । अर्धाष्टमभाग. समांशकश्चतुर्थोभागस्तस्मिन् स्वभोग-स्यार्धभागे समांशकमध्ये भागे, त्रिभिर्द्वैतैरंतरिते=२° ४३'२" विक्षेपे "क्रांतिवृत्तार्धा-दक्षिणतो योगताराऽस्तीति" टीकाकारसूचितोऽर्थोलिखितः ॥ किं च चतुर्भिः पाठभेदै-रेकएवार्थो निष्पद्यत इत्युपपन्नमिदम् ॥ अर्थात् नक्षत्रविभाग के समान आठ भाग में से अर्ध में=चौथे विभाग में यानी चित्रा विभाग के ठीक ठीक मध्य में । यहां महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं कि "क्रांति वृत्तार्ध के दक्षिण में २°४३'२" शर वाली चित्रा की योगतारा स्थित है.

प्रथम प्रकार से चित्रा की स्थिति क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में कही गई है । और २, ३, ४ प्रकारों में चित्रा की योगतारा उसके नक्षत्र विभाग के ठीक ठीक मध्य में कही गई है, उससे भी इसमे गत नक्षत्र भोग मिला देने पर  $१३ \times २३' = २०' = १७३' = २०' + ६' = १४०' = २^{\circ} ४०'$  क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में ही आती है । ऐसे चित्रा की स्थिति चारों प्रकारों से क्रांति वृत्तार्ध में सिद्ध होती है यह योग्य ही है । और यही शिरस्थानीय मुख्य निर्धारित होने से संपूर्ण नक्षत्रों की योगताराओं के भोग इसी को मध्य में मानकर कहे गए हैं । ऐसा होते हुए भी इन्हें ग्रि. गोविन्दरावजी ने अशुद्ध, निरूपयोगी व असत्य कहा है, सो प्रमाण शून्य एवं व्यर्थ है । इसका विस्तृत विवेचन समाधान (६ अ) में किया गया है.

### परीक्षण ६ ( इ )

तसा तो मानिळा तरी तो धुन सूत्रीय आहे. हे भोग कशा प्रकारचे आहेत हे जरी बराहमिहिरोक्त सूर्यसिद्धांतात सांगितले नाही तरी "शास्त्रमाद्यंतदेवेदंयत्पूर्वप्राह भारद्वाजः" असे जे या सूर्यसिद्धान्तासंबंधी साम्प्रत सूर्यसिद्धांतात लिहिले आहे त्यावरून हे स्पष्ट आहे की साम्प्रत सू. सि. मध्ये जसे धुन स्फुट भोग सांगितले आहेत तसेच मूळध्या सूर्यसिद्धांतात सांगितले आहेत व तसे ते असत्याचेही धीनानाथजींनी पुणे येथील शके १८४७ च्या समेच्या रिपोर्टात लिहिले आहे हे वर दर्शविलेच आहे.

### समाधान ६ ( इ )

बिना कोई पूर्वापर संबंध के सोचे विचारे या प्रमाण के बिना बताए उक्त नक्षत्र भोगों को धुन सूत्रीय बताने का प्रयत्न किया है. यद्वा आपने यह तो सोचना था कि करणागत स्पष्ट चंद्र सदा ही फदक प्रतीय वनता है । उस स्पष्ट चंद्र का भोग जबकि १८० अंश



होवे तब उक्त चित्रा के शर के तुल्य शर हो तो भेदयुति ( अन्यथा स्थानयुति ) कही गई है । तब यह ध्रुव प्रोत्तीय कैसे हो सकती है । मालूम होता है आपने इसी बात को छुपाने के लिये बराहमिहिरेने इसके संबंध में कुछ कहा नहीं ऐसा असत्य कहकर; इसे सूर्यसिद्धांत के तुल्य बताने के लिये बराहमिहिरेने सूर्य सिद्धांतीय के नाम से इन्हें कह दिये हैं । सो यह दूसरी ताजा झूठा है । क्योंकि पंचसिद्धांतिका में सूर्य सिद्धांत प्रोक्त सिर्फ ९ । १० । १६ । १७ अध्याय ४ में वर्णन है । यह भभाग तो बराहमिहिर प्रोक्त अध्याय १४ में कहे गये हैं । इतना भी होकर क्षणभर के लिये मान लें तो भी बाद के बने ग्रंथ की श्रुति पहले ग्रंथ में कैसे आसकती हैं । तथा प्रत्यक्ष में दिखता है कि वर्तमान सूर्य सि. के युगमान भगणादि से विलक्षण मान प्राचीन सू. सि. में हैं । और आपने वर्तमान सू. सि में भी नक्षत्रों के ध्रुव इस काण कदंब सूत्रीय न होकर ध्रुवसूत्रीय हैं ऐसा प्रमाण या आधार हेतु बताना था किंवा पंचांगिक्य मंडल पूना सभा में दिये हुए मेरे निर्णय में कहाँ, किस उद्देश से, कैसे, किस प्रमाण से ध्रुव सूत्रीय लिखे होते तो वही बताना था किंतु वह कुछ नहीं लिख कर जिसका प्रस्तुत प्रकरण में तनिकभी भी प्रसंग या अर्थ नहीं ऐसा “शास्त्रमायं” श्लोक लिख दिया है । इससे निश्चित होता है कि आपके कथन को कोई आधार ही नहीं है अतएव आपका लिखना व्यर्थ एवं स्वसमर्थन हीन वितंडा मात्र है.

११

### परीक्षण ६ ( ई )

“ या विधानांतील उतान्याच्या विवरणांत प्रत्येक नक्षत्रभोगाचे ८ विभाग मानले आहेत त्यास अंश अशी संज्ञा दिली आहे. क्षणजे प्रत्येक अंश १०० कलांचा पडतो. अशा प्रकारचे अंश या उतान्यांत विवक्षित आहेत असे समजून पं. दीनानाथजीने विवरण केले आहे. त्या त्या नक्षत्र विभागांत चित्रापक्षीय भोग कितव्या अंशांत आहेत ते यांत सांगितले आहे असे दाखविण्याचा प्रयत्न केला आहे. कृत्तिका विभागांत कृत्तिका चित्रापक्षीय भोग ३६।९ आहे तसेच रोहिणी भोग ४५.५७ यांतून कृत्तिकाता पर्यन्तचे ४०° वजाकरून बाकी ३५७ कला राहतात. क्षणजे रोहिणी तार आपल्या विभागांत ३.५७ अंशावर आहे. अष्टदल = ४. ”

### समाधान ६ ( ई )

कृत्तिका और रोहिणी इन दो ताराओं के शुद्ध नाक्षत्र भोगों का चलेख करते हुए मी प्रि. साहब इनका खंडन नहीं कर सके इतना ही नहीं तो उक्त मेरे विधानों का परीक्षण में योग्य समर्थन किया गया है । तथापि अन्य पाठकों को प्रस्तुत विषय; विशदरूप से ज्ञात हो जाय इसलिये वह स्पष्टीकरण करता हूं. इसमें कृत्तिका का शर ३१ हात लिखा है । उसके इसी प्रकरण में कहे प्रकार अशादि ३° १४'४ होते हैं । वेधोपबन्ध वर्तमान शर

४°१२.३' से इसका अंतर सिर्फ ५१.९ है। कृत्तिका भोग ३६° ९'— ( गतर्क्ष २ भोग ) २६° ।  $४०' = ९' २९' = ९ ६९' =$  ( पचाशते ) पष्ठ अंश के आतिम भाग में ही कृत्तिका की स्थिति आता है किंतु झीटा पक्ष से कृत्तिका भोग ४०° ७' होने से वह ( तारा ) कृत्तिका विभाग को लाघंकर रोहिणी विभाग में चला जाता है। सो यह बराहकथित मान से बरना भारतीय कुल ग्रंथों के विरुद्ध है क्योंकि रोहिणी विभाग में कृत्तिका के योग तारा का जाना कोई भा प्रथ में लिखा नहीं है। ऐसे ही रोहिणी का ई॥ हात = ९° ५१.६ द. शर कहा है, वेधोपलब्ध शर — ९° २८'१ से अंतर + २५' मात्र है रोहिणी भोग ४५°१५' ४०' गतर्क्ष शेष = ५° ५७' = ३°५७ भाग में तारा होने से ( रोहिण्यष्ट द्धान्ते ) रोहिणी की योगतारा अपने चतुर्थ विभाग के अंतर्ध में स्थित है। किंतु झीटागणना से ५.९५ विभाग प्रयोक्त से २ भाग आगे होने से अयुक्त है।

### परीक्षण ६ ( उ )

(३) ' पुनर्वसु दक्षिण तारा प्रश्वा प्रोसियान मानिला आहे परतु याचा शर १५°-५१' दक्षिण आहे. ह. उत्तर पुनर्वसु ( पोलक्स ) तात्याच शर ६।४१ उ. याच्या दुपटी पेक्षा मोठा आहे. परंतु २। दोन्ही तात्याचा शर भिन्न दिशेत  $\angle$  हात =  $\frac{६ \times १४}{५} \times \frac{३४}{६०} = ७° १५' २$  आहे. ( पुढे श्यो. ३८ पाहा ) [ १ हात = ३४ अंगुलें व १५ अंगुलें = ३४ फला ] असे सांगितले आहे. या वरून प्रश्वा हा पुनर्वसुचा दक्षिण तारा मानता येत नाही. तथापि तसा तो मानिला तरी त्याच्या भोगातून म्हणजे ९२ अंशातून पूर्वीच्या ६ नक्षत्राचे भोग घजा जाता याकी शत बलात्मक अंश ७-२० येतात ते  $\angle$  व्या अंशात आहेत, परंतु पुनर्वसु उत्तर तारा पोलक्स याचा भोग ८९।२४ हा ५-६४ अंशावर येतो हा विसंगत आहे।

### समाधान ६ ( उ )

(३) पुनर्वसुके दो तारे आतिवृत्त के दक्षिणोत्तरमें शर  $\angle$  हात = ७°१५.२ के वहे हैं। और भारत में भी पुनर्वसु के २ तारे " तावुमौ धर्मशज्म्य प्रवीरो परिपार्श्वतः " रथाभ्यामे चक्रांशे चद्रायेव पुनर्वसु ॥ १ ॥ शरचक्र के दोनों पार्श्वों ( वर्ण पर्व अ. ४९ ) में वहे है। इनमें पहला उत्तर पुनर्वसु ( पोलक्स ) का उत्तर शर ६।४०.२ सिर्फ— ३४.७ फला कम है। मो करीब में मिलता है। इसका भोग ८९.१२४ और यह ५-६४ अपने उठे विभागमें है। यद्यपि यह अष्टमासभाग — २-३६ कम है तो भी इसके सिवाय यहां कोई दूसरा बड़ा तारा नहीं है। किंतु झीटापक्ष से देंगे तो इसका भोग ९३।२२ होनेसे यह पुनर्वसु को लाघ वर पुष्य विभाग में चला जाता है इन कारण संयोगसे झीटा का गे० न होकर चित्रा गणनासे ही यह मिथुनांत ( ९०° से सिर्फ ३६'

कम) में मिलता है सो युक्ति युक्त है। दूसरा। दक्षिण पुनर्वसु शर  $१५^{\circ} ५१'$  द. है। यद्यपि यह ग्रयोक्तसे  $१०^{\circ} ३६'$  अधिक है तथापि उ. पुन. के प्रति का काति वृत्त के दक्षिण में दूसरा तारा न होनेसे इसे पुनर्वसु माना है; और इसके संबंध में भी " विसंगत दिखता है" के अतिरिक्त कोई दूसरे तारे के नाम को सूचिन आप नहीं करसके हैं। इसका भोग  $९२^{\circ} १०'$  और यह अपने  $७२०$  अष्टम विभाग में स्थित है। इस लिये यह ग्रयोक्तसे मिलता है। झीटा पक्षसे तो यह पुनर्वसुको लावकर पुष्य के  $१^{\circ} ५८'$  विभागमें चला जानेसे उस का ग्रयोक्तमें तनिक सबंध भी रहता नहीं है। अतः क्षिरा गणना मिथ्या है।

### परीक्षण ६ (ज)

(४) पुष्य भोग  $१०४^{\circ} ५३'$  यांतून गत नक्षत्राचा भोग  $९३।२०$  वजा जाता बाकी  $११^{\circ} ६३'$  म्हणजे शतकलात्मक अंश  $३.९३$  येतो. चवथे अंशात येत नाही. दीना' नाथजीनी पुष्याचा भलताच तारा घेण्याचें कारण असें दिसतें की त्याचा भोग  $१०१^{\circ} ३४'$  येतो व तो शतकलात्मक  $४९४$  अंशात म्हणजे ५ वे अंशात येतो. तरी सुद्धा ४ वे अंशात येत नाही. दीन नाथजीनी तेवढ्या करिता मूलपाठ "चतुर्थेऽंशे" असा असतांना तो बदलून "स्वतुर्यान्त्ये" असा पदरचा पाठ घातला आहे. मूल ग्रथात पाठांतर म्हणून सुद्धा हा पाठ दिलेला नाही. मनमानेच तसे पाठ उतरून दुसऱ्यास फसविण्याची शक्ति दानानाथजीनी अगीकारली ही मोठी खेदाची गोष्ट आहे.

### समाधान ६ (ज)

प्रथ में पुष्यका शर ४॥ हात =  $४^{\circ} १४' ०८''$  उ० और शतकलात्मक ४ अंश में योग तारा कहा है। इस संबंध में यद्यपि 'त्सेकांके' का भोग  $९९^{\circ} १०'$  होनेसे यह ग्रयोक्त मानसे पुष्यके चतुर्थे भग में आता है तथापि ग्रयोक्त शर से उसका शर ४ अंश अधिक है। ऐसे ही 'डेल्टाकांके' का शर चार अंश कम है। इस लिये इन दोनों को छोड़कर इनसे कम शरातर- $(-३३०^{\circ} ८')$ -वागी ईटाकांके को मैने पुष्यकी योग तारा मानी है। इसका वैधसिद्ध भोग  $१०१^{\circ} ३४'$ , शर  $+१^{\circ} ३४'$  होनेसे यह  $४^{\circ} ९४'$  विभाग में आती है। सो ग्रयोक्त चतुर्थेऽंश के निकट स्वतुर्यान्त्ये (स्वमीयतुर्य भागस्यान्ते) में आती है जोकि 'चतुर्थेऽंशे' के सामीप्यार्थ में सप्तमी प्रयोग से स्वल्पांतर से उक्त  $+९४'$  भाग के तुल्य है। पुनर्वसुके तुल्य पुष्यकी दो तारा न होने से इसके शर के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रस्तुत परीक्षण के उत्तर में लिखना पड़ता है कि 'वने त्रिम प्रकार गणती बताने की धुन में लगे हुए गोविंदरायजी की दृष्टि पहले मूत्र पाठ और शर के ऊपर नहीं पहुंच कर यह हमारे संशोधित पाठ का देखकर नोक पड़े है। किंतु जहां शर  $४^{\circ} १५'$  वाली कोई वहां दूसरी तारा नहीं है इससे स्पष्ट है कि यह तारा निजगति से  $९४'$  कटा  $१४२३$  वर्षों

में हट जाना स्वाभाविक बात है। तथा सिद्धान्त गणों में तो पुष्यकी योग तारा का शर शून्यांश लिखा रहने के कारण डेल्टाकाँक्रे को पुष्य तारा मानते हैं सोमी पुष्य क ६ १३ सातवें विभाग में ही रहती है। किंतु यदि शीटा पिथियम से गणना करके देखें तो ईटा कांरी ७.३२ पुष्य के आठवें विभाग में जाती है। जिसका बराहोक्त से (९° ३२') कला का महदतर हो जाता है। तथा डेल्टा काँक्रे ता पुष्य विभाग को ही लाघकर आश्लेषा के (१३२) दूसरे विभाग में चले जाती है। ऐसे दूसरे विभाग में चली गई हुए तारा को भी पुष्य के विभाग की कहकर दूसरों को धाके में डालना नहीं तो क्या है।

### परीक्षण ६ ( ए )

५ आश्लेषा तारेसंख्यी ही असाच पाठ बनगिला आहे. “ सार्षस्याशे ” असा मूल पाठ बदलून “ सार्षस्याशे ” “ सार्षद्वयशे ” असा पदरचा पाठ घातला आहे मूल प्रघात पाठांतर म्हणून सुझा हा पाठ दिलेला नाही. आश्लेषा भोग १०९।४८ म्हणजे त्याचा आपले विभागात शर १०९।४८ दुसरा अंश येतो त्याकरिता या वाम भार्गवाचा अलख केलेला आहे. नवीन पठात सार्षे अशी सप्तमी घातली आहे परंतु सर्व ठिकाणी नक्षत्रांचे नाव प्रथमात किंवा पष्ठ्यन्त आहे. इकड लक्ष नगत्याकारणान आपली सप्तमी दशदिशी ओळखू येईल याचे त्यांना भान राहिले नाही.

### समाधान ६ ( ए )

“ आश्लेषा के सवध में म प. द्विघेदीजा ने ससृत्त टीका में लिखा है कि “ सार्षस्य आश्लेषाया अंशे प्रथम भागे हस्त एक हस्तान्तरे क्रांतिवृत्ता दक्षिणतो योगतारो चरतश्चैता योगतारा। ” ऐसा अर्थ-“ सार्षस्याशे ” मूल पाठ का “ सार्षस्याशे ” शोधित पाठ मानकर दिया गया है। अत मूल पाठ में हस्त या विभाग सख्या बताई नहीं सिर्फ अध्याहार दिया गया है किंतु इस प्रकार एक हस्त को=९४ ४' शरवाले क्रांतिवृत्त के दोनों तर्फ तारे न होकर आल्फाकाँक्रे व सायफाँक्रे नामक तारे ५१।५८ द. और ५।२९ उ. वे हैं जो कि ६ हात के फासले से मिलते हैं। इनके उत्तानुक्रम से भोग १०९।४८' और १०९।४८'१०' होने से वह दोनों तारे १०८ व १५९ विभाग २ में आते हैं। इसत्रिये माध्यम होता है कि जबकि केवल हस्ते के कथन में ६ हात शरवाले ताराओं की ही सम्मनता मिलती है। किंतु वह पहले अंश में न होकर उसके निकट के दूसरे अंश में मिलती है, तो मूल पाठ जो ‘ सार्षस्याशे ’ लिखा है वह सार्षद्वयशे या [ सार्षस्य द्वशे = ] सार्षद्वयशे होना युक्तियुक्त बताया गया था। और गोविंदरावजी के सूचित टीकाकारोक्त सार्षस्याशे पाठ से भी औपश्लेषिकादि पट्त्रिण अधिकरण में “ बटे गाव शरते ” के तुल्य सामान्यकार्य में सप्तमी होने से “ पहले अंश के निकट अर्थात् जो दूसरे अंश को लायी न हो ऐसा अर्थ होकर

उस का ग्रंथोक्त से मेल ही रहता है । लेकिन शीटा गणना से यही तारे ४२६ पंचम भाग और १९७ चतुर्थ भाग ऐसे भिन्न भाग में आकर ग्रंथोक्त के निकट भी यह भाग नहीं रहते हैं । ऐसी स्थिति में “ सार्वसमायोगः ” की सप्तमी विशेषण का विचार न करते हुए मुख्य मुद्दे को छोड़ दिया है किन्तु ऐसे व्यर्थ निरर्गल प्रलापो से अब शीटा गणना की पोल खुले बिना छुपी नहीं रह सकती है ।

### परीक्षण ६ ( ऐ ) .

मघासंबन्धी सुद्धां “ पित्र्यस्यत्वाद्यर्थे ” अथ पदरचा पाठ घातला आदे. “ पित्र्यस्य स्वक्षेत्रे ” असा मूळ पाठ आहे. मघा भोग १२६।० हा शतकलात्मक ३९० म्हणजे चवथे अंशात येतो. त्या करितां हा पाठ बदलला आहे. या प्रमाणें आपले पदरचे पाठ बनवून ते मूळ ग्रंथातले आहेत असे भासविणें म्हणजे शास्त्रीय वादाची यथा करणें होय, ही गोष्ट त्यांनी लक्षात आणली नाही. ही खेदाची गोष्ट आहे. याच वचनात पुढें “ पष्टेचाशे या मूळ पाठाचे जागी “ स्त्रीयेचाशे ” असा आणखी एक पदरचा पाठ घातला आहे. पण त्याचा अर्थ दिला नाही.

### समाधान ६ ( ऐ )

पंचसिद्धान्तिका में मूल पाठ “ पित्र्यस्य स्रजे ( कक्षे ) ने, पष्टे चांशे समायोग ” लिखा है । और इसकी टीका करनेवाले म. द्विवेदीजी ने-“ पित्र्यस्य स्वक्षेत्रे पष्टे चांशे समायोगः ” ऐसा शोधित पठ लिखा है । उसका व्युत्पत्ति शास्त्र से अर्थ होता है कि

( १ ) “ पित्र्यस्य मघाविभागस्य स्रज्=समन्वात्समांशवाच्यधर्मभागोन्नतस्थानरूप=मध्यभागक्षेत्रे क्रांतिवृत्त एव चंद्रस्य समायोगोयुतिर्भवति । सूर्यवे सृजति विभागं वा स्रज् ‘ सृजविसर्गे ’ [ तु. प. अ. ] ‘ क्रांतिवृत्त ’ [ ३।१।९९ ] इति किन् ‘ मास्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि ’ इत्यमरोक्त्या मध्यभागे धृतायाः मालायाः स्रज्नाम । सृग्वत्क्षेत्रे=मघाविभागमध्यभूतक्षेत्रे क्रांतिवृत्त इत्यनेन शतकलात्मकचतुर्थविभागे युतिर्भवतीत्यर्थः । ” अर्थात्-मघा विभाग के मध्यभाग धृत माला के तुल्य क्रांति वृत्त में चंद्र की युति होती है

( २ ) “ पित्र्यस्य मघाया. स्वक्षेत्रे ‘ स्व स्रजना. समा ’ इत्यमरात्-समे क्षेत्रे=समक्षेत्रे स्वकीय विभाग मध्ये क्रांति वृत्ते च समायोगो भवतीतिशेष्यम् । पश्चिमध्वज-धिकरणेपुसमांशवाच्यधर्मरूपौपचारिकार्थे सप्तमी प्रयोगाच्च । ” अर्थात् “ मघा नक्षत्र के अपने विभाग मध्य के अन्तर्गत ही क्रांतिवृत्तपर चंद्र की युति होती है । ”

इस प्रकार दोनों पाठभेदों से श्लोक के पूर्णार्थ का अर्थ बताया गया है कि प्रस्तुत शत कला विभाग ८ के मध्य ४ में चंद्र की मरा के तारे के साथ युति होती है । यही

वात लहसिद्धान्त में भी “ प्राजापत्यदले स्थितस्तु हिमश्याम्यै जराशैस्त्रिभिविध्यशैः शकटं भिनत्ति विदलैस्तैः पचभी रोहिणीम् ॥ सौम्यै पचभि ५ रश्मिभ्यः सल्लसत्तारा मघामध्यमा, विक्षेपेण विवर्जितश्च गुरुम यौष्ण तथा चारुणम् ॥ १ ॥ ” इस प्रमाण से शकट, रोहिणी, मघा, पुष्य, रेवती और शतताराका इनकी मध्य भाग में शतकलात्मक चतुर्थ भाग में यानी पष्टिकलात्मक (  $6^{\circ} 18'$  ) भाग में योगतारा की स्थिति कही है। इसलिये मघा की तारा रेग्युलस लेने से वह शतकला विभाग ३.६० चतुर्थ में आने से प्रयोक्त के तुल्य है। शीतारगणना से वह शतकला विभाग से ५.९८ छठे भाग में पष्टिकला से (  $9^{\circ} 48'$  ) दसवें अंश में चली जाने से प्रयोक्ति से तथा ललोक्ति से उसकी साम्यता मिलती नहीं है।

इसी श्लोक के उत्तरार्ध में ग्रंथकार ने वैकल्पिक राशि से मघा के तारे का भोग “ पष्टे वा अंशे समायोग ” प्रकारान्तर से यानी पष्टि कलात्मक अंश विभाग से अपने विभाग के छठे अंश में कहा है। अर्थात् मघाविभागारम्भ के छठे अंश पर  $= (120^{\circ} + 6^{\circ} = 126^{\circ}$  अंश में चद्र ) आने पर मघा के साथ युति कही है।

( १,४ ) अथवा “ पित्र्यस्य मघाया स्रक्षेत्रे पष्ट्युत्तर शतत्रयांशाना समूपे= मात्यरूपे क्षेत्रे राशिचक्रे एव पष्टे वा अंशे वैकल्पिक सामर्थ्या दुपक्रामितशतकला-विभागाशाङ्कित प्रकार के पष्टि कलारूपे पष्टे अंशे  $= ( 120^{\circ} + 6^{\circ} = 126^{\circ} )$  युतिकालो बोध्य । द्विवेदीप्रोक्तपाठस्तु मूलपुस्तकपाठाङ्कितत्वा द्वाभास्तथापि ‘ चः पादपूरणे, पक्षान्तरे, हेतो, विनिश्चय ’ इति त्रिकाण्डशेषात्पक्षान्तरेण = च पष्टे अंशे समायोगोभयवर्ती त्यूहमिति चतुर्भि पाठभेदैरेक एवार्थो निष्पद्यते. ” प्रकारान्तर से अर्थ किया जाता है कि  $= 126^{\circ}$  अंशों की गालातुल्य मघा विभाग के छठे अंश (  $126^{\circ}$  ) पर मघा की योगतारा है। इस प्रकार चारों भी पाठ भेद से एकही अर्थ निश्चित होता है।

बाकी गोर्षिदरावजी ने जो कुछ लिखा है उसे अनर्गल रूप एवं गलत है। यह मुख्य मुद्दे को छुपाने के लिये कुछ तोभी “ शेषं कोपने पूरितः ” के कथनानुसार आछाछाछी, सुनी अनसुनी कर रहे हैं सो यह शास्त्र और न्यायपथानुगमन का उपहास नहीं तो क्या है ?

### परिक्षण ६ (अंश)

यापरून कृत्तिका व रोहिणी सोट्टन बाकी सर्व तात्याच्या ठिकाणीं दानानाथजीची अर्थ करणाची नवीन तहा फसली आहे. कृत्तिका व रोहिणीमुद्रासहाये व चरये अंशाच शेषटी पाहिजेत ते त्या त्या अशात येतात म्हणजे त्याचे संबंधात मुद्रा ही पद्धति निरूपयोगी ठरते. व मुख्य तारा चित्रा इचे  $120^{\circ}$  दाम्बानेपानरिता तर हिचा उपयोग शुद्धीच केलेला नाही अतएव ती ख्याय आहे.

## समाधान ६ (ओ)

इस प्रकार विधान और समाधान द्वारा सिद्ध किया गया है कि बराहमिहिर प्रोक्त ९ ताराओं के भोगक्षर में से (१) उत्तर पुनर्वसु - १.३६, (२) पुष्य + ०.९४, (३) दक्षिणाश्लेषा + ०.८८, और (४) उत्तराश्लेषा + ०.५९ यह चार तारे सामान्यकाधिकारोक्त १२तमी प्रयोग को देखने तथा ताराओं की निजगति कटा व दिगंशों के और शरकी आसन्नता का विचार करने से हात होता है कि उक्त चारों योग ताराओं का परिमाण ग्रंथोक्त के तुल्य ही है। तथा इनके आपस के अंतर को  $(+१४ + .८८ + .५९ = +१.२४ - १.३६ = १.०५ \div ४ = +०.२६$  कला) इस प्रकार धनर्ण करने पर चारों तारों में सरासरी अंतर २६ कला मात्र करीब १॥ हजार वर्ष में होजाना स्वाभाविक एवं गणितसिद्ध बात है। (५) कृत्तिका, (६) रोहिणी (दक्षिण पुनर्वसु) यह तो ग्रंथोक्त विभाग के अंतर्गत ही हैं। करीब १॥ हजार वर्ष में भी यह अपने विभागों के बाहर नहीं गए। इसे इनकी निज गति बहुत कम है ऐसा सिद्ध होता है। तथा (८) मघा, (९) चित्रा तो ग्रंथोक्त परिमाण के अशकलासाध्य ठीक ठीक तुल्य मिल गई है; अतः इन दोनों तारों की निज गति अत्यन्त ही अल्प है। उनमें भी चित्रा एक तारा नक्षत्र, देदीप्यमान व निःसंदेह रूप होनेसे संपूर्ण भारतीय ग्रंथकारोंने इसे सत्ताईस नक्षत्रों में मुख्य और क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानी है।

यदि यही परिमाण झीटा गणना से देखना चाहें तो "उक्त अनुक्रम से पहले चार तारे (१) उत्तर पुनर्वसु + १.०२, (२) पुष्य + १.२२, (३) द. आश्लेषा + १.२६, (४) उत्तराश्लेषा + २.९७, =  $+१.०५ \div ४ = +०.२६$  कला) से अंतरित होने से उनकी सरासरी ४.४ अंश की आती है। (५) कृत्तिका की योग तारा तो अपने विभाग को लांघकर रोहिणी विभाग में चली जाती है, (६) ग्रंथोक्त चौथे भाग को छोड़कर रोहिणी छोटे विभाग में और (७) द. पुनर्वसु की तारा तो अपने विभाग को लांघकर पुष्य में चली जाती है (८) मघा की तारा +१.५८.१ तथा (९) चित्रा की तारा +१.५८.१ अधिक हो जाने से"—ग्रंथोक्त से किसी प्रकार भी झीटा का मेल मिलता नहीं है। अतएव यह कपोल कल्पित है।

## परीक्षण ६ (औ)

हे सर्व भोग प्रुव सूर्याय आहेत हे पूर्वाच दागवले आहे तथापि तसे ते लिहिण्याचे आणखी एक कारण सि' शि' ग्रहयुल्लिखारांत दिले आहे. आयन दूर्धर्मदत्त भोग लिहिण्याने युतीचे ज्ञान चांगले होतं " एवं श्रुते दिविचरौ ध्रुवसूत्रसंस्थौ स्वावां सदा वियवी सैव युधिर्विरुणा ॥ दूर्धर्मणायनमवेन न संस्कृतौ येत्सुं तदा त्वपमवृत्तजगाम्यमोभ्ये ॥ " या वरुन पंचसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्तत लिहिटेला चित्रेचा भोग घटकामर १८० डिग्रीटा

आहे असे मानिले तरी तो ध्रुवाभिप्रायने असल्यामुळे कदंबाभिप्राय १८०° ४८' येतो या करिता दीनानाथजींचे हे सर्व विवेचन व्यर्थ जाहले आहे; शिवायचार ठिकाणी पदरचे पाठ घालण्याचा निश्चय यत्न त्यांना करायलागला तो वेगळाच शासकवर्षा त्यांनी अशी काही शकल रद्द विली नाही हे आश्चर्य आहे.

### समाधान ८ (औ)

उक्त परीक्षण गलत और भ्रामक है। क्योंकि यह पहले बताया गया है कि उक्त योग तारों की युति स्पष्ट चंद्र के साथ वही गई है। स्पष्ट चंद्र सदाही कदम्ब सूर्याय होता है। यदि उक्त भोग ध्रुवसूत्रीय होते तो चंद्र को भी ध्रुवसूत्रीय बनाना लिखा होता। वैसा करना बराह मिहिरने लिखा नहीं है। जैसा कि आपके लिखे भास्कराचार्य के ग्रह ग्रह युति के प्रमाण में ही कहा गया है कि; “दृक्कर्म कृत्वा यनमेव भूय साध्येति तारकालिकयोर्युतियत् ॥४॥” वासना यथा कृते दृक्कर्मणि युति साध्येति सापि भवति। तदा तौ ग्रहौ क्रांति वृत्तात् तिर्यक् सूत्रे। तदा कदंबोपरि नीयमानं सूत्रं ग्रहद्वयोपरिगत भवतीत्यर्थः। कदंब प्रसिद्ध तारयोरभावाद् दृष्ट प्रतीतिर्नोत्पद्यत इति ध्रुवसूत्रे युति कथिता। युतिनाम यदाकाशे द्वयोरल्पमन्तरं तत् प्रायः कदम्बसूत्रस्थयोरेव भवति। (सि. शि. ग्रह ग्रहयुति स्तो. ४-६) अर्थात्, ‘करणगत ग्रह कदंबसूत्रीय रहते हैं उनको ध्रुवसूत्रीय करने के लिये आयन दृक्कर्म का संस्कार करना पड़ता है। नहीं भी करे तो यह युति क्रांतिवृत्तानुसार ध्रुव क तारे से तिरछी रहती है श्रुवादि तारों के समसूत्रीय के बिना एव कदंबाभिमुख भूवस्थानकी प्रसिद्धी के बिना इसमें देखने वाले की प्रतीति कम हानी है इसलिये स्पष्ट ग्रहों को ध्रुवसूत्रीय बन कर युति कहीं है। यस्तुतः युति तो ग्रहों के आपस में अत्यान्तर से होती है और वह बहुत करके कदंबसूत्रीय ही होती है अर्थात् ध्रुवसूत्रीय नहीं।’ ऐसा भास्कराचार्य ने कहा है।

यह कथन आपके कथन के विरुद्ध होते हुए भी आपको उमरता मात्र नगहा नहीं—वह भी अन्तरेवर्दी के प्रसिपल को—आश्चर्य है। किंतु उससे भी बड़ा दूसरा आश्चर्य ये है कि भास्कराचार्य ने अपने नक्षत्रों के ध्रुवकों को ‘कृतदृक्कर्म का ध्रुवा’ ध्रुवाभिमुख कहने से उनके द्वारा कदंबसूत्रीय युति ठीकशिर नहीं दिखेगी इसलिये भास्कराचार्य ने ग्रह ग्रह युति के तुल्य ही ग्रह युति को बताने के लिये; करणगत कदंबसूत्रीय स्पष्ट ग्रहों को; दृक्कर्मद्वारा ध्रुव सूत्रीय करके ध्रुवसूत्रीय युति और दृक्कर्म नहीं करते ग्रहों के आपस में कदंब सूत्रीय युति; कही है। किंतु बराहमिहिर ने तो स्पष्ट चंद्र के ही भोग से ‘दृष्ट्यातारा यशस्विबरेच’ तारा के अंतर को नापकर जो युति कही गई है वह स्पष्ट रीति से कदंबसूत्रीय ही कही गई है। ऐसा होते हुए भी शाके १०७९ में कहे हुए भास्कराचार्य के कथन से शाके ४२७ में कहे हुए बराहमिहिरक्त युनि का अंग से पीछे



की ओर ६४५ वर्ष विटोम गति से ले जाकर वादरायण संबंध लगाना वह भी केवल चित्रा के भोग में सिर्फ +४८ कलाके अंतर को असत्य रीति से बताने के लिये—ऐसा निन्द्यकार्य करना महदाश्चर्य है।

तथा तीसरा आश्चर्य अभी बाकी है वह इस प्रकार है कि आपने प्रस्तुत बराहमिहिर के कथन को प्राचीन सूर्यसिद्धान्त का कह दिया है। वस्तुतः पंचसिद्धान्तिका में कुछ अध्याय १८ हैं। उनमें से (१) अध्याय १२ में-पितामह सिद्धान्त, (२) अध्याय २ में-वसिष्ठसिद्धान्त, (३) अ. ८ में-रोमक सिद्धान्त, (४) अध्याय ३।६।७।१८ में-पालिषा सिद्धान्त, और (५) अध्याय ९।१०।१६।१७ में सूर्यसिद्धान्त इस प्रकार ग्यारह अध्याय में पाँचों सिद्धान्त लिखे गए हैं। तथा अध्याय १।४।५।११।१३।१४।१५ में बराहमिहिने स्वतः का (करण ग्रथ और सिद्धान्तोपकरण रूप) कथन लिखा है। उसमें प्रभु। युति के श्लोक श्रेयस्क यंत्राध्याय १४ में लिखे हुए हैं। किंतु गोविन्दरायजी उसे सूर्य सिद्धान्त के कहकर सर्व साधारण जनता को भ्रम में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। ताकि वह लोग चित्रा की शास्त्र शुद्ध उपादेयता को रागत्र न सकें।

किंतु ऐसे असत्य एवं भ्रमोत्पादक विरोध के वर्णन से चित्रा की शास्त्र शुद्धता एवं उपादेयता सुवर्ण के भाति और भी शक्ल उठती है। जेने कि बराहमिहिर ने कदंब प्रोतीय स्पष्ट चंद्र से उक्त भागों की युति में चित्रा का भोग १८० अंश कहा है इतना ही नहीं तो “चित्रार्धास्तभभाग” इस कथन से चित्रा की योगतारा को त्र्यस्र, चतुरस्र के भाति प्राप्ति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में निर्धारित कर देने से चित्राभिमुख सिन्दु ही राशि चक्र का आरंभ स्थान निश्चित हो जाता है। और उसी आरंभ स्थान से निश्चित क्रिये हुए भाट ताराओं के बराहमिहिरोंक्त विभागों की एक वाक्यवा भिन्न की गई है। तब ऐसे शास्त्र सम्मत, मूल पक्ष को त्याग कर शुद्ध नाक्षत्र गणना को नाम रोप करने के लिये सिद्धान्त पक्ष में कूट पैठाने के उद्देश्य से अशास्त्र सूचित, स्वकपोल कल्पित, निर्धन आधार बताकर केवल प्रो. ग्रैने के शत्रु जिनका प्रादुर्भाव किया गया है ऐसी भ्राणक कल्पना रूप शीटा के रक्ष का आप सदस्य विद्वान् पुष्प ने अवलोक कराना अति आश्चर्य है।

### विधान ७

इसी प्रकार (१) मोमसिद्धान्त, (२) गान्धर्वोक्त तल्लसिद्धान्त, (३) विष्णुधर्मोत्तर पितामह सिद्धान्त, (४) वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त, (५) सूर्यसिद्धान्त और (६) पराशर सिद्धान्त में चित्रा भोग १८० अंश लिखा है। इसमें—

अयनांश = चित्रा सायन भोग — १८० अंश।

आरंभ स्थान=चित्रा निरयण भोग—१८० अंश ।

मानकर सभी ग्रंथों में भगणों का आरंभ किया गया है। इसलिये अब हमें सूक्ष्म अयनगति द्वारा मापूँग हो सकता है कि शके २१३ में आरंभ स्थान पर अयनसम्पात की स्थिति थी। अर्थात् वह शून्यायनांश वर्ष है।

### परीक्षण ७ (अ)

कोणत्या ही ग्रंथाभ्या आधारे चित्रा निरयण भोग (कंदवामिमुख) १८० अंश देख शक्य नहीं या करितां दिलेले समीकरण चुकीचें आहे, चित्रे संबंधी आतां पर्यंत जें विवेचन जाहलें आहे त्यावरून ही गोष्ट स्पष्ट होत आहे.

### समाधान ७ (अ)

विधान में कहे हुए सिद्धान्त ग्रंथों के प्रमाणों के संबंध में आपने मौन धारण कर लिया इसलिये वह प्रमाण अकाव्य हैं तदनुसार चित्राभोग १८० के लिखे हुए पांच प्रमाण भी पर्याय से आपकी सम्मत होते हैं। क्योंकि देवज्ञ कामधेनु व व्यास तंत्र तथा बृहद्-मीहिर के कहे हुए नक्षत्रों के भोग जिस प्रकार उन २ ग्रंथों के अंदर लिखे हुए प्रमाणों के आधार पर कदंबसूत्रीय निश्चित होकर चित्रा भोग के संबंध में उक्त समस्त ग्रंथों की एक वाक्यता हो गई है उसी प्रकार इन ५ सिद्धान्त ग्रंथों के अंदर कहे हुए नक्षत्रों के ध्रुवक भी कदंबसूत्रीय हैं ऐसा इन ग्रंथों में लिखे प्रमाणों से ही सिद्ध करके बताते हैं।

माहम होता है: ध्रुवकों में कहे जाने वाले ध्रुव शब्द के बहाने आप इनको ध्रुवसूत्रीय बताकर चित्रा भोग में ४८ कला का फर्क बतालाना चाहते हैं। किंतु यह आपका कथन बिल्कुल भ्रमोपादक है। और यह उक्त ग्रंथों के ही प्रमाणों से गलत सिद्ध हो जाता है। वस्तुतः “शाश्वतस्तु ऋषोऽनित्यसदातनसनातनः” इत्यमरोक्त्या क्रांतिसंस्कारयोग्य विक्षेपायन संस्कृत ध्रुवक योरयनांशवशादित्यरत्वाद् ध्रुवसूत्रीयाणामशाश्वतत्वं भसना-तनत्वं चावधार्य भ्रमद्वयत्वादौ यथा कदंबसूत्रीयाः शाश्वताग्रहाः प्रोक्ताः तथैव भ्रुवक-अपि कदंबसूत्रीयाः शाश्वता नित्याएव पठिताः। तथाचोक्तं वृद्ध वशिष्ठ सिद्धान्ते ‘नक्षत्राणां मधोवर्त्ये स्वराशिवर्त्ये स्थितिम् ॥ १ ॥’ क्रमशोऽधिभादेर्भागा निरुक्ताः कमलासनेन ॥ २ ॥’ (अ. ७ श्लो. ७) इत्येताभ्यां वचनाभ्यां राशिवर्त्ये ज्ञातिवृत्ते ग्रह्यनक्षत्राणामपि कदंबसूत्रीया स्थितिरुक्ता। कमलासनेन ग्रहणा अधिभादेर्भागा-अनिरुक्तास्त एव सूर्यादौ कथितायाग अन्यान्य ग्रंथनिर्माणकालेपि पठिताः सन्दीत्यसौ ध्रुवसूत्राप्येव कालान्तरे विभिन्नत्वस्यादेव। किंचात्रोक्तेषु पंचसु ग्रंथेषु नक्षत्राणां योगतार-कामेद्विना भोगसारस्यविभिन्नत्वं नोक्तवान्नक्षत्राणां निजगत्यायतन सूक्ष्मगणित साधित

कदंबसूत्रीय भोगशरेभ्यस्तेषां साम्यत्वोपलंभाच्च ग्रंथोक्ता ऋक्काः सदा स्थिरा निश्चिताः कदंब प्रोवीया एव सन्तीति निष्पद्यते । ” इस प्रकार कदंबसूत्रीय भोगशर ही अविच्छन्न शुद्ध रहने से ऋक्क नित्य कहा सकते हैं । और ऋक्सूत्रीय भोगशर तो आयनद्वर्ग संस्कृत होने से वह भिन्न भिन्न काल में अविच्छन्न रह सकते नहीं । ऐसा गणित शास्त्र से सिद्ध है ।

कृतयुग के अन्तमें सूर्यसिद्धान्त, त्रेतायुगके अंतमें ब्रह्म सिद्धान्त, द्वापरयुग के अन्तमें सोमसिद्धान्त और कलियुग के कुछ वर्ष बीतने पर पितामह और वृद्धवसिष्ठ सिद्धान्त ग्रंथ बनाए गए ऐसा उन ग्रंथोंमें लिखा है । \* तब इन ग्रंथों के परस्परमें त्रेता, द्वापर और गत कलियुग का अंतर होते हुए भी उक्त सब ग्रंथोंमें चित्राभोग १८० अंश ही लिखा है । तब यदि यह भोगशर कृतायन द्धर्मक=ध्रुवसूत्रीय होते तो भिन्न भिन्न अपनांश वशा द्धर्म में भिन्नता आये बिना नहीं रहती । अतः जब कि इसमें भिन्नता न होकर पाँचों ग्रंथों की एक वाक्यता है तब निःसंदेह है । कि यह ध्रुवक अकृतायन द्धर्मक यानी कदंबसूत्रीय हैं । इसीलिये योग ताराकी भिन्नता के अतिरिक्त और अत्यन्त निजगति मान् स्वाती के बिना; सम्पूर्ण नक्षत्रों की योगताराओं के भोगशरों के संबन्धमें सभी ग्रंथों की एक वाक्यता मिलती है । अतएव वासिष्ठ सिद्धान्तमें ‘राशिचलये स्थितिम्’ क्रांति वृत्तमें नक्षत्रों के ध्रुवकों की स्थिति कही गई है ।

पितामह सिद्धान्त ( उपकरणाध्याय ) में :— “अधिन्या दीनां ऋक्का राश्याद्याः ॥ भौमादीनां वक्र केंद्राणिच राश्यादीनि ॥ ” लिखा है कि जैसे भौमादि ग्रहों के वक्र और अस्तोदय ( उपा दर्शन ) के केन्द्रांश राश्यादि प्रमाणसे कहे हैं । ऐसेही अधिनी आदि नक्षत्रों के ऋक्क भी राशि आदि प्रमाणसे कहे गए हैं । सो कदंबसूत्रीय हैं । इन्हीं के द्वारा ग्रहों की युति बताई गई है । इससे स्पष्ट होता है कि यह ध्रुवसूत्रीय न होकर कदंबसूत्रीय हैं ।

ब्रह्मसिद्धान्तमें कहा है कि :— “वृत्तादीनां श्रुतं नास्ति श्रुतं वारा ग्रहस्यतु ॥ इन्दोरपि समीपत्वा ज्ञेयं स्याद्विच योजनम् ॥ ( पृष्ठ ३५ श्लो. २०४ ) ” अर्थात् “न तो अधिनी आदिनक्षत्रों के ऋक्क ( भोगशर ) श्रुत ( ध्रुवसूत्रीय ) हैं और न ग्रहों के भोगशर श्रुत हैं । इसलिये भौमादि ग्रहों के दिव अन्यत्र होनेमें ताराओं के साथ इनकी भेद युति तो वहांसे हो सकती बरना इतने बड़े विचलित ध्रुव की भी तारों के साथ भेद

\* इस विषयका विशेष दृष्टीकरण देगना दो तो हमारे युग परिवर्तन नामक ग्रंथ ( पृष्ठ ८३ ) में देखिये उसमें सूर्यसिद्धान्तादि ग्रंथों के निर्माण काळ के शत वर्ष और भिन्न भिन्न रीतिसे युगों के परिमाण बताए गए हैं ।

युति दृढप्रतीतिमें आ नहीं सकती ।" सोमसिद्धान्त ( पृ. २०२२ ) में भी ग्रहों के भाँति ध्रुवकों को दृढकर्म करना कहा है:—

“ तारा ग्रहाणा मन्योन्यं युद्धं कथं ममायमः ॥ समागमं चंद्रधिष्यैः  
सूर्येणास्तमयेः सह ॥ १५ ॥ मंद शीघ्राधिकानेता संयोगे गतगम्ययोः ॥ १६ ॥  
'तदृकर्म' ॥ १७ ॥ ॥ १९ ॥ सार्धैश्च सन्निभक्रांति क्षेप प्राप्तिव्यया हताः ॥ परं कृत्यासा  
ध्रुवः स्वर्णं भवि शोभिन्न तुल्ययोः ॥ २० ॥ द्वितीयं मेतद् दृढकर्म केचिन्नेच्छन्ति सूरयः ॥  
समधिष्योः पुनः कार्या येतौ दृढकर्म युग्मदौ ॥ २१ ॥ भागाङ्गं परितोऽदध्यग्राऽश्विदृष्टांशा  
धिरश्मयः ॥ २२ ॥ ” अर्थात् इस प्रकार भग्रह युति माधन में ग्रहों के साथ साथ नक्षत्र  
ध्रुवकों को ध्रुवसूत्रीय धनाने के आपन व आक्ष दृढकर्म करना कहा है । दूसरा जो आक्ष  
दृढकर्म कहा है उसे कई आचार्य नहीं मानते हैं । और वह अश्विदृष्ट = क्रांतिदृष्ट से यानी  
फदंब सूत्रीय से ही युति को कहते हैं । ” इत्यादि कथन से स्पष्ट होता है कि यदि नक्षत्र  
भोग ध्रुवसूत्रीय होने तो उन्हें ध्रुवसूत्रीय करने की आवश्यकता ही क्या थी । अतः यह  
फदंब सूत्रीय हैं ।

सूर्य सिद्धान्त ( अ ८ ) में भी ऐसा ही लिखा है:—“ मध्यदृष्टनिशेभानां कुर्याद्  
दृढकर्म पूर्ववत् ॥ मृदु मेलक वच्छेप ग्रहभुक्तया दिनानि च ॥ १४ ॥ ” भानां नक्षत्राणामपि  
मध्यदृष्टं शुनिशे पूर्ववत् पूर्वोक्तवत् दृष्ट्वा च कुर्यात् । फदंबसूत्रीयस्य ध्रुवसूत्रीयं ताधयेत् ।  
ग्रहभुक्त्या नक्षत्रभोगेन चान्तरविज्ञाय दिनान्दिनालनिश्चित्य शेषं ग्रहोत्कर्षकम् । मृदु मृदु युतिवत्  
सर्वे गणितं कुर्यादित्यर्थः । यच्च रोगनाशनं ‘अत्र नक्षत्र ध्रुव के पर्वते नायन दृढकर्मापुद्गहरेण  
कृतं तदयुक्तम् । तस्य ध्रुवके स्वतः सिद्धत्वात् । एवमेव ‘नक्षत्र ग्रहयोगेषु’ ‘दृढकर्मादाविष्टं स्मृतम्’  
( अ. ७ श्लो. ११ ) ‘अत्र नक्षत्र ध्रुवकणामापन दृढकर्म संवृत्तानामन्योक्तानां आपनं दृढकर्म  
नकार्यं मितिष्येयम्’ ‘अत्र अक्ष दृष्ट्वा मर्त्यं वयन्दारः साध्यः । ननु दिनगानात्रिमाननतोक्तो  
साध्यः । क्षितिज संवन्धेन दृष्ट्वा स्वर्गो दद्यास्त एवमाया वश्यव्येन क्षितिजान्तरात् नक्षत्रिमाण-  
स्य व्यर्थत्वात् । ‘इत्थं तदगत् प्रमाणमायत् । तथाच दिनगानं साधनं प्रयोगे ‘विशेषाप  
क्रमैवत्वे क्रांतिर्विशेषं संयुता ॥ दिग्भेदे वियुता स्पष्टा मास्परस्य यथागता ॥ ( अ. ३  
श्लो. १८ ) विशेषं युक्तोक्तिगया प्रांत्या भागा मपरिवर्के ( अ. २ श्लो. ६३ ) तथा स्पष्ट  
ग्रहाणां मध्यमा त्रारिः फदंबसूत्रीया । फुटप्रर मरुतापि मध्यमनस्यास्पष्टा क्रांतिरुक्ता  
तथैव भानां नक्षत्राणामपि देया तथैव स्वतः दिनगविमाने चगमर्त्यः साध्योक्तवान् ।

ननु “ प्रोच्यन्ते लिपिषा भाना म्यभोगोऽथ दद्यादतः ॥ अथन्यत्नीत धिष्यानां  
भोगदिप्तायुता मुयाः ” ॥ ( अ. ८ श्लो. १ ) वदप्यत्र “ भोग ” शब्देन मृदु भोगप्रभृति  
योगताराणां भोगाः क्रांति दृष्ट्या सूचिताः किंच “ गोष्ठं दध्यापरीक्षेत् विशेषं ध्रुवकं

## झीटा निराक्षण कोष्टक १.

सूर्यसिद्धान्तोक्त ध्रुवों से झीटागणना के नक्षत्र भागों में तुलनात्मक अंतर.

अनुक्रमिक.	नक्षत्रों के नाम.	ध्रुवसूत्रीय परिमाणों से तुलना.				कदंबसूत्रीय परिमाणों से तुलना.			
		सूर्य सिद्धान्तोक्त	ज्योति-र्मन्तोक्त.	अंतर.	परमान्तर.	सूर्य सिद्धान्तोक्त	ज्योति-र्मन्तोक्त	अंतर.	परमान्तर.
१	अश्विणी	०	०	०	०	११ ५३	१४ ३	+२ ७	+२ ७
२	भरणी	२०	२४ ५९	४ ५९	७ ५९	२४ ३५	२९ २०	५ ५५	५ ५९
३	कृत्तिका	३७ ३०	३९ ११	१ ४१	६ ३२	३९ ८	४० ७	० ५९	६ ५१
४	रोहिणी	४९ ३०	५० ४६	१ १६	१० ४८	४८ ९	४९ ५५	० ४६	७ ३७
५	मृगशीर्ष	६३	६४ ३५	१ ३५	१२ २३	६१ ३	६३ ५०	२ ४७	१० २४
६	आर्द्रा	६७ २०	६९ १२	१ ५२	१४ १५	६५ ५०	६८ ५३	३ ३	१३ २७
७	पुनर्वसु	६३	६५ २९	१ ३९	१५ ४४	६२ ५२	६३ २२	० ३०	१२ ५७
८	पुष्य	१०६	१०८ ५१	२ ५२	१८ ३६	१०६ ५९	१०८ ५१	० ५१	१५ ०८
९	आश्लेष्वा	१०९	११२ २०	३ २०	२१ ५६	१०९ ५९	११३ ३	३ ४७	१८ ५५
१०	मघा	१२९	१३० ८	१ ८	२३ ४	१२९ ०	१२९ ५८	० ५८	१९ ५३
११	पूर्वा फाल्गुन	१४४	१४७ ४०	३ ४०	२६ ४४	१२९ ५८	१४३ ३	३ ३५	२३ १८
१२	उत्तरा फा.	१५५	१५७ ९	२ ९	२८ ५३	१५० १०	१५१ ३५	१ ३५	२५ ३
१३	हस्त	१७०	१८८ १५	१ ४५	२७ ८	१७० २२	१७३ ५५	० २७	२४ ३६
१४	चित्रा	१८०	१८३ ९	३ ९	३० १७	१८० ४८	१८३ ५८	३ १०	२७ ४६
१५	स्वाती	१९९	१९६ ३८	-२ ३८	१७ ५५	१८३ २	१८४ २२	१ २०	२९ ६
१६	विशाखा	२१३	२१० ३६	-२ ३६	२५ ३१	१८३ ३१	१८१ ४२	-२ ३३	२६ ४३
१७	अनुराधा	२२४	२२२ १८	-१ ४२	२३ ४१	२२४ ४४	२२२ ४२	-२ ४	२८ ४१
१८	ज्येष्ठा	२२९	२२९ ८	० ८	२३ ५१	२३० ७	२२९ ५४	-० १३	२४ २८
१९	मूला	२४१	२४२ ३३	१ ३३	२५ २१	२४२ ५२	२४३ ०	० ८	२४ ३६
२०	पूर्वाषाढा	२५४	२५४ ५१	० ५१	२६ १५	२५४ ३९	२५४ ४२	० ३	२४ ३१
२१	उत्तराषाढा	२६०	२६३ ३	३ ३	२९ १७	२६० २३	२६३ ४७	३ २४	२७ ३
२२	अभिजित	२६६	२५९ २१	-७ ११	२१ ५८	२६४ १०	२६५ २६	१ १६	२८ १९
२३	धनष्वा	२८०	२८७ ५	७ ५५	१८ ३	२८२ २९	२८१ ५३	-० ३६	२७ ४३
२४	शनिष्ठा	२९०	२८७ ५६	-३ ४	१५ ५९	२९६ ५०	२९७ ३१	१ २६	२९ १
२५	शततारका	३२०	३२१ ५२	१ ५२	१७ ५१	३१९ ५०	३२१ ४३	१ ५२	२१ १
२६	पूर्वाभाद्रपदा	३२६	३२५ ११	-० ४९	१७ १	३३४ २५	३३४ ४०	० १५	३१ १६
२७	उ. भाद्रपदा	३३७	३४२ २४	५ २४	२२ २६	३४७ १६	३५४ २६	६ १०	३७ २६
२८	श्रवती	३७५ ५०	३७५ ०	० १५	२२ ४२	३५९ ५०	३७५ ०	० १०	३७ ३६

\*  $२२^{\circ} ४१' \div २८ = ०^{\circ} ८'$  इतना अंतर प्रत्येक तारे में तथा ग्रंथोक्त आरंभ स्थान से योग तारे का अंतर  $१५$  कलाभित ध्रुवसूत्रीय में रहता है.

+  $३७^{\circ} ३६' \div २८ = १^{\circ} ३१'$  इतना अंतर प्रत्येक तारे में तथा ग्रंथोक्त तारे से आरंभ स्थान का अंतर  $१०$  कलाभित कदंबसूत्रीय से रहता है.

अर्थात् दोनों भी परिमाणों का झीटा गणना से मेल मिलता नहीं है. न आरंभ स्थान से रेखी तारे का मेल है.

## कोष्ठक नम्बर ५, (घ)

साधुनिक वेधसद मानक ग्रंथोक्त नक्षत्रों के कर्ण सूचीय भोग शर.

नक्षत्रों के आकाश.	कतकर के नक्षत्र विज्ञान में लिखे हुए,				दीक्षित के भा. ज्यो. शा. में लिखे हुए,				प्रकाशित से योग ताराओं के			
	भोग,	शर.	नक्षत्रों के.		भोग,	शर.	नक्षत्रों के.		भोग,	शर.	नक्षत्रों के.	
अ	१०	८	८	१९	१०	८	८	१९	१०	८	८	१९
म	१४	१३	१०	१७	१४	१३	१०	१७	१४	१३	१०	१७
रु	३१	१	४	०	३१	१	४	०	३१	१	४	०
रौ	४५	५५	५	१८	४५	५५	५	१८	४५	५५	५	१८
सू	५९	१२	१३	३१	५९	१२	१३	३१	६०	५५	१५	३०
आ	६५	५५	१६	१	७५	१६	१	१	७५	१६	१	१
उ	८९	१४	१	४०	८९	१४	१	४०	८९	१४	१	४०
प्र	१०४	५३	०	५	१०४	५३	०	५	१०४	५३	०	५
भा	१०९	४८	५	५	११०	४४	१०	५९	१०८	३३	१३	३७
म	११९	०	१०	२६	१२६	०	१०	२८	१२३	१३	०	८
मू	११९	३४	१	१३	१२३	३४	१	१२	१२३	४०	६	१
स	१४५	४५	११	३७	१४५	४५	११	३७	१५३	५०	८	१०
ह	१६९	३४	१३	११	१६९	३४	१३	११	१६९	३४	१३	११
वि	१८०	०	१	१	१८०	०	१	१	१८०	०	१	१
स्वा	१८०	१४	१०	४०	१८०	१४	१०	४०	१८०	१४	१०	४०
वि	१०१	१४	०	२१	१०१	१४	०	२१	१०१	१४	०	२१
का	११८	४४	१	५८	११८	४४	१	५८	१२३	५८	४	१
पदे	१२५	५९	१	१३	१२५	५९	१	१३	१२५	५९	१	१३
मू	१४०	४४	११	१७	१४०	४४	११	१७	१४०	४४	११	१७
मू	१५१	४४	१	१७	१५२	४८	१	२०	१५५	४८	३	२५
व	१५८	४९	१	२७	१६१	४९	१	२७	१६५	४९	३	२७
अ	१६१	३८	१६	१४	१६१	३८	१६	१४	१६३	३८	१६	१४
अ	१७५	५५	१२	१८	१७५	५५	१२	१८	१७७	५५	१२	१८
ध	१९३	३३	१३	२	१९३	३३	१३	२	१९०	३३	१२	५
श	११५	४४	०	१३	११५	४४	०	१३	११५	४४	०	१३
ए	११०	४२	११	१२	११०	४२	११	१२	११०	४२	११	१२
व	१३०	२८	१२	४३	१३५	२८	१२	४३	१३५	२८	१२	४३
२	१५९	१७	१	४	१५९	१७	१	४	१५९	१७	१	४

१. \* यह टीप आगे के शृष्ठ ५४ में देखिये।

## कोष्टक नंबर ५ (क)

. प्राचीन ग्रंथोक्त मोगों की आधुनिक ग्रंथोक्त से परस्पर तुलना.

उदाहरण १						उदाहरण २					
नक्षत्र.	प्राचीन.	ग्रंथकार का नाम.	आधुनिक	परस्पर.	तुलना.	प्राचीन.	ग्रंथकार का नाम.	आधुनिक	परस्पर.	तुलना.	
	मोग ,		मोग ,	अंतर ,	योग ,	मोग ,		मोग ,	अंतर ,	योग ,	
अ	८	स	१०	+२	८	स	१०	+२	८	८	
म	२०	स	२४	+४	२२	प्र	२२	+२	४९	४ ५७	
कु	३७	स	३६	-०	५१	स	३६	-०	५१	४ ६	
दी	४९	स	४५	-४	३	स	४५	-२	३	+१ ३	
सु	६३	प्र	६०	-३	५	प्र	६०	-२	५	-१ २	
शा	६७	के	६४	-३	५	दी	७५	+०	१६	-० ४६	
प	९३	स	८९	-४	३४	स	८९	-३	३६	-४ २२	
य	१६	स	१०	-६	५	स	१०	-१	७	५ २५	
आ	१०८	के	१०९	+१	४८	के	१०९	+०	४८	४ ४९	
म	१२९	स	१२६	-३	०	प्र	१३२	+३	३३	३ ८	
प्र	१४४	प्र	१४३	-०	१०	प्र	१४३	-०	१०	१ १८	
व	१५५	प्र	१५३	-२	१०	प्र	१५३	-१	१०	१ १८	
ह	१७०	स	१६९	-०	२३	॥	१६९	-०	२३	-३ १	
वि	१८०	स	८०	०	०	स	१८०	०	०	३ १	
स्वा	१८०	स	१८०	०	२४	स	१८०	०	०	३ १	
वि	२१३	प्र	२१४	+१	३७	॥	२१४	+१	३९	० २९	
अ	२०४	प्र	२३३	-०	२	प्र	२३३	-०	७	० ३६	
पदे	२२४	प्र	२२७	-३	२८	प्र	२२७	-१	२३	१ ५९	
मू	२४१	स	२४०	-०	३६	स	२४०	-०	१६	२ १५	
प्र	२६९	स	२५२	-१७	२८	के	२५०	+१	४४	-० ३१	
व	२६०	दी	२६२	+२	२४	दी	२६२	+२	२४	+१ ५३	
अ	२६५	स	२६९	+४	३२	स	२६९	+४	३२	-१ ३९	
॥	२७८	स	२७७	-०	५	स	२७७	-०	५	१ ४४	
प	२९०	के	२९३	+३	३३	प्र	२९०	+०	१३	१ ३१	
स	३२०	॥	३१७	-३	१६	स	३१७	-३	१६	२ ४७	
पु	३२६	स	३३०	+४	४२	स	३३०	+४	४२	-० ५५	
उ	३४४	स	३४५	+१	१९	॥	३४५	+१	१९	+० १४	
रे	३५५	के	३५९	+४	१०	प्र	३५९	+४	१०	० ०	

ग्रंथकारों के संकेताक्षर:- के=केतकर न. वि., दी=दीक्षित मा. उयो. प्रं=प्रसादर

स=संपूर्ण.

कोष्टक १ देखिये ( ज्योतिर्निरीक्षणमें ) सामिजित् २८ नक्षत्रों के ध्रुवसूत्रीय अंतर को परस्परमें घनर्ण करने पर परमान्तर २२.७ अंश रहता है सो  $\frac{22.7}{360} = .063$  अंशप्रति प्रत्येक तारोंमें होकर ग्रंथोक्त राशिचक्र के आरंभ स्थानसे ज्योतिष्का अंतर १५ कला रहनेसे तथा कदंबसूत्रीयसे परमान्तर ३७.६ अंश यानी १.३१ अंशप्रति प्रत्येक तारोंमें होकर ग्रंथोक्त राशिचक्र के आरंभस्थानसे ज्योतिष्का अंतर १० कला रहनेसे ज्योतिष्गणना किसी भी प्रकार कोई भी मानसे शास्त्रशुद्ध नहीं है ।

और कोष्टक २ देखिये ( चित्रा समीक्षण में ) कदंबसूत्रीयान्तरको परस्परमें घनर्ण करने पर इस गणना में परमान्तर शून्य तुर्य हो जाता है । तथा सूर्य सिद्धान्तादि ५ प्राचीन ग्रंथों में तथा आधुनिक ३ सूक्ष्म गणित के ग्रंथों में चित्रा का कदंबाभिमुख भोग १८० अंश लिखा होने से चित्राभिमुख बिन्दु की ग्रंथोक्त राशि चक्र के आरंभ स्थान से एक वाक्यता हो जाने के कारण सिद्ध होता है कि चित्रा गणना ही शास्त्र शुद्ध है ।

उपर्युक्त कोष्टक में जो स्वाती का भोग लिखा है वह ब्रह्मा प्रोक्त सृष्ट्यारंभ कालीन नहीं लिखकर शक ४२७ में बराहमिहिर का कहा हुआ लिखा है — “सममुत्तरेण तारा चित्रायाः मीर्यते क्षपावत्सः ॥ तस्यासन्नेचंद्रे स्वातेर्योगः शिवां भवति ॥ ( बृहत्संहिता अ. ३५ श्लो. ४ ) ” “पंचसिद्धांतियामुक्त प्रकारेण अर्धास्त्रभभागे कालि वृत्तार्धे चित्रावारकायाः स्थितिस्तया समउत्तरेणतिर्यक् कृत्वा या तारास्थिता सापावत्स इति कीर्यते कथ्यते । तस्यापावत्सस्याऽऽसन्नो निकटस्थे चन्द्रेस्वातेर्योगश्चंद्रसंयोगः शिषः श्रेयस्करो भवति ॥ ” इससे मालूम होता है कि चित्रा चंद्र युति के निकट में ही स्वाती चंद्र की युति का होता कहा है सो स्पष्ट चंद्र के साथ कहने से यह स्वाती का भोग भी कदंबसूत्रीय है क्योंकि १४८ चंद्र सदा ही कदंबसूत्रीय रहता ( बनता ) है । किंतु इसमें जा चित्रा स्वाती के समसूत्रीय बीच में चंद्र के उ. शर ५ अंश के निकट में जो अपावत्स की तारों कहा है सो तारा वर्तमान में बहा दिखती नहीं है । यद्यपि उयो. केतकरने नक्षत्र विज्ञान में धीटावर्हिर्निमि का अपावत्स और धीटावर्हिर्निमित्तो भावः लिखा है । किंतु इसमें धीटावर्हिर्नि. का ध्रुवसूत्रीय १७३° ३' कदंबसूत्रीय भोग १७४° २०' उ. शर १ । ४५ होने से यह तारा अपावत्स के वर्णन से अयुक्त और बहुत दूर है । अतः यह अपावत्स नहीं है । क्योंकि शक ४२७ से आज तक भिन्न १४२४ वर्षों में यह तारा इतनी हट सकती नहीं ।

† चित्रावा की योग तारा-नक्षत्र विज्ञान नक्शा २ में देह्या नीटाग्रिमा के पश्चिम में ( विप्रांश १५१०' शर १ अंश ६ ) दिखाई देने वाली तारा है । ( को. ५ व दगो )

\* रेवती की योग तारा-मृगशिरा के एर्यम ( नक्षत्रों ) में शिषकाउ कटाफ १ मिनट ३०.५ और कालि ८'५५" द्वारा भोग ३५९' ४५" शर + ०६ उ० दिखाई देने वाली तारा है । ( कोष्टक ५ व की तीप देखो )



ऐसे ही वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्तादि ग्रंथों में और भी कुछ विशेष लिखा है:- “अपां-  
त्सपयोर्भांघं सौम्ये पंच ५ रसाः ६ क्षराः ॥ निरक्षुदेशे सृष्ट्यादौवस्थितिं ब्रह्मणोदिता ॥  
(वृ. व. सि. ८-१२) उत्तराक्षरपांवत्सश्चित्रायां पंचभिस्तथा ॥ आपस्ततोधिकः स्वल्पे  
पण्डरंशैस्तदुत्तरे ॥ इति ब्रह्मसिद्धान्ते (पृ. ३३ श्लोक १७८) एवमेव सूर्य सोमसिद्धान्ता  
दिपुस्तकम् ॥” अर्थात् बराहमिहिरेने “चित्रार्घात्त्रिमामगे” द्वारा क्रातिवृत्त के ठीक ठीक  
मध्य में चित्रा तारे का स्थिति कहकर उनके उत्तर में अपांवत्स और स्वाती की स्थिति कही  
है। वृद्ध वसिष्ठ सि. में “भांघे” द्वारा क्रातिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में अपांवत्स और  
उनके उत्तर में आपः को कहकर यहां स्वाती की स्थिति नहीं बताई है। और सूचित  
कर दिया है कि यह स्थिति ब्रह्माग्रेक्त सृष्ट्यादि काल्यन अर्थात् अत्यन्त प्राचीन है। तथा  
ब्रह्म, सूर्य, सोम सिद्धान्तादि ग्रंथों में “चित्रायां” द्वारा क्रातिवृत्त के ठीक ठीक मध्य की  
स्थिति सूचित करके उसके समसूत्रीय उत्तर में अपांवत्स और आपः को ही कहा है।  
यहां भी स्वाती की स्थिति नहीं बताई है।

इससे निश्चित होता है कि उक्त सिद्धान्त ग्रंथों के ध्रुवकादि में जो स्वाती आदि की  
स्थिति कही है सो अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ परंपरागत लिखी है किंतु आगे काळान्तर में तापलों  
के निज गति के कारण बराहमिहिर के समय तक कुछ परिवर्तन हो गया। चित्रा की  
स्थिति तो स्थिर प्रायरूप होने से वह क्रातिवृत्त के मध्य में ही रही है। किंतु उनके सम  
सूत्र उत्तर क्षर स्थिति में से आपः का तारा खिसक गया और स्वाती का तारा ग्रंथोक्त से  
खिसकता हुआ उसके निकट में आ गया अब तो उसे भी करीब १॥ हजार वर्ष रोगप है।  
इसलिये अपांवत्समादि में भी थोड़ा २ फर्क हो जाना स्वाभाविक ही है। वस्तुतः देखा जाय  
तो झट्टा ब्रह्मर्गिनिस तारा आपः की न होकर अपांवत्स की है। इसका भोग २७८१७  
क्षर ८१३८ ४० है। और आपः की तारा टाऊब्रह्मर्गिनिस है। इसका भोग १८३१२३  
क्षर ११५९२ ८० २। सृष्ट्यादि से आज तक में पश्चिम के तर्फ १°१४' और उत्तर के  
तर्फ ३।३८ ' अपांवत्स ' का तारा खिसका है। पूर्व के तर्फ ३।२३' और उत्तर के तर्फ  
१।५२ ' आपः ' चञ्चित हो गया है। तथा नक्षत्र विज्ञान (पृ. ३२) में 'स्वाती' की  
निजगति बहुत होनेसे वर्तमानमें उनकी ध्रुवसूत्रीय उत्तर दिग्ग २०९ के तर्फ वार्षिक  
गति २.२८ विक्रमाभित है। तब यह ब्रह्माग्रेक्त अत्यन्त प्राचीन भोग १९१° क्षर ३७°  
८० से खिसकती हुई बराहमिहिर के समयमें चित्राके यात्री भांघके निकट आ जाना  
गणित भिन्न है। अर्थात् ग्रंथोक्त प्राचीन काळसे आज तक में स्वाती का तारा पश्चिम  
के तर्फ १८.° ६, दक्षिण के तर्फ ६.° २, हटने से उत्तर करंज से २५१°। ३७ दिग्ग  
में कर्ण रूप १९.° ६ खिसकने में करीब ३१ हजार वर्ष होते हैं। यदि यहां उक्त सूर्य  
सिद्धान्तादि में लिखे हुए 'यावमेवत्कवंयुगम्' काळ से वर्तमान युग पर्यन्त के २१ लक्षादि  
वर्षों को लेना चाहेंगे तो आकर्षणशास्त्रानुसार निजगति से संपूर्ण ताराओं की अक्षवृत्ति

आकृतियाँ विगड़कर भिन्न रूप हो जातीं किंतु जबकि ऐसा परिवर्तन हुआ नहीं है तब निःसंदेह है कि उपर्युक्त कालान्तर की वर्ष संख्या पर्याप्त है ।

अब जब इस प्रकार विस्तार के साथ वाचनिक व गणिता सिद्ध अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध करके बताया गया है कि विधान में कहे हुए ५ सिद्धांत ग्रंथों के भव्युक कदंब सूत्रों हैं । और उन सब में चित्रा का भोग १८० अंश ही लिखा है वर्तमान कालोन शुद्ध गणित के ३ ग्रंथों में भी चित्रा भोग १८० अंश ही लिखा है । इसलिये गोविन्दरायजी का परीक्षण बिल्कुल गलत है । क्योंकि २७ नक्षत्रों में अत्यल्प निजगति होते हुए भी देदीप्यमान एक चित्रा ही ऐसी निःसंदेह तारा है । इसलिये भारतीय संपूर्ण ग्रंथकारों ने इसे क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्यमें मानकर इसी के सम्मुख १८०° पर राशीचक्र का आरंभ स्थान माना है और इसी समाधान में बताया गया है कि झीटा गणना अशास्त्रीय एवं निरर्थक है ।

### परीक्षण ७ ( आ )

याच आधार ने काढले शून्यापनांश वर्ष ही चुकीचें आहे. कोणत्याही ग्रंथकाराने यांचा पुरस्कार केलेला नाही. आपले ग्रंथांतील शून्यापनांश वर्ष शक ४२१ किंवा त्यानंतरची आहेत. त्या संबंधी शिक्षित भा. ज्यो. पृ. ३३७ धरून गणनातकी आमचे ग्रंथांत शून्यापनांशाचाकाल मानिला आहे तो पुढील सूक्ष्म आहे. शास्त्रकारांनी शून्यापनांश वर्ष कोणते किंवा कोणत्या सुमारास मानिले आहे हे ओळखण्याची एक सोपी युक्ती आहे की त्यांनी आपले ग्रंथांत जे स्फुट ध्यु दिले आहेत ते कोणत्या काळच्या स्फुटध्वाशी जमतात ते पाहिले म्हणजे झाले. कारण “ इत्यभावेऽयनांशानां कृतहकर्मकालवाः ” असे सि. शि. मध्ये स्पष्ट सांगितले आहे. तेव्हा अयनांश १९ वरून शून्यापनांश समयां स्फुट ध्यु काढून सूर्यसिद्धान्तोक्त स्फुट ध्वाशी ते क्रिपत जुळतात हे पाहिले पाहिजे. या प्रमाणे गणित करून पुणे सभेच्या रिपोर्टांत पृ. १२१ वर ११. पयस यांनी अंक दिले आहेत, त्यावरून हे लक्षात येईल की २२ अयनांशा वरून येणाऱ्या शून्यापनांश काळी म्हणजे शके २१२ ते २२० चे सुमारास येणारे स्फुट ध्यु सूर्यसिद्धान्तोक्त स्फुट ध्वापेक्षा ३, ८। ४, ४ अंशांनी कमी येतात परंतु १९ अयनांशा वरून येणारे ध्रुवक एक किंवा काही ठिकाणी २ अंशांच्या अंत बाहेर येतात. या वरून हे स्पष्ट आहे की सिद्धांतांनी ४२१ किंवा त्यानंतरचेच वर्ष शून्यापनांश वर्ष मानिले आहे. २२ अयनांशा वरून येणारा चित्रा भोग मात्र पाटण अंशाच्या अंतराने जुळतो. य ससे आद्री य पूर्वा या तान्यांचे ही जुळतात म्हणजे ३ जुळतान व २४ जुळतात व १९ अयनांशा वरून येणारे ५ जुळतात व १९ जुळतात तेव्हा शास्त्र शुद्ध अयनांश १९ आहेत व शून्यापनांश वर्ष ४२१ ते ५०० पर्यंत येणारेच शास्त्र शुद्ध होय. तसेच अयनांश २२ व शून्यापनांश वर्ष २१३ ते २२० शास्त्र शुद्ध नाही हे सप्रमाण सिद्ध होत आहे.

## समाधान ७ ( आ )

उक्त परीक्षण भ्रांत कथन के तुल्य निरर्थक और उपहासास्पद है। क्योंकि न तो आप कोई एक भी भारतीय सिद्धान्त या करण ग्रंथ के प्रमाण से अयनाश या शून्यायनाश वर्ष को निश्चित कर सके हैं। न उससे चैत्री अयनाशों को खंडित या झीटा अयनाशों को मंडित कर सके हैं। उसमें भी उपहासास्पद कहने का कारण यह है कि अभी तक आपको यह भी पता नहीं है कि हमारे सिद्धान्त ग्रंथों के भगणादि परिमाणों में भिन्नता क्यों कर है। और उस भिन्नता को और स्थूलता को निकाल देने पर शुद्ध सूक्ष्मपरिमाण से इन सब की एक वाक्यता कैसे हो सकती है। तथापि अब हम इन विषय को स्पष्ट करके बताते हैं। ताकि आपको मालूम हो जायगा कि प्रस्तुत परीक्षण कैसे निरर्थक, भ्रांतिपूर्ण और विषय-प्रतिपादन शैली को छोड़कर है।

आज भारतवर्ष में सूर्यसिद्धान्तानुसारी, आर्यसिद्धान्तानुसारी और ब्रह्मसिद्धान्तानुसारी सैकड़ों पंञ्चांग प्रति वर्ष प्रकाशित होते हैं। उन सब में अयनाश २२°-२३° लिखे रहते हैं। रविसेक्रमणादि काल, और स्पष्ट ग्रहों की चैत्री पंचांगोक्त परिमाणों से एक अंश के अन्तर्गत तुल्यता मिल जाती है। यदि उनके काठान्तर सक्षर या स्थूलता को मिटाने के लिये बीज देकर शुद्ध कर दिये जाय तो इनकी चित्रागणना से एक वाक्यता हो जाती है किंतु जबकि सिद्धान्त और सूक्ष्मगणित के ग्रंथों के वर्षमानादि भिन्न २ हैं। तब निःसंदेह है कि शून्यायनाश वर्ष भी भिन्न २ होने चाहिये। अन्यथा वर्तमान में उन सबकी शास्त्र शुद्ध परिमाणों से एक वाक्यता हो नहीं सकती। अन्वय्य सिद्धान्तों की अयन वर्ष गति इसी रिपोर्ट के (पृष्ठ १०१ (३) में प्रकाशित की गई है। उसके द्वारा शाके १८०० के आरंभ में तुलना के लिये झीटागणना के अयनाश  $१८^{\circ}१०'१२.५'' = ३५४२९''$  और चित्रागणना के अयनाश  $२२^{\circ}१८'१३'' = ७९७१३''$  लेकर गणित करने पर निम्नलिखित शून्यायनाश वर्ष निश्चित होते हैं।

सिद्धान्त ग्रंथों के.		अयन की.	झीटागणना से.		चित्रागणना से.	
संख्या	नाम.	वर्षगति विकला.	गत वर्ष.	शक वर्ष.	गत वर्ष.	शक वर्ष.
१	मंदकेंद्राय.	६२°०८'०२.	१०५३.२	७४६.१	१२८४.०	५१६.०
२	सूर्यसिद्धान्त.	५८°६'७८	११५४.८	६८१.२	१३९८.३	४४१.०
३	आर्यसिद्धान्त.	५८°४१'२०	१११९.९	६८०.१	१३१४.५	४३९.५
४	ब्रह्मगुप्त.	५७°५५'६८	११३६.७	६६३.३	१३८१.८	४१८.३
५	शुद्ध नाक्षत्र.	५०°१८'८८	१३०३.६	४९६.४	१५८८.३	२११.७

प्राप्तुत कोष्टक में दोनों गणना के अयनांशों को अयन वर्षगति का भाग देने पर लब्धि गत वर्षों को शक १८०० में कम करके अन्यान्य सिद्धान्त ग्रंथों के वर्ष प्रमाणानुसार शून्यायनाशकारिक शक वर्ष लिख दिये हैं। अब आप देख सकते हैं कि झीटागणना के शून्यायनाश वर्ष, नाक्षत्रमान से सूर्यसिद्धान्त तक के शक ४९९ से शक ६८५ तक और चित्रागणना के शक २११ से शक ४४२ तक आते हैं। किंतु हमारे कोई भा सिद्धान्त, फरण, जातक, संहिता और मुहूर्त प्रथादिकोंमें लिखे हुए या प्रतिपादित किये हुए अयनांशों से शून्यायनाश वर्ष झीटागणना के अतर्गत न होकर चित्रागणना के अतर्गत हैं। इस विषय में कई ग्रंथों के उदाहरण पूर्व समाधान में कहे गए हैं। तथापि अब यहाँ एक सिद्धान्त, सम्राट या उदाहरण देकर उक्त कथन का समर्थन करता हूँ।

“दक्षिणोदक् भित्तिसह यन्त्र - उच्यते । अनेनयन्त्रेण इन्द्रप्रस्थे अक्षांश २८° । ३९' जाता । परमक्रांतिश्च २३° । २८' यवनदेशे अवस्थ स्यादिभिर्यवनाचार्यै वैधेनोप लब्धा क्रान्ति २३° । ५१' । १९" पुनर्युनानदेशे पटार्धिशदक्षांशयुते यन्त्रभुजुयेन वैधेन प्राप्ताक्रान्ति. २३° । ५१' । १९ पुन समरकन्दे नगरेऽक्षांशे ३९ । ३७ युते लङ्कवेगेन वैधेनोपलब्धा क्रान्ति २३° । १०' । १७" अस्माभि शाहिवाहन शके १६५१ इन्द्रप्रस्थे अनेन यन्त्रेण वैधेन प्राप्ता क्रान्ति २३ । २८ एष वैधेन क्रान्ति ज्ञात्वा सयानुपातेन स्पष्टो रवि कार्य । “अथ रवि सायनोभवति । त चायनांश एकपंचाशदधिकषोडशशते १६९१ शाहिवाहन शके सप्तत्रिंशत्कलाधिकैकोनविंशदशा १९ । ३७ निश्चिता । पुनरयनांशाना गति सप्तविंशपर्यंशोनिश्चितोऽस्ति । प्रतिवार्षिकी गतिश्च विकलादि । विकला ५१ प्र विकला २७ त्रिकला ५० इत्ययनांशगति ॥ अथेष्टकालेऽयनांशानयन 'गजाभनेत्रै २७८ रहिना शकाब्दा खसप्त ७० भक्ता अयनांशका स्यु ॥ प्रत्यब्दजातायनजा गतिस्तु रूपाक्ष ५१ तुल्या विकला प्रदिष्टा' ॥ १ ॥ ' सिद्धान्त सम्राट् (यन्त्राग्याय)

इस प्रकार सिद्धान्त सम्राट् में दिखी के अक्षांश २८ । ३९ रवि परम क्रान्ति २३° । २८' सूक्ष्मपरिमाणों के तुल्य शुद्ध है। इसमें शाके १६९१ के अयनांश १९° । ३७' अयनवर्ष गति ५१ । २७ । ५०=५१" ४६४ निश्चित करके इनके द्वारा शून्यायनाश शक २७८ वर्ष कहा है। जोकि चित्रागणना के नाक्षत्र मानके अयनांश २०° । ३८ से सिकर्त—२६° ८ कलांतर के तुल्य शुद्ध है। यद्यपि उक्त कलांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र मानसे शून्यायनाश शक २४४ वर्ष आता है। किंतु सूक्ष्मअयनगति ५०" १८९ की अपेक्षा उक्त गति+२" २७५ अधिक होने से उक्त थोड़ा अंतर पडा है। और यह स्थूलता निकाल देने पर शास्त्र शुद्ध अयनांश और शून्यायनाश वर्ष शक २१२ में ही निश्चित होता है।

दूसरा धर्मसि ध्रु का उदाहरण देखिये — “अयनांशो ज्योति शास्त्रे प्रसिद्धा ॥ ते वेदानी द्वादशाधिकसप्तदशशतसंख्याके शाहिवाहनशके १७१२ एक विंशतिरयनांश।”

(पूर्वार्धप ?) इसमें शक १७७२ के अयनाश २१ कहे हैं। इसमें शुद्ध नाक्षत्र अयनगति का भाग देने पर शून्यायनाश शक वर्ष २०८ आता है। सो कालान्तर संस्कृत सूक्ष्म-गणितागत चित्रायनाश के ठीक ठीक बराबर है। शीटा गणना से तो अभी तक अयनाश २१ हुए नहीं हैं।

इसके साथ दिया हुआ शून्यायनाशदर्शक आलेख्य देखिये। उसके द्वारा माद्धम हो जायगा कि प्रस्तुत सौष्टकीकृत चित्रागणना के अयनाशों ने ही अन्यान्य सिद्धान्तीय अयन-गति से पृथक् २ शून्यायनाश वर्ष होते हुए भी उन सबकी वर्तमान में एक वाक्यता कैसी हो जाती है। तथा यह भी माद्धम होजाता है कि यदि शाके ४९६ में शून्यायनाश वर्ष; मानलेखें तो प्रहलाध्यादि में लिखे प्रकार शक ४४४ तथा ४२१ आदि वर्ष तो आते ही नहीं किंतु ब्रह्मगुप्तादि के ६६३, ६८०, ६८५ व ७४६ शक वर्ष आने से; उनके करणागत भगणारंभ स्थान में ३°। ५८'१" का अंतर एव सक्रांति में चार दिन का फर्क पड़ जाता है। ऐसा करने से किमी का किसी से मेल नहीं देनी अनवस्था उत्पन्न होकर फलतः भारतीय कृत शीटों के ऊपर पानी फिर जाता है। वस्तुतः देखा जाय तो भारतीय ग्रंथों, को कुच काम के (अजागलस्तनवत्) बताने के सिवाय ऐसा करने से न कोई दूसरा अर्थ निकलता है।

आपने जो दीक्षितजी का उदाहरण बतलाया है। वह आपके नितात विरुद्ध है। क्योंकि भा. ज्यो. में जो अनेक ग्रंथों के शून्यायनाश वर्ष बताए हैं वह उपरोक्त कोष्टक में ३ बताए हुए अन्यान्य सिद्धान्तोक्त मानके तुल्य चित्रागणना के अतर्गत हैं। शीटा के संबंध में तो वहीं लिख दिया है कि “सांप्रतच्या सूक्ष्म युरोपियन गणिता प्रमाणें रेवती योग तारा शक ४९६ मध्ये संपात्ता होती, म्हणून शून्यायनाश वर्ष ४९६ पाहिजे, असें कोणा कोणाचे मत आहे; परंतु ते योग्य नाही। या विषयी विचार पुढे केला आहे。” इस प्रकार शीटा पक्ष का खंडन करते हुए (भा. ज्यो. ४२६ और ४५२-५६ में) दीक्षितजी ने चित्रापक्ष का मंडन किया है।

आपने जो ध्रुवकों की तुल्यता से शून्यायनाश वर्ष का निश्चय करना कहा है वह भी बिलकुल गलत है। क्योंकि यह तपास (चौकमी) सजातीय एवं निश्चल तारा हो तो हो सकता है। किंतु यहा दोनों बातें भी नहीं है। ताराओं को निजगमि है। उनमें भी शीटापिशियम की गति अत्यधिक होकर चित्रा की अत्यन्त है, यह सूक्ष्मदर्शी विद्वान् जानते ही हैं तथा क्षिप्र से गणना करने में षष्ठ नाक्षत्रमान के परिमाण शुद्ध कैम रह सकते हैं। सजातीय ध्रुवक के संग्रह में कहा जा सकता है कि भारतराचार्य गणेश दैन्यादि ने जिस प्रकार अपने ध्रुवकों को ‘कृतदृक्कर्मा’ लिखा है ऐसा सूर्यभिद्धान्तादि प्राचीन ग्रंथों में लिखा नहीं है। बरना उन ध्रुवकों को दृक्कर्मा करना कहा है। इसलिये सूर्य

सिद्धान्तादिके ध्रुवक कदंबसूत्रीय (शाश्वत नित्य स्थिरप्राय रूप) हैं ऐसा (अ) समाधान में सिद्ध किया गया है। सिर्फ ब्रह्मगुप्तादि ने उन प्राचीन ध्रुवकों में से कोई २ देदीप्यमान तारों के भोगों को साधन भाग से अंतरित हुए देखकर कुछ तारों के ध्रुवसूत्रीय से और तारका भेद से स्वल्पान्तर को देखकर इन कदंबसूत्रीय स्थिर ध्रुवकों को अस्थिर ध्रुवसूत्रीय कह दिये हैं। आगे भास्कराचार्य और आर्यभट्टादिने भी आपके वर्तमान कालिक दृक्कर्म का उनमें सारसार कच्चे न तो उन्हें दृक्प्रत्यययुक्त शुद्ध ध्रुवसूत्रीय किये हैं। न उनको स्टष्टयादि कालिक प्राचीन माने हैं। किंतु शून्यायनाश कालिक स्थूल कहकर; भ्रमहयुति के प्रसंग में भी इनके द्वारा गणितागतता सुधार नहीं कहकर गणितागतता को ही मुख्य माना है। और उसके द्वारा इन ध्रुवकों का सुधार कर लेना ध्वनित किया है।

यदि उस समय ब्रह्मगुप्तादि को यह मालूम हो जाता कि नक्षत्र भी अचल नहीं हैं। तो वह उन्हें कृत दृक्कर्म अस्थिर कदापि नहीं कहते। किंतु यह शोध अब लगा है। वस्तुतः गुरुत्वाकर्षण से विश्व व्याप्त होने से उसमें कोई वस्तु भी स्थिर नहीं रह सकती है। अतएव और नक्षत्रों के भाति हमारा सूर्य भी पृथ्वी आदि ग्रहों के परिवार को साथ लिये हुए अगस्त्य नामक तारे के चोर्गिर्द घूमे और घूम रहा है। क्योंकि अगस्त्य का लंबन १७ विकला, और उसका व्यास सूर्य के व्यास से १३४ पट है। क्षेत्रफल १८००० तथा घनफल २४२०००० पट है। उसी अगस्त्य का प्राचीन ग्रहों में भोग ९० व द. शर ८० अंश लिखा है। किंतु वर्तमान में भोग ८१°१८' व द. शर ७१°५०' हो गया है। इससे स्पष्ट है कि अगस्त्य से सूर्य पूर्व के तर्क ८°५२' और उत्तर के तर्क ४°१०' घूम गया है।

इससे विरुद्ध गति स्वाती की है। क्योंकि उसमें अगस्त्यावर से द्विगुण के करीब में अंतर पड़ गया है। फल चित्रा मघा और व्याध की गति सूर्यानुकूल स्वरा होने से इन में विशेष अंतर नहीं पड़ा है। चित्रा मघा की तुलना तो ध्रुवकों में और वराहोक्त भोगों में बताई गई है। ग्रहों में मृग व्याध का भोग ८०° और द. शर ४०° अंश कहा है। वर्तमान में ८०°११' भोग तथा द. शर ३९°३५' है। सो भिन्न +१९ तथा -२५ कटान्तर भिन्नकुल स्वरूप है। इससे चित्रागणना ही भिन्न होती है। शीतागणना में इनका भोग ८४°१४' होने से ४°१४' वट जाने से उभयका ग्रहोक्त से बिच्छुट मेट भिडना नहीं है।

इस प्रकार शास्त्रीय पनिपादन श्रेष्ठों को त्यागकर अपने भास्कराचार्यादि के कथन का भाग्यार्थ-उनके प्राचीन बाटिक ग्रंथोक्त को लगा देना; ग. पंवार के अट शट अंकों की "अहोर्मुख अहोर्ग्रामिः" के तुल्य प्रशंसा करना, तदनुसार निराधार प्रमाण के चित्रागणना में शेष अंशों का अंतर बनाना, चित्रागणना में सिद्ध होने वाले भिन्नानीय शून्यायना

शक वर्ष ४२१ को शक ९०० तक व्रतादेना; आदि आपका परीक्षण मनोराज्य के तुल्य कल्पना तरंग मात्र है। वस्तुतः प्रो. केरो लक्ष्मण छत्रे साहब और उनके बाद के कुछ पाश्चात्यविद्याधीत विद्वानों के भेद युक्त वचनों के अतिरिक्त कोई भी भारतीय ग्रंथ या टीका टिप्पणीकार ने तनिकसा भी झोटा का समर्थन नहीं किया है। ऐसे तारे को रेवती योग तारा बताना आश्चर्य है।

### परीक्षण ७ ( इ )

हीच गोष्ट रोहिणी शकट भेदी तान्या वरून सिद्ध होते. “ शकटामिमनक्षत्रस्य ध्रुव एकराशिः सप्तदशांशः ” वसे “ वृषे सप्तदशभागेः ” या. सू. सि. २-१३ च्या टांकट सांगितलें आहे. हा योगतारा ‘ आल्डिवरान ’ नमून इस्लानतारी नावाचा एक लहानसा आहे. अयनांश २९ वरून या शकट भेदीतान्याचा भोग ४४° । २१’ येतो, शास्त्रोक्त येत नाही. अयनांश १९ वरून याचा भोग ४७° । २१’ येतो. हा शास्त्रोक्त भोगाशी जुळतो।

### समाधान ७ ( इ )

इसको कहते हैं दो तर्फी प्रलाप ! क्योंकि ‘ जिस सूर्य सिद्धान्तादि के ध्रुवों को सिर्फ ध्रुव शब्द के बहाने ध्रुवसूत्रीय कहकर चित्रा भोग में ४८ कला का अंतर बताना और यहाँ ‘ ध्रुव एकराशिः सप्तदशांशः ’ ध्रुव १ । १७ स्पष्ट लिखा होते हुए को कदंब सूत्रीय ग्रह के साथ उसे बिना दृक्कर्म किये ही युति स्थान कह देना यह दो तर्फी प्रलाप नहीं तो क्या है। किंतु देखा जाय तो आपके ही बताए ‘ ध्रुव ’ शब्द के उपयोग से सिद्ध होगया है कि उक्त ध्रुवक कदंब सूत्रीय हैं। अन्यथा विजातीय ग्रह के साथ उसे सजातीय किये बिना भेद युति कैसे कह सकते हैं। तथा आपने जो रोहिणी शकट भेद के संबंध में इस्लान तारे को शकट भेदी तारा कहा है यह बिल्कुल गलत है। क्योंकि यहाँ कोई तारे के साथ शकट युति का होना ग्रंथ में लिखा नहीं है। और न कोई तारा शकट भेदी हो सकता है। सू. सि. में कहा है कि “ वृषे सप्तदशे भागे यस्य शस्त्रोऽशक इत्यात् ॥ विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥ १३ ॥ रंगनाथ ने टीका में लिखा है— “ वृषराशौ सप्तदशे शे यस्य ग्रहस्य भाग इत्याधिको विक्षेपो दक्षिणः सप्तदशे रोहिण्याः शकटं शकटाकारसन्नवेशं भिन्द्यात् । तन्मध्यगतो भवेदित्यर्थः । तुकाराद्रहविक्षेपो रोहिणी विक्षेपादस्य इति विशेषार्थकः । विक्षेपस्य दक्षिणस्य रोहिणी विक्षेपादधिकत्वे शकटाद्रहिर्दक्षिणभागे ग्रहस्य स्थितत्वेन तद्भेदकत्वाभावात् । अत्र शकटामिमनक्षत्रस्य ध्रुव एक राशिः सप्तदशांशः । दक्षिणः शरो भागद्वयमिति वेधसिद्धा स्पष्टा युक्तिः ”

अर्थात् रोहिणी के गाढे की आकृति का भेदकारी वह ग्रह होसकता है कि जिसका ४७ अंश भोग और २ अंश से अधिक दक्षिण में जिसका शर होता हो। इससे ‘ शकट-

कारसन्निवेश' शकटाकार आकृति का ही भेद स्पष्ट है न कि कोई इप्सिलान वगैरे तारे का। यदि इप्सिलान तारेका भेद विवक्षित होता तो 'दो अंश से अधिक शर' ऐसा बहुव्यापक ( सामान्य ) शब्द नहीं कह कर २° ३५' शर कह दिया जाता जितना कि इप्सिलान का है। किंतु ऐसा कहा नहीं है। वरना रमनाथ ने रोहिणी ( आदिबरान ) के शर ५।२८ से अधिक हो तो शकट भेद नहीं ऐसा इसकी दक्षिण मर्यादा ५॥ अंश के प्रदेश की बता दी है।

यदि क्षण भर के लिये इसे ताराभिन्न भेद युति मान भी लें तो झीटागणना से इप्सिलान का भोग ४८° ३५'३ होने के कारण यह मंथोक्त मानसे +१° ३५'३ तथा इसका शर + ३५१° अधिक है। इससे जब कभी इसकी विव भेद युति हुई तो भी वह शकट भेदयुति कहा नहीं सकती क्योंकि प्रयोक्त की तुल्यता से इसके भोग शर ९५'३ व ३५' कलाओं से अधिक हो जाते हैं। इसलिये यहाँ 'शकटाकार प्रदेश युति ही' माननी पड़ेगी, अस्तु

इस गाँडे के आदिबरान और इप्सिलान न मर दो तारे बड़े प्रानि के होने से धाम दक्षिण चक्रस्थानीय हैं। भारतीय नक्षत्रों में इप्सिलान को गर्ग और क्रोप में गर्गरी मंथनपात्र, कुम्भकाराख व रथ चक्र के अर्थ में कहा जाने से गर्गरी को ही आगे नक्षत्रि वाचक गर्ग के नाम से कहने लगे। ऐसी गर्ग की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट होजाता है। दूसरे आदिबरान का गर्ग नाम न होकर रोहिणी जाने का कारण उसका लाल रंग है। जोकि रोहिणी=रोहिणी ऐसा इसका नाम पड़ गया है। शतपथ ब्राह्मण ( ३.२.४.१४-१५ ) में तो इंद्र देवता ज्येष्ठा रोहिणी, सोमक्रयणी राहिणी और मघा आर्द्रा को भी; रोहित कहा है। क्योंकि; इन के तार लाल हैं।

तारी पुंज के धाँटा, डेल्टा, व्यास नामक जुड़े हुए दो दो तारे दमनक ( शरद पृष्ठ वर्तीय भाग ) हैं। दोनों चारों की रेखाओं के धुरस्वनाय जोड़के 'शक्रटाग्रिम' तारा 'टाऊ तारी' है उसका कदम्बाभिमुख नाक्षत्र भाग ४८° १९' शर ८° ४३' उ० है। यद्यपि रोहिणी शकट के ५ तारे होकर ईशान्याभिमुख प्रातिवृत्तीय जड़ेपर उसके दोनों पुंजों का अग्रभाग "टाऊ"पर पिका हुआ है। एटलस में आकृति देखने में एवं मंथोक्त के हारण की शक्ति से शक्रटाग्रिम भाग दर्शक तारना "टाऊ" है, और तै. सुत्रि ३ मन्वन्थ मा. के उक्त प्रमाण में ज्येष्ठा व श्रवण के तीन तीन तारों में मध्य में योग लागू के अनुसार धाँटा+मन्वन्थ के बीचमें आदिबरान को ही मुख्य तारा मानने में इप्सिलान वगैरे तारों का पुंज में नामांतर होता नहीं है। और शस्त्रीय ग्रंथों में पांच तारों का ही पुंज माना गया है, तथा सभी ग्रंथों में आदिबरान को ही रोहिणी के नाम से कहा है, इसलिये अब हमें शकट भेदी प्रदेश



का निश्चय इन मुख्य दो तारों के मध्य में ही करना चाहिये । आल्डिवरान का भोग  $8^{\circ} 51' 50''$  शर  $9^{\circ} 12' 20''$  द. है । इसलिये इन दोनों का मध्य निम्नलिखितानुसार निश्चित होता है भोग  $= 8^{\circ} 51' 50'' - 8^{\circ} 51' 50'' = 2^{\circ} 12' 20''$  अर्ध  $2^{\circ} 12' 20'' ::$  मध्य  $8^{\circ} 51' 50''$  शर  $= 10^{\circ} 14' 30'' - 8^{\circ} 51' 50'' = 1^{\circ} 22' 40''$  अर्ध  $1^{\circ} 22' 40'' ::$  मध्य द.  $2^{\circ} 12' 20''$  अर्थात्-भोग  $8^{\circ} 51' 50''$  शर द.  $2^{\circ} 12' 20''$  शकटाकार सन्निवेशका मध्य स्थल है । यानी यहां पर ग्रह आनेपर वह रोहिणी शकटाग्र भाग के ठीक मध्य में होने से ही ग्रंथों में  $8^{\circ} 51' 50''$  भोग व दो अंश के ऊपर दक्षिण शर लिखा है उससे इसकी एक वाक्यता हो जाती है । इसकी व्याप्ति भोग  $8^{\circ} 51' 50''$  से  $8^{\circ} 51' 50''$  तक तथा शर  $=$  द.  $2^{\circ} 12' 20''$  से  $2^{\circ} 12' 20''$  तक के प्रदेश में है ।

क्योंकि उक्त कथन की पुष्टि में लल्लु सिद्धान्त आदि के और भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जैसे:—

“प्राजापत्यदले (  $8^{\circ} 51' 50''$  ) स्थितस्तु हिमगुर्यान्म्ये शरांशैस्त्रिभिर्विच्यंशैः (  $2^{\circ} 12' 20''$  ) शकठं भिनत्ति विदलैः स्तैः पंचभी रोहिणीम् ॥ सौम्यैः पंचभिरंशैश्च सदलैस्तारां मघामध्यमां विक्षेपेण विवर्जितश्च गुरुभं पौष्णं तथा वारुणम् ॥ ११ ॥ ( लल्लुसि. भप्रह युत्यधिकार ) अर्थात्—रोहिणी नक्षत्र के अर्धभाग  $8^{\circ} 51' 50''$  में जब चंद्रकी स्थिति हो और उसका शर  $2^{\circ} 12' 20''$  दक्षिण होवे तो वह चंद्रमा; शकट का भेद करता है । तथा शर  $8^{\circ} 51' 50''$  अंश द. हो तो रोहिणी पुंज की भेद युति करता है । इसी प्रकार मघामध्य  $1^{\circ} 22' 40''$  स्थित चंद्र का उत्तर शर  $9^{\circ} 12' 20''$  अंश होवे तो मघा नक्षत्र ( पुंज ) को भेदता है । आगे अपने अपने विभाग के मध्य में शर रहित चंद्रमा (  $10^{\circ} 14' 30''$  पर ) पुष्य को, (  $14^{\circ} 31' 20''$  पर ) रेवती को तथा (  $21^{\circ} 21' 20''$  पर ) शततारका नक्षत्र की भेद युति करता है ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त भेद युति नक्षत्र पुंज प्रदेश के उपलक्ष में कही गई है । न कि कोई तारे के लिये ॥ उममें भी जो “ दले ” वाक्य में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है वह ‘ तस्मिन्नितिनिर्विष्टे पूर्वस्य ’ ( पा. सू. १.१.१६ ) इस व्याकरण के कथन के तुल्य मध्य के अंतर्गत अर्थ को बोधित करता है । तथा इन सारों युति में से [ १ ] सू. सि. के प्रमाण में कही हुई शकट प्रदेश की व्याप्ति (  $8^{\circ} 51' 50''$  से  $8^{\circ} 51' 50''$  ) के मध्य के  $8^{\circ} 51' 50''$  निकट  $8^{\circ} 51' 50''$  में लल्लुचार्य ने कही है । [ २ ] यही द. शर  $8^{\circ} 51' 50''$  पर रोहिणी पुंज की भेद युति कहाती है, [ ३ ] मघा की योग तारा यद्यपि लिओनिस की अल्का ( रेगुलस ) योग तारा ( भोग  $1^{\circ} 22' 40''$  शर  $9^{\circ} 12' 20''$  उ. ) है । किंतु यह ‘ भरण्यामेयपिण्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ’ सू. सि. के कथनानुसार अपने पुंज के दक्षिण तर्फ होने से [ २ ] ईटा लिओनिस ( मो.  $12^{\circ} 51' 48''$  श.  $5^{\circ} 11' 50''$  उ. ) और [ ३ ] ग्यामालि. ( मो.  $12^{\circ} 51' 48''$  श.  $1^{\circ} 18' 50''$  उ. ) होने से मघापुंज क्रांति, वृ.

के उत्तर में निश्चित होता है। तदनुसार मघा मध्य ( १२६।४०' भोग और ५॥ अंश दार ) पर मघा पुंज की भेद युति; इसी प्रकार पुष्य, रेवती शततारका की भेद युति; पुंज के ही मध्य में कही गई है।

यदि इनके योग ताराओं की भेद युति कहें तो भी झूठागणना से वह अपने विभाग को लांचकर भाग के विभाग में चले जाने से शास्त्रोक्त से मेल रहता नहीं है किंतु चित्रागणना से शास्त्रोक्त की एक वाक्यता होती है। यह निम्नलिखित समीकरण से ज्ञात होगा। और परीक्षणमें बताए हुए अंको में कितनी गलती है सो भी स्पष्ट माहूम हो जायगी [ उदाहरण के लिये ज्योतिर्गणित ( पृष्ठ २३३ ) में गर्ग के विधान युति के संबंध के एवं शके १८०२ पौषमास के सायन भोग कोष्टक; देखिये. ]

### रोहिणी शकट भेद के संबंधमें समीकरण ( अ )

विवरण ( १-२ )	झांटा गणना	चित्रा गणना
इस्तिस्नान डारी याने	अ. क. विरुला	अ. क. विरुला
गर्ग का सायन भोग	६६।४७।५८.८	६६।४७।५७.८
अयनांश	-१८।१२।४२.३	-१२।१०।५१.२
वेधसिद्ध सूक्ष्मगणितागत भोग; =४८।३२।१६.५		=४४।३७।७.६
परीक्षण में कहे हुए	-४७।२२।	-४४।२२।
अंकोंमें इतनी गलती (अंतर) है + ११३।१९.५		+ ०।१८।७.६
इसी इस्तिस्नान डारी के.....		
उक्त भोगसे	४८।३५।१६.५	४४।३७। ७.६
लच्छाचार्योक्त	- ४६।३०।	- ४६।३०
( प्राजापत्यदले ) का मेल		
नहीं मिलता है।	+ २। ५।२३.५	- १।५२।५२.४

### मघामध्य और अन्य ताराओं की युति के संबंध में समीकरण ( य )

उद्धोक्त मघा मध्यभोगसे	१२६।४०।	१२६।४०
योग तारा ( रेग्यूलस ) के	-१२५।५८	-१२६। ०
भोग का	+ ३।१८ बहुत अंतर	-०।४८ स्वल्पान्तर है

इमलिये शिष्टागणना मे मेल नहीं मिलता है ।		और चित्रापे मिलता है
पुष्य के विभागाल्य	१०६।४० मर्यादासे	१०६।४० मर्यादा से
योग तारा से	१०८।११ तारा	१०४।५३ तारा
चंद्र बिंब की तुलना	+ २।११ विभागोलुपित	-१।७७ विभागातर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्त अयुक्त है	शास्त्रोक्तमे युक्त है
शतत र का विभागाल्य	३२०।० मर्यादास	३२०।० मर्यादासे
योग तारा से	३२१।४२ तारा	३१७।४४ तारा
चंद्र बिंब की तुलना	+ १।४२ विभागोलुपित	-२।१६ विभागातर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्तमे अयुक्त है	शास्त्रोक्त से युक्त है.
रेवती विभागाल्य	३६०।० मर्यादा स	३२०।० मर्यादा से
योग तारासे	३६०।० तारा	३५६।२ तारा
चंद्र बिंब की तुलना	०।० विभागोलुपित	-३।५८ विभागातर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्त से अयुक्त है ।	• शास्त्रोक्त से युक्त है ।

इस (अ) समीकरण से स्पष्ट रीतिसे मालूम हो जाता है कि इप्सिलानटारी शकट भेदी तारा नहीं हो सकती और रोहिणीकी योग तारा आल्डिबरान है । उसका लङ्काक युति स्थान से (सिर्फ ३३ कला मात्र अंतर रहने से) मेल मिलता है । शीटा गणना से ३४ अंशांतर होने से बिल्कुल मेल नहीं है । ऐसाही (३) समीकरण से मघा की योग तारा का सिर्फ ४८ कला मात्र अंतर होनेसे मेल मिलता है । शीटा ग. से ३३ अंशांतर है । बाकी पुष्य शत तारका व रेवती की योग तारा से चंद्र की युति तो शीटा ग. से उस नक्षत्र की मर्यादा (विभाग) को लायकर आगे के नक्षत्र में चले जाने के कारण शास्त्रोक्त से अयुक्त है । और चित्रा ग. से अपने विभाग में ही रहने से शास्त्रोक्त की इससे एक वाक्यता होजाती है ।

### परीक्षण ७ (ई)

शिवाय अयनाश १९ प्रमाणें ता. २९-१३० रोजी गणितानें रोहिणी शकट भेदी तान्याशी जाहलेली गुरुची युति आकाशात सर्वांचा दृक्प्रत्ययास आली ही गोष्ट ता. २८-१-३० व १-४-३० या तारखाच्या केसरी मध्ये २। पवार यानी प्रसिद्ध केला आहे. वंती कोणाम ही खोडून काढता आली नाही. हा एक दृक्प्रतीतीचा अनुभव लक्षात ठेवण्या सारखा आहे.

### समाधान ७ (ई)

उक्त कथन अडाणी मनुष्य के रहने के तुल्य हाथ्यस्पद है । क्योंकि उस समय सूर्य सूर्याय हो या कंदर सूर्याय इमिल न टरी के साथ गुरुका युति हुई नही है । फिर शास्त्रोक्त रोहिणी शकट भेदो दूर हो रहा । देखिये ता. २९५१-३० के नटिकन आत्म नोंक द्वारा -

### ध्रुव सूत्रीय के लिये समीकरण

विवरण	विपुलाश	क्रांति
इन्स्टिटान तारे के	६६°७'९५	११°११'४२.५ उ.
गुरु के	<u>६४°३५'७९</u>	<u>१०°१८'१२२.५ उ.</u>
विपुलाशों में बहुत अन्तर है।-११३९.२०		+११२६।४०.०

अर्थात् तारेसे गुरु इतना=पश्चिम में और उत्तर में रहा है। और परस्पर सरल रेखा कारान्तर २°१६'५४ होनेमें इनके बिच प्रान्तोंमें भी २°१६' का अंतर रहता है। इसलिये न तो भेद युति हुई। न समसूत्रीय हुई है।

### कदंब सूत्रीय के लिये समीकरण.

विवरण	सायन भोग	शर
इन्स्टिटान तारेके	६°७'३०	२°१४' द.
गुरु के	<u>६६°१२८</u>	<u>०°५९ द.</u>
सायन भोग शरों में इतना		
बहुत अंतर है.	-१११२	-११३९ द.

अर्थात् उक्त तारे से गुरु की युति होने के लिये १ अंश १२ कला और चाहिये। ऐसा ही शर में (१°१३९') अंतर होने से उतना गुरु उत्तर में है। और परस्पर रेखाकार अंतर २°१२'१२ होने से इनके बिच प्रान्तों में भी २°१२' का अंतर रहता है इसलिये न तो भेद युति हुई न सम सूत्रीय हुई है।

इस प्रकार वेधसिद्ध प्रमाणों के गणित में ध्रुवसूत्रीय या कदंब सूत्रीय (उक्त तारे के साथ) गुरु की युति नहीं होते हुए भी रा. पंचार बोआ की (गळती को कौन तपास सकता है। ऐसी घमंड में; या नहीं समझें हों तो अड़ना से) गोविंदराजजी प्रशंसा करते हैं आश्चर्य है। वस्तुतः इस समय झोटा गणना के पंचांग से 'वृषे सप्तदशे भागे' में गुरु काकार भी युति के नहीं होने से झोटा का मृदापन यानी अशास्त्रता व निराधारता तो प्रगट होती ही है। किंतु ऐसी असत्य युति के बताने से झोटा पक्षियों की गणित शास्त्र प्रावाण्यता कितनी है यह चौंके जा जाते हैं। इसी केसरे में प्रकाशित लेख का खंडन - एलीचपुर वास्तव्य ज्योतिर्भूषण प. गादिनाथ शास्त्री जुबेट ने ता. २/१/३० के 'ज्ञानप्रकाश' (पुणे) के पृष्ठ में कर दिया है। उगमें तुम्हारे मपूर्ण लेखों के धुर उडा दिये हैं। इसलिये अब आपको यह कहने का अधिकार ही नहीं है कि 'कोणास ही खोहून

कादता वाली नहीं' यह कहना नितांत असत्य है। (देखिये ज्ञानप्रकाश ता २-३-३० का अंक.) साराश जो घात प्रत्यक्ष के सूक्ष्म गणित से हल हो गई है। उसको भिन्न कोटी क्रम से समझाना तज्ज्ञ पुरुषों का काम नहीं; अडाणी का है।

## विधान ८.

अब हमें यहा यह प्रश्न हल कर देना समुचित है कि 'उक्त शून्यायनाश वर्ष (शक ११३) से आगे के प्रथकारों ने इसके अनुसार अयनाश माने हैं या नहीं। और माने हैं तो किस रूप में माने हैं।' इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि शके १०० के बरीष में ब्रह्मगुप्त और लङ्काचार्य ने आपके बनाए प्रयोगों में नक्षत्रों के ध्रुवों के साथ यद्यपि चित्रा के १८३ व १८४ अंश कहे हैं। सो प्राचीन एवं कृतायन दृक्कर्मक समझकर कहे हैं। क्योंकि उनके कालमें यह ध्रुव स्थूल माने गए थे। अतएव लङ्काचार्य ने 'प्राजापत्यदले' आदि श्लोकों से प्रत्यक्ष वेधसिद्ध युति स्थान को अल कहा है। और भास्कराचार्य ने भी सिद्धान्तशि. में लिखे हुए ब्रह्मा गुप्त के ध्रुवों के संबंध में लिखा है कि "ये पाठपठिता स्ते स्थूलाः। अत्रायनाशानामस्त्वेष्वेऽल्पमन्तरं कृतेऽपि तस्मिन्कर्मणि भवति। बहुत्वे बहु। अतो यदा बहवो यनाशास्तेदेव कर्मावश्य कर्तव्यमित्यर्थः।" "ब्रह्मागुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्नकृतः स्फुटः॥ स्थित्यर्थं परिलेखादौ गणितागत एव हि।" (दृक्कर्म वासना तथा युत्यधिकार श्लो ११) अर्थात् यद स्थूल हैं। अभी थोड़े अयनाश होने से थोड़ा अंतर है आगे अधिक अयनाश होंगे तब अधिक अंतर होजायगा। इसलिये युतिज्ञान के स्थित्यर्थ के परिलेख आदि लिखने में गणितागत भगण के परिमाण ही लिखना चाहिये। इत्यादि कहा है।

तथा "यहा किलैकादश ११ यनांश स्तदा" शके १०७२ (सि. शि.) में भूत कालीन अयनाश २१ कहे हैं। और शके ११७५ (करण कुतूहल अ. १ श्लो. १७) में— "अथा यनांश करणाब्द लिप्ता युता भवा ११ स्तद्युतमध्यमानो ॥" इसमें जो वेध अंशक्रमक अयनांश ११ कहे हैं। वहां टीका में "कला विहायात्र भवा एवोका." "कला अंशक्रमक अयनांश ११ कहे हैं। वहां टीका में "कला विहायात्र भवा एवोका." "कला के अंशों को त्यागकर केवल अंशों को लिखे हे" इत्यादि भास्कराचार्य के कथन से तात्पर्य निकलता है कि; "अमीतक ठीक ठीक अयन गति निश्चित हुई नहीं है इसलिये सामानिक वेधों पर अयनाश लेकर तदनुसार अयन गति को भी निश्चित करनेना चाहिये। ऐसा ही केन्द्रीयमान को साथ लेकर गोल बन्वापिकार श्लो १७-१९ का वासना में इस विषय को और भी स्पष्ट कर दिया है। जैसे— "तत्स्थं ब्रह्मागुप्तादिभिर्निपुणैरपिनोक्त इति चेत्। तदा स्वल्पत्वात्तर्जोपलब्धः। इदानीं बहुवात् सांप्रतिवैरूपलब्धः। ...। यतो महानां मन्दफलभावस्थानानि तान्येव मन्दोच्चस्थानानि। तान्येव निक्षेपाभाव स्थानानि तान्येव

पात स्थानानि । किंतु तेषां गतिरस्ति नास्ति चेति संदिग्धम् । तत्र मन्दोच्चपातानांगतिरस्ति । चंद्रमंदोच्चपातरदित्यनुमानेन सिद्धा । .... । तर्हि सांप्रतिकोपलब्धनुमागिणी कापि गतिरङ्गी कर्तव्या । यदा पुनर्महता कालेन मद्दन्वरं भविष्यति तदा महामतिमन्तो ब्रह्मागुप्रादीनां समान धर्माण एवोत्पत्स्यन्ते । ते तदुपलब्धनुसारिणीं गतिगुरुरीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति । “ अथ च ये वा ते वा भगणा भवन्तु । यदा चैऽशा निपुणैः पलभ्यन्ते तदा स एव क्रांतिपात इत्यर्थः । ”

इस प्रकार के भास्कराचार्य के कथन से एवं ब्रह्मागुप्तादि के कथन के भाव को और गणितागत परिमाणों को देखते निश्चिन होता है कि इनके कहे वर्तमान उच्चमिश्रित पाने मंदरेद्रीय के तुल्य हैं । तथा उच्चाधिक्य के कारण उनका संक्रमण दो तीन दिन पहले होने से षट् सायन भाग मिश्रित भी हो गया है । कारण की बेधोपलब्ध उच्चाधग से मंदरेद्रीय भव्यन और समान से भगनों का धारमस्थान टट्टराने में उच्च और संपात की वास्तविक गति की अपेक्षा रहती है । किन्तु उग गमप में उमका पूर्ण शोध नहीं लगा था । इसलिये बेधोपलब्ध मंद और अयनाशों का उपयोग करना ' ऐसा भास्कराचार्य के सिद्धों का आशय है ।

### परीक्षण ८ ( अ )

मानलें. सिद्धान्तांत तो म्हणतो-“ यदिभिन्नाः सिद्धान्ता भास्कर संक्रांतयोऽपिभेदसमाः॥ सप्तप्रः पूर्वस्यां विपुत्रत्यर्कोदयेयस्य ॥ ( ब्र. गु. सि. अ. २४, श्लो. ४ ) ” ‘ जर सिद्धान्त भिन्न असतील तर सूर्याच्या संक्रांति ही ( भिन्न ) त्या भेदाप्रमाणे झाल्या पाहिजेत. परंतु तो सूर्यंतर विपुत्रदिवशी पूर्वेस सूर्योदशी स्पष्ट दिसतो. ’ याचें तात्पर्य इतकेच की, आकाशांत सूर्यसंक्रमण भिन्न भिन्न काळीं दिसावयाचें नाहीं. यांत विपुत्र-दिवशीच्या सूर्योदयकालचा उल्लेख आहे. यावरून तो सायन सूर्यच होय आणि प्रत्यक्ष वेधानें ब्रह्मगुप्तानें ही गोष्ट दिली हें स्पष्ट आहे । ब्रह्मगुप्तास अयनगति माहित नव्हती. त्याच्या पूर्वी ती माहित असेल तर त्याने ती विचारांत घेतली नाहीं, यांत तर संशय नाहींच. यामुळें त्याच्या दृष्टीनें सायनसूर्य आणि ग्रंथागत ( नाक्षत्र ) सूर्य हा भेद नाहींच. सायनसूर्य सोच सिद्धान्तावरून निघेल असें त्यानें केलें. सिद्धांता-नंतर १७ वर्षांनीं त्यानें खंडखाद्य ग्रंथ केला. आणि त्यांत वर्णमान मूल सूर्यसिद्धांताचें घेतलें आहे. भास्कराचार्यानें “ कथं ब्रह्मगुप्तादिभिर्निपुणैरपि ( क्रांतिपातो ) नोक्त. ” असें म्हटलें आहे. यावरून ब्रह्मगुप्ताच्या ग्रंथांत मूळचें असलें अयनगतीविषयी काहीं नाहीं असें दिसतें. ” ( भा. ज्यो पृ. २१९ २० पहा ) “ उच्चं आणि पात यांची गति फार सूक्ष्म आहे, इतकें आमच्या ग्रंथकारांच्या लक्षात आलें होतें. हा पण त्यांच्या गुण घेतला पाहिजे. ”- ( पृष्ठ २०७ ८ ) इमलिये कह' गया है कि ब्रह्मगुप्त को अयनाश का भेद माह्दम नहीं होने से दृश्य अयनभाग के तुल्य ( जेमाकि ब्र. गु ने ऊपर विपुत्र-दिनका सूर्य कहा है सो ) सायन कहे गये हैं. अतः तो शब्द जाळ का आडार न रहा.

जगति गोविंदराजजी कबूल करते हैं कि भोग शरों में से ब्रह्मगुप्त को अस्फुट ( कदव-सूत्रीय ) शरोंको ध्रुवसूत्रीय कहते नहीं बने तब अस्फुट भोग भी ध्रुवसूत्रीय स्फुट कैसे और कहासे हो सकते हैं । भास्कराचार्य ने ‘ ये पाठपठितास्तेस्थूला ’ ऐसा जो कहा है; सो केवल शर- के संबंध में ही कहा होता तो ‘ पातोऽस्फुट भानुः स्फुट भानूना भवेत्पातः ’ नहीं कहकर स्फुट भोगों के सायनांतर से वह क्रांतिपात को कह सकता था । और चित्राभोग १८३ से उस समय ( शक १०७२ ) में अयनाश ८ या ९ कहना था किंतु भास्कराचार्य ने प्रागुक्त भोगों को स्थूल मानने के कारण अयनाश ११ कहे हैं । यह भी पूरे काळीन कहे हैं । क्या इससे बड़की छाल पीपल को लगाना कोई तनिका भी ज्ञान रखनेवाला कह सकता है; कदापि नहीं । फिर सामान्य पाठकों के आखों में निराधार औन्मात्तिक ग्रन्थों द्वारा घुल कौन फेंक रहा है । इसका शांत चित्तमे गोविंदराजजी ने ही निचार करना चाहिये ।

### विधान ८ ( आ )

उपर्युक्त भास्कराचार्य के कथन से अब सत्र ग्रंथों की परंपरा प्रामाण्य से यह बात निःसंदेह सिद्ध होती है कि हमारे सिद्धान्त ग्रंथकारों ने ग्रहोंके उच्चस्थान और पात स्थानों

का तथा ब्रह्म गुप्त व डल्लाचार्य के अतिरिक्त ग्रंथ कारोंने अयनांशों का वेध द्वारा कुछ स्थूल क्यों न हो निर्णय कर-पत्तों लगा लिया था. किन्तु उक्त परिमाणों का एक चक्र पूर्ण होने में हजारों लाखों वर्ष लगने से उसकी गति का यथार्थ निश्चय उस समय में नहीं हुआ था। अब हो गया है इसलिये कुछ थोड़ा वैद्वान् भाग वर्तमान में और फल साधनों में मिल जाने के कारण; हमें उनसे कहीं हुई अयनगति के आधार पर शून्यायनांश वर्ष आदिको नाक्षत्र वर्ष मान लेना अयोग्य है। क्योंकि वह मंद वैद्वान् वर्ष हैं। अतः यदि कक्षा कैद्वयुति के अनुसार मंद परिधिद्वारा फलान्तर और कैद्वान्तर का स्तरार करे तो ग्रंथ कारों के कहे शून्यायनांश वर्षों से भी वही अयनांश आकर उन से उक्त गणित का एववाक्यता, हो जाती है।'

### परीक्षण ८ ( आ )

हैं विधान भामक आहे व असत्य आहे. मास्तराचार्यांनी ब्रह्मगुप्ताचा आशय स्पष्ट केला आहे. त्यांनी मेघादि म्हणजेच रेवती तारा व मेघादि व वसत रंपात या मधील अंतर तेच अयनांश असे स्पष्टपणे सांगितले आहे. या वरून रेवत भोगाचा अयनांश साधनात उपयोग केला आहे यात त्रिभुज सहाय नाई असे पूर्वीच [ विधान ४ चे परीक्षणात ] सिद्ध करून दाखविले आहे. प्र. ला. कारांनी रेवती भोग ० दिल्या कारणाने त्याच ही आशय अशाच प्रकारचा आहे हे स्पष्ट आहे.

### समाधान ८ ( आ )

परीक्षण में वही बातें विवृक्त झूट हैं। न तो परीक्षण ४ में अनर्थक प्रमाणों के सिवाय आप कोई ग्रंथ का प्रमाण देकर कुछ सिद्ध कर सके हैं. तथा थोड़ा छुट कर है. समाधान में उसके धुरें उड़ा दिये गये हैं। क्योंकि मास्तराचार्य ने ' भान्यश्विनवारीनि । महास्तु भगणादावश्विनी मुखे निवेशिता । भचक्रेश्विनी मुखे १ (सि. शि. श्रे. १४ पृ. ६) भगणारम्भे अश्विनीको कहा है । तथापि अश्विनी वाग तारा से भगणारम्भ की गणना नहीं करके अयनांश साधन में ' यस्मिन्दिने सम्यक्प्राच्यां खगदिनोदयस्तद्विषय दिनम् तस्मिन्दिने गणितेन स्फुटो खग कार्य । तत्पर्ययेमपदेक्ष्यन्तर से यनांशायेता । यदा किलैकादशायनांशास्तदागोखसन्धि (१११९) (११२९) (सि. शि. पाताधि पृ. २२६ श्लो २) गणितगत मेघादि के मित्राय रेवती का नाम निर्देशतक किया नहीं है। ऐसे ही प्र. ला. कारोंने " वेदाध्यधून खगमहान शरीऽयनांशा " (प्र. २०७ पृ. ८४) शक १४४२ में अयनांश १९° ३८' को छाने के लिये उपरोक्त श्लोक से साधन किया है। दोनों ने भी मधुर्को व उपयोग बिचकुट किया नहीं. इसी से स्पष्ट हो जाता है कि प्रकथित है. तब रेवती की तो वार्ता ही क्या रही वह तो निरूपयोगी स्वयं सिद्ध हो गई है.



## विधान अयनगति ९ ( क )

नक्षत्रों से अयनांशों के निश्चय में केंद्र फलांतर वगैरे के संस्कार की कोई आवश्यकता रहती नहीं है ! केवल नक्षत्रों के निजगति के कारण थोड़ा फरक पड़ता है किंतु २७ नक्षत्रों में एक चित्रा का ताराही अत्यल्प निजगति का है, कि उसके द्वारा साधन किये हुए अयनांश शुद्ध अयनगति के आविकला साम्य आते हैं । इसको उदाहरण देकर स्पष्ट करता हूं । ज्योतिर्गणित पृष्ठ ६४ में शक्र १८०० के मेपार्क कालिक आयनांश २२।८।३३ लिखे हैं जहां से शाके १८४७ पौष व० २ ता० १।१।२८ पर्यंत के गताब्द ४७।८ की [ ज्यो. ग. पृ. ८६ प्रोक्त ] शुद्धायन गति की सारणी से अयन गति ४०°११'२७ और संस्कार ०°२६ इनका जोड़ ४० कला १५.२ यानी २ विकला इस को शाके १८०० के अयनांशों में मिला देने पर  $[ २२°१८'१३३'' ] + [ ४०°१२'' ] = [ २२°१४८'१३९'' ]$  शाके १८४७.८ के अयनांश हुए । इसमें चित्रा का भोग १८० अंश मिला देने पर चित्रा का सायन भोग २०२°१४८'१३९" हुआ है । तथा दूसरे प्रकार से इस समय के नाटिकल अटमनाक [ ता० १-१-२६ ] से चित्रा [ स्थायका ] के विषुवांश २००°११९'१२" ६५ व्रांति + १०°४६'३१" ७२ रवि परम क्रांति २३।२९।५१'५३ द्वारा

### ( चि=चित्रा ) तारे से अयन गति ( ख ).

चि. क्रांति छाया घातांक	९ २७९४७७६
चि. विषुवांशमुज्या	९°५४'०७'११
अंतर=परम क्रांतिछाया	९°७३'८७'८५
परम क्रांति	२८°१४३'१०"१४६
रवि परमक्रांति	५३।२६।५१'५३
अ=	५।१९।२५'९०
ब छाया ( घातांक )	९°६२'५६'६९८
अ कोटीज्या	९°९९'८१'५७५
जोड़=भोग छाया	९°६२'३८'२७३
चित्रा भोग:	२२°१४८'१३४".७२=

चि. क्रांति कोटीज्या	९.९७२०८४५
विषुवकोटीज्या	९.९९२२७३९
जोड़ ब कोटीज्या	९.९६४३५८४
ब	२२°१५३'१४७'१२२
ब भुजज्या ( घातांक )	९.९९००२८२
अ भुजज्या	९.९६३३६२५
जोड़=अ भुजज्या	९.९५३४२०७
शरः ( दक्षिण )	२।२।३९'५०
( क )=चि. सा. भोग	२०२°१४८'१३५"
( ख )=चि. सा. भोग	२०२।४८।३५

अर्थात् दोनोंही समयकी शुद्ध अयनगती एवं सप्तम भोगांतर गति त्रिकुट आधिक-लासाम्य मिलती है । इसीलिये शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान और सूर्य चित्रा युतिरूप वर्षमान एवं अयनांश इन सब की आपसमें सार्वत्रिक शुद्धता रहती है । इसमें भास्कराचार्य के [ १।१३० ] तथा प्रहलादन के ( १६।३८ ) अयनांश और वर्षमानदि में केंद्र फलांतररूप संस्कार करने

पर उन सच कि चित्रा गणना से ही एक वाक्यता होती है। अन्य तराओं में उनकी निजगति का संस्कार करने पर उनके अयनांशदि परिमाणों की भी चित्रा से ही एक वाक्यता होती है। अतएव चित्रा गणना सर्व श्रेष्ठ एव शास्त्र शुद्ध है।

## परीक्षण ९ ( अ )

विधानात् सागितलें आहे की त्यानीं निश्चित केलेले अयनांशाचे चित्रा सन्मुख विंदु-पासून काढलेल्या अयनांशाशी आविर्भूत साम्य आहे. हें खरें नाही, हें सिद्ध करण्याकरिता योजिलेली युक्ती वाढेल त्यास उपयोगात आणिता येईल परंतु या युक्तीनें रैवत पक्षाचे हीं अयनांश येऊ शकतात असें त्यांना सहज कळून येईल. त्यागर्तम वगैरेचा उपयोग करून चित्रा तांत्र्यावरून जसें अयनांश दीनानाथजींनीं काढून दाखविले आहेत तसेंच ज्यो. ग. पृ ३९१।३९२ वर रेवती तारे पासून ( क्षिटा पिशीयम ) रैवत पक्षाचे अयनांश तशाच लागत-माण्या रीतीनें काढलेलें आहेत ते पहावें।

## समाधान ९ ( अ )

उक्त परीक्षण दास्यास्पद है। क्योंकि यह तो कोई भी गणितज्ञ स्वीकार नहीं करेगा कि 'चाहे जिस अर्थों से उपरोक्त पद्धति से शास्त्र शुद्ध अयनांश आ सकते हैं। न कोई प्रथकार ने गोविंदराजजी के कथन के तुल्य अयनांश बताए हैं। वस्तुतः अर्थ प्रथोक्त पद्धति से जितने प्रकार के अयनांश बताए गये हैं वह सच चित्र गणना के निकट में हैं। उन में योग्य संस्कार देने पर सूक्ष्ममान से उनकी एकवक्यता होजाती है। फलतः एक आपने ज्योतिर्गणित का उदाहरण देखने का कहा कि तु गोविंदराजजी के दैव की बात है कि उसी प्रथकार ने इस के सच का भ्रम निवारण प्रकाशित कर दिया है। और वह इस प्रकार है —

पुणें केसरी ता॥ १५-२२१ —“ केसरीच्या ता. २५-१-२१ च्या अकांत ज्योतिर्गणित-तात्तील शेषटप्प्या दोन छोकांचा पंचांगप्रवर्तन अभिटीच्या सेक्रेटरी नी जो अर्थ केला आहे तो आमच्या अभिप्रायाला पारच सोडून आहे त्याच्या प्रमाणें इतर वाचकजनांची गैर समजूत होण्याचा समज दिसून आल्यामुळें जेणें करून आमचें मत असदिग्धपणें वाचकांच्या लक्षात येईल अशी सुधारणा करून तयार केलेलें त्या दोन छोकांचे रूपानर आम्हां पुढें दिले आहे, तिकडे वाचकांनीं लक्ष घातें।

“ शाके पद्मगोविं ( ४९६ ) तुल्ये सति विपुवमभूदेवतीतारकाया, चंदाशौ सौर-वर्षे सदलवमु ( ८॥ ) विनादयुग्मिताधिक्यभावात् ॥ मन्द मन्द पुरस्तात्स्थलमयि

सदा रेवतीषो युगादौ, चित्रायाः सन्मुखं संप्रति भवति पुनर्निसरादधतश्च ॥ १ ॥  
तस्मा द्वयप्रवृत्तिं पुनरपि हि सदा रेवतीतारकायां इच्छद्भ्यः स्वैरबुध्या प्रचरविरहितो  
रैवतः पक्ष उक्तः ॥ इच्छेतुं नोरहेरन् सुचिरपरिचितां वर्तमाना प्रवृत्तिं तेभ्यः सद्भ्यो  
मयांगी कृतविषयपर श्रेयपक्षो निबद्धः ॥ २ ॥ पुणे ता. २-२-२१—वैकटेश बापूजी  
केतकर. १'

### परीक्षण ९ ( इ )

पं. दीनानाथ यानी शके १८४८ मध्ये चित्रे वरून अयनाश २१ । ४७° । ३४' ७२  
फाडिले आहेत व भास्कराचार्योक्त १०३६ पासून १८०० पर्यंत वर्षे ७२४ यात ५०°२३५७  
यानी गुणून संस्कार ०.०००११२८९५ ( ७६४ ) लावून व यात ११ । ३० अयनांश  
मिळवून २२ । ४८ । ३५ दाखविले आहेत सणजे भास्कराचार्यानी शके १०३६ मध्ये  
अयनाश ११ । ३० मानिले ही खोटी असलेली गोष्ट गृहीत धरली आहे हे उघड आहे.  
या करिता चित्रे वरून फाडलेले अयनाश खोटे आहेत. रेवती ताच्या पासून अयनाश सावन  
अशा वाम मार्गाने न जाता सरळ मार्गाने दाबविता येते. ते असे शके १८०४ पौष या  
वेळचे अयनांश फाटून दाखवितो. ( १८०४.७५-४९७=) १३०६.७५×५०.२३५७ यात  
अयनगती संस्कार ०.०००११२८९५ ( १३०६.७५ ) २ गुक्त करून अयनाश १८ । १४ । २२ ४  
येतात हे लागतमार्गे फाडलेल्या शीतीशी आनिकळात जुळतात.

### समाधान ९ ( इ )

इसको कहते हैं भूर्तता जो कि भास्कराचार्य के कहे हुये भूतकालीन अयनाशों को  
सूक्ष्ममानसे तुलना करके बताई सो तो कोई भी प्रमाण बताए बिना ( मानने उन अंशों  
को भास्कराचार्य के वर्तमानकालिक मानने पर अधिक से अधिक एक अश के अदर ही  
कुछ कलाओं का अंतर होने मात्र से ) गोविंदरामजी ने कह दिया है कि यह अयनाश  
खोटे हैं किंतु आपने खोटे शून्यायनाशवर्षलेखर खोटीअयनगतिसे भास्कराचार्यके कहे  
अयनाशों का उससे कुछ मेल नहीं बताकर शके १८०४ के मलते ही [ असत्य ] अयनाशों  
को बता देना यह न्यायनीति और गणित शास्त्र का छल है । क्योंकि कोई भी भारतीय  
ग्रंथ में शके ४९८ को शून्यायनाश वर्ष कहा नहीं है इसलिये हमने उभे खोटे कहे हैं ।  
और नाक्षत्र वर्षमान के अतिरिक्त वर्षमानों की शुद्ध अयनगति जोकि ( इसी रिपोर्ट के  
पृष्ठ १०१ में ) बताई गई है तदनुसार भारतीय ग्रंथों के वर्षमान नाक्षत्र न होते हुए  
उनकी गणना में शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान की अयनगति व्रेमेल होने से उसे हमने खोटी कही है ।  
उदाहरण भास्कराचार्य का लीनिये - ( शके १८७२-४९८= ) ५७४×५०.२३५७

इसमें अयनगति संस्कार  $0^{\circ}00011209 \times (458)^2$  युक्त करके अयनांश  $1^{\circ} 1' 12''$  भास्काचार्य के समय के आते हैं सो भास्काचार्योक्त  $11$  अयनांशों से ३ अंश कम होने से गलत है। क्योंकि मंदफल की भिन्नता के कारण अंतर पड़े तो एक अंश में अधिक अंतर नहीं पड़ सकता है। जैसा कि शक १०७२ में शुद्ध नाक्षत्र मान से अयनांश  $11^{\circ} 12'$  होते थे और भास्काचार्य ने कलाओं को छोड़कर ११ अंशमात्र मात्र कहे हैं।

शाके १८०४ में मार्गशीर्ष शुद्ध १० गुरुवार को इष्ट घटी पक्ष ५२-२३ पर सांपातिक मकर संक्रमण हुआ है। और पौष शुद्ध ४ शुक्रवार को इष्ट घटी पक्ष व्रतसिद्धांत से २९।० आर्य सि. से. ३२।१० सूर्य सि. से. ३६।४३ और शुद्ध नाक्षत्र (चित्रा) मानसे ३९।५१ पर मकरांक संक्रमण हुआ है। इससे अम्यप द्वारा अयनांश २२।१२।२८ आते हैं। और परिमाणों से भी कुछ कलांतर से यही अयनांश आते हैं। इसके तर्क गोविंदरावजी ने तनिक भी ध्यान नहीं देकर आपने चार अंशों के अंतर से अयनांश बता दिए हैं। वह बिल्कुल खोटे हैं। न तो वहां शाके ४९८ से अयनांश खाना कहा है। न कोई भारतीय ग्रंथोक्त से छायांक द्वारा आसकते हैं तथा गोविन्दरावजी गणित (१८°।१४'।२९.४") में भी गेता खा गए हैं:—१३०६.७५ = लग्नप्रतम

विवरण.	अयनगति:	संस्कार.
वर्ष गुणक	३११६१९२५	६२३२३८५०
गति	१७०१०१२७	६०६२६५५५
संकलन (से गुणन)	-----	-----
अयनांशः	४८१७२०५२	२२८५०४०५

$1^{\circ} 1' 12''$  = १८ अं, १४ क, ५५३ वि, + ३ कला, १२७७ वि. क.

दूसरा उदाहरण महालय का देखिये। महदंतर के कारण शीटागणना से गलत गिती नहीं है।

न्यास = क.

प्रमेयों का विवरण मह लघुतोक्त परिमाण तत्कालीन महदंतर शीटागणना में परिमाण

	रा. अं. क. वि.		अं. क. वि.		रा. अं. क. वि.
मध्यम रवि:-	१११९।४१।०	+	२।२।३	=	१११२।५०।३
उच्च व नीच:-	८।१८।०	+	३।२८।४१	=	८।११।२८।४१
मध्य रवि:-	१११२।५०।३	+	२।५५।१९	=	१११२।४४।१
यनांश:-	४१२।३८।०		३।५।२१	=	४१२।३०।३९

## न्यास=ख

स्वल्पांतर के कारण चित्रागणना से मेल मिलता है -

प्रमेयों का विवरण    ग्रह लाघवोक्त    ग्रहोक्त परिमाणों से    चित्राक्षीय परमाणों  
परिमाण.    स्थूलताके कारण अंतर    का तुलना

	रा. ° ' "	° ' "	रा. ° ' "
मध्यम रवि -	१११२९।४१	० - ०।४९। २	= १११८।५१।५४
उच्च व नीच -	८।१९। ०	० - ०।२९।२८	= ८।१७।००।३२
मद कैन्द्र -	३। १।४१। ०	० - ०।१९।३८	= ३। १।२१।२२
मदफल -	+। २।१०।४२	० - ०।२३।४४	= +। १।५६।२८
स्पष्ट रवि -	११।२१।५१।४२	० - १। २।-०	= ११।२०।४८।५२
अयनाश -	+।१६।३८। ०	० - ०।३०।४८	= +।१७। ८।४८
सायन रवि.-	०। ८।२९।४२	० - ०।३२। २	= ०। ७।५७।४०

अर्थात् ग्रहलाघवोक्त अयनाशों में कैन्द्र व फल संस्कारों की स्थूलता जनित स्वल्पान्तर (+०।३०।४८) का संस्कार करने पर उनकी चित्रागणना से एक वाक्यता हो जाती है। क्योंकि रवि भगणारभ में अंतर भिन्न ४९'२१ कला मात्र है। अशात्मक अंतर नहीं है। तथा वर्तमान में तो बिल्कुल धोती ही कलाओं के अंतर से संपूर्ण ग्रहों के परिमाणों से चित्रागणना की एकताक्यता हो जाती है। इसलिये गोविंदरावजी का कथन असत्य (खोटा) है।

## परीक्षण ८ (उ)

आर्यसिद्धान्तकारांनी उच्चपात व अयनाश याचे यथार्थ ज्ञान करून घेतले, या विधानाचा चित्रा किंवा रैवत पक्षाशी संबंध पोहोचत नाही। तथापि हे म्हणणे खरे दिसत नाही कारण असे होत असते तर उच्च व पात याच्या सूक्ष्म गतीचे अनुमान त्यांना करिता आले असते. परंतु तसे जाहले नाही (भा. ज्यो. पृ. २०० पाहा) अयनाश सगरी ही तशीच स्थिति आहे. प्रत्येकाने आप आपले काळी अयनाश निती होते इतके निश्चित फेल होते असे म्हणणे ही ठीक दिसत नाही उदाहरणार्थ खालील सर्व प्रयाचा काळाचे अयनाशच पहा त्या त्या ग्रंथात दिलेल्या त्या या शूषायनाश वर्षांवरून व त्याच्या अयनगती (१ कला) वरून ते काढिले आहेत (भा. ज्यो. पृ. २३९।२५९)

मुंजाल	शक ८५४	अयनांश ६।५४
राजमृगांक	" ९५४	" ८।३९
करण कमल मीर्तड	" ९८०	" ८।५६
करण प्रकाश	" १०१४	" ९।२९
भास्वती करण	" १०२१	" ९।३१
करणोत्तम	" १०३८	" १०। ०
करण धुतू हळ	" ११०५	" ११।१०
गृह छाषत्र	" १४४२	" १६।३८

या अयनांश वग्नन हें स्पष्ट आहे की सर्व मयकारांना ४३८ ते ४५० पर्यंत शून्यापनांश वर्ष मानिते आहे. य वार्षिक अयनगती १ कला मानिली आहे.

समाधान ८ ( ७ )

वाहरे समज और बुद्धिमत्ता की बलिहारी है। स्टेशन पर गाड़ी आई ऐसा प्रत्यक्ष देखने वाला कह रहा है, किंतु उस गाड़ी की गति वह भी सूक्ष्मगति जहां तक देखने वाला नहीं कहे तो "जर गाड़ी पाडिली असवी तर त्याची सूक्ष्म गतीचे अनुमान त्याला करितां आले असते परंतु तसेम्हटले नाहीं म्हणून गाडी आली नाहीं." गाडी आई हम कैसा समझ सकते हैं। यह कथन नाटकी विदूषक से भी कांक्णभर अधिक है। दूसरी बलिहारी मा. ज्यो. पृष्ठ २०० में जहा विसने कितने उच्च पात कहे उनकी तुलना करके बताई है वह पृष्ठ तो लिख दिया किंतु पृष्ठ २०८ में:—कागदावरील अंक पाहून सोडानें दोष देणें सोपे आहे परंतु आकाशांच एक विकला समजण्यास सांप्रतच्या सूक्ष्मयंत्रांनिही किती प्रयास पडतात हें ज्यास माहित आहे. तो तसा दोष वेणार नाही। वच्चें आणि पात यांची गति फार सूक्ष्म आहे इतके आमच्या ग्रंथकारांच्या लक्षांत आलें होते हा आपण त्यांचा गुण घेवला पाहिजे." तो ऐसा लिखा होने से लेख का भंडाफोड होजायगा इत भीति से वह पृष्ठ लिखा नहीं दिखता है। किंतु जैसे ज्योतिर्गणित ( म. ग. अ. ३ ) कोष्ठक ११ और ( पृ. २१५ में ) केंद्रभगण दिनों के वर्षगण से ( नांव+मध्यम केंद्र = ) मध्यमग्रह बनते हैं। ठीक उसी प्रकार ( नाक्षत्र से ग्रंथोक्त का अंतर + केंद्रान्तर = ) मध्यमग्रह ( रिपोर्ट पृ. ९८-९९ ) बनते हैं। एवं ( पृ १०१ ) अयन वर्ष गति = ( नाक्षत्र गति + वैद्रीय गति ) बनती है सो ही शुद्ध है।

नाक्षत्र वर्ष के अन्यत्र भी नाक्षत्र अयनगति लेने में विचारार्थ गुणन के तुल्य अशुद्धफल मिलता है। इससे छायार्क कणागतान्तर की एकवाक्यता कैसे मिल सकती है। यह कुछ गोविन्दरावजी को समझा ही नहीं है, क्योंकि समक्षता ता. ग्रंथोक्त अयनवर्ष गति १ कला को अशुद्ध कह नहीं सकते थे। आपने ही लिखे हुए मुंजालके उदाहरण को देखिये ( मा. ज्यो. पृ. ३३० ) लघुमानस ग्रंथ में अयन भगणाः कल्पे १९२६६९ कलि-युगारंभ (शक पूर्व ३१७९ वर्ष) में संपात का चक्र शुद्ध भोग २९९०।३७'।४०"८" था। उसमें अयन वर्ष गति ५९'९००७ मिळा देने पर ( वर्तमान शकिक ) अयनांश होते हैं। जैसे वर्तमान शक में ( २८५१+३१७९ = ) ५०३०×६९९००७ = ८१'।४१'।४०'५ यह युक्त कर देने पर सांप्रत में अयनांश २३'।२९'।२१-३" ( मुंजालोक्त मेपार्क से सम्पातान्तर रूप ) आते हैं यह चित्री अयनांश २२'।५१'।१५" से सिर्फ +२८'१ कलान्तरित ही होने से स्वल्पान्तर से यह नाक्षत्र मान से शुद्ध है। श्रांटा गणना से तो +४'४३'७ अंशों का अंतर होने से वह कोई भी शास्त्रीय पद्धति से युक्त नहीं होते हैं। और इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुंजालने अपने समय के छायार्क करणागत के अंतरानुसार अयनांश ६।५० छाने के लिये कल्पादि को शून्यायनांश वर्षमान कर अयनगति को भगण द्वारा कहकर अयनांशों का साधन किया है। नकि इसमें कहीं शक

४४४ वगैरे शून्यायनाश वर्ष का उल्लेख किया है। वरना मुंजालने अपने स्वयं वेध के बलपर कहा है कि “परिसरता गगनसदां चलनं किंचिद् भवेदपमे ॥ तद्गगणाः कल्पे स्युर्गौरसरसगोऽकचंद्रमिता ॥ ( सि. शि. गोल ८. २९७ ) ‘ग्रहों की वामगति को प्रत्यक्ष देखकर कल्प में उक्त भगण निश्चित किये हैं। इसके संबंध में ( भा. ज्यो. पृ. ३१४ ) दीक्षित कहते हैं कि; ‘अयनगती चा स्पष्ट उल्लेख मुंजालाच्या पूर्वाच्या कोण-त्याही उपलब्ध पौरुष प्रथांत नाहीं ही गोष्ट फार महत्वाची आहे ॥ मुंजाल हा एक विलक्षण शोधक आणि कल्पक होऊन गेला असें दिसते. ’ ऐसा हाते हुए गोविंदरावजी के “शून्यायनाश वर्षावरून व त्याच्या अयनगति ( १ कला ) घरून ते काढिले आहेत. ”

“ सर्व प्रथम कारांनी ४३८ ते ४५० पर्यंत शून्यायनाश वर्ष मानिले आहे. ’ ऐसे उतपटान कथन कहां तक सत्य माने जा सकते हैं. । वदपि नहीं। क्योंकि जबकि मुंजाल के समय शक ८५४ ) के इधर ही अयनगति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है तब उक्त शून्यायनाश वर्ष में तो पूरा शोधही नहीं लगा था। तब, वह परंपरा संपूर्ण प्रथकारों के समय; कैसे चल सकती है। इसका सूत्र पाठकों ने ही निर्णय कर लेना चाहिये।

### परीक्षण ८ ( ऊ )

“ आपण घटकाभर असें माहिलें कि सर्वांत पहिला मुंजाल याने पुर वेध करून शक ८५४ या वर्षी अयनाश ६।५४ घेतले तर पुढें ग्रहलाघरकारा सारख्या आकाश पाहाणारांला ते  $(\frac{१४४२-८५४}{१}) \times \frac{५०३}{६ \times ६०} = ८^{\circ} १२' ५२" + ६^{\circ} ५४' = १५^{\circ} ६' ५२"$  दिसायला पाहिजे होते त त्याने  $१६^{\circ} ३८'$  लिहिले आहेत. अर्थात् ते दृष्टप्रत्यय करून लिहिलेले अयनाश नोंदत. ”

### समाधान ८ ( ऊ )

मुंजालोक्त अयनगति केंद्रीय वर्तमान साधित होने से प्रतिवर्ष १ फाटा बढ़े गई है। और ग्रहलाघरकार का भी वर्तमान ३९५।१५।३१।३० केंद्रीय है। इसलिये  $२४८२-८५४=१६२८ \times \frac{१}{६०} = २७^{\circ} ४८' ४६" + ५०' = २८^{\circ} ३८'$  इस प्रकार ( गजरातीय वर्तमान और अयनगति में ) ग्रहलाघरकारने वेधनुत्पन्न अयनांश ही बढ़े हैं किन्तु जिसने जन्मभर में आकाश के तर्क देखाही नहीं वेधन नाबख्श पचास वी नकट करने पाये। शक ८५४ के अयनांश दृष्टप्रत्यय युक्त होने दिख नगने हैं.

### परीक्षण ८ ( फा )

‘ गजेन देवराचा पिता वेशन हा नर पार वेधतुनष्ट म्हणून त्याचा प्यानी आठ ( भा. ज्यो. पृ. २५९ ) पर्यंत त्याने ही म. ला. प्रमाणेंच अयनांश मानिले आहेत. ’



### समाधान ८ (चू)

ज्यो. वि. केशव दैवज्ञ का वर्णन प्रस्तुत रिपोर्ट ( पृ. ६-८ ) में किया गया है। आपने दृष्टप्रत्यय के अनुसार ( रिपोर्ट पृष्ठ १० के छ. ज. कथन में ) मध्यम चंद्र और चंद्रोच्च को कहने से केंद्रीयमान को स्पष्ट कर दिया है। तथा शके १४१८ में बनाए हुए ग्रह कौतुक में तत्कालीन अयनाश १६° १४' कहे हैं। सो तत्कालीन वर्णमान से बिल्कुल शुद्ध हैं। किंतु यह भी शंका के विरुद्ध होने से गोविंदरावजीने अवेधज्ञ के नंबर ३ में इनको भी ले लिया है। क्योंकि जब कोई एक भी आर्य पुरुष ने झंझा यनाश का समर्थन नहीं किया है तब उन नामों में इनका नाम कहा से बच सकता है।

### परिक्षण ८ ( ल )

भास्कराचार्याविषयीं तर असे म्हणता येतें कीं त्यानीं आपल्या वेळचे अयनांश पाहून लिहिलेले नाहींत. कारण 'वेधानें साध्य अशा गोष्टीं संबंधानें भास्कराचार्यांच्या सिद्धांतांत नवीन असें काहीं न हीं, परंतु केवळ विचार साध्य अशा ज्ञानानें भास्कराचार्यांचा ग्रंथ भरलेला आहे.' ( भा. ज्यो. पृ. २५० पहा ) शिवाय मी प्रत्यक्ष वेधानें पाहून अयनांश ठरविले असें भास्कराचार्य म्हणत ही नाहींत. " यदायेऽशा निपुणै रुपलभ्यन्ते तदास एष क्रांतिपातः " हा सर्व साधारण नियम आहे. भास्कराचार्यानीं प्रत्यक्ष पाहून अयनाश ठरविले असते तर तसे त्यानीं अवश्य लिहिले अमर्ते. पात वेगवेगची गति पुढें ब्रम्हगुप्ता प्रमाणें महाब्रुदीमान् प्रत्यक्ष वेध घेऊन त्रैशिकानें ठपवितोऊ अने त्याच टीकेंत पुढें लिहिले आहे. अर्तो. ज्यांनीं ज्यांनीं काहीं नियत अयनाश लिहिले आहेत ते प्रत्यक्ष पाहून लिहिलेले आहेत हें खरें नाहीं. परंपरेनें आलें त लिहिलें यात शका नाहीं.

### समाधान ८ ( ल )

भास्कराचार्य ने सि. शि. के ( पृष्ठ ३८७ ) गोलाध्याये प्रश्नाध्याय स्ते. ५४ में:- " युक्ता यनाशोऽश शतं १०० शशीचे, दशीति ८० रको द्विशति २०० विपात. ॥ चंद्रस्तदानां बद्धपातम्. " ऐसा तथा टीकामें 'नवभागाधिकं राशि द्वयं रविः २।९ भागोन त्रिभंशशि २।२९ एव विंशति भागाधिकं त्रिभपात ३।२१ एव युक्तायनाशोऽशशत शशी ३।१० अशी-तिरर्कः २।२० अश द्विशती सपात. ६।२० अत्रपातः ३।२१ चं २।२९ अशोऽशद्विशती सपात चंद्रो २००=६।२० भवति ' ' यदाकिल का दशा ११ यनांशास्तदा ' और ऐसा पाताधिकार ( पृ. २२८ ) में लिखा है। आगे इसी प्रश्नाध्याय के श्लोक ५८ में " रसगुण पूर्णमही १०३६ सम शक नृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ॥ रसगुण ३६ वर्षेणमथा सिद्धान्त शिरोमणीरचितः ॥ ५८ ॥ " इस प्रकार मूल पाठ में और टीकामें अयनांश ११ स्पष्ट लिख दिये

हैं। और उसी के ४ श्लोक आगे में ग्रंथकारने आपका जन्म समय शक १०३६ और ग्रंथ समाप्ति का समय शक १०७२ लिख दिया है, तथा वेध के संबंध में—“छायातो मातोवा भानुः संक्रांति पात एवस्यात् ॥ पातो नः स्फुट भानुः स्फुट भानूना भवेत्पातः ।” लिख रहा है। उक्त पाताध्याय (श्लो. २ पृ. १२६) में—“एवं विध्यता यस्मिन्दिने सम्मक्प्राच्यां रवि रुदितो दृष्टस्तद्विपुलं दिनं तस्मिन्दिने गणितेन स्फुटो रविः कार्यः । तस्य रवर्मेणा देश यदंतरं तेऽयनांशः । एवं चंद्रस्यापि गोलायनसंघयो वेधेन वेद्याः ॥” ऐसी उपपत्ति बताई है। सो क्या भास्कराचार्य ने इत्यादि अयनांश संबंध का कथन बिना वेधके केवल आंख मीचकर बिना देखे भांले लिख दिया है। समझ में नहीं आनेसे गोविंदरावजी ने लिखदिया होता तो आप लिखते हैं ‘भास्कराचार्य के सिद्धान्त में नवीन कुछ नहीं है’ इसलिये स्पष्ट होता है यह जानबूझकर टोप लगाना है। भास्कराचार्य के नाथन्य के संबंध में म० म० सुधाकर द्विवेदी अपने बनाए चलन चलन की भूमिका (पृष्ठ ५) में लिखते हैं कि; “आर्क मिहज की अपेक्षा भास्कराचार्य के ग्रंथ में चलन चलन सर्वाधि बहुत बातें हैं। निदान भास्कराचार्य के पीछे फिर भारतवर्ष में ऐसा कोई विद्वान् न हुआ जो चलन चलन संयंधि कुछ विशेष लिखा हो। कमलाकर आदि हुए भी वो वे भास्कराचार्य के विशेषों को न समझ उल्टा खंडन ही करनेपर तम्र हुये। जिस समय मैंने भास्कराचार्य के प्रयोगों पढा और उसमें चलन चलन संयंधि प्रकाशों को और उनकी उपपत्तियों को देता तो मुझे यह चिन्ता उम्रन हुई की भास्कराचार्य की लिखी हुई उपपत्तियों से तो भास्कराचार्य के प्रकाशों की ठीक सत्यता नहीं उत्पन्न होती। इसलिये वे प्रकार सत्य हैं या नहीं। बहुत दिनों के बाद बनारस संस्कृत फाउंडेशन के अद्वैतो विभाग में अंग्रेजी भाषा सीखने पर श्रीमान् डाक्टर धीरो माहय महाशय की असीम कृपासे चलन चलन को पढने से जानपडा कि सचमुच भास्कराचार्य के प्रकार सच हैं। तात्कालिकी गति नामक भिन्नगति आदि कई प्रकार भास्कराचार्य ने बनाये हैं। इस प्रकार जिसकी यशोदुग्धि संसार में गूंज रही है ऐसे विद्वान के ग्रंथ को वेध साध्य नहीं कहकर वेदात के तुल्य केवल विचार साध्य कहना द्वेषता का चोतक है। और द्वेष बोले तो यह कि उसने शक १०७२ में अयनांश ८ अंश के अंदर कहना था ओकि हजारों आर्य ग्रंथकारों में से एक तोभी हिटापक्षी (अपवाद के लिये क्यों न हो) मिलजाना, किंतु उसने तो अयनांश ११ फट दिये हैं। केवल अयन की वार्षिक गति के संबंध में “मुंजालाद्यै यंदयन चलन मुक्तं सपचायं त्रांतिपातः । ये गोंऽगर्तुनन्दगोचंद्रा उत्पद्यन्ते । अथ च येवा सता भगणा भवन्तु । यदायेंऽयानिपुणै रुपलभ्यातिवदा सपच मांतिपात इत्यर्थः । ( गो. श्रौ. १७-१९ और टीका देखो ) ऐसा कहा है कि “चाहे जो भगण (रूप में अयन के होनबोले राशिचक्र के भ्रमण की संख्या) हो वेधउ को वेध द्वारा जितने अंश उपउच्छ हो उस समय यही अंश समझें” इसमें जो भगणों के संबंध में कहा है। यही भगण; अयनकी कल्पगति

रूप हैं उसी से व्यंग्यगति आसकती है। भास्कराचार्य ने जैसे सि. में, 'युक्तायनांशोऽंश' इस श्लोक से अयनांश ११ कहे हैं। वैसे करण कुतूहल में 'कलान्विद्यायात्रभवा एवोक्ताः' 'कलाओं को छोड़कर' ही कहे गये हैं। केवल अयनगति मुंजाल की ही कही मानी है भिन्न गति कही नहीं। इससे गोविंदरावजी कथन असत्य एवं भ्रांत कथन के तुल्य है।

### परीक्षण ८ ( ए )

‘ ज्यांनी ज्यांनी काहीं नियत अयनांश लिहिले आहेत ते प्रत्यक्ष पाहून लिहिले आहेत. हे खरे नाही. परंपरे ने आले ते लिहिले यांत शंका नाही. ’

### समाधान ८ ( ए )

जिस उद्देश्य को लेकर गोविंदरावजी परंपरा बतला रहे हैं; उस उद्देश्य के उक्त कथन सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि परंपरा भूतकालिन हुआ करती है न कि भविष्य में होनेवाली बात। और बिना कोई प्रमाण के बताए यह गोविंदरावजी का कथन कैसा माना जा सकता है।

### परीक्षण ८ ( ऐ ) .

याचें एक दळदळीत उदाहरण प्रौढ मनोरमांमध्ये सांपडते. ही टीका केशवी जातक पद्धति बरीच दिवाकर देवज्ञाने शके १५४८ मध्ये पूर्ण केली आहे. पहिल्याच श्लोकावरील टीकेच्या शेवटी शेवटी ( काशी येथें छापलेल्या पुस्तकाचें पृ. ११ ) “ भूनेत्र तिथ्युन्मिते १५२१ शालिवाहन शकायात वर्ष गणे ते ( अयनांशः ) चसांप्रतं सार्धं पोश्चापनांशः ” असें लिहिले आहे. याचे पूर्वी शके १४४२ मध्ये म. ला. प्रमाणें ते १६१८ येतात हें स्पष्टच पाहे तेव्हां ७९ वर्षांत अयनांश ८ कला मागे हटले असें होतें। प्रत्यक्ष पाहून अयनांश लिहिले असते तर हा अनवस्था प्रसंग आला नसता.

### समाधान ८ ( ऐ )

जब कोई भी प्रकार से अपना प्रतिपाद्य विषय समर्थित नहीं हो सकता उस समय मनुष्य निराधारता से घबराकर वक्तव्य प्रमाण की संगति एवं योग्यता के तर्क बिटकुट ध्यान नहीं देकर केवल विरुद्ध पक्ष के तानिक से विस्वादा को बतलाने की धुनमें कुछतोभी बतलाने लगता है तब उसे यह मान नहीं रहता-है कि यह बेराही वक्तव्य मेरेही प्रतिपाद्य विषय के कितना विरुद्ध है।

ठीक इसी तरह प्रस्तुत परीक्षण में स्वयं प्रिंसिपल आपटे साहेब की परीक्षा होगई है। क्योंकि पूना रिपोर्ट में आपही के बताए हुए जातकार्णव के प्रमाण से भी यही अयनांश १६°१२०' सिद्ध होकर; आपका बताया हुआ. उक्त श्लोक का अर्थ और तदनुसार शाके १८४८ के बताए हुए ११ अयनांश गलत सिद्ध होजाते हैं; इतनाही नहीं तो आपने सिद्धान्त और चैत्रीय पक्षमें जितना विसंवाद बतलाना चाहाथा वह बात इससे सिद्ध न होकर उसकी अपेक्षा झीटागणनामे ही द्विगुण से भी अधिक अंतर होजाने से स्वयं झीटा गणना ही असत्य व निरर्थक सिद्ध होजाती है !! जैसाकि " शाकं १९२१ एकाक्षिवेदो ४२१ नं ११०० द्विः कृत्वा ( द्विधास्थाप्य ) दशभिर्हरेत्  $\frac{११००}{१०}$  ॥ लब्धं ११० ही नंच तत्रैव ११००-११०=१९९० षष्ठ्या ६० साध्यायनांशकाः १६°१२०'॥१॥" इस तरह प्रौढ मनोरमा के उदाहरण में कहे हुए अयनांश जातक ग्रंथोक्त योग्यता के मानसे बराबर थे ऐसा सिद्ध होगया है। तब शाके १८४८ के अयनांश =  $\frac{१४२७}{१०} - १४२.७ = \frac{१२८४.३}{१०}$  = १२१°२४'.३ ( जातक ग्रंथोक्त योग्यता के तुल्य ) आते हैं। इससे पूना रिपोर्ट ( पृष्ठ २०७.८ ) में आपका बताया हुआ " द्विःकृत्वा " का " बाकीची दुष्ट व खून " ( द्विगुण कृत्वा ) अर्थ गलत सिद्ध होकर " द्विष्टं कृत्वा=द्विधास्थाप्य " ऐसा व्युत्पत्तिपुक्त और उपयोजित अर्थ सिद्ध होगयाहै। तदनुसार " शाके १८४८ के प्रारम्भी १२°१२'१२" इसके अयनांश येतात " यह अयनांश भी गलत सिद्ध होगये हैं। अतएव आपकाही बताया हुआ उदाहरण इस प्रकार आपकेही विरुद्ध जाना प्रि. साहब बहादुर ( के प्रतिपादन दाँठ ) की अर्थात् परीक्षण की परीक्षा हो जाना अर्थात् है।

### प्रस्तुत अयनांश साधन के लिये गणिनन्यास.

चैत्रीय गणना से.	अब्दय.	तिथि.	अयनांश.			पंचांगोक्त मिति.	इसका सन १५९९			
विवरण.	वार	वटी	पट	शुद्धि.	क्रं.	क्रं.	क्रं.	शाके १५२०-१५२१	साल	मास.
शुद्ध नाक्षत्र								चैत्र, वै. जेदि १ रामिया	१०	अग्रैठ
मध्यम मेवारक	०	३२	२७	१५-३६	१८	१८	५७	चैत्र शुद्ध १५ गुरुवार	९	अग्रैठ
मेद में प्रीय मेवारक	६	३६	४५	१४-४१	१७	२०	३	चैत्र शुद्ध १५ गुरुवार	८	अग्रैठ
एष्ट मेवारक	९	३७	४०	१३-४१	१८	१४	५७	चैत्र शुद्ध १४ गुरुवार		
मध्यम साधन										
मेवारक	३	१४	४	२२-५५	०	०	०	कल्याण कृष्ण १२ भोंमे	२३	मार्च
एष्ट साधन मेवारक	१	१४	०	२५-००	०	०	०	कल्याण जेदि ११ रामिया	२१	मार्च

## जातक ग्रंथोक्त स्थूलमान की सूक्ष्म गणितागत से तुलना.

( क ) शुद्ध नाक्षत्र गणना से अयनाश १८११५' जातकार्णवोक्त से अंतर +११४५'

( ख )  $१५२१-४४४ = \frac{१०७७}{६०}$  ,, १७५७ ,, ,, +१२७

( ग ) शुद्ध मंद वेद्रीयमान से ,, १७२० ,, ,, +०५०

( घ ) जातकार्णवोक्त पद्धति से ,, १६३० ,, ,, ००

( ङ ) झीटा पश्चिम गणना से ,, १४१७ ,, ,, -२१३

उपर्युक्त समीकरण से आपको मालूम होगा कि [ घ ] अयनाशों में [ ख क ] मान से [ ११२७ ] और [ ११४५ ] अंतर है और [ ग ] मान से सिर्फ ५० कला मात्र अंतर है सो सूर्य सिद्धान्तीय वर्षमान के तुल्य होने से वह उस गणना से शुद्ध है। और उक्त अयनाशों में दिनों का अंतर नहीं है किंतु [ ङ ] गणना से तो सवा दो दिन का फर्क है। इसलिये प्रौढ मनेरमा प्रोक्त उदाहरण के अयनाश यद्यपि स्थूल हैं तो भी सिद्धान्तीय अयनाशों से जैसे मिलते हुए हैं ऐसे झीटा गणना से मिलते हुए नहीं हैं। इसलिये इनसे झीटा गणना का समर्थन नहीं होकर वस्तुतः यह प्रमाण उसके विरुद्ध है! अतएव झीटा गणना अतिक्रान्त अमल्य और प्रस्तुत परीक्षण निरर्थक है ऐसा सिद्ध होता है।

आपने प्रस्तुत परीक्षण में ग्रह लाघव करण ग्रंथोक्त अयनाशों से इस जानक ग्रंथ की टीका में लिखे हुए स्थूल अयनाशों की तुलना करते हुए अनन्यथा प्रसंग बतलाने का प्रयत्न किया है। सो व्यर्थ है। क्योंकि यदि ऐसा सिद्धान्त या करण ग्रंथ के आपस में सजातीय गणित से अयनाशों का विसवाद पाया जाता तो उन्हें छोड़कर आपको इस तरह एक जातक ग्रंथ के टीकाकार की शरण नहीं लेनी पड़ती।

इसी जातक पद्धति की ओर भी बहुत सी टीका उपलब्ध हैं उनमें प्रहलाधरोक्त पद्धति के अनुसार ही अयनाश लिखे गए हैं। जैसे ( १ ) बृहत्समुत्त गोविंदात्मज नारायणकृत टीका के उदाहरण ( लिखी हुई पुस्तक के पृष्ठ ३-४ ) में शाके १५०९ के अयनाश १७।४५ लिखे हैं। ( २ ) उमाशंकर मिश्रकृत सुवोधिनी टीका के उदाहरण ( काशी की छपी हुई पुस्तक के पृष्ठ ३० ) में शाके १७७२ के अयनाश २२।१५ लिखे हैं। यह दोनों प्रहलाधरोक्त पद्धति के आधार से इस प्रकार बनाये गये हैं सो—

$$\left. \begin{array}{l} १५०९-४४४=१०६५-६०=१०।४५ \\ १७७२-४४४=१३३५-६०=२२।१५ \end{array} \right\} \text{ केंद्रीय वर्षमान के तुल्य शुद्ध हैं.}$$

किंतु इतने पर से पूर्वोक्त जातकारणानुसारी और ग्रहलक्षणानुसारी के आपस में विसंवाद बता नहीं सकते क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि सिद्धान्त और कारण ग्रंथकारों ने अपने दृष्टप्रत्यक्ष (वेधसिद्धमान) से जो अयनांश निश्चित किये हैं वह उनके काल में बराबर थे। लेकिन जिस भिन्न २ वर्षमान के अनुसार अयनांश मानकर आगे जातकादि ग्रंथकारों ने या टीकाकारों ने उदाहरण में अयनांश कहे हैं। वह प्रत्यक्ष देखकर किये न होकर भिन्न २ वर्षमान साधित ग्रहों के लिये शुद्ध हैं। अतएव उनकी भिन्नता से सिद्धान्त या कारण ग्रंथ में विसंवाद धताना अयुक्त है। प्रस्तुत में 'जातक ग्रंथकारों ने भी वेध लेकर अयनांशों का निश्चय किया है' ऐसा कोई भी विधान में हमने कहा नहीं है। बरना आगे के विधान में हमने स्पष्ट कह दिया है कि जातक ग्रंथोक्त कई बातें गोल गणित की तुलना में बहुत स्थूल हैं। इतने पर से 'कुछ भारतीय ग्रंथकारों ने प्रत्यक्ष देखकर अयनांश लिखे नहीं' ऐसा कह देना छोटा मुंह बड़ी बात के तुल्य बिलकुल अयोग्य है।

### परीक्षण ८ (ओ)

अयनांश प्रत्यक्ष पाहून फसे ठरवावे हे व्यवहारिक रीतीने लिहिलेले कोठें आढळत नाही. वरणांतच जर अशुद्धि असली तर ती "छायावर्तकारणायते" या रीतीत अशनाथा मध्ये ही चुकले हे फबूल करणें भाग आहे. ही रीति सोडून दुसऱ्या कोणत्या तरी रीतीने अयनांश वेधानें ठरविणें फार कठीण आहे. ते काम फारच धोडेच अतिशय करू शकतील त्यांतून दीनानाथजी समजतात त्या प्रमाणें जर भास्कराचार्यादिंनी आपल्या शास्त्रांचे अयनांश हि लि लेले आहेत तर ते खुद पाहून लिहिले हे अशक्यच आहे. शून्यायनांश वर्षे ठरविण्या संबंधी दीक्षित ही लिहतात (भा. उयो. १३७) की "निरनिराळ्या ग्रंथांतून त्याचे स्पष्ट मेघ संक्रमण आणि सावन मेघ संक्रमण ही एकावाळी येण्याची जी वर्षे ती शून्यायनांश वर्षे होत या प्रमाणें बरीच वर्षे वाढिली आहेत". शून्यायनांच्या वेध फर्कत्याबद्दल त्याची प्रसंसाध केलेली आहे (भा. उयो. पृ. २२०) त्याच्या सिद्धान्ता प्रमाणें शत ५०९ हा शून्यायनांश काळ येतो.

### समाधान ८ (ओ)

इस विषय का सिद्धांतिक रीति से निस्तुन उत्तर प्रस्तुत रिपोर्ट की मूभिका (पृ. ६, ९) में और रिपोर्ट (पृ. ९४-१०५) में दिया गया है। और "निरनिराळ्या ग्रंथांतून त्यांचे स्पष्ट मेघ संक्रमण आणि सावन मेघ संक्रमण ही एकावाळी येण्याची जी वर्षे ती शून्यायनांश वर्षे होत या प्रमाणें बरीच वर्षे वाढिली आहेत." इस प्रकार के परीक्षण में लिखे हुए दीक्षित के कथन ने ही स्पष्ट हो जाना है कि 'शून्यायनांश वर्षों के परंपरा-सार धिमा दंत भोले अपने अपने काष्ठ में अयनांश बट्टे न होकर उन ग्रंथकारों ने प्रत्यक्ष

देखकर अपने वर्तमान काल के अयनांश निश्चित किये हैं। और उनके वर्तमान के अनुसार जो अयनगति प्रति वर्ष १ कला मित आती है; तदनुसार शून्यायनांश वर्ष कहे हैं। सो मंद केंद्रीय मानके हैं। इस संबंधका विवेचन आगे के विधानों (११ से १५ पर्यंत) में ही विस्तृत रीति से किया गया है। उसका सारांश-ये है कि करणागत में उतनी स्थूलता नहीं है कि जितनी प्रि० गोविन्दरावजी बता रहे हैं। और वह गणित द्वारा कैसे निकल सकती है सो क्रमशः आगे के विधानों में बताया गया है। ब्रह्मगुप्त के खंडखाद्य में लिखे हुए क्षेपकों से ( भा. ज्यो. पृ. २२३ ) शाके ५८७ में अमांत चैत्र वदि ३० शनिवार को इष्ट घटी २६।४६ पर और सूर्य सिद्धांत से घ. १२ प. ९ पर मेष संक्रमण हुआ है। और सायन मेष संक्रमण चैत्र वदि ११ सोमवार को घ. ५३ प. १ पर हुआ है। इससे अयनांश ४°१५'१५" निश्चित होते हैं। इसीसे अयन वर्ष गति १ कलामित मानकर शून्यायनांश शक वर्ष ३३२ जोकि दामोदरीय भट्ट तुल्य ( भा. ज्यो. पृ. ३३५ ) के निकट में आते हैं। और इसी की शुद्ध नाक्षत्र गति का भाग देने पर शाके २८२ और मंदफल के अन्तर को निकाल डालने पर शाके २१३ शून्यायनांश वर्ष आते हैं। किंतु प्रि० साहब के कहे प्रकार इससे शून्यायनांश शक वर्ष ५०९ आते नहीं हैं। सारांश परीक्षण में लिखी हुई कुल बातें बिना गणित के देख भले अटसंठ लिखी गई हैं। सो अमल्य हैं अतएव त्याग्य हैं।

## विधान ९

उनके ( आर्य ग्रंथकारों के ) कहे हुए अयनगति के आधारपर शून्यायनांश वर्ष आदि की नाक्षत्रवर्ष मानना अयोग्य है। क्योंकि वह वर्तमान मंद केंद्रीय के बराबर कहे जानेसे उसी मानसे वह ठीक ठीक मिलने हैं। नाक्षत्र से मिलाने के लिये बीज संस्कार करके उनके द्वारा शून्यायनांश वर्षों का निर्णय कर लेना चाहिये।

## परीक्षण ९

या विधानाचा हेतू ध्यानांत येत नाही. रेवत किंवा चैत्रपक्षा संबंधी यांना कांहीं विशेष गोष्ट सिद्ध होते असें नाही. शून्यायनांश वर्षाचा व सिद्धान्तात्क नक्षत्रम्फुट ध्रुवाचा फार निकट संबंध आहे हें पूर्वी दाखवित्रेच आहे. सिद्धान्तात्क वर्तमान हें मंदकेंद्रीय वर्ष आहे असें सिद्धांतकारांच्या दृष्टीने गृह्यता येत नाही. व तें खरें नाही. कारण त्यांनीं उच्च भगण निराळे दिले आहेत. त्यांनीं दिलेली वर्षमाने नाक्षत्रच होत ; ही त्यांची समज गृहीत धरूनच आपण चालले पाहिजे.

## समाधान ९

उक्त परीक्षण से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत विषय को प्रि. गोविंदरावजी ने देखा [पढ़ा] नहीं है। इसलिये अभी वह पढ़ें कि वैद्रीय सौरवर्ष और नाक्षत्रिक सौरवर्ष के परिमाण किस आधार में और किस गणित से ज्ञात हो सकते हैं। इस विषय में श्रीमान् से अनु-रोध करता हूँ कि ज्योतिर्गणित के [पृ. २१५.] कोष्ठक ६-७ में वैद्रीय वर्षमान और (पृ. २१९) नाक्षत्र वर्षमान (मगणकाल) को तथा [प्रस्तुत रिपोर्ट के (पृ. ९८-१०९) कोष्ठक १-३ को अवश्य] पढ़ेंगे तो आगे आप ऐसा अनवबद्ध व निरूपयोगी लेख नहीं लिखेंगे। क्योंकि एक उच्च भगण कर गये हैं इतने पर से सिद्धान्तोक्त वर्षमान नाक्षत्र नहीं हो सकते। इसलिये शुद्ध गणित का कसौटोपर ग्रंथोक्त परिमाणों के भावको समझ लेना चाहिये। इनकी दृष्टि उनकी दृष्टि इत्यादि कथन से काम नहीं चल सकता है।

## विधान १०

शून्यायनांश के वर्षों के संबंध में यद्यपि दीक्षितजी (भा. उपो. पृ. ३३५ में) सूर्यादि ५ सिद्धान्त और सिद्धान्त तत्त्वविवेक का शके ४२१, मुंजालका ४४९, राजमृगारु, करण प्रकाश, वरण कुतूहल इत्यादि का ४४५, करण कमल मार्तंड, ग्रहलघनादि का ४४४, भास्वती वरण का ४५०, कर्णोत्तम का ४३८, और दागोदरीय भट्टतुल्य का ३४९ शक वर्ष लिखे हैं। वह ग्रंथोक्त स्पष्ट सूर्य के अनुमाप हैं। उच्च की स्थिर प्रायगति और परमफल की भिन्नता के कारण जबकि सूक्ष्ममान से वर्षों न हो इनके वर्षमान ही भिन्न भिन्न — (रिपोर्ट पृष्ठ १०४ कोष्ठक ४ देखिये) आते हैं। तब विभिन्न वैद्रीय वर्षमान से और परमफल के हास आदि के सहकार क्रिये बिना ही वही प्राचीन ग्रंथफल से राशित स्पष्ट सूर्य का विपुलदिनांतर काल साधित अयनांशों में भिन्नता आजाना स्वाभाविक है। इसलिये गणेशशङ्कादि में तिथिचिन्तामणि आदि सारणी ग्रंथों में जैसे अव्ययका यानी मध्यमगति का उपयोग किया है। वैसे सूर्यसिद्धान्तों में मध्यमरवि और मध्यमसायन रवि के अंतर रज (शके १४४९ में) अयनांश १६°। ३८' निश्चित कर अयनवर्ष गति १ फल के अनुसार शून्यायनांश वर्ष ४४४ कहा है। ऐसा ही मुंजाल आदि ने कल्पभगणों द्वारा अयनगति को कही है। यह सब मध्यम मान को पुष्ट करने हैं। यद्यपि यह भगण रविमगणानुसारी सावनदिनात्मक वैद्रीय भागानुसार कहे जाने के कारण शुद्धाश्रय मानसे इनमें कैदंतर व अयनांतर (रिपोर्ट पृ. १०० कोष्ठक २ देखिये) तो रहता ही है। किंतु वह एक निश्चित मान होने से गणित द्वारा उस अंतर को अलग २ कर देने पर उनकी शुद्ध नाक्षत्र मानसे एक वाक्यता होमकती है।



## विधान ११

प्राचीन काल में नक्षत्रों को प्रत्यक्ष देखकर उनके अंतर द्वारा काल का नाप किया जाता था ( रि. पृ. १०२ की टिप्पणी तथा भूमी का पृ. ७-९ देखो ) आगे सिद्धान्त काल में जो भी केंद्रीय वर्षमान लेने से दो तर्ज अंश तक उच्च बढ़ जाने तक उसी उच्च को स्थिर माने हुए लेते चले जाते थे । किंतु जब नक्षत्रों की अक्षमुखादि आकृतियों से और भ्रुवकों के भागसे अंतर हुआ देख कर आग के ग्रथकार उच्चको बढ़ाकर फिरसे नाक्षत्रमान के तुल्य कर लेते थे । क्योंकि उस समय शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान की गति और उच्चगति इनका ठीक ठीक शोध नहीं लगा था । लेकिन अब हमें शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान, उच्चगति और अयनगति सूक्ष्ममान की ज्ञात होगई है तब उसके गणितद्वारा हमें यह ज्ञात हो सकता है कि सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमान में केंद्राय कितना भाग मिश्रित हुयेला है । तोभी हम उससे गणितशुद्ध केंद्रायनगति निश्चित कर सकते हैं । ऐसा करने से सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमान के मूलकों के अनुसार इनके ६ प्रकार निश्चित होते हैं । ( १ ) शुद्ध मंद केंद्र, ( २ ) सूर्य सिद्धान्त, ( ३ ) आर्यसिद्धान्त, ( ४ ) ब्रम्हसिद्धान्त, ( ५ ) शुद्धनाक्षत्र और ( ६ ) शुद्ध-सापातिक ( सायन ) और इनके गणितद्वारा जो उच्चगति, अयनगति और शुद्धनाक्षत्रनवीर मानांतर निश्चित होते हैं सो [ रिपोर्ट पृ. १०० में अलग २ बताए गए हैं तथा ] भाग के विधान में स्पष्ट करके पृथक् पृथक् बताते हैं ।

## विधान १२

अयन, और केंद्रगति तथा शुद्ध नाक्षत्रमान से अंतरदर्शक ( समीकरणरूप ) कोष्ठकः—

	संकेताक्षर.	क	ख	ग	घ
संकेत	सिद्धान्त और शुद्ध परिभाषा का नाम.	वर्षमान के दिन यानी सौर भगण काल.	अयनगति दिन यानी सापातिक से अंतर.	केंद्रगति दिन यानी केंद्रीय वर्ष से अंतर.	नाक्षत्र बीज यानी नाक्षत्र से अंतर दिन.
अ	सिद्धान्त ग्रंथ	मूलक दिन	- गति दिन	+ गति दिन	संस्कार दिन
इ	शुद्ध मंद केंद्र	२६५*२५९७१२२४	*०१७४९५५८	*००००००००	+००१३३७८२
उ	सूर्य सिद्धान्त	३६५*३५८७५६४८	*०१६५३९८२	*०० ३५५७६	+००१३८२०६
ए	आर्य सिद्धान्त	३६५ २५८६८०५५	*०१६४८३८९	*००१०३३३९	+००२१०६१३
ऐ	ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त	३६५ २५८४३७१०	*०१६२२०८४	*००१२७४७४	+००२०६३०८
ओ	शुद्ध नाक्षत्र	३६५*२५६३७४०२	*०१४१५७३६	*००३३३७८२	*००००००००
	शुद्ध सापातिक	३६५*१४२२१६६६	*००००००००	*०१७४९५५८	+००१४१५७७६

उपर्युक्त कोष्टक में के (अ)-(ओ) के अंतर द्वारा (ख)=अयनगति और (ग)=केंद्रगति बताई गई है। इसमें शुद्ध नाक्षत्र वर्ष परिमाण के लिये (घ)=बीज, तथा उससे (ग)+(घ)=शुद्ध केंद्र गति एवं (ख)+(घ)=शुद्ध अयनगति (इ, उ, ए, ऐ) परिमाणों की ज्ञात हो जाती है। अतएव सिद्धान्त ग्रंथोक्त परिमाणों को कंदम्बाभिमुख सदा स्थिरप्राय नक्षत्रों से एवं नक्षत्रों में निश्चित चैत्रादि मासों से तुलना करने के लिये (शुद्ध नाक्षत्र मान से कालान्तर रूप) (घ) संस्कार करना चाहिये, ताकि इस प्रकार शुद्ध परिमाणों से सिद्धान्त ग्रंथोक्त अयनांशदि परिमाणों की एक वाक्यता हो जाती है।

### विधान १३

स्पष्टता पूर्वक समझने के लिये एक उदाहरण करते बत ता हूँ

केंद्रीयमान से अयनगति लाने के लिये दिनारमक न्यास=१

विवरण.	सूर्य सिद्धान्त.	आर्य सिद्धान्त.	ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त.	शुद्ध नाक्षत्रमान.
१: सौरवर्ष में शुद्ध केंद्रायनगति. -ग्रंथसाधित केंद्रगति =अयन वर्षगति.	दिन ०१७४९५५८ ००००५५७६ ०१६५३९८२	दिन ०१७४९५५८ ००१०३१६९ ०१६४६६८९	दिन ०१७४९५५८ ००१२७४७४ ०१६२२०८४	दिन ०१७४९५५८ ००३३३७८२ ०१४१५७७६

केंद्रीयमान से अयनगति लाने के लिये पलारमक न्यास=२

१: सौरवर्ष में शुद्ध केंद्रायनगति -ग्रंथ साधित केंद्रगति =अयन वर्षगति	पल शु. ६१°८४'८० -३°३९'१२ =५८°४५'६८	पल शु. ६१°८४'८० -३°३६'०६ =५८°१८'७४	पल शु. ६१°८४'८० -४°५२'३० =५७°३२'५०	पल शु. ६१°८४'८० -१°१'८१'२३ =५०°२३'५८
--------------------------------------------------------------------------------	---------------------------------------------	---------------------------------------------	---------------------------------------------	-----------------------------------------------

इसमें शु=स्थिर राशि मानकर शुद्ध केंद्रगति द्वारा, अन्यान्य ग्रंथों की अयनगति बताई गई है। इससे शुद्ध नाक्षत्र वर्ष का काल और शुद्ध अयनगति लाने के लिये (ऐ-क) स्थिर राशि से वर्षगति का कालान्तर और (ऐ-ग) स्थिर राशि मानकर (घ) म, बाज का संस्कार करें। तो ग्रंथोक्त अयनांशों की शुद्ध गणितागत से एक वाक्यता हो जाती है। अतएव सिद्धान्त ग्रंथोक्त अयनांश वैध निश्च परिमाणों से शुद्ध हैं।

## विधान १४

करण ग्रंथों में कही हुई अयन वर्षगति ? कला से केंद्रगति ( १.८४८ पलत्मक ) होती है। यद्यपि नव्य सूर्यसिद्धान्तोक्त कल्पोच्च भगण ३८७ से उच्च वर्षगति ११७८ पल मात्र आती है। इसीलिये वह “ तस्योच्चस्यचलनं वर्षशतेनापिनोपलक्ष्यते. ” ( सि. शि. म. श्लो. ६ टीका ) इस प्रकार के मास्कराचार्य के कथनतुल्य स्थिरप्राय माने गये हैं। किंतु वेदांग उद्योतिष के बाद के संहिता ( जातक ) ग्रंथों में रविना उच्च १० अंश लिखा है। जोकि शुद्ध उच्चगति से शत पूर्व १९१३२ में इतनाही उच्च था ऐसा गणित से निश्चित होता है। इसके बाद के ग्रंथों में क्रमशः २०१२५ से ७०।७५।७७ उपलब्ध होते हैं। ग्रहलाघवादि ग्रंथकारों ने रवि का उच्च ७८ अंश का माना है और शुद्ध नाक्षत्र गणित द्वारा वर्तमान में ७८°-७९° आता है। तथा हमारे ग्रंथों में ऐसा एकभी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि वैश्वीय नेंद्र से २-३ अंश से अधिक अंतरित हो तब ज्ञात हो जाता है कि रविभगण का आरंभस्थान एक दो अंश आगे बढ़जाने पर, नक्षत्रों से मेल मिलाने के लिये आगे के ग्रंथकार उच्च को भी एक दम उतनाही बढ़ादिया करते थे कि जितना शुद्ध नाक्षत्रमान से आता है। इस विषय के प्रमाण सिद्धान्त सम्राट और सिद्धन्तराज में उपलब्ध होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पर्याय से क्यों न हो केंद्र गति उतनी ही मानी गई है कि जितनी विधान १३ में बताई गई है। इस केंद्रांतर को निकालने पर शुद्ध नाक्षत्र भाग स्वयं निश्चित हो जाता है।

## विधान १५.

अयनांशों के शोधन करने के संबंध में रवि मंदफळ का भी विचार करना अवश्य है। ग्रहों की कक्षा कालांतर में धीरे धीरे कम होती जाती है। प्राचीन ग्रंथों में रवि परम फल २'१०' लिखा है वह अब कम होते होते वर्तमान में १'५९' हो गया है। इसलिये अब हम सायनस्पष्ट सूर्य से करणागत स्पष्टार्क में मंदफळ की भिन्नता के कारण पड़े हुए अंतर को गणित से अलग निकाल सकते हैं। किंतु यह अंतर बहुत थोड़ा है कुछ फलाओं के सिवाय इसके द्वारा अंतर गिरता नहीं है। विशेष फर्क तो केंद्रीय गतिजन्य होने से ग्रंथोक्त अयनांशों की जहां तहां हमने सूक्ष्ममान से एक वाक्यता करके बताई है वहां सिर्फ एक मंद केंद्रीय नाम कहकर ‘ शुद्ध नाक्षत्र सौर अयनांश = मंदकेंद्रीय + अंतर संस्कार ( घ ) इस प्रकार समीकरण माना है। तो इसमें बाकी के फलान्तरादि समझ लेना चाहिये।

## विधान १६

उपर्युक्त समीकरण के द्वारा तथा ग्रंथोक्त मध्यम सूर्य को सायन मध्यम राविके तुल्य समानता आने के काल को " यंत्रेद्र मध्योन्नत भागकेभ्योद्देशे निजे योस्तिपरि स्फुटोर्कः ॥ सिद्धान्त युक्त्यापिच साधितोयस्तद्विप्रयोगादयनांश काव्युः ॥ ३३ ॥ "

इस सिद्धान्त सफ़ाट (लिखित पृ० ४८१) के अनुसार; अन्यन्य परिमाणों के शून्यापनान्न शक वर्ष निश्चित होते हैं। (१) शुद्धमंद कैदीय का ९१६, (२) सूर्य सिद्धान्त का ४४२, (३) आर्य सिद्धान्त का ४३६, (४) ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त का ४१५, और (५) शुद्ध नाक्षत्र का २१२ शाके है इस तरह-के शक वर्षों से ग्रंथोक्त अयनांशों की भी एक वाक्यता हो जाती है। उदाहरण के लिये १० ग्रंथों के अयनांशों की शुद्ध मान से एक वाक्यता करके बताता हूँ।

## विधान १७

(१) मुंजालकृत लघुमानस-शाके ८५४ में शुद्ध सूक्ष्म वर्ष गति से मध्यम मेपर्क काल चैत्र वदि (अमांत) २ सोमवार तारीख ३१ मार्च सन ९३२ ई० को घ० ३२ प० ३१ पर और सापातिक म० मेपर्क काल—चैत्र शुद्ध ८ शनिवार ता० २२ मार्च ९३२ ई० को घ० २८ प० ११ पर हुआ है। इससे अन्यन्य वर्षमान द्वारा (निम्न लिखित) अयनांश आते हैं। उनही ग्रंथोक्त से एक वाक्यता इस कोष्ठक में लिखे प्रकार होती है।

मुंजाल के.		अब्दप.			तिथि.	अयनाश.			शाके ८५४.	ईसवी सन ९३२	
समय में.		वा.	घटी.	पल.	शुद्धि.	अंश.	कला.	विक०	पंचांगोक्त मिति.	तारीख.	मास.
मे	शुद्ध नाक्षत्रमान	२३२३१			१६७३	८५६२०			चैत्र (घे.) व. २ सोमवार	३१	मार्च
प	ब्रह्मगुप्त सि०	०३५२४			१४७३	७१५			चैत्र शुद्ध १५ शनिवार	२९	"
ऊ	मुंजालोक्त	०१४१०			१४५४	६१०			चैत्र शुद्ध १५ शनिवार	२९	मार्च
व	आर्य सिद्धान्त	०२१३६			१४५१	६४७२९			" "	"	"
ह	सूर्य सिद्धान्त	०१७४२			१४४५	६४३३६			" "	"	"
इ	नव्य सू० सि०	०१७२०			१४४२	६४३३४			" "	"	"
अ	शुद्ध कैदीय	६२३३			१३९२	५४६४६			चैत्र शुद्ध १४ शुक्रवार	२८	"
ओ	शुद्ध संपातिक	०२८११			७५०	०			चैत्र शुद्ध ८ शनिवार	२२	"

अंशों की तुलना—(०।२८११' + ०।४१२०) = (२।३२३१) ये अब्दप तुल्य है

मुंजालोक्त अयनाश ( ऊ ) स्थापित सिद्धांतोक्त के बराबर हैं । भा. ज्यो. पृ. ३१३ में ' शत ८५४ में अयनाश ६।५० ' लिखे हैं । ग्रंथोक्त रवि भगणारभ सौर तुल्य तिथि १४.५५ पर होता है । सो मुंजालोक्त अयनाश उक्त सूक्ष्म गणितागत से युक्त एवं बराबर हैं ।

### विधान १८

(२) द्वितीय आर्य मंडय सिद्धान्त-शाके ८७५ में शुद्ध सूक्ष्म वर्ष गति से मध्यम मेपार्क काल चैत्र शुद्ध ८ शनिवार तारीख २२ मार्च स। ९५२ ईसवी को व. ५५ प. ३० पर और सांपातिक म. मेपार्क काल-संलग्न यदि ३० गुरुवार ता २२ मार्च ९५२ ई. को घ. ३३ प. २२ पर हुआ है । इससे अन्यान्य वर्षमान द्वारा (निम्न लिखित) अयनाश आते हैं । उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता इन कोष्टक में लिखे प्रकार होती है !

विधान १२ प्रेक्षित अक्षरः	आर्य मंड के.	अब्दप			तिथि.	अयनाश.			शाके ८७५ तथा सन् ९५२ ई.		
	समय में.	श.	घ	प	शुद्धि.	अ.	क	वि	पञ्चांगोक्त मित्ति.	तारीख	मास.
५ अ अ अ अ अ अ	शु. नाक्षत्र	०५५३३			८०४	९१४	६		चैत्र शुद्ध ८ शनिवार	३१	मार्च
	म. गु ति.	६१५			७१०	७२१	१५		चैत्र शुद्ध ११ शुकनार	३०	"
	आर्य सि.	५४४३५			६८७	७	७५७		चैत्र शुद्ध ६ गुरुवार	२९	"
	सूर्य सि.	५४३४४			६८१	७	४९		" "	२९	"
	नक्ष स. सि.	५४३२३			६८०	७	३४८		" "	२९	"
	शु. केंद्राय	४५०५८			५९०	६११	३३		चैत्र शुद्ध ५ बुधवार	२८	"
	शु. सांपातिक	५३३३२			२९५३	०	०	०	फाल्गुन ३० गुरुवार	२२	"

वार्ति से तुलना  $(५३३३२) + (२।२२।१२) = (०।५९।३३)$  ऐ अब्दपतुल्य है

द्वितीयाय सि. के मणित से आर्य मंड तुल्य तिथि शुद्धि ६८७ पर मेघ सक्रमण काल जाता है । सो सूक्ष्म गणित के तुल्य बराबर है

## चिधान १९.

(३) राज मृगांक (भोज कृत) शके ९६४ में मध्यम मेष्पार्क काल-शुद्ध नाक्षत्र परिमाण से चैत्र शुद्ध ४ शनिवार तारीख २ अप्रैल सन १०४२ ई. को घ. ४४ प. ३४ पर। और सांपातिक परिमाण से फाल्गुन (अमात) वदि शके ८७४ ८ बुधवार ता. २३ मार्च १०४२ ई. को घ. ६ प. ४२ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनाश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बताई है।

विधान १२ प्रोक्त अक्षर	राजमृगांक के	अम्दप			तिथि			अयनाश			शके ९६४ इसवी सन १०४२		
	समय में	वार	घडा	पक्ष	शुद्धि			अक्ष	कला	विकला	मिती	तारीख	मास
प	शुद्ध नाक्षत्र	०४४	३४		३.५९	१०	२८	३६			चैत्र शुद्ध ४ शनिवार	२	अप्रैल
प	ब्रम्हगुप्त सिद्धांत	६	१	४	१.८४	८	४६	३६			" ३ शुक्रवार	१	"
अ	भोज प्रोक्त	५५९	४७		१.७२	८	३९	०			" २ शुक्रवार	३१	मार्च
व	आर्यभट्ट सिद्धांत	५५२	५३		१.६७	८	३४	३६			" " "	३१	"
व	सूर्य सिद्धांत	५४५	३४		१.६१	८	३१	१०			" " "	३१	"
अ	नव्य सू. सि.	५४५	६		१.६१	८	३०	५०			" " "	३१	"
अ	शुद्ध फैदाय	४५७	१०		३०.८६	७	४३	३६			" १ बुधवार	३०	"
ओ	शुद्ध सांपातिक	४	६	४९	३२.७९	०	०	०			फाल्गुन व. ८	२३	"

वारों से तुलना ( ४६१४९ ) + ( १०१३७४७ ) = ( ०१४४३४ ) 'ऐ' के तुल्य है।

भा. ज्यो. पृ. २३८ से राजमृगांक के सूर्य १०१२८१४५१० चद्र १०१९१२१५१ द्वारा फा. व. ३० कर्णारम में तिथि ०८०९ से मेष्पारम तिथि १.४ आती है। और उसमें लिखे अयनाश ८३९ से ति. शु. १.७१ ( ऊ ) अष्टपादि स्वलग्नतर से शुद्ध है।

## चिधान २०

(४) 'कण कमल मारत' शके ९८० में मध्यम मेष्पार्क काल-शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र वदि ३० शुक्रवार तारीख २ अप्रैल सन १०५८ ई. को घ. ५० प. ४७ पर और शुद्ध सांपातिक मान से चैत्र वदि ५ सोमवार ( सूर्योदय से ) ता. २२ मार्च सन १०५८ को घ. ५९ प. २१ पर हुआ है। इससे अन्यान्य वर्तमान द्वारा ( निम्न लिखित ) अयनाश आते हैं। उनकी ग्रंथोक्त से एकत्रयता इस कोष्टक में लिखे प्रकार होती है।

	कमल मार्टेड के समय में	अब्दप			तिथि	अयनाश			शके १८० ईसवी सन १०५८		
		वा	घ	प.		अ	क	वि.	मिती	तिथि	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	६	५०	४७	३० ५९	१०	४२	०	चैत्र व. ३० शुक्रवार	२	अप्रैल
ए	ब्रह्म गुप्त सिद्धांत	५	९	११	२८ ८७	९	१५	८	" १४ गुरुवार	१	"
उ	आर्य सिद्धान्त	४	५७	१४	२८ ६७	८	५०	१०	" १३ बुधवार	३१	मार्च
इ	सूर्य सिद्धान्त	४	५३	४९	२८ ६१	८	४६	४८	" " "	"	"
इ	नव्य सू. सि.	४	५३	३१	२८ ६१	८	४६	२९	" " "	"	"
ओ	शुद्ध वैदिक	४	६	२०	२७ ८१	८	०	९	" " "	"	"
अ	शुद्ध सांपातिक	२	५९	२१	१९ ५६	०	०	०	" ५ सोमवार	२२	"

वारों से तुलना  $[ २५९।२१ ] + [ १०।५१।२६ ] = [ ६।५०।४६ ]$  'ऐ' के तुल्य है.

भा० ज्यो० पृ० २४० में लिखे प्रकार से अयनाश  $[ १८० - ४३८ = ५४२ - ६० = ] ९१२$  आते हैं। सो ब्रह्मगुप्तोक्त भगणारम दिनगदि के तुल्य हो जाने से गणितानुसर शुद्ध हैं।

### विधान. २१

( ५. ) करणप्रकाश [ ब्रह्मदेव विरचित ]—शके १०१४ मध्यम मेघार्क संक्रमण काल=शुद्ध नाक्षत्र मानसे चैत्र वद्य २ शनिवार तारीख २ अप्रैल १०९२ ६० को घ. ३३ प. ४३ पर और शुद्धसांपातिक मानसे चैत्र शुद्ध ६ मंगलवार ता. २२ मार्च १०९२ ३० को घ. १३ प. २८ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनाश और उनकी प्रगोक्तसे एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्ठ में प्रतर्पित है।

करण प्रकाश म. म सुधाकर द्विवेदीकृत टीकाधृत [ सन १८९९ फार्सी मुद्रित ] के पृष्ठ १४ में के " १०१४ शके चैत्र शुद्ध प्रतिपदि भृगो रव्युदये भादान्न रव्यादी नार्य भट्ट मतानुसारेण। रवि. ११।१६।३२।५७ चन्द्रः ११।२७।२०।०० " आधार से गणित द्वारा उपर्युक्त कोष्ठ में [ ऊ ] चिन्ह के आगे करण प्रकाशोक्त अब्दप ति. शु. और अयनाश लिखे ह। यह सर्वाज कहे होने से आर्य सिद्धान्त के सिर्ग ६ फलान्तर से शुद्ध है। इसकी भूमिका में म० द्विवेदीजी लिखा है कि " शंकर बाटवृष्ण दीक्षित लेखानुसारेण ब्रह्मदेव मतेन ४४५ शकेऽयनाशमात्र प्रत्यब्दमेक कल्याण गतिश्च [ भा. ज्यो. पृ० २४०-२४१ निलोक्ये ] पारम्पर्येण भागचर्चान् कुत्रापि दृश्यते। " इसमें स्पष्ट है कि शन्यायनाश क्यों से अयन गति दाय हमारे मध्यकार अयनाशों को नहीं लेकर वैश्वसिद्ध विषुव दिन से लेते थे। अतएव वह सिद्धान्तिक मान से शुद्ध हैं।

ग्रंथ.	करण प्रकाश के.	अक्षरप.	तिथि.	अयनांश.	शाके १०१४	ईसवी सन १०९२
चिन्ह.	समय में.	वा. घ. प.	शुद्धि.	अ. क. वि.	मिति	ना. मास.
ऐ	शुद्ध नाक्षत्रमान	०३३४३	१६°७१	११ १० २८	चैत्र वद्य २ शनिवार	२ अप्रिल
ए	ब्रह्म युत सिद्धांत	००६२४	१५°०६	१३४ ३४	चैत्र शुद्ध १५ गुरुवार	११ मार्च
उ	आर्य सिद्धांत	५४४५६	१४°८७	९२३ १६	" " " "	" "
ऊ	करण प्रकाश	०३८४९	१४°७६	९१७ १३	" " " "	३१ "
ई	सूर्य सिद्धांत	५४१४२	१४°८१	९२० ३	" " " "	" "
इ	नव्य सू. सिद्धांत	५४१२४	१४°८१	९१९ ४५	" " " "	" "
अ	शुद्ध वैद्रीयमान	४५६१४	१४°०४	८३० १९	" " १४ बुधवार	३० "
ओ	शुद्ध सापत्तिक	३१३१८	५ १९	० ० ०	चैत्र शुद्ध ६ मंगलवार	२९ "

वारों से हटना [ ११११२८ ] + [ १११०१५ ] = [ ०३३१४३ ] 'ऐ' के तुल्य है.

### विधान २२

( ६ ) ' भाव्यती करण ' शाके १०११ में मध्यम मेपार्क सक्त-ण पाठ=शुद्ध नाक्षत्रमानसे-चैत्र शुद्ध ५ सोमवार तारीख ६ अप्रैल सन १०९९ ई की, घ. २१ प. २४ पर। और शुद्ध सायनमान से फाल्गुन यदि ८ बुधवार ता २२ मार्च १०९९ ई की घ. ५५ पक्ष ११ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनका प्रयाक्त से एकत्राक्यमा निम्न-लिखित बोटक में बना है।

ग्रंथ	भास्वती के.	अक्षरप	तिथि	अयनांश	शाके १०११। ३ सन १०९९	
चिन्ह	समय में	वा. घ. प.	शुद्धि	अ. क. वि.	मिति	ना. मास.
ऐ	शुद्ध नाक्षत्रमान	२११२०	६°२५	११ ६१०	चैत्र शुद्ध - मोक्षवा	३ अप्रिल
ए	ब्रह्म युत सि.	०४५ ०	२ ५०	० ८० १३	चैत्र शुद्ध २ शनिवार	१ "
उ	भारती करण	०२४३०	२ ३५	९३१ ५	" " " "	१ "
ऊ	आर्य सिद्धांत	०३३४०	२ १३	० ३० ५	" " " "	" "
ई	सूर्य सिद्धांत	०३०२५	२ ०७	० ६० ३	" " " "	" "
इ	नव्य सू. सि.	०३० ४	२ ०३	० १६ ३०	" " " "	" "
अ	शुद्ध वैद्रीयमान	६२५ २३	३ ०३	८६० ३३	चैत्र शुद्ध ० बुधवार	३१ मार्च
ओ	शुद्ध सायन	४५५ ३३	२०-०३	० ० ०	फाल्गुन ८ बुधवार	२० "

वारों से हटना ( ४ ५३ ११ ) + ( २० १ २९ १३ ) = ( २ २३ २८ ) ए. क. तुल्य है.



भा. ज्यो. पृ. २४४ के लिखे प्रकार से अयनांश ९° ३१' आते हैं सो (ऊ) ब्रह्मरूपक्ष के बीच के तुल्य शुद्ध है।

### विधान २३

‘करणोत्तम’ शके १०३८ में मध्यम मेष सं. काल=शुद्ध नाक्षत्र मान से चैत्र सुदी १२ सोमवार तारीख ३ अप्रील सन १११३ ईसवी को घ. ४२ प. ५४ पर। और शुद्ध सायन मान से चैत्र सुदी १ गुरुवार ता. २३ मार्च १११६ ई. को. घ. २ प. १९ पर; हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी प्रत्येक से एक वाक्यना (निम्न) कोद्धत में बताई है।

ग्रंथ	करणोत्तम के	अब्दप	तिथि	अयनांश	शके १०३८। ईसवी सन १११६ में		
चिन्ह.	समय में	वा. घ. प.	शुद्धि	अं. क. वि.	मिति	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	२४२ ५४	१२.२१	११ ३० ३४	चैत्र सुदी १२ सोमवार	३	अप्रैल
ऊ	करणोत्तम	१ ११ ३	१०.६२	१० ० ०	चैत्र सुदी ११ राविवर	२	"
ए	ब्रह्मगुप्त सि.	१ ८ ३५	१०.६१	९ ५७ ३६	" " "	२	"
व	आर्य भि.	० ५७ २९	१०.४२	९ ४१ ३९	" १० शनिवार	१	"
ल	सूर्य सिद्धांत	० ५४ १८	१०.३७	९ ४३ ३१	" " "	१	"
श	नव्य सू. सि.	० ५४ ०	१०.३७	९ ४३ १४	" " "	१	"
अ	शुद्ध केंद्रीय	० १० १७	९.६२	९ ० १	" " "	१	"
ओ	शुद्ध सायन	५ २ १९	३० २४	० ० ०	चैत्र सुदी १ गुरुवार	२३	मार्च

बारों से तुलना  $(512195) + (118039) = (218214)$  'द्व' के तुल्य है।

भा. ज्यो. पृ. २४९ में “करणोत्तमादौ चाप्ययनांशा दशसंख्याः” इस समय अयनांश १० घे ” ऐसा लिखा है। सो (ऊ) परिमाण ब्रह्मगुप्त के (२१२४”) स्थलांतर से बराबर है। मो सिद्धांतिक रीति से शुद्ध है।

## विधान २४

(८) करण कुतूहल (भास्कराचार्य कृत) शाके ११०५ में मध्यम भेष सं० फाल शुद्ध नाक्षत्र मान से चैत्र शुद्ध ४ सोमवार तारीख ४ अप्रील सन ११८३ ई को प ५३ प. ३० पर। और शुद्ध सायन मान से फाल्गुन वदी ६ बुधवार तारीख २३ मार्च ११८३ को, घटी १५ प. ५८ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उन की प्रयोक्त थे एक साक्ष्यता निम्न लिखित कोष्ठक में उतारि है।

ग्रंथ		करण कुतूहल के	अव्यय			तिथि	अयनांश			विक्रम संवत् १२४० सन ११८३		
विन्ह	समय में		वा	घ	प.	शुद्ध	अं.	क	वि	मिति	तारीख	मास.
पे	शुद्ध नाक्षत्र	२५३३०				३.३८	१२	२६	४०	चैत्र सुदी ४ सोमवार	४	अप्रैल
ऊ	प. कुतूहल	१४२३५				२.३२	११	२४	०	चैत्र शुद्ध १ रविवार	३	"
ए	महर्षि सिद्धांत	१३७१९				२.१२	११	१५	२	" २ "	"	"
उ	आर्य सिद्धांत	११७२०				१.७५	१०	५१	५३	" " "	"	"
ह	सूर्य सिद्धांत	११४३१				१.७०	१०	४९	६	" " "	"	"
इ	नव्य सूर्य सिद्धांत	११४१०				१.७०	१०	४८	४६	" " "	"	"
अ	गुण्य वैदिक	११४३०				१.०३	१०	२२	९	" " "	"	"
ओ	शुद्ध सायन	४१५०८				२०.५६	०	०	०	फाल्गुन व ६ बुधवार	२३	मार्च

गोलायी गृहणा ( ४१५१८ ) + ( १०३०१२ ) = ( २५११३० ) 'घ' के रूप है

करण कुतूहल [ सर्वदेवदेव प्रेम का उपा. हुआ मटीक दे ] पृष्ठ ३१ श्लोक १० की टीका में 'यथाह्नाश ययनांशा ११०५ प्रथमवृत्ता ययुषिनाति विवचनां विहायांशा एव भवा यथाह्नामिता गृहीता. ' एव । लिखा है। इसमें हाप होता है महर्षि के प्रहो में बांज सहर ११ " यथाह्नामिता ययनांशा ययः ' १ मि मि. य मध्यम विहार १०. ७८) देकर अयनांश १११२८ अं है बांज नहीं दिये तो ११ १० पाण्डुरोक्त महर्षि के नव्य भाति है। और वही मुंज के क. के गुण्य एव महर्षि मिहर्षि शाय ययनांश पर ४४० में मिलते हैं। एव एव महर्षिना १ के गुण्य शुद्ध है. मि मि. [ शाके १०३० ] में गुण्य १० ११ अयनांश मिले है। यह जयज जयम य गीत बने हैं। यह महर्षिना के एक अर्थ के अन्तर हो गये हैं। कोई भ हो उनके देव सिद्ध अयनांश १०१०८ टीका लिखते हैं वही में प्रस्तुत विधान में मिले हैं। और १०१०८ जयने पर भी कोई बधा अर्थ नहीं है।

## विधान २५

(९) 'ग्रहलाघव' शाके १४४२ में मध्यम भेष में काल=शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र सुदी १२ शुक्रवार तारीख ९ अप्रैल सन १५२० इ. को घ. १७ प. २६ पर। और शुद्ध सायनमान से फाल्गुन बदि ९ सोमवार तारीख २२ मार्च १५२० को घ. ५३ प. ३४ पर हुआ है इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ	ग्रह लाघव के	अब्दप			तिथि	अयनांश			संवत् १५७७ सन १५२०		
चिन्ह	समय में	वार	घंटा	पल	शुद्धि	कला	कला	विकला	मिती	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	११७	२६		११°४३	१७	८	४९	चैत्र सु १२ शुक्रवार	९	अप्रैल
ऊ	ग्रह लाघव	५४६	५		१०°८९	१६	३८	०	" ११ गुरुवार	८	"
ए	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत	५३३	४		१०°६८	१६	२५	८	" " "	"	"
उ	आर्य सिद्धांत	५२७	५०		१०°५९	१६	२०	०	" " "	"	"
इ	सूर्य सिद्धांत	५२६	२४		१०°५७	१६	१८	३१	" " "	"	"
ई	नव्य सूर्य सि.	५२६	१३		१०°५६	१६	१८	२३	" " "	"	"
अ	शुद्ध केंद्रीय	५	५४३		१०°२१	१५	५८	१९	" " "	"	"
ओ	शुद्ध सायन	२५३	३४		१३°७५	०	०	०	फागुण ब. ९ सोमवार	२२	मार्च

वारों की तुलना  $( २५३१३४ ) + ( १७१२३१५२ ) = ( ६११७२६ )$  'ऐ' के तुल्य है।

ग्रह लाघवकार ने अपने समय के अयनांश  $१६^{\circ}१३'$  कह दिये हैं। वह तिक १०°८ कलांतर से शुद्ध नाक्षत्रमान के तुरंत शुद्ध हैं।

## विधान २६

( १० ) सिद्धान्ततत्त्व विवेक ( कमलाकर कुंज ) शाके १५८० में मध्यमभेषांक काल=शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र शुद्ध ८ बुधवार तारीख १० अप्रैल सन १६५८ इ. को; घ. ४० प. ११ पर और सायन मानसे फाल्गुन कृष्ण ४ शुक्रवार ता. २२ मार्च १६५८ को घ. १९ प. ७ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्नलिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ	तत्त्व विवेक के	अब्दप	तिथि	अयनांश	संवत् १७१५ सन १६५८
चिन्ह	समय में	वर्ष	शुद्धि	अंश	मिती
ऐ	[ऊ] शुद्ध नाक्षत्र	४४०११	८°०२	१९ ४२२	चैत्र सुदा ८ बुधवार १० अप्रेल
ए	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत	४१२५८	७°५८	१८ ३७ ३२	" " " "
उ	आर्य सिद्धांत	४ ९४७	७°५२	१८ ३४ २२	" " " "
ह	सूर्य सिद्धांत	४ ८४९	७°५१	१८ ३३ २८	" " " "
इ	नव्य सूर्य मि.	४ ८४६	७°५१	१८ ३२ ३९	" " " "
अ	शुद्ध केन्द्रीय	३५६ ८	७°२९	१८ २० ५५	" " मंगलवार ९
ओ	सायनमान	६१९ ७	१८ ३७	० ० ०	फाल्गुन व ४ शुक्रवार २२ मार्च

वारों की तुलना  $(६।१९।१७) + (१९।२१।४) = ४।४०।११$  'ऐ' के तुल्य है।

कमलाकर ने अपने ग्रंथ में चरों (अयनांशों) का उपयोग तो दिया है किंतु उसके अफ नहीं देकर सूर्यसिद्धांत तुल्य कहे हैं। जोकि सू. सि. के रविमणारम को देखने १८°।३३' होते हैं। मा. ज्यो. पृ. ३३५ में सि. तत्त्वविवेक का शून्यायनांश वर्ष ४२१ उससे (इ) सू. मि की गति से १८°।५४' होते हैं। तथा स्थूल गति प्रत्यब्द १ कला से १९°।१९' होते हैं। इसलिये इनका मध्य (विधान १६ देखिय) आर्य मतीयमानसे  $(१५८० - ४३६ = ११४४ = ६० = अयनांश १९°।४' लेने से शुद्ध नाक्षत्र के तुल्य हो जाने से अलग लिखे नहीं है। तथा प्रथकार के स्पष्ट लिखे बिना ठीक ठीक ममाण मानते आता नहीं है। तो भी जबकि प्रथकार ने शेष वाचना (पृ. ४२) में 'क्रांति वृत्ते मेघदे. स्वस्व नक्षत्र भुवनान्तरे स्वस्व भोग.' इस प्रकार, तथा विपुनाशसाधन और भास्कराचार्योदयान्तर समालोचना में वेधसिद्ध सायन ताराओं से भुधुवक्रोक्त योगतारा भोगों के अंतर द्वारा अयनांशों को धनित किया है इसलिये कमलाकर के समय के अयनांश १९।४ चैत्रायमान के एवं शुद्ध नाक्षत्र के तुल्य शुद्ध हैं।$

### विधान २७

सूर्य सिद्धान्त आदि प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में लिखे हुए ध्रुवक यद्यपि अत्यन्त प्राचीन मालिक होने से ताराओं की निजगति के कारण स्वामी के तुल्य अति गति युक्त ताराओं

के भोग शरों में अब तक कुछ अंशों का अंतर पड़ता है तथापि यह सदा स्थिरप्राय कदंब प्रोतीय कहे होने से अयनाश और आरम्भस्थान के निश्चय करने में ( पर्याप्त ) शुद्ध हैं । चित्पावन जातीय माधवगन्धर्व दादाभाई कृत किरणावली टीका ( दृ. लिखित पृष्ठ ११६-२ ) में " एते ध्रुवाः क्रांतिवृत्ते भोगाः शरामयोगतारा कदंब वृत्ते । " ऐसा ' भुवकों को क्रांतिवृत्त में भोग और 'कदंबाभिमुख शरों को ' कहा है । सिद्धान्त तत्त्वविवेक में कपलाकर ने बड़ी गवेषणापूर्ण इस विषय का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

कदंब संबंध वशेननूनं ये सूर्यसिद्धान्तमत्र प्रसिद्धाः ॥ ध्रुवोत्थसूत्रेनहितेऽवयोध्याः सूर्याशयक्षेपणितप्रतीये ॥ १ ॥ कदंबद्वय मोक्षवृत्तं च यत्तद्भविष्यति सप्तवृत्तेष्वयत्र ॥ भवेद्भूध्वजः १२ विधान्तराले कदंबोत्थवृत्ते शरीरान्यसौम्य ॥ ३ ॥ कदंबसंबंधवशेन सिद्धाएवोक्ता ये रविणा ध्रुवाख्या ॥ तेषां बलाये ध्रुवसूत्रसंस्थां मत्वा विज्ञेयानयन कर्म कृत्वा ॥ १९ ॥ पुनः कदंबोन्मुखतां प्रसाध्य युत्यदिकं स्वीयधियाऽऽनयति ॥ असंगतं तत्प्रतिभाति यस्मात् सूर्यादि देवैरुचितं तद्वत् ॥ २० ॥ कदंबस्थिता तारका नप्रसिद्धा तत खेटयोग प्रतीतिः कथंस्यात् ॥ ध्रुवस्थान तारात्र लोकप्रसिद्धा तत्रोक्ता खेटयोगोपपत्तिः ॥ ६६ ॥ इत्थं प्रसिद्ध ताराया विश्वासाच्च शिरोमणौ नाशितं खेट योगस्य साधनं ध्रुवसूत्रगम् ॥ ६७ ॥ किंचात्र शीघ्र नीचोच्चवशाद्देशो महान्गतौ ॥ ६९ ॥ येभ्यश्चः स्वायन कम सिद्धा स्तेसत्त्वबाणा ध्रुवसम्मुखास्तु ॥ ये केवलामध्वका सदाते वेद्याः कदंबाभिमुखाः सबाणाः ॥ ९२ ॥ सौरेतुत्रे दिनरात्रियात् सिद्धपर्यं मुक्तं किलट्टिककर्म ॥ तस्मैटयोर्मेलक यद्वहस्यगत्यादि नाथं बद्धवत्सदुक्तम् ॥ १०१ ॥ भवेद्योः केवलयोर्मुतेष्व संसाधनं श्रीरविणामयार्थम् ॥ १०२ ॥ " मग्रहयुत्यधिकार में इत्यादि विस्तारपूर्वक लिखा है ।

### विधान २८.

यद्यपि विश्वनाथ और रगनाथ ने ( सू. सि. ) टीका में भूच वाक्यों के अर्थ को खींचलाचकर ध्रुवसूत्रीय कहने का प्रयत्न किया है किंतु पर्वत और नार्मद आदि प्राचीन टीकाकार इन्हें कदंब सूत्रीय प्रतिपादित करते हैं ऐसा " नक्षत्र ध्रुवके पर्वतेनायन दृक्कर्माप्युदाहरणे कृतम् " आपका कथन पूर्व टीकाकारों के सम्मत नहीं इसप्रकार स्पष्ट कर दिया है इतनाही नहीं तो वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्तादि संपूर्ण ग्रंथों में, ' नक्षत्राणामयोक्ते स्वराशि बलपेक्षितिम् ॥ १ ॥ धिष्ण्यानाटकर्मकुर्यात् ॥ १९ ॥ इहे राशिचक्र=क्रांतिवृत्त में लिखकर ध्रुवसूत्रीय करने के लिये इनको दृक्कर्म करना कहा है लल्ल सिद्धान्तादिमें तो सेफडो जगह 'ध्रुवः' 'ध्रुवकः' शब्द आये हैं वह सब क्रांतिवृत्तीय कदंबसूत्रीय के अर्थ में हैं इससे सिद्ध होता है कि नक्षत्रों के ध्रुवक कदंबसूत्रीय हैं ।

## विधान २९.

इसलिये शुद्ध नाक्षत्रमान के अयनांश साधन में ध्रुवकोक्त योग तारा के भोग से संपातमाधित मायन तारा के भोगांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र अयनांश आसकते हैं। तत्रविषेक ( भद्रहयुज्य. ) में कमलाकर ने भी “ अत्रांशाद्यं महाद्यतत्कृत्वा तेषहपूर्वकाः ॥१९॥ संपातान्मेयसंज्ञाच्च ध्रुवाणांचलत्वतः ॥ भगोलीकृतमेपादेः स्थिराप्तेवोदिताः सुरैः ॥ १७ ॥ ” ऐसा ही कहा है। किंतु अयनांश साधन एवं राशिचक्र के आरंभस्थान के निश्चय में योग तारा [ १ ] निरसंदेह, [ २ ] नेत्रों से स्पष्ट दिखनेवाला नैर्दोषस्थान, [ ३ ] निजकी अव्यय गतिमान्, [ ४ ] पूर्ण राशिरूप, [ ५ ] क्रांतिवृत्त के आदि में या ठीक मध्य में स्थित हो [ ६ ] अलग दूरवाली हो [ ७ ] पैछानने में विशेष लक्षणवाली, [ ८ ] संहिता ग्रंथोक्त राश्यादि विभागों से पूर्ण संबंध रखनेवाली, [ ९ ] वैदिक काल में नक्षत्र गणनादर्शक, [ १० ] सर्व ग्रंथ सम्मत, और [ ११ ] परंपरा प्रामाण्ययुक्त होनी चाहिये। इन ग्यारह लक्षणों का अब मैं क्रमशः स्पष्टीकरण करता हूँ।

## विधान ३०.

वेधसिद्ध सायन निम्नलिखित गणित से बनाकर बताता हूँ । नाटिकल आत्मनाक सन १९३० में तारा नंबर ४०३ ग्यामा जेमिनि प्रति ( वर्ग ) १°२३ विषुव काल ६ । ३३ । ४०°०४९ विषुवांशः ९८° । २५' ) और क्रांति उत्तर १६°१२०' ३७."२१ ( =+१६°१२८' ) लिखी है । ज्योतिर्गणित ( पृष्ठ. ३९१ ) में लिखा सारणी से लाभप्रथम द्वारा गणित न्यास इस प्रकार है ।

### आर्द्रा का सायन भोग साधन.

आर्द्रा क्रांति छाया या घातांकाः	९°४७°६७६२	चापः
,, विषुवांश भुज उयाया	९°९९°९१७२	
अंतरं, छाया याः	९°४७°६३७९० परम क्रांतिः	१६°१३८'
,, विषुव को ज्यायाः	१०°८४°८५४५७३वेः परम क्रांतिः	२३°१२७
,, क्रांति को ज्यायः	९°९९°९१९१ अ	-६।४९
ऐक्यं व को ज्यायाः	१०°८४°५४६४८ व	८१।५६
व छायायाः घातांकाः	१०°८४°८५४५७	चापांशः
अ कोटीज्यायाः	९°९९°९१९१	
ऐक्यं भुज कछायायाः	१०°८४°५४६४८	भुजः + ८१°१९२'
सायनो	,,	भोगः = ९८। ८
व भुजज्यायाः	९°९९°९६८१५	
अ भुजज्यायाः	९°०७°४४२४४	
ऐक्यं शरज्यायाः	९°०७°०१°०५९	शरः—६।४५ दक्षिणः

### अयनांश साधन.

आर्द्रा ( ग्यामा	वर्तमान कालिक	प्राचीन कालिक
जैमिनि )-का	वेधसिद्ध मानसे	वृद्धवनिष्टोक्तम्
सायन भोग	९८° ८'	९८° ८'
नाक्षत्र भोग	७५ १६	७५ ०

अयनांशः ( शास्त्रशुद्धाः ) २२ ५२  
तारे की निजगति से कालान्तर बीज ( शुद्धांतर जन्य )

२३ ८  
-० १६

वृद्धवसिष्ठ सिद्धान्तोक्त भोगसाधित वही अयनांश

२२ ५२ आते हैं ।

## विधान ३२.

दूसरा एक तारा नक्षत्र स्वाती है “आर्कटयूरस” नामक इसकी सर्व सम्मत योगतारा है। प्राचीन ग्रंथोक्त ध्रुवकों में इसका भोग  $१९९^{\circ}$  तथा शर  $३७^{\circ}$  उत्तर में कहा है। और ‘शुद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त आदि में अपांवरसापयोर्मार्धे’ स्थिति:। ऐसा अपांवरस (श्रीटाविहिर्गिनीस) और आप: (टाऊविहिर्गिनीस) की स्थिति राशिचक्र के ठीक मध्य  $१८०^{\circ} १०'$  में कही है। तथा बराह मिहिर ने “सम मुचरेण तारा चित्रायाः कीर्यते ह्यपांवरसः ॥ तस्यासमे चंद्रे स्वातेर्योगः शिबो भवति ॥ १ ॥” इस प्रकार चित्रा और अपांवरस के आसन्न में स्थित चंद्रमा की स्वाती के साथ शरसूत्रीय युतिके होने में शुभ फल कहा है। तथा ‘चित्रार्धास्त्रमभागे’ पंचसिद्धान्तिका में चित्रा को राशिचक्र के (अर्धास्त) ठीक ठीक मध्य में कहा है। एवं कुछ सिद्धान्त ग्रंथों में चित्रा का शुद्ध नाक्षत्रिक कदंबाभि मुखभोग को और अपांवरसाप: को (मार्ध) राशिचक्र के मध्य में लिखा है तब ऐसे मार्धस्थित चंद्र की स्वाती के साथ कदंबशर सूत्रीय युतिके उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वर्तमान में स्वाती की स्थिति चित्रा के एव भोग  $१८०$  अंश के निकट में है।

## विधान ३३.

वैध सिद्ध परिमाणों से कदंबाभिमुख स्वाती का भोग  $१८०^{\circ} १२४'$  शर  $३०^{\circ} ४९'$  उ० है। अतः गणित से पता चलता है कि ऋक्कोक्त स्थान से पश्चिम के तर्फ  $१८^{\circ} ६$  अंश और दक्षिण के तर्फ  $६^{\circ} १८\frac{१}{२}$  अंश (भुजकोटी मानने से उ० कदंब से  $२५१.१७'$  दिगंश के तर्फ (त्रिउपाख्य)  $१९^{\circ} ६$  अंश स्वाती का तारा सरक गया है। इसकी तुलना पाश्चात्यों के शोध से वर्तमान में) स्वाती के विषुवांश  $२१३$ , ज्ञाति  $१९^{\circ}$  उ० में; उत्तर ऋष से दिगंश  $२०९$  के तर्फ वर्षगति  $२^{\circ} २८'$  विकला कही है सो पूर्व प्रतिपादन के करीब में मिलती हुई है। इस गति द्वारा ‘ऋक्कोक्त स्वाती के स्थिति का सङ्गाव काळ शक पूर्व  $२९०१७$  वर्ष का निश्चित होता है। किंतु रवि परमज्ञाति  $२६$  अंश मानला जावे तो स्वाती का इतना चलन कबिब  $१७१८$  हजार वर्षों मेंही हो जाता है। जोंकि वेदांग उपोत्तिष के बाद में ऋक्कोक्त स्थिति काळ निश्चित होता है। अतः अब अयनांश साधन के लिये स्वाती के सायन भोग ( $२०३.१६'$ ) में नक्षत्र भोग ( $१८०^{\circ} १२४'$ ) कम करने पर अयनांश  $२२^{\circ} १५२'$  निश्चित होते हैं। और पूर्वोक्त के तुल्य साक्ष्य शुद्ध हैं।

## विधान ३४.

समर्पियों के ७ तारोंमें भी अयनांश का निश्चय हो सकता है। इसके संबंध में तत्त्व विवेककार ने लिखा है कि “साकल्यसंज्ञ मुनिना कथिताः सबाणाः समर्पि तारक भवा



ध्रुवकाचलाश्च ॥ २५ ॥ 'युगादौ विष्णुवारायाः क्रतुर्मादौ व्यवस्थितः ॥' इत्यादि ( शा. ब्र. सि. श्लो. १७९-१८५ ) देखिये यहां 'माचैः समाहितः' पाठ छेने से विष्णुवारा की संगति लगती नहीं 'मार्धे' से लगती है। इसलिये मार्धेपाठ लेकर निम्न लिखित न्यास में इन श्लोकों का अर्थ और अयनांशों को निश्चित करके बताता हूं।

### सप्तर्षि के तारोंकी स्थिति.

सप्तर्षियों के तारों के		शुद्ध नाक्षत्र वर्तमान में		सायन व्रजण संपात में		प्रद्योक्त प्राचीन कालिक		वर्तमान तारीख १-१-३० को	
नाम	प्राक नाम	भोग	शर	भोग	अंतर बीज	सायन भोग	शर	शरीतर	सायन भोग
१ क्रतु	अल्का- युर्समेजारिस	११११२१	४९/४१	१८०। ०	०। ०	१८०/५५	५१/८	१३४ १४	
२ पुलह	बौटा "	११५/३५	४५। ७	१८४/१४	+१/१४	१८३/५१	५१/३	१३८ २८	
३ पुलस्त्य	ग्यामा "	१२६/३८	४७। ८	१९५/१७	+२/१७	१९३/५०	२५/२	१४९ ३१	
४ अत्रि	डेहटा "	१२७/१२	५१/३९	१९५/५१	-०। ९	१९६/५६	४१/१	१५० ५	
५ अंगिरा	इप्सिलान "	१३५। ५	५४/२८	२०३/४४	-०। १६	२०४/५७	२४/२	१५७ ५८	
६ वसिष्ठ	झीटा "	१४१/५१	५६/२३	२१०/३०	-०। ३०	२११/६०	३३/७	१६४ ४४	
७ मरीचि	ईटा "	१५३। ५	५४/२३	२२१/४४	+०। ४४	२२१/६०	५१/७	१७५ ५८	

उपर्युक्त स्थितिदर्शक कोष्टक में सप्तों तारों के शर दक्षिण के तर्फ करीब ५ अंश खिसका हुआ दिखता है। विधान ३३ देखिये-स्वाति का भी ऐसे ही ६ अंश खिसका है। और प्राचीन ग्रंथों में अगरल्य व। दक्षिण शर ८० लिखा था सो अब-७५.८ होने से+४.८ अंश उत्तर को आगया है इससे न्या तो सूर्य ग्रह माला को डिये हुए अगरल्य के तर्फ जारहा है या रवि की परम क्रांति पहिले २६।२७ अंश थी ऐसा ज्ञात होता है। इससे हमारे प्रद्योक्त परिमाण शुद्ध नाक्षत्र के हैं। सूक्ष्ममान से कालान्तर युक्त तुल्य मिलते हैं।

### विधान ३५.

ऐसा ही इनकी गति के संबंध में 'प्रत्यहं प्रगाति स्तेषामष्टौक्षिता मुनीधर' ऐसे पाठ में 'शताद्वे प्राग्गाति स्तेषां' पाठ है। अर्थात् सौ वर्ष में नक्षत्र की ८ कला [८×१३।२०]

$= 1^{\circ}14'18.0''$  कही है सो सूक्ष्ममान से अयनगति  $[ 1^{\circ}23'46'' ] +$  उच्च याने केन्द्र गति  $(1^{\circ}14'18'') = 1^{\circ}37'64''$  के स्वल्पांतर  $[$  सौ वर्ष में  $3'18''$  मात्र  $]$  से तुल्य मिलती हुई है। इससे अब हमे इनके द्वारा अयनांश निश्चय में कोई विवाद या विसंगता नहीं है। इसी शाक्योक्त ब्रह्मसिद्धांत में लिखे चित्रा भोग  $180^{\circ}$  के अनुसार उपर्युक्त षोष्ठक में नाक्षत्र भोग लिखे हैं। इनके भोग में इन्हींका सायन भोग कम करने पर अयनांश  $2^{\circ}12'12''$  किंवा चक्र शुद्ध- $180^{\circ}12'12''$  उस समय के  $[$  वद काल निर्णय पृ. १०१ देखिये  $]$  यानी शक पूर्ण  $2^{\circ}12'12''$  वर्ष के निश्चित होते हैं। अर्थात् श्रवण नक्षत्र के मुक्त  $86$  घटी,  $5$  पल पर जिस समय सपात की स्थिति थी उस युगादि में यानी वेदांग ज्योतिष के सिर्फ  $180$  वर्ष के बाद क्रतु का तारा भार्गव  $[ 180$  अंश  $]$  पर था और वर्तमान में उसका सायन भोग  $2^{\circ}34'18''$  है इन प्रत्येक में शुद्ध नाक्षत्र भोग कम करनेपर ऋणायनांश युगादि में  $-180^{\circ}12'12''$  और वर्तमान में  $2^{\circ}12'12''$  निश्चित होते हैं। इसी प्रकार पुलहादि के वर्तमान सायन भोगों में उनके नाक्षत्रमान घटा देने पर सभा तारों से वर्तमान के अयनांश- $2^{\circ}12'12''$  ही निश्चित होते हैं। यदि हम ज्ञाता पिशियम को आरम्भस्थान में मानकर गणित करें तो क्रतु का नाक्षत्र भोग  $1^{\circ}14'18''-180^{\circ}=2^{\circ}12'12''$  तत्कालीन अयनांश धनिष्ठा नक्षत्र की  $18$  घटी  $96$  पल बीतने पर सपात की स्थिति आती है सो  $( " विष्णु ताराया युगादौ " )$  श्रवण नक्षत्र विभाग के बाहर सपात धनिष्ठा में चला जाने से प्रधातक का (क्षाटागणना से) बिलकुल मेल मिलता नहीं है।

### विधान ३६

• हमारे सिद्धांत ग्रन्थोंमें जो मृग व्याध (लुब्धक=सौरियस) का भोग  $180^{\circ}10'$  और  $8^{\circ}10'$  लिखा है सो "रज्जुवेधाख्य यत्रेण" इसप्रकार के (वृ. ष. सि. अ. ७. ३. २२ पृ. ४९ कथ-  
नानुसार ग्रन्थकारन स्वतः पक्ष लेकर आपक वर्तमान कालान कहा है। इससे इसमें विशेष फाट-तर नहीं होने से तत्काल लुब्धक का पार्ष्विक गति  $1^{\circ}37'64''$  पित्रेला ४६५५५५५५ के तर्क हानि से इसके भोगमें  $+18$  पलका और शर में  $-14$  पल का ही फर्क पड़ा है अतएव इसका अब शुद्ध नाक्षत्र भोग  $180^{\circ}12'12''$  शर  $180^{\circ}12'12''$  और सायन भाग  $2^{\circ}12'12''$  है। इसका अंतर  $2^{\circ}12'12''$  है सो ही वर्तमान में अयनांश है।

### विधान ३७

इस तरह वर्तमान कालीक सभी तारों के सायन भोग में उन २ तारोंके नाक्षत्रभोग कम करने पर अयनांश  $2^{\circ}12'12''$  ही आने हैं। लेकिन उस तारे की निजगति का हमको साथ

विचार करना पड़ता है। क्योंकि गुरुत्वाकर्षणसे आकाश व्याप्त होने से थोड़ी बहुत निजगति संपूर्ण तारों को और हमारे सूर्यको भी है। तब प्राचीन ग्रंथोक्त योगताराका ध्रुव उतनीही कैसे रह सक्ता है इसीलिये ब्रह्मसिद्धान्त (अ. २ श्लो. १६८-६९) में कहा है कि पितृ पौष्ण्यमग्नीनां अवणाभिजितोस्तथा ॥ मूलार्द्रासार्धसप्तशे स्वस्थानात्प्रागवस्थिता ॥ दृश्यतेयस्य तस्यास्ति न स्वप्नेऽपिव्यवस्थितिः ॥ ” अर्थात् जोमी मघा, रेवती, भरणी, कृत्तिका, श्रवण, अभिजित्, मूल, आर्द्रा यह सार्धसप्ताश मित यानि अर्धोक्ता से तो ७ अंश पर्यंत स्वस्थान से पूर्वही अवस्थित हैं। इसलिये ऐसे अनेक ताराओंकि प्राचीन ग्रंथोक्त परिमाण ठीकठीकस्थिति स्वप्नमें भी दीखते नहीं हैं। अर्थात् वह स्वस्थानसे इधर उधर खिसके हुए दिखते हैं।

### विधान ३८.

यहतो प्राचीन ग्रंथकारोंका कथन हुआ। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने तो, कई ताराओं की निजगति को निश्चित कर लिया है। यद्यपि ऊपर लिखे श्लोकमें (पौष्ण्य) रेवती का नाम आया है किंतु ३० कला से तो ७ अंशतक में कितना खिसका है सा इतने परसे स्पष्ट होता नहीं है। और इसमें ३२ तारे बिलकुल छोटे छोटे होनेसे ग्रंथोक्त रेवती की योग तारा को पैठाननाही कठिन है। उसमें शीटापिशियम को मानलेंगे तो उसका दक्षिण शर है, संपूर्ण ग्रंथोंमें उत्तर शर लिखा है यदि कहे कि “ उत्तर का शर निजगति से खिसककर दक्षिण होगया है ऐसे भोग भी ३। ५८’ पश्चिम के तर्फी खिसकने से (उसका भोग) ३५६। २ होगया है तथा उसके वर्तमान कालिक सायन भोग १८। ५९ में उसका नाक्षत्र भोग कम करनेपर [ १८’। ५५’ - ३५६’। २’ = ] २२’। ५’ ३ अर्धान्श सर्व ग्रंथ सम्मत चिन्ता भोग १८० के तुल्य ही आते हैं। फिरभी इससे आमनाश गिनने में क्या बाधा (हरकत) है? इसके उत्तर में श्रीयुत दत्तात्रय वामन जबखेडकर मनमाड के साथ सायन निरयननाद नामक पुस्तक अभी प्रसिद्ध की हुई है उसकी [पृष्ठ १७ पंक्ति ९-१६] तिरफ एक पंक्ति को उद्धृत करता, हं “ शीटापिशियम् मध्ये शके ४९४ साली संपात होता असें शीटापशी यांनी गृहीत धरिले आहे. हें गृहीत धरितांना शीटापिशियम् तांच्याची वार्षिक निजगति जी ११ विकला आहे ती अजिबात सोदून दिलेली आहे ही गति हिशेबांत घेऊन गणित करून पाहतां शीटापिशियम् तांच्यांत संपात असण्याचा काल शके १७७ हा येतो. यावरून शीटेंत शके ४९४ साली संपात होता, असा जो भासाविण्याचा प्रयत्न केला आहे तो किती फोल ठरतो हें सहज दिसून येईल. ” इसलिये इतनी बड़ी निजगति वाली ग्रहीत, मेंसे एक ऐसी संशयास्पद अंधुर एकतारका से शुद्ध सूक्ष्म नक्षत्रमान के अयनांत निश्चित-

कैसे हो सकते हैं। इससे तो कई एकतारा नक्षत्रोंकी भी निजगति अल्प है [ जैसे कि आर्द्रा आदि ] उनमें निजगति का कलमात्र संस्कार करना पड़ता है। और झीटामें अंशोंका करना पड़ता है इतनाभी होकर न इसका आरंभस्थान से मेल था न अब है। अतएव यह सर्वथा स्वाभाविक है।

### विधान १९.

अब हमें चित्रा की निज गति का निर्णय करना है। सूर्य, सोम ब्रह्म, पितामह और वृद्ध वसिष्ठादि प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में चित्रा का भोग  $160^{\circ}10'$  और चरद १ अंश दिया है। बाद में बराह मिहिर ने भी चित्रा को ( चित्रार्धास्तभभाग ) अर्धरात्रि ( स्पष्ट चतुरस्रे के माफक ) ठीक ठीक ( क्रांति वृत्त के ) मध्य में चित्रा को कहा है। और दैवज्ञ कामधेनु में ( आधिप्रादुर्धमादिषोडश ) चित्राको ही मर्यादाभूत मानकर क्रांति वृत्त से पूर्व पश्चिम दो भाग तदनुसार १२ राशि और २७ नक्षत्रों के सम विभाग परिमाण निश्चित कर देना कहा है। इससे स्पष्ट है कि चित्रा तारे के भोग शर सदा स्थिर प्रायः अधिकृत अचल के मुख्य शुद्ध नाक्षत्र मान के गुण युक्त हैं यद्यपि आधुनिक शोध से चित्रा की निज गति वार्षिक  $00^{\circ}1'$  कला प्लव दिग्गंश २११ जी और कही है किन्तु यह इतनी अल्प है कि उक्त दिग्गंश को कर्णरूप मानने से १२८७ वर्ष में सिर्फ १ कला चलन स्वतन्त्र शुद्ध से नाक्षत्र के तुल्य है। इसीलिये कुछ भारतीय ग्रंथों में चित्राभिमुख बिन्दुसे ही ग्रहों के भगणांश रपान और अपनांश कहे गए हैं। वर्तमान में ( तारीख १११३० की ) चित्रा का वैधर्मिक साधन भोग  $202^{\circ}19'$  है। उसमें से सकल ग्रंथोक्त चित्रा का शुद्ध नाक्षत्र भोग  $160^{\circ}$  अंश कम कर देने पर अपनांश  $242^{\circ}19'$  आते हैं। जिस प्रकार आर्द्रा, मृग, व्याघ्र आदि साधित अपनांशों में कुछ कलाओं का निजगति संस्कार करना पड़ा है। ऐसा हममें करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव इसकी अनुरूप आर्य ग्रंथोक्त आरंभस्थान एवं अपनांशों से एक बाधता हो जाती है।

### विधान ४०.

विधान १७-२६ में कहे हुए मुंजाट से लगा कर सिद्धान्त ताराधिकेक पर्वत के प्रदोक्त आरंभ स्थान और अपनांशों की चित्रा गणना से चित्रा निर्दिष्ट कोणों में एक दमदमा करके बनाया है।

प्राचीन ग्रंथोक्त केंद्रीय अयनांशों की चैत्रोय शुद्ध नाक्षत्र-  
अयनांशों से एकतादर्शक कोष्टक नंबर १।

संकेतांक—			क	ख	क-ख=ग	घ	ग+घ=अ
कोष्टक नंबर	विधानोक्त ग्रंथों के नाम	शांति वाहन शाके	ग्रंथोक्त बीज मस्कृत उच्च	शुद्ध नाक्षत्रोय चैत्रोय रव्युच्च	केंद्रीय मान का शुद्ध नाक्षत्रांतर संसार	ग्रंथोक्त केंद्रीय अयनांश	चैत्रोय गणना के शुद्ध नाक्षत्रोय अयनांश
		वर्ष	अं क वि	अं क वि	अं क वि	अं क वि	अं क वि
१	मुंजाल	८५४	७७ ४१ १४ ७५ ३४ ४४	+२ ६ ३०	६५०	० ८ ५६	३०
२	आर्यभट	८७५	७७ ४४ ५९ ७५ ३८ ५३	२ ६ ६	७ ८	० ९ १४	६
३	मृगांक	९६४	७७ ४६ ० ७५ ५६ २४	१४ ९ ३६	८ ३९	० १० २८	३६
४	मार्तण्ड	९८०	७७ ३९ २१ ७५ ५९ ३१	१४ ० ०	९ २	० १० ४२	॥
५	प्रकाश	१०१४	७७ ४६ ५२ ७६ ६ १४	१४ ० २८	९ ३०	० १० १०	२८
६	भास्वती	१०२७	७७ ५२ ५६ ७६ ७ ३७	१४ ५ १९	९ ३१	० ११ १६	२९
७	उत्तम	१०३८	७७ ४१ ३३ ७६ १० ५९	१३ ० ३४	१० ०	० ११ ३०	३४
८	कुतूहल	११०५	७७ २६ ५१ ७६ २४ ११	१ २ ४०	११ २४	॥ १२ २४	४०
९	लाघव	१४४२	७८ १ ७ ७७ ३० २९	० ३० ४९	१६ ३८	० १७ ८	४९
१०	विवेक	१५८०	७७ ४६ ४८ ७७ ४६ २६	+० ० २२	१९ ४	० १९ ४	२२

### विधान ४१

ऊपर लिखे कोष्टक ११ में विधान १७-२६ में लिखे हुए कोष्टकोक्त (१-१०) ग्रंथों में लिखे हुए अयनांशों की शुद्ध नाक्षत्रमान से केली एक वाक्यता होती है सो अंकों द्वारा स्पष्टता पूर्वक बता दिया गया है। और केंद्रीय भगणारंभ का शुद्ध नाक्षत्रमान से भी इसी सारणी से एक वाक्यता हो जाती है। उक्त कोष्टक के (क) पंक्ति में (८) मास्कराच रैक्त रवि उच्च में  $[७७^{\circ}१४५'३६"] - [१८^{\circ}१४५"] = [७७^{\circ}२६'५१"]$  और (९) ग्रहलाघवोक्त उच्च  $७८^{\circ}$  में  $+ १^{\circ}१७'$  बीज देकर अन्य ग्रंथोक्त में सिर्फ २४ कलाओं का बीज देकर रवि का उच्च लिखा गया है। बाकी (ग, घ, अ, ) परिमाण शुद्ध गणित के तुल्य है। ग पंक्ति को देखने से धीमान् को ज्ञात हो जायगा कि आगे के ग्रंथ कारोने वेध बाध संशोधन करते हुए जितना मुंजाल के समय अंतर या वह आगे कम होते होते तत्त्वविवेकार के समय शुद्ध नाक्षत्रमान के विरुद्ध तुल्य हो गया है। सो दावे ३८९७ तक रवि का उच्च  $७८^{\circ} ७९'$  अंश में रहने से यहां तक उच्च की तुल्यता के कारण हमारे संपूर्ण ग्रंथों के वेवारंभ का उच्च

की और अयनाशों की दिन व अंशके रूपमें एक वाक्यता बनी रहेगी। ऐसी स्थितिमें विद्वान लोगों का कर्तव्य है कि सिद्धान्त ग्रंथों में मिली हुई उच्चगति को ग्रंथेक्त उच्चगति में मिलाकर शुद्ध उच्च, शुद्ध फल संस्कार, शुद्ध वर्षमान, शुद्ध अयनगति इनका पंचांग साधन में उपयोग करने से सब परिमाण शास्त्रशुद्ध अविकृत बने रहेंगे। इस प्रकार की तुलनात्मक पद्धति के प्राचीन ग्रंथोक्त परिमाणों की शुद्ध परिमाणों से एक वाक्यता के एवं भिन्न २ ग्रंथकारों के कलान्तर बोच के देखने से स्पष्टतया सिद्ध होता है कि हमारे ग्रंथकारों ने जो अयनांशादि परिमाण निश्चित किये हैं सो तत्कालीन उपलब्ध यंत्रों से घेघ लेकर स्वतः देखकर निश्चित किये हैं। और गणेश दैवज्ञेन आपके देखे अयनांशों में प्रति वर्ष एक कला अयनगति कम करके शाके ४४४ शून्यायनांश वर्ष कहे हैं। वस्तुतः कमलाकरोक्त अयनांशों में तथा अन्योन्य ग्रंथों के शुद्ध नाक्षत्र अयनांशों में शुद्ध नाक्षत्र-अयनगति का भाग देने पर शून्यायनांश वर्ष शाके ११२ ही निश्चित होता है। इस तरह चित्रा गणना सर्व शास्त्र सम्मत एवं परंपरा प्रामाण्य युक्त शुद्ध है।

### विधान ४२

प्रसंगवश यहाँ जातक ग्रंथोंमें कहे अयनाशों का स्वरूप बता देना समुचित समझता हूँ। जोकि सिद्धान्त तत्त्वविशेष और सार्वभौम सिद्धान्त में जातक ग्रंथोंके महत्व के संबंध में लिख गया है कि; "पद्धत्युक्ता अनार्याः कथय कथममी गोल संस्थान सिद्धाः" अर्थात् ऋषिप्रणीत ग्रंथोंके अतिरिक्त जो कई पद्धति ग्रंथोंमें परिमाण लिखे हैं वो गोल गणित से भिन्न यानी स्थूल हैं। क्योंकि जिस कालमें वह परिमाण कोई गणित ग्रंथसे उद्धृत किये गए हों उस काल में तो वह कुछ ठीक रह सकते हैं। किंतु आगे उसमें अंतर पड़ जाने पर भी वही परिमाण लेने में स्थूलता आजाना स्वामाधिक बात है। इसलिये सिद्धान्त या करण ग्रंथों में जलनमें बातक, ग्रंथोक्ता, उपयोग, काला, उचित, नदी, दे, देस, रोते, दुर्ग, गोल, गोविन्द, रावजीने पूरा समा के रिपोर्ट में सिर्फ १ जातक ग्रंथके प्रमाण कोही महत्व दिया है इससे ही मालूम हो जाता है कि झूठा गणना बिल्कुल निराधार है और आपने अपने छेख में इस निराधारता को कबूती जबाब (अर्थात्कारी कथन) दे दिया है। वह इस प्रकार है "अयनांश सुमारे १९ धरण्यास काही ग्रंथाधार नहीं अखे ही स्थूलता येत नहीं, जातकार्णव ग्रंथात असे लिहिछे आहे की, "शाकमेकाक्षि वेदोर्न द्विः कृत्वा दर्शभिर्द्वेत् ॥ लब्ध-हीनेच वनेव पठयाता आयनांश काः ॥" स्थूलजे शकात् ४२१ वजाकरून १० नी भागाचे भागाकार त्याच बाकीत वजा करावा व १० नी भागाचे, स्थूलजे अयनांश येतात, ( शब्द कल्पद्रुम भाग १ पृ. ९१ ) या प्रमाणे गणित केछे अमतां शाके १८४८ चे मारंभी १९११ ई. स्वके अयनांश येतात. ( पुणे पंचांगीक्य मंडळ शाके १८४४ का

रिपोर्टे पृ. ९७ से उद्धृत ) ऐसा झीटागणना को केवल प्राचीन ग्रंथका यही एक आधार बताते हुए शाके १८४८ के अयनांश १८°१५'०१३०" बदलेमें १९°११'१९" बताये हैं वह सर्वथा अशुद्ध एवं असत्य हैं। क्योंकि न तो उस श्लोक के अर्थ से उक्त अयनांश आते हैं। और ग्रंथ में तो उसी प्राचीन समय के १९ अयनांश लिखे हुए हैं।

### विधान ४३

शब्द कल्पद्रुम में उक्त श्लोक के स्थल में ही स्पष्ट लिखा है कि ( अ ) “ एक वर्षे चतुः पंच पलमान क्रमेणतु ॥ ( ३ ) पट् पष्ठी ६६ वत्सरानेक दिनं स्यादयनं रवेः ॥१॥ इति ज्योतिस्तत्त्वं । अयनांशस्तु जातकार्णवोक्तः । यथा ( उ ) [ तथा ] शकमेकाक्षि वेदोनं द्विः कृत्वा दशभिर्हरेत् ॥ लघ्वेन हीनं तत्रैव षष्ठ्याप्ताश्चायनांशकाः ॥ १ ॥ इति । सिद्धान्त रहस्ये । तेच इदानीं चैत्रस्थैका दशाहे संभवात् उनर्बिंशति १९ संख्यकाः । “ चैत्रस्थैकादशाहेतु विपुवारंमणं यदा ॥ तदे सल्लग्नमानेहि क्षेपमन्यत्र साधनात् । ” ॥ इति.

अर्थात् “ एक वर्ष में ५४ पल जबकि अयन की गति है तब ६६- $\frac{३}{४}$  वर्ष में सूर्य का एक अयन दिन ( अयनांश ) होता है ” ऐसा ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है । अयनांशों का साधन जातकार्णव में बताया है कि; ‘ शक वर्ष में ४२१ कम करके [ द्विः कृत्वा = द्विष्टे द्वाप्य = द्विधास्थापयित्वा ] वह दो जगह स्थापित करके एक जगह दशका ४० देकर वह अंक दूसरी जगह कम करके उसमें साठ का भाग देनेपर अयनांश होते हैं । वह अब चैत्र की एकादशी को अयनांश १९ उपलब्ध होते हैं. क्योंकि चैत्र के ११ वें दिन विपुव [ सायन मेघ ] संक्रमण से निश्चित हुए अयनांश १९ है । इसीसे लग्न परिमाण और उक्त गतिके चालन से अन्य वर्षोंके भी मुलभूता से अयनांश साधन कर सकते हैं. ” ऐसा ही सिद्धान्त रहस्य में भी लिखा है । इन दोनों ग्रंथोंके प्रमाणों से शाके १८४८ के अयनांश  $( १८४८ - ४२१ = १४२७ - १४२ - ७ = \frac{१२८४-३}{९} = ) २१^{\circ} १२' . ३$  होते हैं । इसलिये प्रि. ग्राह्य व। कथन गलत और असत्य है ।

### विधान ४४

और भी जातक के ग्रंथों में अयनांश साधन करने का ऐसा ही प्रमाण बताया है । जैसे ज्योतिर्निबंध से कहा है कि “ भूत्रे वेदोन ४२१ शकस्त्रिभिन्नो ज्योमाध जैरे २०० विहृतोयनांशः ॥१॥ अर्थात् ‘ शक वर्ष में ४२१ कम करके शेष को तीन गुणा करके

२०० का भग देवे तो अयनांश होते हैं। इस प्रमाण से शाके १८४८ - ४२१ =  $\frac{१४२७ \times ३}{२००} = २१^{\circ} १२' ४१''$  अयनांश आते हैं। प्रि. साहव के कहे हुए आते नहीं हैं।

### विधान ४५

अयनांश संबंध के मुहूर्तसिंधु में भी दो प्रमाण उपलब्ध होते हैं; “भूनेत्र वेद रहितः शाकः स्वाक्षांशं हानितः ॥ पट्टिभक्तोऽयनांशाख्याः सौराक्षालनं चाश्रिताः ॥१॥ नवग्रहविराड्यर्धयुता ग्राह्या कलादितः ॥२॥” अर्थत् “शक में ४२१ कम करके जो शेष बचे उसमें उसीका दशांश कम करके साठ का भाग देवे तो चालन देकर [नाक्षत्रमान के निकट में] चालित किये हुए सूर्य मिदन्तानुसारी अयनांश होते हैं ॥१॥ किंतु यह वर्ष के आरम्भ के समय होते हैं। आगे नौर राशि का  $\times \frac{१}{३} =$  करने से विरलादि होते हैं ॥२॥ इससे भी वही अयनांश आते हैं जोकि विधान १० और ११ में बताया गया है इस सब प्रमाणों की नीचे लिखे प्रकार एक वाक्यता होती है.

### समीकरण

१	वर्ष की अयनगति = ५४ विकला	...	.. ज्योतिस्त ३ (१)
२	अयन के १ अंश पूर्ण होने में वर्ष $६६\frac{२}{३}$		ज्योतिस्तत्व (२)
३	एक वर्ष की अयनगति $१ - \frac{१}{१०} = .९' = ५४''$	...	सिद्धन्त रहस्य
४	“ “ “ $१ - .१ = .९' = ५४''$	....	जातकार्णव
५	“ “ “ $\frac{१ \times ३}{२००} = \frac{३}{२००} = .९' = ५४''$	...	ज्योतिर्निबंध
६	“ “ “ $८००१५ = .९' = ५४''$	...	मुहूर्त सिंधु [१]
७	रवि राशि $\frac{३० \times ९}{२} = ५४''$	एक वर्ष की अयनगति मुहूर्त सिंधु [२]	

इन ७ प्रमाणों की एक वाक्यता में शक १८४८ में अयनांश २१° १२' ४१'' आते हैं। इसी में जातकार्णव का प्रमाण आ गया है। इसी से प्रि. गोविंदरामजी ने “वर्ष का चौ दुपट करून १० गों भागावे, भागाकार साच बाकीत वज कगवा” ऐसे अशुद्ध अर्थ से २१° १२' १९'' अयनांश बताये हैं। इससे अयन वर्ष गति  $(१ - .२ = ८' =) ४८'$  होती है



इसका प्रि. साहब को भान भी नहीं है कि उपर्युक्त ७ जातक ग्रंथों के प्रमाणों से वह असिद्ध निश्चित हो गई है खैर उससे तथा अन्य ६ प्रमाणों से प्रि. साहब का कथन असत्य सिद्ध होता है क्योंकि शक १८४८ में किसी भी ग्रंथ के आधार से अयनांश १९ आते नहीं हैं। ऐसे विद्वान पुरुषोंने ऐसा अनभिन्न की तरह असत्य अर्थ कर देना आश्चर्य है.

### विधान ४६

खैर, यहां तो हम कह सकते हैं कि आपटे साहब को अन्य कोई कारण वरा 'द्विः कृत्वा' का 'द्विः कृत्वा' अर्थ दिख गया होगा; किन्तु बिल्कुल स्पष्ट गति से जो वहां १९ अयनांश उस आधार के स्पष्ट करण में ही कहे गये हैं। यह कैसे नहीं दिखे, यदि दिखे ये तो वह क्यों छिपा लिये गये ? जब कि वह छपा हुआ पुस्तक में विद्यमान हैं तो जातकारणव किंवा सिद्धान्त रहस्य के समय के ही वह होने चाहिये कि नहीं ? यह भी आप न माने तो जिस शब्द कल्पद्रुम का आपने प्रमाण बतलाया है - वह शके १८०८ में छपा है कि जिसको आपके बातए शके तक ४० वर्ष हो गये थे; तब यदि आप भान लोकि उसके छपने [ शब्द कल्पद्रुम को प्रकाशित होने ] के समय के ही हैं - तो भी ४० वर्ष में क्या उसकी १ कला ९ विकला ही गति हांती है !! यह तो स्वयं प्रिंसिपल साहब ने - मानों ऐसा समझ लिया होगा कि - शके १८४८ के लिये छपे हैं तो भी यहां यह प्रश्न खड़ा होता है कि यह भाष्य के अयनांश ४० वर्ष पहिले ग्रंथकार क्योंकर कैसे छाप सकेंगे ? यदि कंपोज के वक्त का मानते होतो क्या ४० वर्ष अयन गति की घड़ी [ याच ] बन्द पड़ गई थी ? इन तरह भोलीभाली जनता को आंखों में धूल टाककर झूठा की निपटाराता को मिटाने के मनोराज्य में सिर्फ यही एक आधार; इसका भी बनावड़ी अशुद्ध अर्थ करके असत्य अयनांशों को यताना झूठा गणना की इति श्री नहीं तो क्या है।

### परीक्षण ४६ (अ)

पं. दीनानाथजीनी या विधानावर बराच जोर दिया आहे. वास्तविक पाहती या विधाना चा उल्लेख करणेंच अप्रासंगिक आहे. शिवाय मी त्यांना या श्लोकाचा आधार देऊन त्यांचे उत्तर मागितलें नव्हतें, आणि रवतपक्षाला याचेंच मुख्य समर्थन आहे असे ही नाही. इतर समर्थनांत हें आणखी एक समर्थन आहे इत की च त्याचें योग्यता व तणाच तन्हे ने पुणे संमेलनापोटी पृ. २७ यावर याचा उल्लेख केला आहे. तरी ही दीनानाथजी त्याला नसते महत्त्व देऊन असे दाखवितात की आम्ही दिलेला अर्थ चुकीचा आहे. तथापि तो एक अर्थ होऊ शकतो असेही ते कबूल करितात. त्याचें म्हणणें की आमच्या अर्थ काव्या व्या रीती ने अयन गति ४८ विकट्रा येते ती अतिराय कमी आहे. इतकी कोणत्याही ग्रंथात

लिहिलेडी नहीं. दीनानाथजीनी प्रारंभोच्च सांगून देविले आहे की त्यांनी बहुतेक सर्व ग्रंथ पाहिले आहेत. परंतु ते जर आतां भा. ज्यो. पृ. ३३० । ३३१ पाहातील तर त्यांना असे लिहिलेले आढळेल की द्वितीय आर्य न पराशर सिद्धान्ताप्रमाणे अयन वर्ष गति सरासरी माना नें ४६.३ विकटा येते. तसेच रा. पक्षर कृत रेवती 'योग तारे चा रोध' पृ. १४ मध्ये गणिता नें असे दाखविले आहे की आपले ग्रंथातील माना वरून काही तान्यांची वार्षिक अयन गति ४४, ४३, ४०, ६ विकटा इतकी थोडी सिद्ध होते. या कारितां ४८ विकटा गतां बदल आश्चर्य वाटण्याचे काहीच कारण नाही. दीनानाथजीनी द्वितीय आर्य न पराशर मिश्रात्त दे पुन्हा एक बार लक्ष पूर्वेक पहावेन.

समाधान. ४६ ( अ )

जातकार्णव का अशुद्ध अर्थ भी) यह एक प्रकार का संमर्थन है। किंतु एक झूट के संमर्थन में यह दूसरी झूट है। ऐसी बातों से ही झीटा के तोतया रेवती पन का प्रदर्शन स्पष्ट हो रहा है। क्योंकि सिद्धान्त, करण, और (स्थूल ग्रंथ) जातक ग्रंथों में से किसी का भी झीटा गणना को तनिकसा आश्रय मिल जाता तो फिर ऐसा वनावटी अशुद्ध अर्थ करने की आपको आवश्यकता ही क्या थी। और 'असे ही ते कबुल करितात' इत्यादि बिना छिछी गतिसंबंध की बातें क्यों बनानी पड़ती। क्या वहां (विधान ४५ में) लिखा नहीं है कि 'ऐसे अशुद्ध अर्थ ने १९।१९ अयनाश बताए हैं। और इससे अयन वर्ष गति ४८ निकला होती है इसका प्रि. साहब को भान भी नहीं है कि उपर्युक्त ७ जातक ग्रंथों के प्रमाणों से वह गति असिद्ध हो चुकी है।" इत्यादि प्रश्नों का उत्तर तो कहा से दे सकते हैं। अब तो केवल इष्टापत्ति ढालने के लिये भा. ज्यो. शास्त्र के तर्क अंगुली निर्देश कर "आदंष्ट्र" बौरे का स्वम देख रहे हैं।

इधर विधान ३ में सूर्य, सोम, वृद्ध वासिष्ठ और सि. शिरोमणी और विधान १६ में सिद्धान्त सन्नाद् इन ग्रंथों के अनेक प्रमाणों की एकतानता से अयन की उपपत्ति तथा छायार्क करणागत के अंतर द्वारा अयनाशों के साधन करने की मुख्य पद्धति सर्व सम्मती से सिद्ध की गई है। विधान १७-२९ में मुंजाळ से तत्व विवेक पर्यंत के १० कोष्टों में उन के वर्तमान कालिक अयनाश गणित द्वारा विशदरीति से बता दिये हैं। विधान २७-३९ में तारों से अयनाशसाधन कर उनकी और विधान ४० में उक्त १० प्रयोज्य अयनाशों की शुद्ध नाक्षत्र चैत्रिय मान से एकवक्त्यता सिद्ध करके बतादी है। इसमें सरल ग्रंथानुक्रम का सार आगया है। इस लिये अब दीक्षितजी के (भा. ज्यो. के) यह वह पृष्ठ देखो के कथन मात्र से काम नहीं चल सकता है। क्योंकि इनमें शीघ्र गणना की सब पीछपट्टी खुल गई है।

मुख्य मुद्दों के ऊपर आप निरुत्तर होकर अब केवल 'अहो रूपं अहो धनिः' का आलाप गा रहे हैं कि रा. पवार ने "कुछ तारों की वार्षिक अयनगति ४४, ४३, ४० ई. विकला बतलाई है।" लेकिन प्रि. गोविंदरावजी ने समझ लेना चाहिये कि यह अयनगति = शुद्ध अयनगति - तारे की निजगति के तुल्य है। अतएव उन तारों की निजगति ध्रु. दिग्गंश २७० की ओर ६°२, ७°२, ९°६ के करीब होने से शुद्ध नाक्षत्र मोग से प्रतिवर्ष वह तारे पीछे हटते जाते हैं। अतएव वह अशुद्ध होने से उनके द्वारा अयनाशों का निश्चय करना अयुक्त है। इसी गणना में झीटा भी है। यदि उनकी निजगति जटा न लेकर रा. पवार कथित (४०"-६) भी लेवेगे तो वर्तमानकालीन उनके मोग से गणित द्वारा पता लग जाता है कि वह शके ३९२ में चित्राभिमुख आरंभ स्थान से निकर १ महीने तक संलग्न थी तो आगे (५०"-२-९"-६=४०"-६) प्रतिवर्ष हटती हुई वर्तमान

शाके १८५० में ३।५८।८ पीछे हटगई यानी झीटा भोग ३५६°।१।५२ होगया है। अतः ऐसे पीछे रींगने वाली झीटा का अब भी उक्त क्षणिक संबंध को अब भी बना रखना अयुक्त है।

आपके पुनः द्वि. आर्य सिद्धांत को देखने की शिफारिश की उस (काशी का छपा म. प. द्विवेदीजी की टीका) में कलिमुख क्षेपक, पृष्ठ ३६ में रवि मंदोच्च ७७।४५।३६ और रवि बीज (वर्ष  $\frac{360 \times 360}{9000} = +21^{\circ} 44'$ ) लिखा है। तदनुसार विधान १८ में करणागत से छायाकर्मतर रूप ७।७।५७=अयनाश एवं विधान ४० में शुद्ध नाक्षत्र उच्च और ग्रंथोक्त उच्च की तुलनात्मक पद्धति से अतर और फलांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र वैत्रीय अयनांशों से उसकी एक वाक्यता निश्चित कर तत्कालीन अयनांश ९।१४।६ सिद्ध करके बता दिये हैं कि जो १० ग्रंथों की एकतामता से सबद्ध होने से निःसंदेह रूप हैं। सो आप लक्षपूर्वक देख सकते हैं कि यहां तक के विधान व समाधानों द्वारा झीटा गणना की इति भी होगई है या नहीं।

### परीक्षण ४१ (आ)

दीनानाथजींचे समीकरण (विधान १३ न्याम २) असे आहे की अयनगति+केंद्रगति= पूर्ण मंद केंद्रगति (१) = शुद्ध अयनगति+निर. उच्चगति (५०°२५+११°१०=६१°४५०)= स्थिर राशि। उदाहरण—५८°४५६८ + ३°३९१२ = ६१°४४८० सूर्य सि. वरून  
 " ५८°१८७४ + ३°६६०६ = ६१°२४८० आर्य सि. वरून  
 " ५७°३२५० + ४°५२३० = ६१°२४८० ब्र. गु. सि. वरून

ही नजर बंदीची खेळ आहे. ३°३९१२ इत्यादि वार्षिक केंद्रगति लिहून छोफाना असे भासविण्याचा प्रयत्न केला आहे की सिद्धांतकारांनी अयनगति कमी किंवा जास्ती अशा- रीतिने लिहिली आहे की अयनगति व केंद्रगति यांची बेरीज हल्लीं उपलब्ध असलेल्या सूक्ष्म क्षायन अयनाश गतिचा ६१°४४८ विकला हा स्थिरांक याचा. परंतु असे कधीच होऊ शकत नाही. सूर्य सि. वार्षिक उच्चगति ०°११४ आहे व कोणत्याही सिद्धांता प्रमाणे ती ३ विकलेहून अधिक नाही या पेक्षा पुष्कळ कमी आहे. पं. दीनानाथजी स्थिरांक ६१°४४८ आणण्या करिता त्या त्या ग्रंथाची अयनगति त्या स्थिरांकातून वजा करितात व तितकी स्वकपोल कल्पित कृत्रिमगति उच्चगति मानवात. त्यांनी हे लक्षांत ठेवावयास पाहिजे होते की सिद्धान्तकारास जर या स्थिरांकाचा बोध जाहला असता तर त्यांनी उच्च- भगण त्या मानानेच अधिक सांगितले असते. ज्या कित्येक वसिष्ठसिद्धान्त सूर्य सि. इत्यादि ग्रंथकारांनी अयनगति ५४ विकला मनीली आहे त्याची गति कशी लावारायाची हे त्यांनी

दाखविले नाही. ( भा. ज्यो. पृ. ३२८-३३१ पाहा ) त्यांना तेथे अशी कांही शकल सांपडली नाहीसे दिसते. तथापि हे ही उपपादन चित्र किंवा रैवत पक्षाच्या मुद्याला सोडून आहे.

### समाधान ४६ ( आ )

प्राचीनों के शोधों का उच्छेद करने के लिये “ देखिये प्राचीनों के परिमाणों में कितनी विभिन्नता एवं स्थूलता है । कई ग्रंथों के कई वर्षमान एवं किनने ही प्रकार के अयनांश हैं । ” इत्यादि सत्याभासरूपी असत्य कौटीह्रमों से प्राचीनों के शोध और प्रमेयों को गलत बताकर उनके स्थल में आपते बने हुए सायन पंचांगों की नकलरूप पंचांगों को प्रचलित करने का ध्येय वाले प्रि. गोविंदरायजी; -विधान ११-१४ में लिखे प्रकार प्राचीनों के ( मगणादि परिमाणों द्वारा साधित उनके समय के ) अयनांशों की आधुनिक ( शुद्ध कैद्रीयन गल-तररूप ) परिमाणों से तुलना करने के विवेचन को नजरबन्दी का खेल क्यों नहीं कहेंगे ! किंतु यदि आप (१) मंदोद्द, वर्षमान और अयनांशों के आपस के कार्य कारण संबंध को देखते, (२) ‘वेधेनमया मय्य चंद्रोज्ञातः तत्रफलं न्दाम वृष्यमात्रात्’ [ ग्रह कौतुक, भा. ज्यो. पृ. २५९ ] इत्यादि वेधसिद्ध केंद्र से मध्यम ग्रह को बनाने की प्रक्रिया का भाव समझते, (३) उसके साथ नाम मात्र उच्चगति, तथा तत्सोद्यस्य चलनं वर्ष शतैर्नोपलभ्यते, इत्यादि कथन से उसके स्थिरत्व के हेतु को ध्यान में लाते, और (४) ‘पातोनः स्फुटभानुः स्फुटभानूनोभेत्पातः’ ( सि. सि. ) इत्यादि प्रमाण और विधान ७ में लिखे हुए ‘अयनांशोपचेः सांप्रितिकोपलब्धिरवयमकम्’ आदि का भाषार्थ समझते तो बिना कोई आधार या प्रमाण के बताए “ हल्ली असें कधीच होऊं शकत नाही । स्वकपोलकल्पित कृत्रिमगति उच्चगति मानतात । सिद्धान्तकारास जर या स्थिरांकाचा बोध जाहला असता तर त्यांनी उच्चमगण त्या मानाचेच अधिक सांगितले असते. ” इस तरह के उन्मत्त प्रलापों से सुपेदपर काळा कर अपनी योग्यता का प्रदर्शन करा नहीं सकते । खैर अब तो भी विधान ११-१४ को पूर्ण देखिये आपकी सब शका कुसंकाओं का उसमें विशद रीति से समाधान स्वयं हो जाता है । ग्रंथोक्त उच्चगति का हेतु और उपयोग बताया गया है कि जिसमें उन्मत्ततरंग स्वयं अवाक् हो जाते हैं । सूर्य सि. के ‘छायाकाराकरणा गते’ कथन से और वृ. वसिष्ठ के ‘छायागणितागतयोर्भानुर्विर चलाशकस्तेना’ कथन से अयनांश साधन का योग्य प्रकार कह दिया गया है । तब ‘या कियेक प्रपकारांनी ५४ विकला मानिली आहे’ इस प्रकार की वितंडा के लिये वहाँ स्थित ही रहता नहीं है । क्या आपकी गृष्ट दृष्टि भा. ज्यो. पृ. ३३३ की “ गृहणत्रे आमस्या उपोतिश्र्यांनी १५ विकलेष्या फरकाने अयनगति शोधून यादर्थ असें झाले । स्वतंत्ररंगे इतकी सूक्ष्म अयनगति आमस्या लोकानां शोधून काढली है त्यां अत्यंत मूण्यास्पद आहे. ” इस पंक्ति

की ओर नहीं पहुँचें। यदि पहुँचती तो "अशी कांहीं शकळ सांपडली नाहीते दिसते" ऐसा भव्य बुद्धिमत्ता का पुष्पार्पण अवश्य ही नहीं किया जाता।

### विधान ४७

कुल भारतीय सिद्धान्त ग्रंथों में रेवती का उत्तराशर कहा है। और झीटा का शर १३ कला दक्षिण में है। इसलिये झिटापिशियम् को रेवती की योगतारा कहना गलत है।

### विधान ४८

यदि कहें कि प्राचीन काल में झीटातारा क्रातिवृत्त के उत्तर में थी किंतु अब वह १३ कला दक्षिण में चली गई है। तो ऐसी अतिगतिमान् स्थानभ्रष्ट क्षणिक तारा से राशि चक्र का आरंभस्थान मानना गणित शास्त्र से बिल्कुल अयुक्त है।

### विधान. ४९

पूर्व विधान ( ८, २७-२८ ) में सिद्ध किया गया है कि सूर्य सिद्धातादि प्राचीन ग्रंथोंमें लिखे हुए भयवक फर्दव सूत्रीय हैं। इन सबमें जिस प्रकार बिनाका भोग ठीक ठीक  $1^{\circ}10'$  लिखा है इस प्रकार रेवतीका शून्य लिखा नहीं है। जैसे सूर्य और मूल सिद्धान्त में  $3^{\circ}59'15''$ , सोमसि० में  $3^{\circ}59'30''$  वभिष्ट और रितामहसि० में कुछ लिखा नहीं है। और बाधुनिक ग्रंथ ( १ ) भास्कराचार्य, ( २ ) दि० आर्य सि०, ( ३ ) शमींदर मट्टीय, ( ४ ) सुंदर सि० और ( ५ ) ग्रहलाघव में जो ध्रुव कहें हैं सो कुनदकर्मक अर्थात् भुव सूत्रीय कहे हैं। उनमें रेवतीका भोग शून्य लिखा है। तब यदि झीटाको रेवती मानने हो तो उसके शरके कारण फर्दव सूत्रीय भोग  $3^{\circ}59'15''$  होगा है। इसलिये झीटा की ताव आरंभ स्थान दर्शक या अयनांश साधक न होकर यह ५५ कला में कम है। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन सभी ग्रंथों से झीटा की तारा आरंभ स्थान से भ्रष्ट भिन्न हो जाती है। इसलिये झीटा तारा भगणातम्य रेवती हो नहीं सकती।

### विधान ५०

सिद्धान्त ग्रंथों में भगण के समक्ष या आरंभ बिन्दुको रेवती विनायका अंश कहा है वही तारका नाम नहीं है। और ध्रुवकी रेवती तारका भोग ( उदरेक प्रमाणां स

करीब १ अंश कम कहा है। ऐसे ही रोहणी, हस्त, मूल और आश्लेषाके तारोंको ही पुंज के पूर्व में है और भरणी, कृतिका तथा मघा के तारे जिस प्रकार अपने पुंज के दक्षिण में कहे हैं उसी प्रकार रेवती तारा को भी पुंजके दक्षिण में कही है। तब इस पुंजका अंत्य बिंदु रेवती योग तारेसे पूर्व तर्फ होना ही चाहिये। इससे स्पष्ट है कि आरंभविन्दु से रेवती की योग तारा भिन्न होकर वह अपने विभाग के अन्दर है विभाग के अंत ( समाप्ति ) में नहीं है। इसलिये झीटा को रेवती की योगतारा या रेवत्यंत विन्दु सन्निध की मानना शास्त्रसिद्ध नहीं है।

### विधान ५१

यादि क्षण भर के लिये “ आरंभ स्थान में तारा होना चाहिये ” ऐसा मान लिया जावे तोमां अब के वेधसिद्ध नाटिकल आत्मनाक में लिखे हुए पिक्षियम पुंज के तारों को देखते उनकी प्रति की प्राचीन ग्रंथोक्त प्रति से तुलना करने पर ज्ञात होती है कि ग्रंथोक्त रेवती तारा लुप्त हो गई है। अर्थात् प्रति छोटी होकर अपनी निज गति से उक्त स्थान से इधर उधर हट गई है। इसीलिये वर्तमान में नेत्रों से ठीक पहिचानने में आनेवाली तारा ग्रंथोक्त स्थान या आरंभस्थान में नहीं है।

### परीक्षण ५१

रेवतीचा शर व भोग बहुतेक ग्रंथांमध्ये शून्य लिहिटा आहे. व तो तारा बारीक आहे तरी आकाशांत यंत्र साधना दिवाय दिमत आहे. तेव्हां तो लुप्त झाला म्हणजे म्हणजे सत्याचा विपर्यास करेण आहे. जी लक्षणे ग्रंथात दिली आहेत त्याच लक्षणार्था युक्त तो तारा आहे.

### समाधान ५१

उक्त परीक्षण का उत्तर विधान ( ४७-५० ) और आगे ( ५२-५४ ) में कहागया है सारांश रेवती के ग्रंथोक्त लक्षण झीटाके तारे में थोडकुल मिलते नहीं हैं। इससे झीटा सिर्फ पुंजांतर्गत तारा है रेवती यागतारा नहीं है। विधान १७-१८ में बताया गया है कि साधारण निजगति के तारे भी कालान्तर में कुछ अंश इधर उधर गिमेके हुए दिखते हैं। तब झीटा तो शांतिप्रगतिमान तारा है। इसको ग्रंथोक्त स्थान भ्रष्ट कहने में मत्स्य का विपर्यास नहीं। मत्स्य का विपर्यास तो इसे स्थिरप्राय मानने में है। इनकी निजगति नापने के लिये जो मां आज हमें इसके प्राचीन काल के वेध सिद्ध परिमाण मिलने नहीं है तो भी वर्तमान

काशीन ४९ वर्षान्तर के नीचे लिखे प्रकार उपलब्ध होते हैं। इसलिये उसीके द्वारा शीघ्र की कदंब सूर्यीय निजगति को (उदाहरण देकर) सिद्ध करके आपसी सेवा में अर्पित करता हूँ।

### झाँटा तारे से अयनगति = अ

ज्योतिर्गणित (ज्यो. वि. केतकर कृत पृ. ३९२) में शाके १८०४ तारीख १-१-१८८३ ई. के समय के वेधसिद्ध विषुवांश क्रांति द्वारा झाँटा का सायन भोग  $१८^{\circ}११'२२''\cdot३$  शर दक्षिण  $०^{\circ}१२'१५९''\cdot६$  लिखे हैं और आज हम दो वर्ष आगे का नाटिकल आत्मनाक उपलब्ध होगया है, उसमें (शाके १८५३) तारीख १-१-१९३२ ई. के समय के झाँटा पिशियमहारा नंबर ७४ वर्ग ५-५७ के लिखे आधारपर विषुवांश  $१७^{\circ}३२'६३$ , उत्तर क्रांति  $७१^{\circ}१५८'६५$ , और रवि परम क्रांति  $३३^{\circ}१२'६१'२५''\cdot२$  यह वेध सिद्ध परिमाण लेकर झाँटा का सायन भोग तथा शर का सायन लाभधम (घातांक) के गणित से निम्न लिखितानुसार करके बताता हूँ।

झी = झाँटापिशियम् के विषुवक्रांति से भोग शर साधन.

झी. क्रांति छाया घातांक  $-९^{\circ}१०'२४'९८''$   
 झी. विषुवांश मुज्या ,,  $९^{\circ}४७'१२'४१$   
 अंतर = परम क्रांति छाया ,,  $९^{\circ}६२'६३'०४८$   
 झी. परम क्रांति  $२२^{\circ}१४'७'६१''$   
 रवि परम क्रांति  $२३^{\circ}२६'५५'२$   
 अ =  $-०^{\circ}३९'४९'१$   
 अ छाया घातांक  $९^{\circ}५३'५१'१७२$   
 अ कोटीज्या =  $९^{\circ}९९'५७'०९$   
 ऐक्य भोग छाया ,,  $९^{\circ}५३'१३'८१$   
 झी. सायन भोग =  $१८^{\circ}१५'५१'३२'४''$

झी. विषुवकोज्या घा०  $९^{\circ}७९'३१'४५$   
 ,, क्रांति कोटीज्या ,,  $९^{\circ}९९'५४'५१$   
 ऐक्य व कोज्या ,,  $९^{\circ}७५'८६'०७$   
 अ =  $१८^{\circ}५९'६१$   
 अ =  $-०^{\circ}३९'८२$   
 अ भुजज्या घातांक  $९^{\circ}५१'०२'७९$   
 अ भुजज्या ,,  $८^{\circ}०६'३७'७२$   
 ऐक्य शर भुजज्या ,,  $७^{\circ}५७'४८'८१$   
 झी. शर (दक्षिण)  $०^{\circ}१२'१५'११$

परिमाणों की तुलना

झाँटाके सायन भोग.

शर.

शाके १८५३ ( ता० १११११३२ ) के  
 शाके १८०४ ( ता० १११११८३ ) के  
 अंतर वर्ष ४९ में ( अयनगति  $५०'४१''$  )

१८५५१३२४ दक्षिण  $०^{\circ}१२'१५''\cdot१$   
 १८१३४२२१ ,,  $०^{\circ}१२'१५'६$   
 ०४४११०१  $-०^{\circ}१४'५$



## झीटा का शुद्ध अयनगति से परीक्षण = आ

ज्योतिर्ग० पृ० ८६ में लिखी शुद्ध अयनगति की सारणी से:—	शाके १८०० मेपार्क,
समय के झीटा के ( अयनांश ) सायन भोग	१८°१०'१२५"०"
शाके १८९३ ( ता० १-१-३२ ) पर्यन्त की शुद्ध अयनगति	४४।३८.३
" " " अयनगति संस्कार	०.३
अयनगति से साधित झीटा का सायन भोग	१८।५५।२३.६
उपर्युक्त तारे से साधित " सायन भोग	१८।१५।३३.४

शुद्ध मान से झीटा के तारे के भोग में अंतर ( वर्षगति १°६३ ) + ८'८,

## शुद्ध परिमाणों की तुलना में झीटा की अशुद्धता.

उपर्युक्त गणित से जबकि शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान व अयनगति साधित सायन भोग से झीटा के तारे से साधित सायन भोग ५३ वर्ष में +८'८ विकला बढ़ा है तो एक वर्ष में शुद्ध मान से अंतर पड़ने से झीटा का वर्षमानही निम्न लिखे प्रकार भिन्न ( विज्ञत नाक्षत्र ) हो जाता है ।

$$\text{एक वर्ष में दिनान्तर} = \frac{८' ८ \times \text{शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान}}{५३ \times ६० \times ६० \times २४} = ०.०००४६७९५ \text{ दि०}$$

शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान ३६५.२५६३७४४१७ दिन । शुद्ध चक्र भोग साधित  
एक वर्ष में अंतर = +०.०००४६७९५ दिन । उक्त गणित साधित

झीटा वर्षमान = ३६५.२५६३७४४१२१२ दिन । चक्र भोग से अशुद्ध है.

झीटा की अयनगति = ५०°४१ - अंतर १२" = ( शुद्ध अयनगति ) ५०°१९

इस प्रकार शुद्ध सूक्ष्म गणित से झीटा गणना अशुद्ध सिद्ध हो जाती है.

## विधान ५२

हमारे सिद्धान्त ग्रंथों में तारों के अस्तोदय इत होने के लिये उनके कालांश १३।४।१५।१७।२१ कहे हैं। यह सामान्यतः एक दो प्रति के तारों के कालांश १४ लेकर इनसे विशेष तेजस्वी के १३ कालांश, और छोटे तारों के तेज के अल्पत्व से अधिक कालांश = (+१=) १५, (+२=) १७, (+४=) ऐसे कहे हैं । इनमें एक तारा नक्षत्रों की योगताराओं

में भिन्नता न होने से १३ कालांश के तारों की प्रति (वर्ग) में अब भी विशेष अंतर दृष्टि में नहीं आता है। केवल छोटे छोटे तारका पुंज के अनेक तारार्थों के नक्षत्रों में योग-तारा की भिन्नता के कारण तथा सभी तारार्थों की प्रति में कालान्तरजन्यरूप विकारित्व के कारण थोड़ा बहुत अंतर पड़ना स्वाभाविक बात है। तोभी वह इतने शुद्ध और ( बिना यत्र के सहाय्य से केवल नेत्रों से क्यों न हो ) अनेक दिन के अनुभव द्वारा ठीक ठीक निश्चित किये हुए हैं कि; आधुनिक फोटोमेट्रिक प्रकाश मापन के यंत्र साधित तारों की प्रति के एक्वेज ( सरासरी ) से अब भी तुलना में कालांश के बराबर मिल सकते हैं। इतना ही नहीं तो समानान्तर के कालांशों १३ (+४=) १७, (+४=) २१ में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ प्रति के तारे विभाजित करने से उनकी प्रति के आरंभ समाप्ति मान तुलना में निम्न लिखितानुसार बराबर मिलते हैं। सू. सि. में :—“स्वात्मगम्य मृग व्याध चित्रा षष्ठ्याः पुनर्वसु ॥ अभिजिह्व हृदयं त्रयोदशभिरक्षकैः ॥ १२ ॥ भरणीतिथ्य सौम्यानि सौहृद्यानि सप्तर्षिश्चकैः ॥ शेषाणि मम दक्षभिर्दृष्ट्या दृष्ट्यानि भागितु ॥ १५ ॥ ” ‘शेषाणि भागितु’ शततारा पूर्वोक्तारा भाद्रपदा रेवती राश्यानि ” ऐसा उगता है। इसमें निर्दिष्ट तारे का गेल मित्रता नहीं है। मित्रता है मो हांग की अपेक्षा व्युत्पिथिम में मिलता है।

तारों के कालांशों की नाटिकल आत्मनाम में छिरी हुई प्रवि ने तुलना

कालांश १३		कालांश १७		कालांश २१	
वर्ग - १'५८ से + १'२२		वर्ग २'०७ से २'८४		वर्ग ४ से १'२७	
एक्वेज २४		एक्वेज ३००		एक्वेज ४०९	
नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति	नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति	नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति
क्षेत्री Aeternus	+०'२४	क्षेत्री Aeternus	२'८४	भरणी Arctus	४'००
अमरस्य Canopus	-०'८६	पूर्वा भाद्रपदा Arctus	२'५७	पूर्वा Arctus	४'०७
मृग M. Canopus	+०'२४	उ. भाद्रपदा Arctus	२'८७	मृगा Arctus	४'००
व्याध A. Canopus	-१'५८				
चित्रा Arctus	+१'२१	रा. ३ नो. ८	२'०८	तीने म. ग. ४ नो. १०'५७	
षष्ठ्या Arctus	+१'२७				
पुनर्वसु Arctus	+१'२७	म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३		म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३	
अभिजित् Arctus	+०'४४	म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३		म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३	
म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३	+०'४४				
तारे ९ जं. ६	२'२३	म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३		म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३	
रा. ग. ३	०'२४	म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३		म. ग. ३ २'०७ इ. म. ३	

## परीक्षण ५२

कालाश हे प्रत्यक्ष आकाशात पाहून बराचसा अनुभव घेवून ठरवावे लागतात. तसे ते ठरविले असावेसे वाटत नाही. कारण ते त्या त्या तान्याच्या चाक चक्याच्या मानाने ठरविलेल्या प्रतिशी विसंगत आहेत. याचे विवेचन पुढे केलें आहे. या कारणाने कालाश व प्रति यांची सांगड घालून त्यावरून निर्णय करणे चुकीचें आहे. उया उया मानाने तान्याची प्रत अल्प; त्या त्या मानाने त्याचे कालाश कमी असावयास पाहिजे होती परंतु तसें नाही याची स्पष्टता खालील कोष्टकावरून होईल.

कालांश १३	कालांश १४	कालांश १५
स्वाती L Bootis +०°२४	इस्त D Corvi ३ ११	कृतिका Eta Tauri २°१३
अगस्त्य L Argus -०°८६	अवण Antaris ०°८९ L Aequali	अनुराधा D Scorpi २°५४
मृगश्याध L Canis Major -१°५८	उ. फाल्गुनी Theta Leonis ३°४१	मूल ४१ O Phichi ४ L Scorpionis १°०१
चित्रा L Virginis +१°२१	पू फा. D Leonis २°५८	आश्लेषा L Cancri ४°५७
ज्येष्ठा L Scorpi antaris +१°२२	घनिष्ठा L Dalphini ३°८६	आर्द्रा Betelguso ( of varginy Magnitude from 1 to 2 ) L Orionis
पुनर्वसु Pollux +१°२१	रोहिणी Aldeberon १°०६ L Tauri	
अभिजित् L Lyris. vega +०°१४	मघा Regulus १°३४ L Leonis	पू पादा D Sagitaris १°८४
मूलद्वय L Augiri +०°२१	विशाखा I Labrae ४°६६	उ. पादा S Sagitaris २°१४
( एपरेज ०°२३ )	मघिनी B Arities २°०२ L Arities १°३३	( १६°०१ )



कालांश १२			कालांश १४			कालांश १५		
न.	के.	आ.	न.	के.	आ.			
स्वार्ता	१	०.२४	हस्त	२.३	३.११	कृत्ति.	३	२.२६
अग	१	०.८६	अव.	१.२	०.८९	अनु.	२.३	३.३४
मृ. व्या.	१	१.५८	उ. फा.	२	२.५८	मूल	४	१.७१
चित्रा	१	१.२१	पू. फा.	३	३.४१	आर्क्षे.	४	४.५७
ज्येष्ठा	१.२	१.२२	धनि.	३.३	३.८६	आर्क्षे.	१	रूपविकारी
पुन.	१.२	१.२३	रोहि.	१	१.०६	पू. पा.	३	२.८४
अभि.	१	०.१४	रुघा	१.२	१.३४	उ. पा.	२.३	२.१४
म. ङ.	१	०.२१	विशा.	४.३	४.६६			
			अभि.	३.२	२.७२			
जोड़		१.७९	जोड़		२३.६३	जोड़		२०.७६
सरासरी		+ ०.२२	सरासरी		२.६३	सरासरी		२.९७

ऐसे ही कालांश १७ में मूल मंत्रोक्त नक्षत्रों से मिल अन्य तारों में एवं का. २१ में भी थोड़ा अंतर है।

उक्त ( के. आ. ) दोनों मान पाश्चात्यों के पुस्तकों के आधारसे लिखे गये हैं। इनमें १०।१२ तारों में अंतर है सो क्या दोनों मेंसे एक परिमाण गलत हो सकता है ? नहीं। क्योंकि स्थूल सूक्ष्मका विचार करते, तारोंकी भिन्नता को अलग करके ३०।४० वर्ष के स्वरूपविकारित्व को देखते यह अंतर नहीं रह सकता है। इसी प्रकार उक्त कालांशों को तो आज हजारों वर्ष हो गये हैं तब रूपविकारित्व से महदंतर पड़ना स्वाभाविक है। उसमें भी यह नेत्रोंसे निश्चित किये हैं। यह फोटो उतारकर मंत्रोंसे नापे हुए हैं। इतना होते हुए भी मलते हैं। तारों को बतलाकर थोड़ेसे अंतर से उन मंत्रों को अविवशतनीय एवं असंगत बता देना योग्य कैसे हो सकता है।

ऐसा होते हुए प्रि. आपटे के कहे हुए भिन्न तारों से भी यदि उक्त वर्ष की सामान्यरेखर संपूर्ण कालांशों की तुलना की जाय तो निम्न लिखितानुसार बराबर मिल जाती है तो यह क्या मंत्रोक्त की शुद्धता का महत्व पूर्ण प्रमाण हो नहीं सकता ! तथा विचार पूर्वक देखा जाय तो प्रति के अरंभिक अंकों का अनुक्रम भी ठीक ठीक मिलता है। छोटे तारों के स्वरूपविकारित्व से समाप्तिमात्र में थोड़ी अस्थायित्वता होना ही उनके प्राचीनत्व की दर्शक है। अतः हमारे मंत्रोक्त कालांश शुद्ध एवं विश्वमनीय हैं।

कालांश	आरंभ प्रति की संगति	सरासरी
१३	-१.५८ से +१.२२	०.२२
१४	+०.८९ से +४.६६	२.६३
१५	१.७१ से ४.२७	२.९७
१७	२.५७ से ३.८४	३.०९
२१	४.०० से ४.२७	४.०९

### परीक्षण ५२ (आ)

जॉसेफ सू. सि. इंग्रजी भाषांतर पृष्ठ ३६८, ३६९ यात दिलेला मजकूर लक्षात ठेवण्या-जोगा आहे। त्याचा अर्थ असा आहे की "कालांशप्रमाणे केलेले हे तान्याच्या तेजाचे वर्गीकरण फार चमत्कारिक व निलक्षण आहे. १३ कालांशाच्या वर्गामध्ये बहुतेक तारे पहिल्या प्रतीचे सांगितले आहेत। परंतु पुढे रोहिणी, मघा, उत्तराफाल्गुनी, ध्रुवण हे तारे पहिल्या प्रतीचे असून ही १४ कालांशाचे वर्गात सांगितले आहेत। पहिल्या दोन प्रति मध्ये असणारा आर्द्रा नक्षत्राचा तारा १५ कालांशात सांगितलेला आहे. १७ कालांशाचे यादीत तर उत्तरा भाद्रपदाचा तारा दुसऱ्या प्रतिचा व सूर्य तेजात कधी न लोपणारा असून ही सांगितला आहे। २१ कालांशाचे यादीतील तारे कमी कालांशाचे जे काही तारे सांगितले आहेत त्या पेक्षा कमी तेजस्वी नाहीत. त्यातील मग्या तारा जर तिसऱ्या प्रतीचा आहे।" कमी तेजस्वी तान्याचा विचार केला तरीही या वर्गीकरणाची विसंगती स्पष्ट आहे। विशाला तारा पाचव्या प्रतीची, व उत्तराफाल्गुनी ४ व्या प्रतीची, धनिष्ठा ४ व्या प्रतीची घातली आहे। त्या पेक्षा तेजस्वी कृत्तिका, अनुराधा, पू. पादा, उत्तरापादा. १५ कालांशात व पू. भा., उ. भा. दग्धि हे ही ११२१ या प्रतीचे तारे असून ही १७ कालांशात सांगितले आहेत. ध्रुवण, रक्षीत धनिष्ठा, उ. भाद्रपदा व ब्रह्मद्वय हे तारे सूर्य तेजात मिळत होता नाहीत असे सूर्य सिद्धांत अ. ८ भा. १८ व सोम सिद्धांत, वसिष्ठ सिद्धांत यात सांगितले आहे। मग याचे कालांश सांगण्याचे महत्व काय! अर्थात हे कालांश प्रत्यक्ष अनुभव पाहून लिहिलेले आहेत असे दिसत नाही.

### समाधान ५२ आ.

उपो. वि. श्रिवाद् कृष्ण कोस्टकर कुन भारतीय उप निर्माणित ( पृष्ठ १५१-५३ ) का लेख ध्यान देणे लायक हे। वही ऐसा ह कि "अगत्याचे दर्शन लोप १२ वाढावानी, दुन्यकाचे १३ कालांशांनी, सामान्यतः तेजस्वी तान्याचे १४ कालांशांनी ॥ लहान तान्याचे

त्यांच्या तेजाच्या अल्पत्वाच्या मानने त्यां पेक्षा अधिक कालांशांनी होतात। कालांशांस ६ नें भागिलें म्हणजे घटिका येतात। या घटिका व ताऱ्यांचे उदयलग्न यांच्या साह्यानें लग्न साधावें या लग्नास उदयार्क म्हणतात। त्याच घटिकाव ताऱ्यांचे अस्तलग्न यांच्या साह्यानें विलोमलग्न साधावें. या लग्नास ६ राशी वजा करून येणाऱ्या वजा बाकीम अस्तसूर्य म्हणतात। ताऱ्यांचा उत्तर शर ज्या मानानें मोठा असतो त्या मानानें त्याचा अक्षदक्षर्गज कालात्मक संस्कार ही मोठा असतो। ताऱ्याची शर जितका मोठा असेल व म्यलाचे उत्तर अक्षांश जितके अधिक असतील तितक्या मानानें उदयार्क व अस्तसूर्य यांमधील अंतर कमी असतें। ज्यास्थळीं ज्याताऱ्याचे उदयस्तार्क तुल्य असतात किंवा उदयार्कापेक्षां अस्त सूर्यच अधिक असतो त्या स्थळीं तो तारा कधीच अदृश्य होत नाही। ज्योतींची दर्शनादर्शनें कालांशावर अवलंबून नसून संध्याहण दीप्तीप्रमाणें ज्योतींच्या उदयास्तकाळीं सूर्याचे क्षितिजाखालीं जे दृष्टमंडलीय नतांश असतात त्यावर अवलंबून असतात, असें रा० केतकर यांचे मत आहे। अशा नतांशापासून आलेले दर्शनलोप कालांशापासून येणाऱ्या दर्शनलोपापेक्षां सूक्ष्म असतात हें खरें आहे. पण वास्तविक पहातां दर्शन लोप नतांशावर अवलंबून नसून सूर्य व ज्योति यामधील सूत्रात्मक अंतरा वरच अवलंबून असतात, असें सूक्ष्मविचारानी दिमून येईल. सूर्याची दीप्ति त्याच्या भोंवतीं वर्तुळाकार गतीने फाकत जाते। ज्योति दृश्य असण्यान त्याचे सूर्यापासून जे परम अल्प सूत्रात्मक अंतर असतें लागतें तत्तुल्य व्यासार्धानें सूर्या भोंवतीं काढिलेल्या वर्तुळाच्या टापूच्या बाहेर तो कोठेही असला तरी तो विसलाच पाहिजे। मग त्याचे क्षितिजाखालील नतांश पडित नतांशापेक्षा कमी असले तरी हरकत नाही। येथे संध्याहण दीप्तीचा दाखला देतां येत नाही। कारण संध्या दीप्ती क्षितिजाच्या कोणत्याही बिंदुपाशी दिसली तरी चालते। उलट ज्योतींचा सूर्य प्रकाशा मुळे लोप होण्यास तो प्रकाश प्रत्यक्ष त्या ज्योती पर्यंत पोचला पाहिजे; क्षितिजाच्या इतर बिंदुपर्यंत पोहोचून उपयोग नाही। ”

ऐसा ही हमारे सिद्धान्त ग्रंथों में लिखा है “अष्टादश शताब्द्यस्ता दृश्यांशः स्वोदया सुभिः ॥ विभज्य लब्धा क्षेत्रांशस्तेदृश्या दृश्य ताथवा ॥१६॥ प्रागेशा मुदयः पश्चादस्तो दृक्कर्म पूर्ववत् ॥ गतेष्य दिवसप्राप्तिर्मानु मुक्त्या सदेवहि ॥१७॥ ” ( सू. सि. अ. ९ ) “ काष्ठाशैरधिकैरेभ्यो दृश्यान्त्यत्पैरदर्शनम् ॥११॥ तल्लमाद्यत्र कालांशा स्वल्पमा सुहृता गतिः ॥ राशिचित्प्राहृतास्यातां कालमुक्ती तथोरुमे ॥१२॥ सूर्यो सूर्याधिकेन्यस्मिन्नपि पद् भानि निक्षिपेत् ॥ सूर्यास्त कालिकौ कुर्याचौच सूर्यास्त ताडिनौ ॥१७॥ इतरान्त-स्थयान्याभिर्धनर्ण तत्फलं तथा ॥१८-२०॥ ( सोमसिद्धान्त अ. ७ ) एवं ब्रह्मसि. ( अ २ श्लो. २२६-२४ ) बृहवसिष्ठ सि. ( अ. ९ श्लो. १४-२० ) ज्यो. कोट्टहटकर ने लिखे हैं सो ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तानुसार लिखे हैं। तथा भारतीय ज्यो. शा. ( पृष्ठ ४४७-४९ ) में कालांश संबंध का वर्णन है। अंश में कहा है कि “ आमच्या ग्रंथांतले कालांश आमच्याच देशांत

ठरविलेले आहेत; 'टालमीच्या कालांशांविषयी भी असें द्वाणूं शकतो' कां त्याने ते स्वानुभवाने दिले नाहीं ।" सारांश:-हमारे ग्रंथों में लिखे हुए कालांश स्वानुभवशुद्ध हैं । इसलिये वर्तमान कालिक शुद्ध सूक्ष्म गणित के पंचांगों में भी उक्त कालांश पद्धति के अनुसार ही ग्रह ताराओं के उदयास्तका साधन किया जाता है । इतना ही नहीं तो इसके अतिरिक्त दूसरा [ नतांशादि का ] साधन अभी तक प्रचार में आया नहीं है । क्योंकि प्राचीन साधन ही जब कि दृक्प्रत्यय में ठीक ठीक मिलता है फिर दूसरे साधन की आवश्यकता ही क्या है । अतः यह हमारे ग्रंथों का कितना बड़ा गौरव है ।

लेकिन एक झीटा तारे की प्रति (वर्ग) संपूर्ण आर्यग्रंथोक्त रेवती के ही (कालांश के वर्ग में) नहीं; २७ नक्षत्रों के पुंज की कुल ताराओं के उक्त कालांशों के वर्ग के अंतर्गत न होने से प्रस्तुत परीक्षण में संपूर्ण आर्यग्रंथोक्त कालांशों को विसंगत कह दिया गया है 'और कालांश तथा प्रात (वर्ग) की सागड़ डालकर उस पर से निर्णय करना गलत है; ऐसा बताने के लिये जबकि इसकी पुष्टि में प्राचीन व अर्वाचीन किसी भी आर्य विद्वान की सम्मति नहीं मिलनेसे; अर्थावर्त्ताय नाक्षत्र गणना को साधन मान के तर्क निदान ४ अंश सोमी हटादें इस उद्देश से जिन्होंने झीटा को रेवती का स्वाग दिया है । उनमें से एक प्रो. वज्रेंस साहब बहादुर की शरण । प्रो. आपटे साहब बहादुर को लेनी पड़ी है । आह । इसमें आपने सिर्फ एक प्रमाण बताया है कि — "अभिजात, ब्रह्महृदय, रशती, धेष्णन वासवाः ॥ अहिर्बुध्न्य सुद्वयस्त्वानुलुप्यन्तेऽर्करश्मिभि ॥ १८ ॥ ऐसा सू. सि., सोमसि. 'वृ. वसिष्ठ सिद्धांत में लिखा है. तब इन तारों के कालांश कहने की आवश्यकता क्या थी?" इस प्रश्न को अब हमें गणितद्वारा हल कर देना है । जैसा कि ऊपर सोम सिद्धांत व ब्रह्मगुप्त के अनुसार उद्यो. कोरूटकर महादय ने कहा है । तथा सू. मि. की सुधा वरिणी। एव प्र. लाघवादि की टीकाओं में म. व सुधाकर द्विवेदी ने उपपत्ति बताई है । सूर्य सिद्धांतादि प्राचीन ग्रंथों के अन्यान्य परिमाणों में जहां स्थल विशेष का संस्कार दृष्टि गोचर होता है उस को तथा वेदांग उद्योतिष के दिनमान की घट वध को देखने से पता चलता है कि उज्जयिनी मध्यरेखा = कुरुक्षेत्र के उत्तर में अक्षांश ३६ उत्तर के अनुसार क्षेत्रांश हमारे सिद्धांत ग्रंथों में कहे गए हैं । और 'परमाऽपक्रमऽयात् सप्तम्य गुणैरय' (सू. मि.) के कथन से उस समय परमांश २४ थी । तथा निधान १ (पृष्ठ ५१-५२) को. नं. ५ (अ व) में लिखे तारों के भोगशर के गणित द्वारा उपपत्ति करके बताया है ।

### कालांशकी व्याख्या.

अक्षांश ३६ पर सूर्य के उदय और अस्त के आगे पाँछे २२°-२१° कालांश तक ( जो मंडलाकार लघुत्तम से महत्तम तक ) संधि प्रकाश रहता है । उसको हटाकर जो तारा



अपने चाक चक्र (तेजस्विता=दीप्ति) के परिमाण से दृष्टि गोचर होने लगता है अथ प्रति (वर्ग) को काल के अंश का रूप देकर कहा है सो कालांश हैं। अतएव 'तारे के तेजस्विता के तारतम्य से सूर्य के चौगिर्द मंडलाकार अवधि (मर्यादा) के दर्शक कालांश हैं' जोकि 'स्वात्यगरस्य' श्लोकों १२-१५ में १२, १४, १५, १७, २१ के वर्ग में कहते हुए 'सौक्ष्माभिसप्तकांशकैः' 'तारों के अंतर प्रकाश के कारण वह २१ कालांश में पड़े गए हैं इस कथन से भी उक्त व्याख्या; पुष्ट होती है। (सांप्रतिक वर्ग में जो थोड़ा फर्क दृग्गोचर होता है सो तारों के रूप विकारित्व से है।) इस (कालांश रूप) अवधि के अंदर तारा अदृश्य और बाहर दृश्य होता है।

### क्षेत्रांश और कालांश का संबंध.

उपोत्ति के शर और देखने वाले के स्थल विशेष से उक्त कालांश साधित लग्नरूप अंशोंको क्षेत्रांश कहे हैं। इसी के द्वारा "अष्टादशशताभ्यस्वा०" ( श्लो. १६-१७ ) उस तारे का दृश्यादृश्य काल निश्चित हो सकता है। अत एव ( १ ) कालांश और ( २ ) क्षेत्रांश यह दोनों बातें अलग अलग हैं। या मोटे तौरपर यौभी कह सकते हैं कि क्षेत्रांश के साधन-रूप कालांश हैं क्योंकि "तैर्दृश्या दृश्यता" इन्हीं के अनुसार तारों का दृश्यादृश्यता कहे गई है।

### सतत दिखने वाले तारोंकी उपपत्ति.

भारत में उत्तर अक्षांश होनेसे दक्षिण शर के तारोंका नित्योदयास्त ही रवि के उदयास्त की अपेक्षा कम होता है। उनके लोप दर्शन के कालांश वही होकर क्षेत्रांश बढ़ जाते हैं। इससे उनका दक्षिण शर जैसा जैसा बड़ा हो वैसे वैसे उनके लोप का समय बढ़ते जाता है। अतः वह हमें सतत दिख नहीं सकते। किंतु उत्तर अक्षांश में जहां क्षेत्रांश ने कालांश की अवधिका उद्घन किया कि वह तारा सतत दिखता रहता है। यद्यपि यह अवधि विपुलांश व क्रांति के अनुसार ही शुद्धता से ज्ञात हो सकती है तथापि रवि के उदयास्त की अपेक्षा के कारण उसका अंतर घनर्ण होकर केवल तारे के शर के तुल्यता में आजाता है। इस उपपत्ति से निम्न लिखित समीकरण हो सकते हैं।

### समीकरण और उदाहरण.

(१) लोपदर्शनावधि रूप शर = कालांश भुज्या ÷ अक्षांश लाया.

## अवधि रूप शर

शेयरशी  
कालाश-  
वधिरूप

अक्षांश व कालाशों को  
ज्ञात राशी मानकर  
समीकरण

$$\text{शर} = \frac{\text{कालाश भुजज्या}}{\text{अक्षांश उपा} } =$$

जि	भुज्या घ ताक	शरछ या घा०	शरउत्तर
१३	९३५२०२८०	९४९०८२७०	अ क. १७ १२
१४	९३८३६७५२	९४२२४१४२	१८ २५
१७	९४६५९३५३	९६०४६७४३	२१ ५५

विधान ७ ( पृष्ठ ५२ ) कोष्टक न. ५ (ब) के अदर और तजस्वी तारों के शर का तथा उक्त कालाश के वर्गों को देखने से ज्ञात होता है कि अभिजित् आदि प्रथोक्त ६ तारों के ही शर उपर्युक्त अवधिरूप शर का अंश अधिक है । मालूम निम्न लिखित अवधिरूप अक्षांश के उत्तर के प्रदेश में यह ६ तारे सतत दिखते ही रहेंगे ।

## समीकरण और उदाहरण

(२) लोपदर्शनावधिरूप अक्षांश = वागश - ज्याशरछाया

प्रस्तुत ६ तारों के अवधिरूप अक्षांश.

शेयरशी  
क्षयादृश्य  
क्षेत्राश  
वधिरूप  
उत्तर

ज्ञातराशी = कालाश  
और शर  
समाकरण

$$\text{अक्षांश} = \frac{\text{कालाश भुजज्या}}{\text{शरछाया}}$$

शर	शर छाया	अक्षांश उपा	अक्षांश
अ क.			अ क.
+६१ ४४ १० २६९४६४६		९०८२६२३४	६।५४
+२२ ५० ९६२५०३५६		९७२७०५२४	२८। ५
+३० ४९ ९७७०६२०६		९५७६४६७४	२०।४०
+२८ १८ ९७८९०९७४		९६३४१७७८	२३।१९
+३२ २ ९७९६३५१३		९५८७३२३९	२१। ८
+२५ ४३ ९६८२७०९८		९७८३२२५५	३१।१६

उपर्युक्त उपपत्ति से स्पष्ट हो जाता है कि अक्षांश ३१।१६ के उत्तर के प्रदेश में प्रस्तुत ६ तारों का अस्त लोप कभी नहीं होता क्योंकि यह तारे कालांश रूप अवधि (टापू) के बाहर के सदा दृश्य क्षेत्र में स्थित हैं। इसलिये हमारे आर्य प्रयोगों में “अभिजित् ॥६॥ उदक्स्थ त्वान्नलुप्यन्तेऽकरिभिः (सू. सि. ९.१८) अभिजित् आदि ६ तारे (बहुत) उत्तर में स्थित होनेसे सूर्य के संधि प्रकाश से इनका लोप (अस्त) नहीं हो सकता है’ ऐसा लिखा है सो योग्य है। तथा इसी प्रकार उक्त तारोंका —

चराश और कालांशांतर गणित द्वारा सदा दृश्यत्व

(अयनांश ० अक्षांश + ३६ र. प. जाति २४ क गणित से)

न्यास १	१	२	३	४	५	६
नक्षत्रों के नाम तारों के प्रीक नाम प्रति (वर्ग) दाहिनी	अभिजित् वहीगा ० १४	ब्रह्महृदय कंपठा ० २१	स्वानी आ कंठयूरस ० २४	श्रवण अल्टेर ० ८२	घनिष्ठा अल्फा डे० ३ ८६	उ माद्रपदा आल्फा टाट २. १५
ताराशा के	अ. क.	अ. क.	अ. क.	अ. क.	अ. क.	अ. क.
सायन भोग	२६१ १८	५८ १ १८०	२७ २७७ ५५	२९३ ३५ ३५०	१८	
तारों के शर	+६१ ४४	+२० ५५	+३० ४९	+२९ १८	+३३ २	+२१ ४३
तारों क विपुनाश	३६४ ५४	४८ ४३ १९३	५९ २७६ ५६	२८९ ५६ ३४०	३६	
रवि विपुनाश	२६० ४०	५९ ५९ १८०	१० २७८ ३९	२९५ ३० ३५१	१७	
तारा कति	+३७ ५३	+४२ ३२	+७ ४५	+५ ३०	+१० ४१	+३६ ३७
रवि कति	-२३ ४३	+२० ११	-० १०	-३३ ४१	-२१ ५४	-३ ५२
ता. र. विपुवांतर	+४ १४	-६ ५६	+१३ ३७	-३ ४३	-५ ३४	-१० ४१
ता. रवि काल्यंतर	+६१ ३६	+२२ २१	+१७ ५५	+२३ १०	+३२ ३५	+२३ २९
शर काल्यंतरांतर	-० ०८	-० ३१	-२ ५४	-० ०३	-० २७	-२ १४
रवि चराश	-१८ ३७	+१५ ३०	-० ०	-१८ ३९	-१६ ५२	-२ ४३
तारा चराश	+३३ २५	+४१ ४८	+२२ ८	+४ १	+७ ५३	+१५ ३०
चराशांतर	+५३ २	+२६ १८	+२२ ३५	+२२ ४०	+२४ ५२	+१७ ४९
कालांशा वधि	+१३ ०	+१३ ०	+१३ ०	+१४ ०	+१४ ०	+१४ ०
सदा दृश्यांश	+४० १	+१३ १८	+९ ३०	+८ ४०	+७ ५२	+० ४२

इस तरह अंतिम पक्ष से सदा दृश्यत्व सिद्ध होता है। एव सिद्धांत तत्र निवेक में “तथैव साध्यं दिनरात्रिमाने खेदर्थयोस्तद्वर्णित प्रसिध्यं ॥ १२१ ॥ सिद्धे गते स्योन्मितिषो विशुद्ध तद्वर्णमूह्य किल तस्य सिद्धौ ॥ १२६ ॥ दर्शित्व सदृशेनमास्ति तत्र स्थूलतदल्पे त्वधिकेऽय सूक्ष्मम् ॥ १३३ ॥ स्थूलयतोऽस्त्यल्पकृतैर्जडयत्, सूक्ष्मंतुतच्चाधिक तैजसस्यान् स्थूल सूक्ष्माण्यपीत्यादि भेदाद्दृग्गोच्यमस्ति यत् ॥ भिन्नास्तत्तमचास्तेषाम् ॥ १३६ ॥ नक्षत्राणां च कालांशैर्जातिर्वैतस्य साधनम् ॥ १४९ ॥ अभिजितेत्याह ॥ १८२ ॥ व्यक्षोचरेतु कालांशाधिकोत्तर शरान्तरे ॥ १८२ ॥ उचास्वेऽप्यर्कवो विन्दूरेऽस्तन्नलुप्यते ॥ १८३ ॥

( उदयास्ताधिकार में ) ऐसा लिखा है । तदनुसार गणित से.

अस्तोदय गणित द्वारा ६ ताराओं का सदा दृश्यत्व.

न्यास २	१ अभि.	२ अ. ह.	३ स्वाती.	४ श्रव.	५ धनि.	६ उ. भा.
१=शिका	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल
रवि चर काल	-३ ३.७+२ ३३.०	-० ०.७	-३ ३.९	-२ ४५.९	-० २४.९	
" दिनमान	२४ २.६३५ १६.०३०	८.६ २४ २.२	२४ ३८.२	१९ २०.२		
" दिनार्ध	१२ १.३१७ ३८.०	१५ ४.३ १२ १.१	१२ १९.१	१४ ४०.१		
" मध्याह्न	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०		
" उदय	२ ५८.७ ५७ २२.०	५९ ५५.७	२ ५८.९	२ ४०.९	० १९.९	
" अस्त	१७ १.३ ३२ ३८.०	३० ४.३ २७ १.३	२७ १९.१	२९ ४०.१		
ता=तारोंका						
ता. विषुवकाल	४४ ५.४ ८ ४.३	३२ १५.९ ४६ ५.६	४८ १५.१	५१ ४३.१		
१. विषुवकाल	४३ ३२.८ ९ ४०.१	३० २.४ ४६ १५.५	४८ ५३.३	५८ २२.८		
म सूर्य विषुवांतर	+० ३२.६ -१ ३५.८	+२ ३३.५ -० ९.९	-० ३७.७ +० २०.८			
पंचदश घण्टा:	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०		
ता. या. छंदवनकाल	१५ ३२.६ ३ ३४.२	१७ ३३.५ १४ ५०.१	१४ २२.३	१५ २०.८		
तारोंका चरकाल	+५ ४२.५ +६ ५४.८	+३ ४२.८ +० ४०.३	+१ १५.३ +२ ३०.०			
दिनमान	४१ ३५.० ४३ ५९.६	३७ ३५.६ ३१ ३०.२	३२ ४०.६ ३५ १०.०			
ता. दिनार्ध	२० ४७.५ २१ ५९.८	१८ ४७.८ १५ ४५.१	१६ २०.३ १७ ३५.०			
" उदयकाल	५४ ४५.१ ५१ २४.४	५८ २५.७ ५९ ५.०	५८ २.० ५७ ४५.८			
" अस्तकाल	३६ २०.१ ३५ २४.०	३६ १.३ ३० ३५.२	३० ४२.६ ३२ ५५.८			
मध्यमान से						
रवि उदय	२ ५८.७ ५७ २२.०	५९ ५५.७	२ ५८.९	२ ४०.९	० १९.९	
तारा उदय	५४ १२ ५५.३	०.२ ५६ १२.२	५९ १५.९	१९.७ ५७ २५.०		
तारा अस्त	३५ ४७.५ ३६ ५९.८	३३ ४७ ८.३	४५.१ ३१ २०.३	३२ ३५.०		
रवि अस्त	२७ १.३ ३२ ३८.०	३० ४.३ २७ १.३	२७ १९.१	२९ ४०.१		
ता. १. अस्त	+८ ४६.२ +४ २१.८	+३ ४३.५ +३ ४४.०	+४ १.२ +२ ५४.९			
कारांश काल	-२ १०.० -२ १०.०	-२ १०.० -२ १०.०	-२ १०.० -२ १०.०	-२ १०.० -२ १०.०		
सदा दृश्यत्व	+६ ३६.२ +२ ११.८	+१ ३३.५ +१ २४.०	+१ ४१.२ +० ४.९			

यही गणित ज्योतिर्गणित ( नक्षत्राण्यथ ४ श्लोक ४ ) के द्वारा भी होता है । प्रामुत

१ ताराओं के उदयास्त काल रवि की अपेक्षा तथा एक काटवधि ( मर्यादा ) में अधिक होने से सदा दृश्य रहने हैं.

उपर्युक्त अनेक विद्वानों के कथनानुसार शास्त्रीय उपपत्ति, प्रमाण एवं सूक्ष्म गणित की तुलना से सिद्ध होता है कि उक्त ६ तारे सदा दृश्य थे और वर्तमान में भी उक्ता-क्षाश के उत्तर के प्रदेश में सदा दृश्य हैं। यह सदा दृश्यत्व कालांश और उत्तर शर जन्म होने से अयन चलन के भेद से इनकी क्रांति भिन्न होने पर भी रवि तारों का कालांतर शरतुल्य रहने के कारण कालांतर हो जाने पर भी इनके सदा दृश्यत्व में बाधा नहीं आसकती है। यद्यपि उक्त शोध को आज कई शताब्दि बीत चुकी है इससे। जस प्रकार निजगति के कारण (विधान ७ के कोष्ठक देखिये) तारों के भोग शर में थोड़ा फर्क पडा है उसी प्रकार तारों के दीर्घ कालिक क्यों न हो-रूपविकारित्व से कालांशों को देखते धनिष्ठा और उ. भा. के तारों की दीप्ति में ए. प्रति का अंतर (२.८६ के ३.८६ और ३.१५ के २.१५) होगया है। तथापि इतने पर से ग्रंथोक्त कालांशों की प्रति के सादृश्यता में बाधा नहीं आसकती है क्योंकि (उपर्युक्त न्यास १ देखिये) अभिजित् आदि चार तारों की प्रति; ग्रंथोक्त अनुक्रम और कालांश के तुल्य ठीक ठीक मिलते हुए है। तथा समांतर वर्ग की सरासरी की तुलना ऊपर बता चुके हैं। वस्तुतः तारों के दृश्यादृश्यत्व का निर्णय बिना कालांश रूप मर्यादा के कहे निर्णीत नहीं होसकता है। इसलिये हमारे ग्रंथों में उक्त ६ तारों के कालांश कह कर आगे उन्हें सदा दृश्य कहे हैं सो योग्य है। इस तरह की सर्वमान्य, स्पष्ट और बड़े महत्व की मोटी बातें भी प्रि. गोविंदरावजी को अनार्य जुष्ट चस्में में से नहीं दिखना उनके और हमारे सुदैव की बात कैसे हो सकती है। इतने में ही पाठक महोदयों ने सब समझ लेना चाहिये।

### परिक्षण ५२ (इ)

पितामह सिद्धान्त (पृ. २२ पर) तर “तेषां नक्षत्राणां द्वादश दृश्यादृश्य नतांशाः” अर्से मोघम गूढल्ले आहे. या वरुन ही तेंच अनुमान होतें,

### समाधान ५२ (इ)

प्रि० साहव का यह कथन भी असत्य और असंगत है क्योंकि पितामह सिद्धान्त में “नतांशाः” लिखा न होकर कालांशानुसार ग्रहों के उदयास्त का साधन कह कर “एवं नक्षत्राणां तेषां द्वादश दृश्यादृश्यांशाः” “इसी प्रकार नक्षत्रों के भी उदयास्त काल का निश्चय कर लेना चाहिये और उनके दृश्यादृश्य के कालांश १२ लेवें” ऐसा लिखा है नतांश खस्वतिक से गिने जाते हैं। कालांश सूर्य से तारे के लग्नांतर नाप ने के दृश्यादृश्य काल के अंश रूप को कहते हैं प्राचीन पद्धति को विकृत और असंगत बतलाने के उद्देश्य से मूल पाठ को छोड़ कर कल्पित पाठ “नतांशाः” ऐसा जोडा गया है सो असत्य है। पितामह सिद्धान्त गद्यात्मक लघु ग्रंथ है। इससे इसमें कई बातें सामान्य रीति से कहे गई हैं

( उदयास्ताधिकार में ) ऐसा लिखा है । तदनुसार गणित से.

अस्तोदय गणित द्वारा ६ ताराओं का सदा दृश्यत्व.

न्यास २	१ अभि.	२ म. ह.	३ स्वाती.	४ श्रव.	५ धनि.	६ उ. भा.
२=रविका	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल
रवि चर काल	-३ ३.७+२ ३३.०	-० ०.७	-३ ३.९	-२ ४५.९	-० २४.९	
" दिनमान	२४ २.६३५ १६.० ३०	८.६ २४ २.२	२४ ३८.२	१९ २०.२		
" दिनार्ध	१२ १.३ १७ ३८.० १५	४.३ १२ १.१	१२ १९.१	१४ ४०.१		
" मध्याह्न	१५ ०.० १५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.०		
" उदय	२ ५८.७ ५७ २२.० ५९ ५५.७	२ ५८.९ २ ४०.९	० १९.९			
" अस्त	२७ १.३ ३२ ३८.० ३०	४.३ २७ १.१	२७ १९.१	२९ ४०.१		
ता=तारिका						
ता. विषुवकाल	४४ ५.४ ८ ४.३ ३२ १५.९	४६ ५.६ ४८ १५.६	५६ ४३.६			
र. विषुवकाल	४३ ३२.८ १ ४०.१ ३०	२.४ ४६ १५.५ ४८ ५३.३	५८ २२.८			
म सूर्य विषुवार्तर	+० ३२.६ -१ ३५.८ +२ १३.५	-० ९.९ -० ३७.७ +० २०.८				
पंचदश घट्यः	१५ ०.० १५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०	१५ ०.० १५ ०.०			
ता. या. लंघनकाल	१५ ३२.६ १३ २४.२ १७ १३.५	१४ ५०.१ १४ २२.३	१५ २०.८			
तारिका चरकाल	+५ ४२.५ +६ ५४.८ +३ ४२.८	+० ४०.१ +१ १५.१ +२ ३०.०				
दिनमान	४१ ३५.० ४३ ५९.६ ३७ ३५.६	३१ ३०.२ ३२ ४०.६	३५ १०.०			
ता. दिनार्ध	२० ४७.५ २१ ५९.८ १८ ४७.८	१५ ४५.१ १६ २०.१	१७ ३५.०			
" उदयकाल	५४ ४५.१ ५१ २४.४ ५८ २५.७	५९ ५.९ २.८ ५७ ४५.८				
" अस्तकाल	३६ २०.१ ३५ २४.० ३६ १.३	३० ३५.२ ३० ४२.६	३२ ५५.८			
मध्यममान से						
रवि उदय	२ ५८.७ ५७ २२.० ५९ ५५.७	२ ५८.९ २ ४०.९	० १९.९			
तारा उदय	५४ १२ ५.५ ३ ०.२ ५६ १२.२ ५.९	१४.९ ५८ ३९.७ ५७ २५.०				
तारा अस्त	३५ ४७.५ ३६ ५९.८ ३३ ४७.८	३० ४५.१ ३१ २०.३ ३२ ३५.०				
रवि अस्त	२७ १.३ ३२ ३८.० ३० ४.३	२७ १.१ २७ १९.१	२९ ४०.१			
ता. र. अस्त	+८ ४६.२ +४ २१.८ +३ ४३.५	+३ ४४.० +४ १.२	+२ ५४.९			
कांशांश काल	-२ १०.० -२ १०.० -२ १०.०	-२ १०.० -२ १०.०	-२ १०.०			
सदा दृश्यत्व	+६ ३६.२ +२ ११.८ +१ ३३.५	+१ २४.० +१ ११.२	+० ४.९			

यही गणित उपोतिगणित ( नक्षत्राण्यय ४ श्लोक ४ ) के द्वारा भी होता है । प्रमत्त १ ताराओं के उदयास्त काल रवि की अपेक्षा तथा उक्त काष्ठाण्यि ( मर्षादा ) में अधिक होने से सदा दृश्य रहते हैं.

उपर्युक्त अनेक विद्वानों के कथनानुसार शास्त्रीय उपपत्ति, प्रमाण एव सूक्ष्म गणित की तुलना से सिद्ध होता है कि उक्त ६ तारे सदा दृश्य थे और वर्तमान में भी उक्ता-क्षाश के उत्तर के प्रदेश में सदा दृश्य हैं। यह सदा दृश्य न कालाश और उत्तर शर जन्य होने से अयन चलन के भेद से इनकी गति भिन्न होने पर भी तारों का क्रान्ति-शरत्तुल्य रहने के कारण कालाश हो जाने पर भी इनके सदा दृश्यत्व में बाधा नहीं आसकती है। यद्यपि उक्त शोध को आज कई शताब्दि बीत चुकी हैं इससे जिस प्रकार निजगति के कारण (विधान ७ के कोष्ठक देखिये) तारों के भोग शर में थोड़ा फर्क पड़ा है उसी प्रकार तारों के दीर्घ कालिक क्यों न हो-रूपविस्तारित्व से कालाशों को देखते धनिष्ठा और उ. भा के तारों की दीप्ति में ए-प्रति का अंतर (२.८६ के ३.८६ और ३.१५ के २.१९) होगया है। तथापि इतने पर से प्रयोक्त कालाशों की प्रति के मादृश्यता में बाधा नहीं आसकती है क्योंकि (उपर्युक्त न्यास १ देखिये) अभिजित् आदि चार तारों की प्रति; प्रयोक्त अनुक्रम और कालाश के तुल्य ठीक ठीक मिलते हुए हैं। तथा समांतर वर्ग की सरासरी की तुलना ऊपर बता चुके हैं। वस्तुतः तारों के दृष्टादृश्यत्व का निर्णय बिना कालाश रूप मर्यादा के कड़े निर्णय नहीं होसकता है। इसलिये हमारे ग्रंथों में उक्त ६ तारों के कालाश कह कर आगे उन्हें सदा दृश्य कहे हैं सो योग्य है। इस तरह की अर्थमान्य, स्पष्ट और बड़ महत्व की मोटी बातें भी प्रि. गोविंदरावजी को अनार्य जुष्ट चक्षुषों में से नहीं दिखना उनके और हमारे सुदैव की बात कैसे हो सकती है। इतने में ही पाठक महोदयों ने सब समझ लेना चाहिये।

### परिक्षण ५२ (इ)

पितामह सिद्धान्त (पृ. १२ वर) तर “तेषा (नक्षत्राणां) द्वादश दृश्यादृश्य नताशाः” अर्से मोघम म्हटलें आहें. या वरून ही तैज अनुमान होतें,

### समाधान ५२ (इ)

प्रि० साहू का यह कथन भी असत्य और असंगत है क्योंकि पितामह सिद्धान्त में “नताशा” लिखा न होकर कालानुसार ग्रहों के उदयास्त का साधन कह कर “एव नक्षत्राणां तेषां द्वादश दृश्या दृश्यांशः” “इसी प्रकार नक्षत्रों के भी उदयास्त काल का निश्चय कर लेना चाहिये और उनके दृश्या दृश्य के कालाश १२ लेवें” ऐसा लिखा है नताश खस्यतिक से गिने जाते हैं। कालाश सूर्य से तारे के लग्नातर नापने के दृश्या दृश्य काल के अंश रूप को कहते हैं प्राचीन पद्धति को विकृत और असंगत बतलाने के उद्देश्य से मूल पाठ को छोड़ कर कल्पित पाठ “नताशा” ऐसा जोड़ा गया है सो असत्य है। पितामह सिद्धान्त गद्यात्मक लघु ग्रंथ है। इससे इसमें कई बातें सामान्य रीति से कहे गई हैं

तब इस सर्वसामान्य विधान से सूर्य सि. के विशेषोक्त भिन्न भिन्न तारों के भिन्न २ कालाशों में बाधा नहीं आकर पितामह ने जो १२ कालाशों का सर्वसाधारण शोध लगाया उससे बढ़कर नव्य सूर्य सिद्धान्तकार ने शोध लगाया जोकि हर एक तारे के यथार्थ दृश्य दृश्य कालाश अभी तक प्रचलित हैं। इससे यह शोध हमारे ही हैं विदेशियों के छिये हुए नहीं हैं। इससे 'यावरुनही तेंच अनुमान होतें' यह कथन असंगत है। अर्थात् हमारे सब ग्रंथों के परिमाण शुद्ध और उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृक्प्रत्यय युक्त होते गये हैं। अतएव विश्वसनीय एवं प्रमाण कोटी में माह्य करने लायक हैं।

### परीक्षण ५२ ( ई )

तात्पर्य झीटा तान्याचे कालाश व त्याची प्रत याचा अमुक प्रकारचाच संबंध असला पाहिजे अशी कल्पना करून, तो तसा नाही या कारिता झीटापिशियम हा ग्रंथोक्त लक्षणानी युक्त असून ही, तो रेवती तारा नव्हे असें एक ठोक सरसकट विधान करणें हैं शास्त्रीय वादात शोभत नाही.

### समाधान ५२ ( ई )

आर्य ग्रंथों के परिमाणों में गणित साध्य सौप्राप्तिक रीति से तनिकसी भी विहंगमि सिद्ध किये बिना ही कंषळ कल्पना तरंगों के अनार्थ प्रष्टाओं से 'कर्मकरणाची विमगति स्पष्ट आहे, सूर्य तेजांत छुप्त होत नाही'...मग त्याचे कालाश सांगण्याचे महत्त्व काय, कालाश ग्रन्थ पाहून लिहिछेळ नाही," इस तरह एक तर्क ने सपूर्ण आर्य ग्रंथों को दृक्प्रत्यय युक्त तुलना में अविश्वसनीय एवं प्रमाण कोटी में अप्राप्य बताना और दूसरे तर्क एक कोई तनिकसा भी ग्रंथोक्त या शास्त्रीय आधार बताए बिना ही "झीटापिशियम हा ग्रंथोक्त लक्षणानी युक्त शमून ही" इत्यादि कहना तथा शास्त्रीय मंगिरादन, व तुलनात्मक निधय को कल्पना बताना 'ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें और निराधार बयन तो प्रि० माहय महादुर को नामधारी शास्त्रीय वाद में शोभता है; और कोई भी ग्रंथ के किन्ही भी कालाश के वर्ग की ताराओं के अंतर्गत झीटा नंबर १ पिशियम की प्रत न होने में तथा ग्रंथोक्त रेवती के तनिक भी लक्षण इसमें न होने से यह रेवती तारा नहीं ऐसा विधान करना आदि को शोभता नहीं बताना यह यथार्थ वस्तु को मजबूत कहने में दोष बनाने के तुल्य निर्धर है।



तब पूर्व विधान में कहे प्रकार १७ कालांश के तारोंकी प्रति २°५७-३ ८४ के अंतर्गत किंवा उसके सरासरी मान के निकट में रेवती की योग तारा होनी चाहिये किंतु अब वहाँ ऐसी प्रति की तारा नहीं है; इससे क्या तो वह लुप्त होगई है।

### विधान ५४

यदि मान भी लेवें की इतने वर्षों में तारों की निजगति और रूप विकारित्व से उस के स्थान और प्रति में थोड़ा अंतर पड़ सकता है। किंतु शीटापीशियम रेवती की योगतारा हो नहीं सकती क्योंकि शीटा नंबर २ पिशियम की प्रति ६.४९ ( नक्षत्र विज्ञान पृष्ठ २९-३० देखिये ) केवल नेत्रों से दिखने वाली परमावधि रूप ६ प्रति के ऊपर सातवें वर्ग में होने से वह इतनी अंधुक है कि अंधियारी रात में याम्योत्तर लंघन के समय में भी दिखने वाली तारा नहीं है। तथा इसके—६४° दिगंश पर २४ विकला के अंतर में शीटा नंबर १ तारा की प्रति ५.५७ है। जोकि नेत्रों से नहीं दिखने वाले ६ वर्ग में होकर परमावधि से चिह्न ०°४३ वर्गोश कम होने में दैनंदिन उदयास्त के ३ कलाक आगे पीछे यानी ४५ नत कालांश के करीब में बड़े सावधानी पूर्वक देखने से अंधियारी रात में यदि कोई रेवती पुंज स्थिति दीमिमन् ग्रह का प्रकाश न होतो वह नेत्रों से दिख सकती है। और लोप दर्शन के समय में तो उत्तराक्षांश ३६ के प्रदेश में ३० अंश तक संधि प्रकाश तथा ४०-५० अंश तक क्रांति तेज (Declination Light) रहने से शीटा के दृश्य दृश्य कालांश ४०-५० करीब में होते हैं। सो ग्रंथोक्त रेवती के १७ कालांशों से ही नहीं “सौक्ष्मात्रिसप्तकाशकेः” सूक्ष्म तारों के २१ कालांशों के प्रति से भी बहुत कम हान से तथा ग्रंथोक्त कुछ ताराओं की प्रति की तुलना में बिलकुट ही गई जाती (अधुन) तारा होने से शीटा पिशियम तारा सूर्य भिद्यन्तादि ग्रंथ प्रोक्त रेवती की योग तारा नहीं हो सकती।

### विधान ५५

सूर्य सि० में बड़े छोटे तारों के १३-१५ व २१ कालांश कहे बाद मध्यम प्रति के अनुक्त तारों के नाम से १७ कालांश कहे हैं। उसमें रंगनाथ आदि टीसकारों ने पहिले अनुक्त नक्षत्रों के नाम कहकर आगे “वह्नि ब्रह्माऽपावत्सापमेज्ञानिच सप्तदशभिः कालांशैः” ऐसा चार तारों के नाम और लिख दिये हैं। इनके पाश्चात्य नाम और प्रति नीचे लिख प्रकार है।

अग्नि B. Tauri	१°७८	अपावत्स Z Virginis	३°४४
ग्रह D. Aurigae	३°००	आप. Tau. Virginis	४°३४

सो विधान ५२ में लिखे १७ कालाश के तारों की प्रति के साथ इनको मिलकर पढ़ने में इस १७ कालाशों की व्याप्ति १°७८—४°३४ और सरासरी ३°२६ प्रति तुल्य होती है। किन्तु जबकि पितामह सिद्धान्त में “रेवत्युदय प्राची। सर्वस्य महती योगतारा,” ऐसा लिखा है। इससे उभय ममय रेवती विभाग के अन्त में और अश्विनी के आरम्भ में वसंत संपात की स्थिति थी। वहां तारा हो या सूर्य उसका उदय समार की प्राची (पूर्व) दिशा का दर्शक होता है। तब यदि रेवती का विशेषण ‘सर्वस्य महती योगतारा’ कथन को याने सब में बड़ी योगतारा रेवती को लगाते हैं तो रगनाथ की कही हुई १७ कालाश की ‘अग्नि सादृश्या’ रेवती की तारा होने पर भी उसका उदय पूर्व क्षितिज पर प्राचा दर्शक हो नहीं सकता और तो क्या एक प्रतिका तारा भी उदय होने के साथ दिख नहीं सकता इससे स्पष्ट है कि उक्त प्राची दर्शक कथन कोई तार के उपलक्ष्य में नहीं है केवल चित्राभिमुख आरम्भस्थान स्थित सूर्योदय के संबन्ध में है। तदनुसार ‘सब नक्षत्रों में जो तारा बड़ी हो वही उसकी योगतारा है ऐसा ‘सर्वस्य महती योगतारा’ का अर्थ हो सकता है। अर्थात् रेवती तारे के संबन्ध के दोनों वाक्य नहीं हैं। इससे चित्राभिमुख बिंदु ही आरम्भ स्थान है ऐसा सिद्ध होता है।

### परीक्षण ५५

यातील पहिले वचन निराधार आहे। दुसऱ्या वचनातील शब्द असा रीतीने मागे पुढे करून लिहिले आहेत की त्यामुळे मूळचा अर्थ वाचकाचे लक्षात न येता त्याचा दुसराच अर्थ असला पाहिजे अशी वाचकाचा गैर समज व्हावी। पहिले वचन पितामह सिद्धान्तात नाही। दुसरे वचन आहे फारसु ते “रेवत्युदय प्राची। सर्वस्य महती योगतारा” असे आहे. अर्थात् त्याच स्वरूप ५० दीनानाथजींनी लिहून केले आहे। पुढील संबंधाने या वचनाचा अर्थ असा आहे की सर्व नक्षत्रांच्या मोठ्या तारा किंवा महत्वाच्या तारा योग तारा समजाव्या हा एक अगदी माघाग्न नियम दिला आहे. पृष्ठ वसिष्ठ सिद्धान्त पृ. ४९ वर कोणत्या नक्षत्राच्या योग तारा आप आपल्या पुजात कोणत्या दिशेत आहेत हे सांगून नंतर श्लोक २२ मध्ये “अनुक्तानां सर्वेषां स्थूला यास्तांस्तारका” म्हणजे वर ज्या नक्षत्राच्या योग तारा सांगितल्या नाहीत त्यात ज्या मोठ्या तारा आहेत त्याच योग तारा समजाव्या असे मागिते आहे. सू. सि. अ. ९ श्लोक १९ मध्ये ही “यथा प्रत्येक रोपाणां स्थूलाभ्यां योग तारका” असे लिहिले आहे. या वरून “सर्वस्य महती योग तारा” हा एक स्थूल नियम समजावयाचा, रेवती योगतारा

उगवते तीच प्राची असा ' रेवत्युदयः प्राची ' या वचनाचा अर्थ आहे. अर्थात् त्याकाळी रेवती तारा थेट वसंत संपाती होती हें उघड आहे. गृहणजेच त्याचा भोग व शर शून्य असें येथें सांगितलें आहे. पहिल्या निगधार वचनाचा अर्थ दीनानाथजी देतात तो असा की रेवती व अग्नि तारा यांचे काळांश सारखे होत परंतु हें बरोबर नाही. तथापि—कारण शततारका प्रत ३८४, ब्रह्मा ३५ आप ३.४४ हे तारें ही १७ काळांश अग्नि १.७८ ताऱ्याप्रमाणें सांगितले आहेत. तेव्हा त्याच्या संबंधांत ही “ अग्निसादृश्याः ” अशा अर्थाचें काहीं लिहिलें आहे कीं नाहीं तें ( त्याच सदर्याच्या अनुरोधानें ) पाहिलें पाहिजे.

### समाधान ५५

— उक्त लंबे चौडे परीक्षण को देखकर हसी और दया आती है। क्योंकि मुद्देकी बात पर कुछ भी विचार नहीं करते हुए विधान में ही लिखी हुई बातों को दुहरा कर किन्तु बातों की भर्ती के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखा है ( १ ) पहला मुद्दा ये है कि पि. सि. में “ रेव युद्धय. प्राची ” ऐसा लिखा है। और प्रि. गोविंदरावजी ने रेवती तारा थेट वसंत संपाती होती ' इस कथन से उसी पर वसंत संपात की स्थिति थी ' यह विधानोक्त कथन का स्वाकार कर लिया है। तब सिद्ध होगया कि पितामह सि. के समय रेवती की शून्य क्रांति थी। तब शून्य क्रांतिकी ज्योतिः उदय के समय में ही ठीक ठीक पूर्व दिशा में रहती है आगे वह उत्तर अक्षांश के प्रदेश में दक्षिण के तर्फ झुकने लग जाती है। उदाहरण के लिये इन्दौर ( अक्षांश +२२°१४' ) को लीजिये ( ताकि सदेह होता वेधद्वारा तुरीय यत्रसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं ), शून्य क्रांति के ज्योतिः का उदय और गमन निम्न लिखितानुसार होता है:—

ज्योतिः के उदय में								
० कलाक मानकर=	कलाक ०	कलाक १	कलाक २	कलाक ३	कलाक ४	कलाक ५	कलाक ६	
क्षितिज से ज्योतिः के	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
उन्नतांश=	० ०	१३ ४९	२७ २८	४० ४२	५३ १	६२ ५९	६७ १६	
पूर्व बिन्दु से दक्षिण दिगंश=	० ०	५ ५४	१२ ३५	२१ ८	३४ ४७	५५ १६	९० ०	

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि पितामह के समय उदयकाल में ही आरंभस्थान का बिन्दु थेट पूर्व दिशा में उदय होता था बाद में उसके जैसे जैसे उन्नतांश बढ़ते थे। वैसे वैसे उसके दक्षिण के तर्फ दिगंश बढ़ते जाते थे। ऐसी स्थिति में यदि हम उसे तारा मानते हैं तो अग्नि सादृश्य एक दो प्रति का तारा भी उदय के

१ कलाक के बाद १४ उन्नतांश पर दक्षिण तर्फ ६ दिग्ग पर दिख सकेगा। अतः निःसंदेह कह सकते हैं कि तारे के उदय ( क्षितिज सलग्न ) से न तो पितामह के समय प्राची साधन हो सकता था न अब; इसलिये उक्त कथन सूर्य नक्षत्र के संबंध का है। सूर्यादि ग्रहों के तथा देदीध्यमान कोई तारे के बिना क्षितिज सलग्न तारा दिख नहीं सकता। शीटाकी अधुका तारका तो जोकि उदय होने के ३ घंटे बाद थोड़ी बहुत झलकती हुई दिखती है तब उसके उन्नतांश ४१ और दिग्ग २१ दक्षिण में हो जाते हैं। उससे कुछ प्राची दिशा कदापि निश्चित नहीं हो सकती। विधानोक्त बहुतसा कथन तो गोविंदरावजी ने स्वीकार कर ही लिया है। बाकी परीक्षण मुद्द का बाहर है। साराश रेवती पुजमें कोई उल्लेखनीय तारा न होने से जब कि पितामह ने आरभ स्थान स्थित सूर्य के उदय से प्राची दिशाका साधन कहा है तब उत्तम प्रमाण से सिद्ध होता है कि आरभ स्थानही उस समय रेवत्यत बिंदु समझा जाता था कोई तारा नहीं।

### विधान ५६.

नाटिकल ऑल्मनाक ( सन १९३० ) में नंबर ७४ याने शीटा न० १ पिमियम के नीचे जो टीप “ ६४९ ( शी. २ ), २४°, ६४° ” ऐसी है उसका अर्थ है कि शीटा पिसियम नं० १ के साथ बिलकुल नजदीक याने २४ विं ला के अंतर पर उ० रूव से ६४ दिग्ग पर एक दुसरी संधीदार तारका है। जिसकी शीटा न० २ पिमियम ऐमा नाम दिया गया है। इसकी प्रति ६४९ है। याने न० १ से, न० २ कुछ कम तेजगी है। इसकी जगह न० १ मध्य में है ऐसी कल्पना करके आकृति नीचे लिखे प्रमाण में बनती है। ( आकृति नंबर ३ देखिये ) समझने के लिये ( अ, ब ) का तारतम्य आकृति के बाका प्रमाण से नहीं रखा है। इस तारका युग के दोनों तारों की प्रति ( वर्ग ) में परस्परतः वर्ग ० ९२ मात्र होने से नेत्रों द्वारा २४ विकला तक का विहृत रूप दिखता है। मानों अक्षर अ अक्षर लिख देने से फूटा अक्षर बन जाता है, ठीक ऐसा ही आतिजनक विहृतरूप, अधुका शीटा का दिखाई देता है।

### विधान ५७.

तारों की जोड़ी [ युग ] असबद्ध और मयुक्त रूप दो प्रकार की दिखाई देती है वभिष्ट और अरघती की जोड़ी असबद्ध है। यद्यपि दिखने में [ मिर्क १५°, १५०° पर ] समिध दिखते हैं। किंतु इनकी निज की दूरी इतनी है कि अरघती में वभिष्ट तक प्रकाश आने में कई वर्ष लगते हैं। इनकी प्रति [ २४० और ३०६ ] तेजगी और छोटी बड़ी मयु

दिखने वाली होने से वसिष्ठ व अरुंधति के पहिचानने में तानिक भी भ्रांति नहीं होती है। इसालिये आर्य ग्रंथों में (श्रावणी और विवाह प्रयोगादि देखिये) इस जोड़ी को आदर्श, पूजनीय एवं पति पत्नीरूप शुद्ध कही है। ऐसे और भी असंख्य जोड़ी के तारों में परस्पराकर्षणजन्य विकृति न होने से यह शुद्ध कहाते हैं। तथा संबद्ध जोड़ी में देवयानी के मित्रार व अल्माक तारे पुनर्वसु एवं ज्येष्ठा आदि हैं। इनका निजी अंतर अल्प होने से पृथ्वी चंद्र के और गुरु शनि के तुल्य परस्पराकर्षण से बड़े तारे के चौगिर्द छोटे तारे घूमते हैं। तथा इनमें से कई तारे परस्पर के आकर्षण से (दीर्घकाल हो जाने से) विशेष रूप में इधर उधर यानी स्थान भ्रष्ट हो गए हैं। किंतु इन तेजस्वी संबद्ध तारों की विकृतता को प्राचीन काल में ही आर्यों ने जान लिया था। 'देवयानी का कूप पतन, पुनर्वसु = अदिति का हतप्रभव कद्रुसे परिपीडन, हजारों वर्ष तक ब्रह्महत्या प्रसूत इंद्र का कमल नाभ में छिपे रहना' जैसी यह कथाएँ पुंजातर्गत तारों की विकृतता के संबंध में प्रचलित हैं; ऐसे रेवती पुंज के (युग्मतारे शीटा नंबर १, २ के) संबंधमें भी "पूपाऽनपत्यो विष्टादो भद्र दन्तो भवत् पुरा" (भा. पु. १।७।४४) "पूपा की आगे वृद्धि न हुई, इसके दात लोड़े जाने से दूसरे के पीसे हुए को खाने वाला=बूढ़े के रूप में होगया" इत्यादि प्रचलित हैं। सो युक्ति युक्त है।

### विधान ५८

क्योंकि विधान ५१ में लिखे प्रकार शीटा नं० १ पिसियम के वर्तमान और अपनगति शुद्ध नाक्षत्र वर्ष मानसे कम ज्यादा है ऐसा सूक्ष्म गणित से निश्चित है। तथा चक्रमोग ३६० पूर्ण हुए बिना शास्त्र शुद्ध वर्तमान साधन में शीटाके वेधका उपयोग हो नहीं सकता। ग्रह सिद्धान्त में स्पष्ट कह दिया है कि— "पूर्ण मेपा दिभिर्गोलं चक्रं स्यात्—ननु चेन्न तत् ॥" (ग्र. सि. अ. २ श्लो. २४४ घ. ३९) अर्थात् "मेपादि आरंभस्थान से जब गोल (३६० अंश) पूर्ण होता हो वही शुद्ध चक्रमोग कहाता है; यदि वह कम ज्यादा होता हो तो उसे चक्रमोग या शुद्धनाक्षत्र सौर वर्ष नहीं कह सकते। तब शीटा साधित वर्तमान कम ज्यादा होने से सखीय दृष्टिसे अशुद्ध है। इतना ही नहीं तो शीटा नं० १ के स्वल्पान्तर तुल्य ही शीटा नं० २ की तारा निकटमें ही संबद्ध होनेसे ज्ञात होता है कि परस्पराकर्षण के परि पीडन से शीटा नं० १ की निजगति और प्रतिमें अनियमित परिवर्तन होते रहना ही चाहिये। अतः ऐसा परिवर्तनशील और विकृत तारा सख राशि चक्र का भेड़ी रूप दर्शक कदापि हो नहीं सकता। तब ऐसे निरूपयोगी तारेके द्वारा शुद्ध अयनाशों का साधन कैसे हो सकता है।

## विधान ५९ ज्यो० दीक्षित का मत.

शीटा की निरूपयोगिता और चित्रा की ग्राह्यता के संबंध में, आधुनिक विद्वानों का भी करीबन ऐसा ही कथन है:— “रेवती योगतारेशी अयनांशाचा किंवा अयन गतीचा कांहीं संबंध नाही।” रेवती योगतारा हे आरम्भ स्थान म्हणावे तर सूर्य सिद्धान्तांत आणि लह्याच्या ग्रंथांत तिचा भोग शून्य नाही. ब्रह्मगुप्त आणि त्यापुढील लह्याध्वेशज बहुतेक ज्योतिषी रेवती (ध्रुव सूत्राय) भोग शून्य मानितात; परन्तु त्याचे आरम्भ स्थान रेवती योग तारेशी कधीच नव्हतें व असणार नाही। साप्रतच्या सूर्य सिद्धान्ताचे स्पष्ट मेघ संक्रमण होण्याच्या वेळी प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योगतारेशी — शिटापिथियमशी — कधी होता हे काढून पाहता असे वर्ष शक १७७ येतें. ‘शिटापिथियम असे नांव युरोपियन ज्योतिषी जिह्वा देतात, व जी रेवती योग तारा असे कोलम्बूक इत्यादि युरोपियन विद्वानांनी ठरविले आहे। ती तारा फार बारीक आहे.’ साप्रत ती आकाशात दाखविणारे जुने जोशी क्वचित् सापडतील. साराश ती इतकी लहान आहे की वेद्याच्या कामी तिचा उपयोग होण्याचा संभव फार थोडा. अयनांश काढण्या कारिता तर तिचा उपयोग करित नाहीत.— (भारतीय ज्योति: शास्त्र पृष्ठ ३३८-३३९)

## विधान ६० ज्यो. केतकर का मत ( शीटा पक्ष का उद्गम )

११. आरंभ स्थान के संबंध में प्रो० व्हीटने साहब का कथन:—

“At the time of albiruni's visit to India (A. D. 1024) the Hindus seem to have been already unable to point out distinctly and with confidence the situation in the heaven, of that most important point from which they held that the motions of the planets commenced at the creation and at which at the successive interval their universal conjunctions would again take place for he is obliged to mark the asterism as not certainly identifiable.” (Page 343, translation of Surya Siddhant by Burges.) “वावरून स्पष्ट होते की शीटा तारा हिंदूंनी सन १०२४ पर्यंत आरंभ स्थानी मानली नव्हती. ती तारा इदंततरच्या भारूकाचार्योस देखील माहित नव्हती. माहित असती तर शीटेच्या वेद्यावरून अयनांश ठरवावे, असे त्यांनी स्पष्ट झाले, असते. त्यांना अयनांश विषयक सर्व जबाबदारी मुजालानरसोपिथी आहे. अशा अनिश्चित, प्रसंगी फोलगुक्त सादरे सर्व नाक्षत्र विभागां ताल योग सांग टरविण्याच्या कामी पुढे सरमावले आणि आमच्या वेदांग ज्योतिषादि ग्रंथांचा कोळ आपणवेल तितका अजोब दे आणण्याच्या हेतू ने शीटा तारा ही रेवती विभागाची योग तारा मानिली. [ भा. ज्यो. पृ. ८८ ]

सांचीची ती बेंदळी, बिंदुली, वायो, मोक्षमूल, वेवर या पाश्चात्य विद्वानांनी ओढली आहे, यात नवल नाही. परंतु पंचांग सौधन कमीटीने विचार न करता त्यांच्या असद् हेतूला बळी पडणे हे अर्थ संस्कृतीला अत्यंत अपमानोत्पन्न आहे.

गोष्टी.	चित्रपक्ष.	क्षोडापक्ष.
आरंभस्थान. प्रधा. व्यति. परपरा चक्राक्षी विभागच्युत	कंडाबोक्त. लग्नचक्रार्थ. भरतखंडभर. ४००० वर्षांची १०० पट. ५ योगताय	आनुमानिक काल- ब्रूक सहिब घोडा घराणी ६० वर्षांची ३ पट ११ योगताय
ग्रह लाघवी पंचांगाशी तुलना.		
संक्रमण भद्र अधिक मास	०११५ घटी कथित १ मास	४ दिवस २ ते ९ मास

### विधान ११ ज्यो. केतकर का अभिप्राय.

ज्यो. केतकर का अभिप्राय:—पुण्यातील महागणित पृष्ठ ५० से उद्धृत) अपनाश क्षणजे विपुल-संपातापासून निष्पन्न भोगारंभस्थानीय त्रिभुज पर्यंत कमाकार अवर। (आम) त्रिभुज क्रांतिवृत्तावर आहे. क्षणजे याचे भोग आणि शर शून्य आहे. या बिंदूत एखादे टळक नक्षत्र असतं तर बरे होई. असतं पण तसे टळक नक्षत्र नसल्या मुळे (आरंग) बिंदूच्या आसपास असणाऱ्या नक्षत्रांपैकी जे जास्त तेजस्वी असेल त्याचाच रेवतीचा योगताय मानण्याचा संप्रदाय आहे. सूर्यसिद्धान्ताच्या गते चित्राताऱ्याचा भोग १८० अंश आहे आणि रेवतीयोग-ताऱ्याचा भोग ३५९ अंश ५६ कला आहे. म्हणजे तो आरंभस्थानाच्या पश्चिमेकडे १० कला अंतरावर आहे असे होई. पण आकाशान या ठिकाणी १५२ दिवसांवर असं एकही नक्षत्र नाही. चित्रा हा नक्षत्र प्रतीचा तेजस्वी तोय आहे. याचा कक्षमूर्तसं भोग १८० अंश मानून आरंभस्थान ठरविते तर सूर्याभियम नावाच्या ८ व्या वर्गाच्या नक्षत्राचा निष्पन्न भोग ३५९ अंश १७ कला येतो. क्षणजे हे नक्षत्र आरंभस्थानाच्या पश्चिमेकडे ४१ कला अंतरावर आहे असे होई. म्हणून आली या नक्षत्रापासून रेवती योगताय मानिते आहे. आमचे आकाशाचे नक्षत्रे पण म्हणजे बरीच मज्जूर नीट स्थानात येईत. याप्रमाणे ठरविते त्या अपमानाचे समीकरण पुढे दिल्या प्रमाणे मिळू शकते. अपमान = चित्रमापन भोग - १८० अंश. सापनगणनेचे आरंभस्थान क्षणजे विपुलपंचांग हे ज्यो. निमगंनिदनाहे, तरी

निरयणगणनेच्या आरंभस्थानाची गोष्ट नाही, मनुष्याने सायसार विचारानेच ते ठरविले पाहिजे. चित्रा तारा पहिल्या प्रतीचा, ठळक, व एकाकी असल्यामुळे त्याच्या व्यक्तीविषयी भांति उत्पन्न होण्याची मुळीच भांति नाही. प्राचीनकाळीं तर चित्रा व मघा या ताऱ्यांच्या साहाय्यानेच ग्रहांचे वेध घेत असत. पटवर्धना पंचांगाचे आरंभस्थान सौटापिसियम \* हे नक्षत्र आहे हे १ व्या किंवा ७ व्या प्रतीचे असल्यामुळे इतके अधुर्क आहे की ते आकाशांत अमुकच झणून दाखविण्याची पंचाईत पडते. हे प्रचरित आरंभस्थानाच्या मागे सुमारे ४ अंश असल्या मुळे प्रचरित पंचांग दृष्ट्या संक्रमणे, नक्षत्रे, योग, अधिकमास वगैरेची उलथा पालथ फारहोऊन लोकांत निष्प्रयोजन मतभेद उत्पन्न होतो. बरे हे नक्षत्र चिरस्थायी तरी असावे, तेही नाही या नक्षत्राला क्षयाची भावना झालेली आहे. इ. स. १७५५ त ते ४ व्या प्रतीचे होते, इ. स. १८५० त ४८ प्रतीचे होते. साप्रत १ व्या किंवा ६ व्या प्रतीचे झाले आहे, पुढे लवकरच कांही वर्षांनी ते मुळीच दिसनासे होणार आहे. झणून अशा नक्षत्राची कांस धरून चालणे दूरदर्शित्व नव्हे. (प्र. ग. शके १८१६ सन १९१४)

## विधान ६२

प्राचीन ग्रंथां के भुवक कदंब मूत्रीय ओर परंपरागत वेध साहित शुद्ध नाक्षत्र मान के हैं किंतु राश्यायनांश काल के निकट के वर्षों में अयनांश राशि हुए तक कोर १ ग्रंथकार सांपातिक को ही नाक्षत्रमान मानेलेने के कारण (१) जिन नक्षत्रों के पुंज में अनेक तारे थे. उनमें योग तारों की भिन्नता समझकर तथा (२) दृष्टिमान निःसंदेह तारों को भुव मूत्रीय कहित कर कैसा तो भी उनका मेल कर दिया है और जिन नक्षत्रों का दोनों भी प्रकार से मेल न हुआ तो वहां प्राचीन ग्रंथों के मूल वचनों में पाठ भेद करके ब्रह्मगुप्त के अर्वाचिन ग्रंथ कारों ने परंपरागत में संगति मित्राई है। इसका विद्वान निम्न लिखित वितागत सिद्धांत के, भुवकों के उदाहरण में स्पष्ट हो जाता है— “अधिन्यादीनां भुवकाः राश्यादाः” के अंगे.

\* Il y a des étoiles dont l'éclat diminue ..... L'étoile zeta du poisson austral, de quatrième grandeur autrefois, est actuellement de six, sept, invisible à l'œil nu. ( La pluralité des mondes Habitez Par C. Flammarion, page 195. )



पितामह सिद्धान्त में प्रक्षिप्त पाठ—कौंस में, और चाहिये सो " " ऐसा बताया है ।

नक्षत्र	राशि	अंश	कला	प्रयोक्त मूल पाठ	नक्षत्र	राशि	अंश	कला	प्रयोक्त मूल पाठ
अ	०	८	....	खं ०, अष्टौ ८	स्वा	६	०	१९	रसाः ६ (खं०) नवेंदवः १९
भ	०	२०	...	खं ०, खयमः २०	वि	७	२	५	शैलाः ७ पक्षौ २ शराः ५
क्र	१	७	२८	शशी १ मुनयः ७ अष्टयमाः २८	अ	७	१४	५	मुनयः ७ मनवः १४ भूतानि ५
रो	१	१९	२८	शशी २ नवेंदवः १९ " २८	ज्ये	७	१९	५	सप्त ७ नवेंदवः १९ पंच ५
मृ	२	३	...	पक्षौ २ गुणाः ३	मू	८	४	....	अष्टौ ८ अवारः ४
आ	२	७	..	पक्षौ २ शैलाः ७	पू	८	९	...	अष्टौ ८ नव ९
पु	३	३	...	गुणाः ३ गुणाः ३	उ	८	२०	९	वसवः ८ [ नव ९ नखाः २० ]
पु	३	१६	...	गुणाः ३ षोडश १६	अ	८	२५	...	अष्टौ ८ तत्त्वानि २५
आ	३	१८	....	प्रीणि ३ अष्टादश १८	भ	९	८	..	नव ९ वसवः ८
म	४	९	...	वेदाः ४ रंघ्राणि ९	घ	९	२०	....	नव ९ नखाः २०
पू	४	२७	..	वेदाः ४ सप्तयमाः २७	श	१०	२०	...	दश १० नखाः २०
उ	५	५	...	शराः ५ शराः ५	पू	१०	२१	....	दश १० पड्यमाः २६
ह	५	२०	...	शराः ५ नखाः २०	उ	११	१४	१०	शर्वाः ११ मनवाः १४ खचंद्राः १०
वि	६	०	...	रमाः ६ (गुणाः ३) पुष्करं ०	रे	....	....	....	....

- इसमें अभिजित् सुद्धा १८ नक्षत्रोंमें रेवतीके संश्रधमें कुछनहीं तो खं० लिखनाया सोभी लिखानहीं और कलास्थानमें ८ जगह अंक कहे हैं बाकी १९ जगह खं शून्य लिखनाया सोभी लिखानहीं तब एक चित्राके सामनेही कलास्थानमें "पुष्करं"—शून्य कै- लिखा जासकता है। क्या सब क्रम को छोड़कर यहां कलास्थानमें शून्य लिखनेमें कोई संदेहनिवारण हो भी नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि यह शून्य कलास्थानीय न होकर अंशस्थानीय है। और अंशस्थानीय का (गुणाः ३) अंक प्रक्षिप्त है। यह अंक प्रक्षिप्त करने बड़े का ध्यान यह रहा कि "पुष्करं" का शून्यांक कला स्थान में माना जा सकेगा। तीन अंश बढ़ने में चित्राभाग (अयनाश ३ के समय) हमारे दृक्प्रत्यय में आता हो है। मिरक स्वाता का अंश स्थानीय खं स्वाता को चित्रा से कम बताता है अतः इसे उड़ा देने से कला स्थानीय नवेंदवः आजाने से बढ घुन सूत्र्य के निकट में आजाता है।" और पूर्वाषाढा के तुल्य ही उत्तराषाढा को समझने से नखाः नवको नवनम्वाः करदिया गया है। लेकिन यह मच बातें एक "पुष्करं" = ० को नहीं उठाने में, चित्रा के अन्य प्रयोक्त की तुल्यता से, एवं वेधसिद्ध परिमाणों के मापेच्छांतर के वारतम्य से ज्ञात होनी हैं। और इसीमें क्षीटा भोग १५६१२ निश्चिन हो जाता है।

## परीक्षण ६२

पितामह सिद्धान्तांतील सर्व नक्षत्रांचे स्फुट भोग गद्यात्मक आहेत, वस्तुतः सर्व ग्रंथच गद्यमय आहे तसेच ते आहेत. ते लिहिण्याचा प्रकार खाली दाखविल्याप्रमाणे आहे. उभी रेघ देई पर्यंत एकच भोग लिहिला आहे:- 'अश्विनी रा ० रा, अष्टौ ८'। भरणी खं ०, खयमा: २०। कृत्तिका शश १, मुनय: ७, अष्टयम: २८'। रोहिणी शशि १ रा., नवदव: १९, अष्टयमा: २८। चित्रा रसा: ६ रा., गुणा: ३, पङ्कम् ०'। पूर्वा भाद्र. दश १० रा., पद्मयमा: २६'। उत्त. भाद्र. शर्वा. ११ रा., मनय: १४, खचन्द्रा १०'। याच्या पुढे रेवती भोग दिलेला नाही। जो पितामह सिद्धान्त वार चित्रचा भोग १८१'०' देतो तोच रेवती भोग ३५६।२ देणार नाही। याचे भान दीनानाथजी याम रक्षिते नाहीं. तास्त- विक वर दाखविल्या प्रमाणे त्याने "रेवत्युदय प्राची" या वचनाने रेवती भोग ० असा पुढे सांगितला आहे, या करिता तो इतर मगा बरोबर दिसा नाही. "

## समाधान ६२

## विधान ६३.

चित्रा और रेवती की योगताराओं की नि सदेहता के मंत्रध में उनके पुंज की तारा सख्या की परंपरा निम्न लिखितानुसार है:—

चित्रा और रेवती के तारोंकी सख्या	चित्रा	रेवती
तैत्तिरीय भुति .....	१	१
नक्षत्र वलय .. . . .	१	१
गड लाघ में उद्धृत प्राचीन सू. सि. वचन ...	१	१
वृद्ध गार्गीय संहिता...	१	४
नारद संहिता....	१	३२
परह मिहिर . . .	१	३२
छल्लूत रत्नोक्त ...	१	३२
मल सिद्धांत .. . . .	१	३३
अपिनि रत्नगोला.....	१	३२
सुहृत् तत्व ... .. .	१	३२
सुहृत् चिंतामणि...	१	३१

इसमें जिन प्रकार चित्रा की योग तारा के संबंध में जैमी एक वाक्यता है यानी भुति काठ से लगाकर वर्तमान काल तक के कुछ गणों में एक ही तारा रही है ऐसी रेवती की बात नहीं है। यानी पहिले इस पुंज की भी चित्रा के समान एक ही तारा मानत थे, आगे ४ मनु उगे तथा नारद संहिता से अज्ञात ३२ तारा मानने हैं अतः रेवती के संबंध में एक वाक्यत नहीं है। तंत्र में और स्थान में परिवर्तन हुए बिना ऐसा तारों का पार्यवर्तन नहीं हो सकता है

इसलिये रेवती तारे के व्यक्तित्व में सदेह सिद्ध होगया है। चित्रा के एक तारा की परंपरा जैम वैदिक काट से आज तक अपिच्छिन्न चली आरहा है। इसका मोती का आकार इसकी दीप्ति और उपादयता को प्रगट करता है। इसमें स्पष्ट होता है कि, इसका स्थान और देशोप्यमान तेज वही कायम है अर्थात् राशि चक्र के ठीक ठीक मध्य भाग में ही अपने सनातन सिंहासन पर चित्रा तारा शासनमन है। ऐसी बात रेवती की रही नहीं है। मृदगा कार ३२ तारों के पुंज में प्राचीन काट की दोसिमान् रेवती की तारा गणिकारित से अब छुट हो गई है। और वह निजगति से स्थान भ्रष्ट भी हो गई है। तब ऐसी तारा सख्या में व योग शर के सबंध में विभिन्नता युक्त, अनिश्चिन्, एा सशपासद झोटा तारका सब तारों में मृदग यानी राशिचक्र की आरभ स्थान दर्शक कैसे हो सकती है? कदापि नहीं।

## परीक्षण १३ (अ-ई)

(अ) है विधान गमनीये ४ द्वायतपद आदे "एक भराभी वदयतीथी" अमे स्थगयाम आधार नाही. (आ) शननारकाचीही तारा एकच आदे परंतु ती ठगन आदे. (इ) एकच तारा भसटी स्थगजे ती मोठी असो है स्थगजे नरो नाही. (ई) प्रत्य मिद्वान्नादि प्रभुत रेवती पुत्राया तारा ३२ मनिद्वय आदेत व त्यात रेवतीया जाकार ही मृदगा मारणा सांगितल्या आदे. व काळात ही १३ सांगितले आदेत. "ह्याचाये अयनश दोचा-पूर्वी चे आदेत. रेवतीचे व अग्नी कर्त्रांत १३ ही भया मू मि. गादि प्रयाची आदे. स्थगजे भयनाश ज्ञान काळाच्या नंतरची अथवा ह्याच्या नंतरचे मंत्राची आदे. व आतां पर्वत तिचाच समूह आदे. या वरून ह्याच्याये काळासमून निद्वान्नात रेवती न रा

लुप्त झाली असावी हैं अनुमान चुकीचें आहे. लल्लु कृव ख कोशांत ही रेवती पुत्रात तारा ३२ मानिल्या आहेत यामुळे सदरील अनुमान दृढ होते. अर्थात् प्रयोक्त वेनी ताराच अद्याप दृग्गोचर होत आहे हे उघड आहे.

### समाधान ६३ ( अ-ई )

(अ) शीटा की निरूपयोगिता को सिद्ध हुई देखकर पाठकों को मुझ में डाढ़नेके लिये प्रि० गोविंदरावजी " गमत्तचि व हास्यापद " के तुल्य ये मुद्द बेताली गीत गारहे हैं. प्रस्तुत विधानोक्त कोष्टक्रमें तैत्तिरीयश्रुति और नक्षत्र ऋत्वादि २१ प्रयोगें लिखी चित्रा २ रेवती पुत्र के तारोंकी सख्या बतादी है । तथा इन्हीं प्रयोक्त एक तारा नक्षत्रोंकी देदीप्यमानता निम्न लिखितानुसार है ।

एक तारा नक्षत्रों की अपने पुंज में अद्वितीय तेजस्थिता.

क्र.सं.	नक्षत्र	तारा नाम	प्रति	तारा सख्या		स्पष्टीकरण
				श्रुति प्रोक्त	ग्रन्थ प्रोक्त	
१	रोहिणी	Aldebran	१०१	१	५, ५	रूप विकारित्व से आर्द्रा की प्रति ०.५ से १.१ तक होती रही होती रहती है. मूत्र का दक्षिण भाग विषय हास्य उगम
२	आर्द्रा	Alpha orionis	११०	१५१	१, १	निरूप में ११ क्षातिमान अथवा तारा ११० से उक्त प्रयात
३	पुष्य	Delta Coneri	४०	१	१, १	तारा मध्यमा में कुछ भिन्नता और श्रुति प्रयोगों में इन नक्षत्रों के १ व १ तारा ४५ हैं ।
४	मघा	Regulus	११४	१	५, ६	अनभिज्ञ य पुष्य की प्रति ४ में भिन्नता हुई ५ तक प्रोक्त
५	चित्रा	Spica	१३१	१	१, १	अभिज्ञ मयम की प्रति ११ स्थिति में स्थिति में भिन्नता है । प्रोक्त
६	स्वाति	Arcturus	०३२	१	१, १	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
७	ज्येष्ठा	Antares	१२०	१	१, १	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
८	मूल	Lambda Scorpi	१०१	१५३	१, ५, ५, ११	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
९	अभिजित्	Vega	०११	१	१, १	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
१०	भयषण	Altair	०६०	१	१, १	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
११	राजभिजित्	La Aquarii	१६३	१	१, १००	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र
१२	रेवती	Ma Piscum	१००	१	१, ५, १३	नक्षत्र १ की प्रति ०.५३ (अथवा ०.५३) प्रति नक्षत्र

१ तारे की प्रति १ मकर चक्रवर्त्तन पुत्र है । अतः उक्त गुणमान की मुख्यता द्वारा निश्च

होता है कि “श्रुति ग्रंथों में लिखे हुए जिनने एक तारा के नक्षत्र हैं वह सब दीप्तिमान और अपने पुज में अद्वितीय हैं” इसलिये “एक तारा थी, वह बड़ी थी” अर्से म्हणण्यास आधार नाही और (३) कथन बिल्कुल गलत है।

(आ) झीटापिसी० की अपेक्षा शतभिषक् की तारा १८-१९ पट अधिक दीप्तिमान है और वह अपने पुज में अद्वितीय तेजस्वी है। रेवती पुज में शतभिषक् के तुल्य तेजस्वी झीटा न होकर म्यूपिसियम तारा है। और वह अपने पुजमें अद्वितीय तेजस्वी भी है। श्रुति प्रोक्त अज्ज्ञाज् के तारों के भोग शरातर से पुज के रूप रेखा को अनुमित कर सकते हैं। सो निम्नलिखितानुसार होती है।

### शतभिषक्, रेवती और झीटा की तुलना.—

तारोंके	वैदिक नाम	ग्रीक नाम	प्रति	भोग	शर
शतभिषक् पुंज	ते. मा. १५-१		वर्ग	अंश	
	विम्ब क्षिति	Delta Aquarii	३५१	३१५'१	-७७
	इंद्र = शतभिषक्	La. Aquarii	३८४	३१७७	-०'४
	विम्बव्यसा	Beta Piscium	३५८	३२३७	+७'७
रेवती पुंज	गाय	Epsilon Piscium	४४५	अ. क. ३५३ ४३	अ. क. +१ ५
	पूषा = रेवती	Mu Piscium	४००	३५९ १७	-३ ४
	वत्सा	Nu Piscium	४६८	१ ४०	-४ ४१
झीटा	कालकजा	Zeta Piscium	५५७ ६४९	३५६ २	-० १३

### सिद्धान्तोक्त योग तारा के लक्षण भेद

‘स्थूलास्यायोग तारका’ अपने चक्राकार पुज में बिल्कुल छोटे ६ प्रति के तारों में शतभिषक् स्थूल होने से योग तारा है।

‘रेवत्याथैव दक्षिणा’ अपने मृदणाकार लंबे पुज में दीप्तिमान होकर दक्षिण में स्थित म्यूपिसियम योग तारा है।

म्यूपिसियम से झीटा अन्य तेजस्वी व उत्तर में होनेसे योग तारा नहीं है।

अर्थात् शतवारकाके मंत्रों का “ परंतु ती लहान आहे ” इत्यादि कथन आकाश को बिना देखे लिखा गया अतएव असत्य है। और सू. सि. में कहे रेवती स्थान ( भोग ३५९। ५० शर + ०।० ) को शून्य मानकर उत्तर कर्दवीय दिगंश २६६°। ४४' के दूरी ३°। ४४' २८"२ पर झीटा का तारा है और दिगंश १९०। १० के दूरी ३°। ६'। ५६"४ पर म्यू-पिसियम है। सो उक्त स्थान से झीटाकी अपेक्षा म्यु तारा ४१'। ३१"८ निकट में एवं प्रतिमें दीप्तिमान् है। यदि ग्रंथों में रेवती का उत्तरग्र लिखा है किंतु निजगति से दक्षिण की ओर चलाजाना संभव है तथापि “ रेवत्याथैव दक्षिणा ” ग्रंथोक्त लक्षण झीटासे-२° ५१' दक्षिण में म्युतारा होने से उसमें मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि जोभी रेवती स्थान मृष्ट होगई; दीप्तिमें छोटी होगई तोभी ग्रंथोक्त रेवती के लक्षण म्युतारामें मिलते हैं झीटामें बिलकुल मिलते नहीं अतएव झीटा रेवती नहीं अमोःपादक कालकंजाकार तारा है ?

( ई ) परीक्षणमें लिखी बातों से विधानोक्त सिद्धान्त पुष्ट होते हैं कि इसमें जो [ ‘ लछा चार्य अयनांशशोध पूर्वाचि ’ सू. सि. ‘ अयनांश ज्ञानकाला नवर चे ’ ] अयनांश ज्ञान काल [ शाके ५००-५५० ] बताया है। सो बिलकुल गलत तो है ही लेकिन शुद्धनाक्षत्र गणना में भ्रम फैलाकर धृति स्मृति प्राचिन ग्रंथकारों को जबकि अयनांशों का भी प्राचीनो को ज्ञान नहीं था तब उनकी कही बातें अज्ञतायुक्त हैं अतः वह विश्वमनीय नहीं एवं प्रमाण कोटीमें प्रामाण्य करने लायक नहीं हैं ऐसा बतलाने के लिये कुटिलानिति से कहेगई भी बिलकुल असत्य है। जिन ग्रंथोंके आधार से झीटा को रेवती का स्थाय दत्ता चाहते हैं उनसे यह बात सधती नहीं देखकर पहिले भी आपने ( १ ) भारतीय ग्रंथकारों को उच्च व पात माध्यम नहीं झुयेये। ( २ ) अयनांशों का निश्चय प्र यक्ष देखकर किया नहीं है ‘ ऐसे पहिले भी आपने आयोंके उपर झूठे लाछन लगाए हैं। उसी तरह यह अयनांश ज्ञानकाल का कोटिक्रम है। परंतु इस आक्षेप के खंडनमें हमारे वेदकाल निर्णय [ पृष्ठ १८-२४, ३८-५५, ९५-१०५, १४४-१५१, २३६-२३७ ] में अनेकानेक प्रमाण देकर सिद्ध करके बता दिया है कि वैदिक कालसे ही आयों को शुद्ध नाक्षत्र पद्धति और अयन सपात की स्थिति का ज्ञान हो गया था सिर्फ “ जबजब अयनांश शून्य होते आर हैं तबतब अयनांशों के स्थानान्तर तरु कुछ विद्वान् नाक्षत्रमान के तुल्य ही सापत्तिक मान को मानते आये हैं। ” इन सिद्धान्त के अनुसार गत शून्यायनांश वर्ष शके २१२ से ५५० तक अयनांश मानने में २। ३ अंश की गड़बड़ी हुई है। उतने परसे गोविंदराज आर्य ग्रंथ कारों को किसी तरह ज्ञान— अज्ञान के संपुट में लाकर शुद्ध नाक्षत्र गणना में प्रवृत्त साधन मानना। जबकार फैलाना चाहते हैं सो अब वैदिक ज्ञान-प्रमाकर के उपःकाल के सामने टिक सकता नहीं है।

### परिक्षण ६३ ( उ, ऊ )

( उ ) सूर्यसिद्धान्तान्तर आता पर्यन्त केसव देवज्ञ, गणेश देवज्ञ यासाराने आकाशाचे चांगल्या प्रकारे निरीक्षण करणारे ज्योतिषी होऊन गेले त्यानी रेवती तारा उक्त ज्ञानाची

तक्रार केलेली नाही. [ ऊ ] १० केतकर यांची ही १५।२० वर्षा पूर्वी ही तक्रार नव्हती. या २५।३० वर्षांतल्या चित्रोत्पत्ती पासून मात्र काहींच्या विचार चक्षूवर पडल आलेले आहे त्यामुळे ती चर्म चक्षूस दिसून ही व्यर्थ होते.

### समाधान ६३ ( उ, ऊ )

नव्यमूर्य सिद्धांत के बाद आजपर्यंत के ग्रंथकारोंने जिस आरंभ स्थान को लेकर अपने-२ ग्रंथों में ग्रहोंके भगण और अयनांश [ मंद केंद्रीय वर्षमानानुसार ] कहे हैं वह सब चित्रा-भिमुख रेखांत बिंदुसे कैसे मिलते हैं सो विधान १७-२६ में रिपोर्ट के ग्रहलाघव चालन प्रकरण में, समाधान २५, ८ के क, ख ग्यास में उदाहरण देकर सोपपत्तिक रीति से बता दिया है । किंतु मजा ये है कि [ परीक्षण ८ आ देखिये ] जो गोविंदरावजीने केशव एवं गणेश दैवज्ञ के संबंध में “गणेश दैवज्ञाचा पिता केशव” परंतु स्थाने ही प्र. ला. प्रमाणेंच अयनांश मानिले आहेत “पाहून लिहिलेले नाहीत” ऐसा कह चुके हैं । और अब किसी तरह का झूटा को आधार न होनेसे डूबते को तिन के का आश्रय के तुल्य कहना पडा है कि “उक्त पिता पुत्र भाकाश के उत्तम निरीक्षक यानी प्रत्यक्ष वेध लेकर काम करनेवाले थे फिर क्या है जबकि इन्होंने अपने २ ग्रंथोंमें जिस भगणारंभरूप रेवती का अवलंबन करके शाके १४१८ तथा १४४२ के रज्युष ७८ अंश, अयनांश १६।१४ तथा १६।३८ कहे हैं । और इन्हींके ग्रंथोंपर से जो आज ग्रहोंके भगणारंभ स्थान आते हैं उन सबसे म्युफिसियम तारा ही रेवती की योगतारा निश्चित होती है । झूटापिसियम से ४ दिनका अंतर रहता है तब निःसंदेह है कि उक्त पिता पुत्रों कि दृग्गणितैक्य रेवती म्युफिसियम ताराही झूटापिसियम नहीं । कोलजुक साहब सूचित झूटाका झगडा छोड दिया तो फिर रेवती की तकगार ही रहती नहीं । [ऊ] अब रही १० केतकर की तक्रार सो उनके शब्दों से ही मिट जाती है:—

“ २ रा. आपटे यांना अशी सवयच दिसते कीं, उगाच भला लांबलचक लेख लिहून, त्यांत ज्योतिःशास्त्रीय शब्दांचा पुष्कळसा उपयोग करून पाहिजे तितकी चुकीची, खोटी व दिशामूल करणारी अनुमाने शोकून धावीत. बेटलीचे जे भरकसलेले लेख आहेत ते त्याने हिंदू ज्योतिषाच्या अज्ञानामुळे लिहिले आहेत; या कारणामुळे ते क्षम्य आहेत. परंतु रा. आपटे यांना हिंदू ज्योतिषाचे x x ज्ञान असून ही त्याचा दुरुपयोग करण्या-मध्येंच ते प्रौढी मानतात, यावरून ते खरे सवाई बेटली आहेत. त्यांची “ हणून, या-वरून, अर्थात्, उपाध्द्री, करितां, कारण ” इत्यादि उभयान्वयी अव्ययानां जोडलेली कार्य-कारण परिणाम दर्शक वाक्ये अत्यंत असंबद्ध, खोटी, व आंत्युत्पादक असतात, असे आमचा हा लेख वाचतांना वाचकांच्या प्रत्ययास येईल. ( विविधज्ञान विस्तार अक्टोबर

१९२४-केतकर ) ” “ २. रा. आपटे यांच्या लेखास उत्तर देण्यापूर्वी ज्योतिःशास्त्र दृष्ट्या त्यांच्या कृतिची वाचकांना ओळख करून देणे जरूर आहे. सन १९१२ या वर्षी ‘ ज्योतिर्गणित वार्तिक ’ या नावाचा गद्यपद्यात्मक एक ग्रंथ आमच्या ज्योतिर्गणिताच्या आधारेने त्यांनी लिहिला आहे. त्याच्या भूमिकेत आम्हांस उद्देशून त्यांनी पुढील पद्ये दिली आहेत. ‘ जयतु जगति चारं ज्योतिषा मुग्गलानां युति द्वाति हति मत्स्यादि प्रयोगैर्निवच्छन् ॥ भट्टश्च कटकानां वैकटेशः पट्टीयान् गणक गुरु गणेशो योयमन्यः सुमान्यः ॥ १ ॥ प्रत्यक्षसिद्ध नव बीज मनोज्ञभागं यज्ज्योतिषा गणितविद् गणितं व्यधत् ॥ श्रेष्ठं सुबोध्यमपि केतकरोऽद्वितीयं तच्छास्त्रबुद्धिं करमित्यति माननीयम् ॥ २ ॥ ही केवळ शिष्टाचाराची प्रशंसा आहे. परन्तु जेथे प्रशंसेला कारण नाही अशी कांहीं त्याची गणितिक वचने पुढे देतो ह्मणजे चित्रा संबंधी त्यांची मते पूर्वी कशी अनुकूल होती हे वाचकांना कळेल. पृष्ठ ६९ यांत ते म्हणतातः—या ग्रंथांतील गणितास प्राचीन ग्रंथाचा आधार घेतला आहे त्या विषयी—

“सूक्ष्मत्वादवगम्यते न गणकैः सा रेवती तारका ॥

कर्मा तो रविदिष्ट भोगगणितात् तत्स्थानतोऽत्रोदितं ॥ १ ॥ ”

अर्थः— रेवती तारा सूक्ष्म असल्यामुळे ती कोणती असावी हे कळत नाही म्हणून रवि दिष्ट म्हणजे सूर्य सिद्धांतांतील तिच्या भोगा वरून तिचे स्थान ठरविले आहे. पुढे अयनांशा विषयी पृष्ठ ५२ येथे ते म्हणतात— “ भुवायनांशोऽपि पुनर्नवेद, धराणु नेत्राश्वि. मित्रेषु २२.१४२५ युंश्च ॥ द्विसप्तपंचत्रिराणुल्लेखा ९०.२३५.७२ इताच्छ संघ प्रभिता धिलिप्ताः ॥२॥ ” ३. याच प्रमाणे पुढे पाच वर्षांनी रा. आपटे यांनी “ज्योतिर्माळा” सप्टेंबर १९१७ यात “ पंचांग शोधन अयनांश विचार ” या नावाचा लेख प्रसिद्ध केला आहे. त्यातून पुढील उतारा घेतला आहे. “ ६. आता तारा चे भोग ठरविताना कोणती तरी तारा मुख्य मानावी लागते ... हे भोग ज्ञाति वृत्तावर मोठावयाचे आहेत. करिता यांचा शर लहान आहे; अशा तारा पेक्षाच कोणती तरी एखादी मुख्य मानून तिच्या अनुरोधा ने भोग ठरविले असले पाहिजेत, हे उद्बद्ध आहे. २७ योग तारा पेक्षा ज्ञाति वृत्ताला फार जवळ अशा ४ योग तारा आहेत. पुष्य, मघा, शततारका व रेवती यांचे शर ३० कलांचे आत आहेत ... या चारी योग तान्या पेक्षा मघा मर्शत ठळक व १।२ प्रतीची आहे ही मुख्य मानावी असा मनाचा ओझा सहज होतो. आपल्या प्राचीन ज्योतिष्यांच्याही मनांत ही गोष्ट वागत होती असे दिमत कारण ... सर्व ठिकाणी मघाचा भोग पूर्ण अंशात्मक मानिला आहे. मला तबेच कारणे सयुक्तिक दिसते ... या वरून मघा भोग १२६ अंश मानिला पाहिजे हे बरीच कोष्टका वरून उघड दिसेल. या योगाने रेवती योग तारा (मृगशिरा) अं. ३५९ क. १७ इतक्या अंतरावर असल्या कारणाने ती आरभी मानिल्या सारखे होत. रेवती भोग लहानांत अं. ३५९, सूर्य सिद्धान्तात अं. ३५९ क. ५० व इतर ग्रंथांत (भुव सूत्रिय) अं. ३६०



दिला आहे. म्हणजे रेवती तारा ३६० अंशांत कोठे ही असली तरी आरंभीच आहे असे समजण्याचा ग्रंथकारांचा प्रघात आहे. या नियमानुसार आपल्याही वरील योजनेत रेवती तारा आरंभी मानिली आहे असे आपणांस म्हणतां येतें... करितां रेवती तारा आरंभी मानावी ही सर्व ग्रंथकारांनां संमत असलेली गोष्ट साधून मघाचा भोग कला रहित अं. १२६ घेतला अमतां शके १८३९ च्या आरंभी अयनांश २२।४१ येतात. ते २२ व २३ अंशांन्ने मध्यवर्ती असल्या कारणानें बहु संमत होतील अशी आशा वाटते, मघा पासून चित्रा बरोबर ९४ अंशांनी पूर्वेस असल्या कारणानें चित्रा भोग सहजगत्या १८० अंश येतो. ' या दृष्टी नें तयार केलेल्या योजने मध्यें कोण कोणते फायदे साधले आहेत ते खाली लिहील्या प्रमाणें संकलित केले आहेत:- (१) आरंभी योगतारा सांपडते, (२) आरंभ स्थान निश्चल राहते, (३) शके १८३९ चे आरंभी येणारे अयनांश २२।४१ हे बहुसंमत मर्यादेच्या आंत म्हणजे २२।२३ अंशाचे मध्यवर्ती आहेत, (४) नक्षत्राच्या योगतारा आपापले स्थिर विभागांत असल्यांत हा जो शास्त्रकारांचा मुळचा हेतु तो हल्लीं उपलब्ध असलेल्या किं. सुचविलेल्या कोणत्याही योजने पेक्षा योजनेने उत्तम साधतो, (५) भोग मापनास सोयीची अशी बहुतेक निःशर मघातागा १२६ अंशावर म्हणजे निष्कल येते व चित्रा ही कांही बाबतींत महत्त्वाची असलेली तारा सहजगत्या १८० अंशावर येते, (६) एखाद्या विशिष्ट वर्षाच्या करणागत मेघक्राळाच्या सायन स्पष्ट सूर्या पासून हे अयनांश साधलेले नाहींत त्यामुळे ते भिन्न येणार नाहींत, (७) आतां पर्यंतच्या योजनां पेक्षा हा अधिक व्यवहार्य व सशास्त्र दिसते. "

" ४. वरील उताऱ्या वरून दिसते कीं, सूर्य सिद्धान्तोक्त चित्रेचा भोग १८० अंश आणि तदनुसारी शके १८०० वर्गाचे अयनांश २२।४२५ हे त्यांना मान्य होते. इतकेच नव्हे तर पृष्ठ २७ पासून पुढील एकंदर गणितात चित्रापक्षाच्याच क्षेत्र रूक्ता यांचा त्यांनी उपयोग केला आहे. यावरून पूर्वी त्यांना चित्रापक्ष मान्य नव्हता अशी संशय तरी कोणी घेईल काय ? सन १९१९ पर्यंत ते चित्रापक्षाचे म्हणे अभिमानी होते, परंतु पुढे सांगली संमेलनानंतर कोणत्याही पक्षाने किंवा यक्षिणीने आपली काडी फिरविली, कोण जाणें रा० आपटे यांनीं एका क्षणांत आपली पगडी फिरविली आणि तेव्हांपासून नूतन धर्मान्तर केलेल्या माणसाप्रमाणें चित्रापक्षाची निंदा करण्याचा सपाटा त्यांनीं सुरू केला आहे, ' त्यांना खोटे बोलण्यात काहीच दिक्कन वाटत नाहीं त्यांनीं आपल्या " शास्त्रभूतां बदे द्वाणी " या लेखांत, संप्रोक्ष खोटी विधानें, दिशामूळ करणारे तर्क, उपहास, वितंडा, हेत्वाभाव, अपपाठाश्रय, जल्प, इत्यादि साधनांचा मनमुगद उपयोग केला आहे, अशा मनुष्याची कीर्त करारी किंवा विम्वर करवा हें वाचकांनींच ठरावीकें बरे " या श्रवाणि परित्यज्य अश्वं परिपेवते ॥ श्रवाणि तस्य नश्यन्ति अश्वं नष्ट मेवच ॥ २ ॥, ' विविध ज्ञान विस्तार जून १९२४ वें. वा. केतकर. "

अब यहाँ आपटे साहब से इतनाही प्रश्न है कि सांगली सम्मेलनके पहिले और बाद; आपके चर्म चक्षुर्मे इतना जमीअसमानका अंतर याने जो दृष्टि चित्राकी रक्षक दिखती थी वह उसकी भक्षक कैसे बनगई, क्या गाडेके चाकके तुल्य तत्ववेत्ताओंके सिद्धान्त ऐसे पूर्व के पश्चिम तर्फ एरुदम बदलते रहते हैं या स्वार्थ लोलुपोंके !! ज्यो. वि. केतकर की भी निस्वार्थताको देखिये कि जिसने झीटा पक्षियोंकी “अधुवतारा पकडा कर वैदिक काळ से प्रचलित नाक्षत्र ध्रुवपद्धति को छुडा देना तो संपूर्ण आर्यग्रथ स्वर्थ निरर्थक होजायंगे” ऐसी चाळबाजी को पहिचानतेही कमेटी के ५००० रुपियों के पुरस्कार का परिश्राम कर आर्य संस्कृति को उग्रलित रखी.

### परीक्षण ६३ (ए-ओ)

(ए) दृष्टी कालांशका आधार घेणारानी तर हें कालांश तपासून कधींच पाहिजेले दिसत नाहीत. त्या प्रमाणें वेधानें कालांशका अनुभव घेऊन झीटापिशियम शिवाय बाकीचे कालांश अनुभवास ठीक ठीक येतात परंतु रेवतीचे मात्र येत नाहीत अर्धे माधार प्रसिद्ध ज्ञात्याशिवाय रेवती तरा लुप्त झाली ही केवळ मतलबार्ची वदगनाच समजली पाहिजे —(ओ) कारण झीटापिशियम तारेचे भोग शर रेवती योगताज्याच्या म्रयोक्त भोग शरांशी जुळतात ही गोष्ट निःपक्षपाताने विचार करणारास नाकबूळ करता पावयाची नाही.

### समाधान ६३ (ए-ओ)

कालांश का आधार कहने वालों ने चाहे सब तारों के कालांशों को अभी प्रकाशित न किये हों तोभी नित्योदयास्त के दृश्यादृश्य नत कालांशों को प्रत्यक्ष में वेध द्वारा देखते हैं. • सो उससे तथा नाटिकल आत्मनाक में लिखी तारों की प्रति से तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि बहुतेक तारों के जो ग्रंथों में कालांश कहे हैं सो तत्कालीन दृक्प्रत्यय से ही लिखे गए हैं। उनके रूपविकारित्य से अब थोडा अंतर पडना स्वाभाविक है। तथापि सरासरी को देखते विधान ५१-६२ में लिखे प्रकार सब बराबर मिलते हैं। सिर्फ झीटा-पिशियम के मिलते नहीं। करीबन म्यूपिशियम के मिलते हैं सो साधार प्रसिद्ध भी कर दिये हैं। अब समग्र हे प्रि. गोविंदरावजी ने जैसे (१) 'रेवत्युदयः प्राचीः' से शून्य कालांश और (२) 'रेवतीच १७' से सतरह कालांश कहे हैं वैसे इन परस्पर विरुद्ध दोनों बातों की कोई प्रत्यक्ष वेध सिद्ध संगति लगा कर झीटा के तोतया रेवतीपन को मिटाते हैं। या 'गाजर की पुगी बजी यहाँ तक बजाए नहीं बजी तो ग्या ढाले' के ताद झीटा मान को भी फेक कर क्या सायन मानकी वदगना शुरू करते हैं सो देखना है। क्योंकि अंतिम

ध्येय तो यही। मतलब का है अब छुपाने की क्या जरूरत। (ओ) यहा भोग शर का पूर्वापर तनिक भी उल्लेख एव कार्यकारण-संबंध न होते हुए केवल "कारण" के प्रयोग से आप दिशाभूल कर रहे हैं यह बात नि स्पक्षपात से विचार करने वालों को नाकबूल करते नहीं आसकती है।

### विधान ६४

"उक्त रेवती पुंजमें ३२ तारा इतनी छोटी हैं कि उनमें से भिर्क ३।४ तारा नेत्रों से खल्वस्तिक के निकट में दिख सकती हैं किंतु छोटी होनेसे उसमें भ्रम पडना संभव है" ऐसा सूर्य सिद्धांत की टीकामें प्रोफेसर लिडटने साहब का भी कथन है। तथा पूर्वोक्त कथन से एवा आतिकारक, अधुक, विह्व, स्थानभृष्ट, और आर्य ग्रंथों के गणितागत आरम्भस्थान से अयुक्त ताग २७ नक्षत्रों में मुख्य कैसे हो सकता है कदापि नहीं।

### विधान ६५

वैदिक ग्रंथों में तो ऐसे आतिकारक तारों को "छायारूपः स पाप्मा। कनिष्ठः अल्पतमः सच्चपाप्मा" (श. ब्रा २-२-१-१० भाषा. पू० ८७) 'पाप्मा, भ्रातृव्य= भ्राति कारक यह प्रयोग से शुद्ध नहीं आने वाले और देशोंके शत्रु' ऐसा कहा है। इतना ही नहीं तो "चित्रा नक्षत्र के ऊपर यज्ञारभ करके वहाँसे चिति चयन (इष्टकोषधान रूपतत्कालीन दृश्य पंचांग) का निर्माण करें।" इस तरह चित्रा तारे के द्वारा संपूर्ण नक्षत्रों का निक्षेप करना 'ऐसा वेदसंहिता में कहा है तथा तैत्तिरीय ब्रा० (१.१.२४) में भी "काल कजायै नामा-सुरा भासन् ते सुवर्गाय लोकायामिमचिन्वत। पुरुष इष्ट का मुपादधात्पुरुष इष्टकाम्। स इन्द्रो मान्दणो ध्रुवाण इष्टका मुपावत्त। एषामे "चित्रा" नामेति। वे सुपर्ग लोके मापारोहन्। स इन्द्र इष्टका मावृहत्। तेष वा कार्यन्त ये वाऽ कार्यन्त। त ऊर्णाव मयोऽ भवन्। द्वा तुदपवता। तौ दिव्यौश्चाना वमवताम्। यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्। स चित्रायां अभिमादधीत। अबकीर्यैव भ्रातृव्यान् ओजोयलमिन्द्रियैर्वीर्यमात्मन्धते।"

अर्थात् "काल कंज नामक असुरों ने स्वर्ग लोक में जाने के लिये पुरुष के आकृति (Bootes बूटिस) की चिति में इन्द्र है देवता जिसका ऐसे चित्रा तारे से इष्ट कोष धान यह ( तत्कालीन इष्टकाकृति देख ) को आरंभ किया। इनमें से जिन्होंने चित्रा के अनुसंधान रहित ईंटे रखी थीं वह स्वर्ग (उत्तर) की ओर बदे हुए वहाँ इधर उधर

खिसक गये सो वर्णासूत्र के जाले के, ( या शतपथ ब्रा. २-१-२-१६ 'ग्रीवाः' = कटे हुए गले के स्तेत केसों वाले शिर के ) सदृश यानी वर्तमान में जिसे अरुधती केश ( Coma Berenices ) कहते हैं ऐसे तारों के झुमके के रूप के बन गए । तथा दो तारे और भी उत्तर को बढ़कर गये वह तार का पुज दिव्य दो श्वानों के ( Canes Venatici ) रूप के हो गए । इसलिये जिस विद्वान् को ( नक्षत्रों की गणना में ) अतृप्य-भ्राति = संदेह हो उसने उक्त आकृति विशिष्ट तारका पुंजों से निश्चित होने वाले इन्द्र दैवत्य दर्दप्यमान चित्रा नक्षत्र से अग्नि का आधान करे । जिमसे सब भ्राति दूर होकर इसके प्रभाव से वह ओजबल वीर्य को धारण ( शुद्ध नाक्षत्र गणना द्वारा ) कर सकता है । ” इत्यादि वैदिक प्रमाणों से शुद्ध नाक्षत्र देवी गणना में सब नक्षत्रों की अपेक्षा चित्रा की निरपवादित श्रेष्ठता एव अखंड परंपरा सिद्ध होती है । ऐसे रेवती के संबंध का कहीं भी यज्ञारभ का उल्लेख नहीं है । झीटा तारा तो अत्यंत निजगति वाला पद भ्रष्ट होने से अमुर और अधुक होने से पाप्मा यज्ञवंचक, देव शत्रु कहा सकता है । अतएव वह नाक्षत्र गणना के लायक ही नहीं है, तब उसकी यज्ञ परंपरा कैसे मिल सकती है

### परीक्षण ६५ ( अ )

हैं विधान अप्रासंगिक आहे व खरे ही नाही. वेदा मध्ये निरनिराळ्या तारा पुजारी रूपकें बसवून कथा लिहिल्या आहेत. त्या पैकीं “ ऋतु कजा नामा मुता आसन् इ० ” ही एक आहे. सूक्ष्मतान्याना अनुसूक्ष्मच अमुर शब्दाच प्रयोग केला आहे असे वाटत नाही. याच्या उलट प्रकारचें कोठें कोठें उल्लेख सापडताना. ज्येष्ठा तारा ठळक असूनही “ आग्नी ज्येष्ठाळा मारिलें, शतभिषिकावर अभिषेक करा, रेवतीवर यज्ञ केला अगें देव म्हणातात अशा अर्थाचीं वाक्यें आहेत. ” ते. ब्रा. १-५-२ ( भा. उपो.पृ. ५१ )

### समाधान ६५ ( अ )

उस काल में किम २ समय नाक्षत्र, सौर, सावन, चांद्रमान और वसंत संघात से यशारंभ, अयन, ऋतु, आदि का शोध लगता गया था। किसी ऋषिने, किस स्थल में किस काल में कौन तारों का सोवन लगाकर कौन २ ग्रंथ निर्माण किये हैं इत्यादि बातों का दिग्दर्शन हमारे युगपरिवर्तन और वेदकाल निर्णय नामक ग्रन्थों में बताया गया है इससे पाठकों के अनुपंगिक शंकाओं का समाधान हो सकता है।

गोविन्दरावजी ने विधानोक्त अर्थ को विपरीत बताने के लिये जो अनुवाक का लुल्लुष किया है उसी के द्वारा विधानोक्त बातें पुष्ट एवं समर्थित होकर उसमें परीक्षण की ही पूर्ण रीति से परीक्षा हो जाती है कि वह कितने सत्याप्त को लिये हुये है।

“सलिल वा इदमंतरासीत्। यदतरन्। तत्तारकाणां तारकत्वम्। यो वा इह यजते अमुं सलोकं नक्षत्रे। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्। देवगृहा वै नक्षत्राणि।” यानि वा इमानि पृथिव्याश्चित्राणि तानि नक्षत्राणि। तस्मादस्त्रील नामश्चित्रे, नावस्येन्नयजेत। यथा “पावा हे” कुरुते चाट्टगेवतत्। कृत्तिकाः प्रथम। विशाखे उत्तमम्। यानि देवनक्षत्राणि ॥ अनूराधाः प्रथमं, अपभरणी कृत्तमम्। तानियमनक्षत्राणि ॥ यानि देवनक्षत्राणि तानि दक्षिणेन ( मार्गेण ) परियन्ति। यानि यमनक्षत्राणि, तान्युत्तरेण ॥ ‘ज्येष्ठ मेवा अवधिष्येति तज्ज्येष्ठग्री’। ‘यच्छतमभिषय्यन्। तच्छतमभिषक्’। ‘रेवत्यामरयन्त’। यत्कारीस्वात्। “पुण्याह” एव कुरुते। ( तै. ब्रा. १-५-२ )

भावार्थ:-“समुद्र के तुल्य विस्तृत आकाश को जिन तारका=नौकाओं के सहारे हम तर सकते हैं वह तारका ( तारे ) कहाते हैं। इन तारोंके आधारपर जो यज्ञप्रयोग करते हैं उनके लोह ( प्रातिवृत्त पर गिने जाने वाले स्थान ) क्षत ( गलत ) नहीं होते इसलिये इनको नक्षत्र कहते हैं। नक्षत्र यह दिव्यज्योति देवताओं के मंदिर हैं। पृथ्वीमें अनेक प्रकार के आकृति विशिष्ट चित्रोंसे अग्न्याय्य पुरुषोंके घरों की त्रेमे मुनीते से पहिचान हो जाती है ऐसे ही अश्वमुबारि चित्रोंसे उनके अश्विनौ आदि देवताओं के शुद्ध नक्षत्रों की पहिचान हो जाती है। इसलिये नक्षत्रों का ‘चित्र’ नाम है। इससे ‘अश्विलोचित्रे’ यानी अश्वरथ=भद्र=संज्ञाया-स्पद=गंवारी आकृति वाले=प्रातिवृत्तक चित्र (नक्षत्र) से कोई पक्ष का आरंभ या समाप्ति न करे। क्योंकि ॥ पाहे मेवाच्छत्र ( दुर्दिन ) में स्पष्ट देने बिना ही प्रयोग करने में जैसा उसका मापन अनिश्चित होता है ऐसा ही अग्न्यष्ट नक्षत्र ने करना योग्य नहीं दे। ” ‘इसमें कृत्तिका से विज्ञान प्रसूत वे=देवनक्षत्र’ ज्यार अनुवाक से भरणे पर्याय के यम नक्षत्र कहाते हैं। देवनक्षत्र पर स्थित ग्रह दक्षिणाभिमुखमार्ग ( कृत्ति इत्त ) से गमन करते हैं, यम नक्षत्रों पर स्थित उत्तराभिमुख गमन करते हैं। उक्त नक्षत्र पर नाम करना तो वह ॥ पुण्याह ” कहाता है-

इनमें से कुछ नक्षत्रों के शुभाशुभ फल के अनुसार वैसेही उनके उपनाम पड़े गए हैं। जैसे जेठ को मारने का फल वाली = ज्येष्ठमा, जिस पर सेकड़ों की भयंकर चिह्निता की जाती है वह शतभिषक् और जिसका रुदन फल कहा है वह रेवती ऐसे इनको कहते हैं। फलज्योतिष ग्रंथों में भी “सुरेशतारा जनिता घवाप्रजं हति। शतभिषजि भयंकरं कारयेत्। पौष्णधिष्ण्ये मासिकं रोगपीडनम्。” ऐसा वसिष्ठ संहिता में लिखा है।

तथा हनन शब्द का अर्थ जैसे गणित में ‘गुणाकार’ लिया जाता है ऐसा वैदिक काल में मंडल वेध (१०।१८०।२७० अंश) में या पूर्ण नक्षत्र वेध (१३।२०’) आदि में हनन (घ) शब्द का प्रयोग किया जाता था और उसमें मघा नक्षत्र को पितृघ्नी कहा है। शतपथ ब्राह्मण (३.२.४.१४ देखिये:—

“सोमक्रयणी पिगाक्षी (लाज तारा) रोहिणी (लोहिनी) भोग ४६ अंश इन्द्र देवत्या ज्येष्ठा पिगाक्षी वार्त्रघ्नी (१८०) रोहिणी = ज्येष्ठा भोग २२६ पितृ देवत्या मघा श्वेताक्षी (सपेद तारा) पितृभ्योन्नति ॥१२६॥ अर्थात् रोहिणी से मघापूर्ण ६ नक्षत्र  $\times$  (१३।२०’) = ८०° से विद्ध होती है。” इस उपपत्ति से जैसे मघा को पितृघ्नी कहा है ऐसे ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी कहना उपर्युक्त वेध के आधार से योग्य है।

उक्त प्रमाणों के आधारपर निम्नलिखित बातें निश्चित होती हैं :- (१) वैदिक वाक्यों में जो बातें लिखी हैं सो अब भी वेध सिद्ध परिमाणों से मिलती हुई हैं = उपाति:शाश्विय प्रणाली युक्त हैं; अतएव प्रमाण कोटि में प्राप्ति है, (२) तैत्तिरीय ब्रा ० के समय धनिष्ठा-रभपर वसंतसंपात की स्थिति थी इसको सामने रख कर तत्कालीन शीतातप वर्षा के तविता द्वारा होने वाले क्लेशों की तुलना की जाय तो ज्येष्ठघ्नी आदि नाम योग्य हैं, (३) तदनुसार या और फलितके तत्त्वोंको लेकर आगे जो फलज्योतिष में फल कहे हैं उससे विधानोक्त पूर्व कथन में कुछभी विरोध नहीं आता है, (४) सूक्ष्म या स्थूल तारोंके उपलक्ष्य में असुर शब्द कहा न होकर संपात के विलोमगति या अन्य कारण से जो आकाश के दृश्यस्थिति में अंतर पड़ता है उसको अलग बताने के उपलक्ष्यमें अमुरा: (‘पूर्व देवा:’ वर्तमाने देवत्वात् मृष्टा:) इत्यादि शब्द कहे गये हैं। कोष ग्रंथों में भी ‘पूर्वदेवा: मुगद्धिप:’ के नामों उल्लिखित किये गये हैं। अत: जो वैदिक यज्ञ रूप नव्य गणना के बाहर हैं वह असुर कहाते थे।

### परीक्षण ६५ (आ)

(क) काल कंजाची स्तुति ही केलेली वाक्ये वेदात आहेत (भा. उयो. पृ. ९१ (फा) अथर्व संहिता ६.८०), (ख) शत्रूंचा नाश व्हावा अशी इच्छा असेल त्यानीं चित्रावर आधान करावे असे सांगितल्याने जणू काय चित्रा कर्दव भोग १८० अंश ठरणार आहे अशा

बुद्धी में दीनानाथजीनी या कथेला महत्व दिले आहे। परन्तु हा भ्रम आहे, (ग) कृत्तिका व  
इतर नक्षत्रांवरही आधान करण्यासबन्धी अशा प्रकारची वर्णन आहेत.

### समाधान ६५. ( आ ).

‘ ; ( क ) यहाँ कोई प्रमाण था आधार नहीं बताकर जगदि गोविंदरावजी ने केवल भारतीय ज्योतिः शास्त्र का अगुली निर्देश कर दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आपका वेद देखा हुआ नहीं है फिर ‘असे वेदान आहे’ इत्यादि आपका कथन निरर्थक है। क्योंकि मा. ज्यो. में दीक्षितजी ने तै. ब्रा. के प्रस्तुत प्रमाण के संबंध में “यांतील ‘दोनवरगेले ते दिव्य ज्ञान झाले’ हा निर्देश कोणत्यातरी दोन तारांस किंवा तार का पुंजांस अनुलक्षून आहे असे स्पष्ट दिसते और अथर्व संहिता ६.८० के यंत्र के संबंध में—‘छांत एक दिव्य ( आकाशांवाला ) आ आला आहे आणि आकाशांत देवासारखे असलेले तीन फाळ कंज आले आहेत. ’ ऐसा गोलमाल अर्थ “ दिसते ” क्रियापद से व्यक्त कर दिया है। इसी के भरोसे ‘स्तुति का अर्थ नहीं होते हुए भी ’ गोविंदरावजी का “ स्तुतिही केलेली वाक्ये वेदांत आहेत ” ऐसा डाँग मारना हास्यास्पद है।

( र ) मूल ( तै. ब्रा. के ) प्रमाण में भ्रातृव्य शब्द है वर्तमान में इसका अर्थ माई के पुत्रों ( ब्राधवों ) के संबंध में लगाया जाता है। लेकिन वैदिक बातें सब आकाशस्थ दिव्य ज्योति तारों के संबंध में हैं। उनमें जो तारे चित्तिचयन एवं यज्ञकर्मों के प्राचीन मंत्रों से एक गायकता रखने वाले निश्चित व अत्रिकृत प्रतीत हुए वे तारे को देव, देवी, देवता और उनके दर्शकों को ऋषि, गधर्नादि तथा स्थानभ्रष्ट, भ्रातिरापी, अधिक, विकृततारों को अमुर, दानव, देवबांधव यज्ञ शत्रु याने वेध लेने वाले के हान में व्यवसाय लाने वाले शत्रु ऐसा इन्हें वेद में कहा है। प्रस्तुत चित्तिचयन में चित्रा तारे की ईद देवता बताकर मुद्दयत्व बताया है। चित्रा तारे को इष्ट को ( गणना ) नहीं रहने से ‘वे वै-अकीर्यन्त। वे वै-अकीर्यन्त। वे-ऊर्णावभय. अभयन्’ इन शब्दों ने ही उनका खिमकना ( स्थानभ्रष्ट होने से भ्रातृव्यत्व व्यक्त होता है। शब्द में जो चित्रा से यह ( चित्तिचयन ) करता है वह अवकीर्य एव भ्रातृव्यान् भ्रातिकारक अमुर रूपों को बताकर हटाकर ‘ऐसा अर्थ होते हुए का गोविन्दरावजी ‘शत्रूंचा नाश’ ऐसा अर्थ करते हैं सो उपर्युक्त ‘अकीर्यन्त’ के विरुद्ध होने से उनका ही भ्रम व्यक्त हो जाना है। इतना ही नहीं तो चित्रागणना में रेवत्यंतजिन्दु के निकट की झंडापिसियम तारा अत्यंत निजगति पाई होने में स्थानभ्रष्ट है एवं ३२ तारों में अंधुक होने से भ्रातिकारक निश्चित होती है सब यह इस तै. श्रुति के प्रमाण में देन तारा न होकर आमुरी तारा स्वयं सिद्ध हो जागी है। और श्रुतिप्रोक्त चित्रा तारे की वर्तमान में भी विमलामकरूप

से प्रचलित है यानी 'चित्रार्ध कन्या' 'चित्रार्ध तुला' माने जाती है। इस तरह की एक वाक्यता से चित्रा का कदंब भोग १८० सिद्ध होता नहीं तो क्या है ?

(ग) श. ब्रा. ( २-१-२ ) के आधार से नीचे के कोष्ट में अग्नि के आधान के नक्षत्र लिखे हैं। तै. ब्रा. ( १-१-२ ) में सिर्फ मृगशीर्ष और हरत को छोड़कर यहीं नक्षत्र कहे हैं। किंतु चित्तिचयन ( सुपर्णचिती आदि वेद कालीन पंचांग का निर्माण ) चित्रा तारे से ही करना लिखा है। कोष्टक रचना की उपपत्ति:—

अग्निआधान और चित्त निर्माण के योग्य प्रत्यक्ष वेध सिद्ध=आधेय एवं सम्मुख नक्षत्र ( वैदिक ऋषियों के निर्वाचित तारे )				
वि. क्र.	आधेय नक्षत्र.	व दंत सूरीय शर.	आधेयदेवता.	सम्मुख देवता.
प्रति	योगतारा	दिशा	सत्य	ऋत
१	कृत्तिका	+ ४° २'	अग्नि	इंद्राग्नी
१	रोहिणी	- ५ २८	प्रजापति	भिन्न
४	मृगशीर्ष	- १३ २३	भोम	अश्वि
२	पूर्वाषाढा	+ ६ ४०	अरिष्ट	विश्वदेव
३	पूर्वाषाढा	+ ९ ४२	अर्यमा	अज
०	उ. फाल्गुनी	+ १२ १७	भग	अहिर्बुध्न्य
२	हस्त	- १२ ११	सविता	पूषा
१	चित्रा	- २ ३	देवद	अश्विनो

जिन तारों की तेजस्विता उत्तम होकर जो सूर्य गमन मार्ग ( ज्योतिष्यत ) के निकट में हैं यानी १२।१३ अंश से जिनका अधिक शर नहीं है; ऐसे तारों को वेध कर उसके अनुसार चित्ति के ऊपर इंदों को रखना शुरू करते थे वह आधेय नक्षत्र ८ और उनसे १८० अंश पर निश्चित किये सम्मुख नक्षत्र ८ ऐसे १६ नक्षत्रों की देवता प्रस्तुत कोष्टक में बता दिये हैं। यद्यपि स्वाती, धनग, मूळ,

धनिष्ठा तारे तेजस्वी हैं किंतु उनका शर अग्रिम है। शृग ( Gamma Leonis ) के निकट के सूक्ष्म तारों के जल्ये के निकट वाली मया, आकाश गंगा के निकट पांडे आर्द्रा अथवा पूर्वाषाढा जोमि दीप्तिमान् एव अल्प शर हैं निकटवर्ती पुन से रूप बिकारी हैं। याकी शतभिषक भरणी, पुष्य व आश्लेषादि तारे अल्प तेजस्वी हैं। इसलिये इन १६ तारों को वेधोपयोगी नहीं मानकर उपर्युक्त १६ नक्षत्रों के विभागानुसार " विज्ञा मानो दे वास्य-धिष्ण्याः। इमे संमकाः " ( श. ब्रा. ३, ५, १, १, पृ. ३६१ ) इनके भी क्षेत्र और तदंतर्गत पुन को समान विभाग से निश्चित किये हैं और संपूर्ण २७ नक्षत्रों के विभागों को निश्चित करने के लिये " ते देवाः प्रति बुध्यन्ते मध्य सो द्युस्त इद्रेणे व मध्यव प्रातः सवने " ( ऐ. मा. ६-२-१ ) " इंद्रेवे यजमानस्तत्त्वऽप्येतन्नग्रजऽग्नी आधत्तऽइन्द्रे यशस्य देवते सेनो हास्ये वत्सेन्द्र मग्न्याधेयं भवति. " ( श. मा. २-१-२-११ ) " नाता हवाऽपतान्यमे क्षत्राण्यासु। यथेवासी सूर्य एवं तेषां पथ [चित्रा] यद्यन्नेव यथै क्षत्र-मादत्त. [ श. मा. २-१-२-१८ ]



इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में इंद्र है देवता जिसका ऐसे चित्रा नक्षत्र को मुख्य माना है। क्योंकि यह एक नंबर का तेजस्वी तारा होकर आधेय नक्षत्रों में सभी से इसका शर अल्प है। ऐसाही संदिता ग्रंथों में कहा है :—

“त्वष्टादधच्छुष्ममिन्द्राय धृष्णेपाकोचिष्टुर्यशसेपुरुणि ॥ धृषायजन्वृषणंभूरिरेतामूर्द्धे-  
न्यज्ञस्यसमनक्कुदेवान् ॥ (वा० सं० २०।४४) ” सरलार्थः— “यह त्वष्टा (चित्रा) देवताने यशस्वी और दासिरूप वर्णन में समर्थ इन्द्र देवता को यथेष्ट बलशाली किया है, इसकी अपेक्षा अधिक वा समान प्रशंसनीय और कोई नहीं है। यह सब (नक्षत्रों) के क्षेत्रों का नियामक है। इसी (चित्रा) ने इंद्रको नियुक्त करके सबके विभाग रक्षण में सम्पन्न किया है। यह संपूर्ण देवों का एष खगोल का एक मात्र निश्चित करने वाला है अतएव त्वष्टा (चित्रा) का तारा। यज्ञरूप क्रांतिवृत्त का मूर्धा सदृश = मुख्य माना गया है वह संपूर्ण देवों को अपने विभागों में नियुक्त करें ” इत्यादि प्रमाणों के द्वारा गोर्विदरावजी को उत्तर दिया जाता है कि ‘कृत्तिकादि नक्षत्रों पर अग्न्याधान के प्रसंग में जैसा चित्ति चयन में चित्रा को मुख्य मानने का वर्णन मिलता है ऐसा अन्य नक्षत्रों के संबंध में नहीं है’ अतः आपका कथन केवल प्रलाप मात्र निर्मूल अतएव निरर्थक है।

### परीक्षण ६५ (इ)

(घ) गणित व ज्योतिष अशा रोकठोक बादांत पूर्वग्रह दूयिन काव्यकल्पनेचा काय उपयोग ! (ङ) कथाचा अर्थ अनेक तन्हें करता येतो. (च) या गोष्टीचा तर अनुभव नेहमीच येतो. (छ) कल्पनेच्या कोट्याच करावयाच्या तर असेही म्हणता येईल कीं रेवतीची योनि राजमान्य गज आहे तर चित्रेची योनि शूर श्वापद व्याघ्र आहे. रेवती जाताना देवगणी अशी संज्ञा आहे तर चित्रा जाताना राक्षसगणी अशी संज्ञा आहे. तेव्हा ज्योतिषासारख्या गंभीरशास्त्रामध्ये चित्रासारख्या दुष्ट योनीच्या राक्षसगणी तान्यापेक्षां (ज) धीरोदात्तगज योनीच्या व सर्व तारागणांचा आधिपति जो पूज्य तीक्ष्ण ग्राही देवता आहे अशा देवगणी रेवती तारासच प्राधान्य देण्यांत उच्च भावना व्यक्त होते.

### समाधान ६५ (इ)

(घ) वेद गणित और ज्योतिष से अलग नहीं है। वेदकाव्य कल्पनारूप न होकर व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूलतत्त्वों का (धुवेर भंडारण्य) संग्रह ग्रंथ है। कृत्रियोंने वडे २ यह प्रयोगों के प्रयत्नोंद्वारा आकाशस्थ ज्योतियों के स्थान, स्वरूप, पुंज, दीप्ति आदि भेदों यथा विभाग निश्चित कर उन्हें चिरस्थायी एवं जगन्मान्य करने के लिये ऐसे चरित्र के रूप में कहा है कि संसार के मानव जाति के उत्पत्ति से लगाकर आजतक का इतिहास इसीमें मरा

हुआ है। और उसे धार्मिक उदात्त भावना से चरित्र का रूप देनेसे आजतक अविकृत अखंड और सर्वव्यापक होकर बना हुआ है। यद्यपि इस वैदिक ज्ञान की थोड़ी बहुत व्याप्ति संसार के सभी धार्मिक और ज्योतिष के ग्रंथोंमें उपलब्ध होती है। किंतु इसका पूर्ण स्वरूप देखना हो तो भारतीय संहिता, तंत्र, जातक और सिद्धान्त-ज्योतिषशास्त्र, मीमांसा, श्रौत, शुक्ल और गृह्यसूत्र, मानवादि धर्मशास्त्र याज्ञिक ग्रंथ एवं इतिहासपुराणादि के साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और वेदाज्योतिष आदि एवं शास्त्रीय ग्रंथों को तुलनात्मक दृष्टिमें अध्ययन किये बाद वेदार्थ के सत्य एवं समुज्ज्वल स्वरूप को समझ सकने हैं ! देख सकते हैं तथा ऐतिहासिक कसौटीपर शास्त्रीय धर्मग्रंथों से उसके व्यासत्यत्व को तपास सकते हैं।

होम दि वेदाज में लिखे हुये वैदिक मंत्रों को ऐतिहासिक प्रमाण माने और यहां उन्हें मंत्रों को काव्य कल्पना ( कथाओं का अनेक तरह के अर्थ होने से अपादेय अप्रमाण ) माने तो इसमें क्या नई बात है। यहाँ है ना प्रिंसिपली स्वभाव ! ( च ) लेकिन ऐसे वेदार्थ का अनुभव 'नेहमी' नहीं देखा होगा। ( छ ) मालूम होता है शीघ्र तारे की निराधारता में कोई भी आधार नहीं मिलता देखकर हूबते हुए को सेनाल का भी आश्रय लेना दिव्यत है उनके तुल्य गोविंदरावजीने चित्रा रेवनी विभागों को योनी घटित व्याघ्र गन कहते हुए उनके मेरे नामों के अश्वसिंह पर ध्यान नहीं दिया यदि ध्यान देते तो ( ज )-धीरोदास की कहानी को छोड़कर हाथी घोड़ा तथा गज सिंह को भग दौड़ एवं छुलाग मारने की कल्पना को लट्टू बिना नहीं रहते। क्योंकि गण स्वभावानुकूल कल्पना तरंगों में पाठकों को मुलावा देना प्रिंसिपल आपटे साहब के सिवाय और किसी को शोभता नहीं है।

### परीक्षण ६५ ( उ )

या कथेऽप्या विवेचनांत "ऊर्णावयवः" व "तो भानो" यांचा दीनानाथजींनी जो अर्थ लाविला आहे, तो पटण्यासारखा नाही. फाउ कंजाचें तीन तारे व दोन कुचे यांचा संबंध मृगाचें तीन ठळक तारे व पुनर्वसूचें तारे यांच्याशी अमागमें वाटतें ( भा. उपो. पु. ६१ )

### समाधान ६५ ( उ )

गोविंदरावजीने फिरसे उसही कहानी की दिगृष्टि की है। किंतु 'पटण्यासारखी नाही' 'असावा सें वाटते' कह कर अपनी भ्रामक कल्पना का परिचय दे देने से तथा कोई भी मुद्देसूद प्रति पादन या प्रमाण नहीं बनाने से स्वयं कोठ ( निरर्थक ) निश्चित होगई है। यद्युतः न तो वेदार्थ का वास्तविक शोध लगा है न गोविंदरावजीने लगाया है। जो प्रस्तुत विश्वानोक्त बातें चित्रा नक्षत्र के निरुद्ध के उत्तरीय भाग में यथानुक्रम में बराबर मिलाकर विधान में बनाई गई हैं। उसका खंडन तो जहाँ में कर सकते हैं। यहाँ तो केवल बातों की मर्ती लगाकर उस मतार्थ को एवं वैदिक मंत्रोंक निडल्लों को उटपटाग बताने की बुद्धिमें उन्हें गोविंदरावजी मृग पुंज व पुनर्वसु पुंज में बना रहे हैं। सो सन निर्मूठ एवं गडन है। जो कि अग्ने के विधानों में मांगोपांग रीति से हट कर दी गई है।

### विधान ६६

वेदिक मंत्रोंके अर्थ करने की प्रस्तुत पद्धति थिडकुड नई हमारे ही द्वारा कल्पित होनेसे बिना आकाशाय नक्षत्रों के सहारे आज महसुमाओं को यथार्थ समझ न सकेगी

इसलिये “चित्रास्तोम” के संबंध के नक्षत्रों इम पारिशिष्ट के अंतिम भागमें जोड़े गए हैं। सो यहां उनका परिचय करार बाद कई सिद्धांत निश्चित करके उनके द्वारा वैदिक काल में भी आकाश की एवं क्रांतिवृत्त ( राशी चक्र ) की गणना चित्रा से ही का जाती थी। इस तरह चित्रा गणना की अखंड परंपरा और चित्रा तारे का महत्व आप सज्जनों की सेवामें निवेदित करूंगा। सुभीते से उल्लेखित करने के लिये इस प्रकरण का नाम मैंने चित्रा स्तोम रखा है।

### विधान ६७

जब कि वैदिक काल में व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूल तत्त्वोंका शोध लग गया था तब इन ज्योतिर्गोलोंको अखंड मंडलाकार सर्व व्यापि सर्व शक्तिमान परमात्मा की दिव्य ( देदीप्यमान प्रत्यक्ष ) विभूति नाना स्वरूप देवता आदि मानकर तत्कालीन ऋषियोंने बड़ी गवेषणा पूर्ण इनके ( कविता रूप में किंतु यथार्थ सत्य सत्य ) चरित्र वर्णन किये हैं। और यह सर्व साधारण की समझने के एवं चिरस्थायी प्रचार के लिये वे लोग यज्ञ प्रयोगों में इनके नक्षत्र बनाकर प्रयोगों द्वारा आकाशीय स्थिति को प्रत्यक्ष मित्राकार बतलाया करते थे लेकिन वह नक्षत्रों कागद पर अंकित किये न होकर पृथ्वी पर ईंटें व पत्थरों के बड़े आकार के बनाये करते थे और भक्तिभाव से उनका पूजन, अर्चन एवं होम इस तरह करते थे कि उसमें की प्रत्येक विधी उसके तत्त्वार्थ एवं गति, स्थिति ऋतु परिवर्तन आदि के काल को व्यक्त करती थी। इस विषय का विस्तृत वर्णन हमारे यनाए हुए युगपरिवर्तन एवं वेदकाल निर्णय में एवं सुपर्णचिति नामक वेद कालीन पंचांग साधन ग्रंथ में मैंने लिखा है यहां सिर्फ (१) सुपर्ण चिति (२) वाक्क्रम दर्शक चिति और (३) वेदार्थ दर्शक देवत गोल इनके चित्र बता दिये हैं।

### विधान ६८.

इसके सिवाय प्रस्तुत प्रयोगोपयोगी और भी नक्षत्र दिये हैं। यद्यपि यह वैदिक मंत्र-प्रतिपादित वर्णसे कुछ भिन्न है तोभी यह बहुत अंशमें वैदिक मित्रानोंके अनुसार ही बने हुए प्रतीत होते हैं। यस्तुतः भारतीय एवं स्वदेशियन नक्षत्रोंमें बिचकूट थोड़ाही धनुर है। अतः हमारे प्राचीन वैदिक नक्षत्रों को कोई आधुनिक पश्चिम यत्ना न मके टमिन्धे हमने प्राचीन परंपरागत प्रचलित नक्षत्रोंकाही यहां उपयोग किया है। जो कि अन्यत्र

प्रकाशित हैं। और सभीको तुलना करनेके लिये मिल सकते हैं। उन्होंने के चित्र, फोटो द्वारा लेकर जैसे के वैसे दीये हैं। और उनके संबंध का वर्णन उसी ग्रंथकी भाषामें (पृष्ठांक आदि बताकर) उद्धृत किया है। ताकि किसीको यह संदेश नहो कि हमने हमारी इच्छानुकूल परिवर्तन करके वर्णन लिखा हो। और इससे यहभी ज्ञात हो जायगा कि आकाशमें उक्त चित्रों का आकृति (स्वरूप) कबिब ९ बैसीही दिखती है सो सत्यरूप है। बिना सत्यता के संसारव्यापी एकही कहना हजारों लाखों वर्ष होजाने परभी जैसी की वैसी ठिक नहीं सकती है। क्यों कि कल्पित कल्पना तो तत्कालही में नष्ट हो जाती है। अतः वैदिक बातें सबसत्य एव विश्वनवीय हैं।

### —विधान-६९—

निरुक्तकार यास्क और जैमिनि व सायणाचार्यादि ने जो अर्थ किया है वह पूर्ण नहीं है इसीलिये उन्होंने कितने ही मंत्रों का अर्थ केवल उनके शब्दों के व्युत्पत्ति के अनुसार वैकल्पिक कहा है निश्चिन्त रूप से कहा नहीं है। और “न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यन्निश्वेतव्य” इत्यादिषु ‘अस्तिचाप्रसक्त प्रतिषेध रूपो नित्यानुवादो वेदे.’ “प्रत्यक्ष विरुद्धं वचनमुपन्यस्तं—‘स एष यज्ञायुधी यजमानोऽजसास्यर्ग्यं लोकं यातीति प्रत्यभं शरीरकं व्यवदिशतीति (मी. सू. शातरभाष्ये १. १. पृ. १४) ‘उत्तानाथै देधगया वहन्ति ‘अग्निर्वृत्राणि जघनत्’ (मी. सु. भा. १. ३. १० पृ. ५४) ‘पितुः पयः प्रति गृह्णाति माता तेन पिता वर्धते न पुत्रः’ (नर. सं. ५. ७. १. ३) ऐसे मंत्रों का अर्थ बूढ़ काव्य या गूढ़ मानकर छोड़ दिया गया है। और इसी का अनुकरण आधुनिक विद्वानों ने किया है।

### —विधान ७०—

लेकिन हमारी परिशोधित पद्धति से संपूर्ण सूक्तों के अर्थ काल, कर्ता और ऋषि के स्थल की संगति बराबर मिल जाती है। इतना ही नहीं तो पौराणिक प्रचलित मन्त्रों आदि से उसकी तुलनात्मक एक वाक्यता होकर हमारी निश्चित की हुई बातें ऐतिहासिक सिद्ध होती हैं। क्योंकि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और सूत्रमयोक्त बातें ही भरत, रामायण, श्रुति एव पुराणादिकों में काव्य के रूप में कही गई हैं। अतएव वह पुराणोक्त काटिक नहीं हैं जैसे विद्यामित्र शुनशेष आदि कुछ ऋषियों के नाम और चरित्र तथा इन्द्राजु, इरा, ऐंल पुरूरवा, उर्वशी, शतनु, प्रताप, भेष्म, व व्याम—धैर्यायन, गोतम—आदित्या—इंद्र, इत्यादि

नाम वेद में आए हैं। और यह सब वेदकालीन ऐतिहासिक बातें हैं, किंतु भारत रामायणादि में उनके गुण, कर्म एवं चरित्र की वैशिष्ट्यता से साम्यता मिलने पर उनके नाम और समकालिकत्व बताया गया है। इससे पुराण ग्रंथोक्त के समकालीन वैदिक पुरुष व उनके चरित्र नहीं हो सकते। अतः पीढ़ियों से उनके काल को नापना या समझना व्युत्त है।

## विधान ७१

वस्तुतः बहुतसी वैदिक बातें नाक्षत्रों के व तारका पुंजों के उपलक्ष्य में कही गई हैं। सूक्तों के कर्ता हजारों ऋषि हैं। आज करीब ३ लाख वर्षों का इतिहास वैदिक सूक्तों में भरा हुआ है। मानवज्ञान की क्रांति व उत्क्रांति के साथ साथ ऐसी बातें कही गई हैं कि प्राचीन सूक्त कर्तों से नए ऋषियों के सूक्त सूक्ष्म बातों के प्रति पादक तथा वेधकी कुशलता व ज्ञानकी विशेषता को लिये हुए हैं। इस तरह बढ़ते २ अंतमे इनसे व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूलतत्वों का शोध पूर्णवस्था को पहुँचा हुआ हमें उपलब्ध होगा है।

## विधान ७२

वैदिक वर्णन में शुद्ध नाक्षत्र, सौर, चांद्र और अयन संपातिक आदि ज्योतिष के कई परिमाण उपलब्ध हैं, किंतु सब में मुख्य नाक्षत्रमान माना गया है। तारोंकी व नाक्षत्रोंकी आकृतियाँ आकाश में निश्चित करके उनके संबंध का वर्णन सब नाक्षत्रमानका है। उस समय के ऋतु, अयन तथा संवत्सरादि सांपातिक मानके थे जोकि; सूर्य के ठीक प्राचीन दिशा में उदय होनेके काल को (रविका) स्वर्ग रोहण काल, और वहाँ से रविके ९०। १८०। २७० अंश यानी करीब तीन तीन महिनेपर घूमे; अंतरिक्ष, पृथिवी के नामसे तथा वायु, बिनाद, सखाद व स्वराद नामसे कहते थे। इसके द्वारा सूर्य=पिता, पृथिवी=माता, अंतरिक्ष=भ्राता एवं स्वर्ग=शिष्य; पुत्र, संवत्सर ऐसा अर्थ होकर; इससे वसंत संपातिक स्थिति, उसका क्रम, व्युत्क्रम तथा और भी परम्पराणि आदि ज्योतिष के मुख्य परिमाण यथार्थ निश्चित हो सकते हैं। और आज हमें इनकी सूक्ष्माति सूक्ष्म गति व स्थिति माध्यम होगई है तो उन कथनकी जाँच सूक्ष्म गणित द्वारा आज हम कर सकते हैं। अतः इस प्रकार हर एक सूक्त का काल, कर्ता, और स्थल माध्यम हो जाना है तथा पुराणोक्त कथन द्वारा उस सिद्धान्तकी पुष्टि मिलनेसे उक्त बातें निःसंदेह (ऐतिहासिक) स्वयं सिद्ध होजाती हैं। किंतु यह कैसे होती है सो इसका आगे उदाहरण देकर स्पष्ट कर दिया जाता है।

## विधान ७३

चित्रा तारे को क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्यमें मानने की प्रणाली करीब १ लाख वर्षोंसे प्रचलित है। इसे गणित द्राघु सिद्ध करने के लिये मैं वहीं उदाहरण देता हूँ कि जिसके आधारपर आधुनिक विद्वानों वेदों का काल शक पूर्व ४००० वर्षोंके अंदर का (अर्वाचीन) बता रहे हैं। इसके संबंध में ज्यो० केतकर ने नक्षत्र विज्ञान (पृष्ठ ५६-५७) में लिखा है कि; "एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्ये दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्ये दिशश्चवन्ते।" या यरुन शतपथ ब्रा० काठी कृत्तिका घेट पूर्वत उगवत असत ही द्यक्ष पाहिणेली गोष्ट आहे. म्हणजे त्या काळापासून आजपर्यंत संपात ६९ अंश मागे हटला. त्याची ४९०० वर्षे ओढली आहेत असें सिद्ध होते।" इसी प्रकार आपने नक्षत्रों में भी "विपुषवृत्त शतपथ ब्राह्मण काठी शकापूर्वी ३१०० वर्षे." ऐसा लिख दिया है।

तथा ज्यो० दिक्षित ने भा० ज्यो. (पृष्ठ १२८-२९) में शक पूर्व ३०६८ से ३००० वर्ष, प्रो० बेन्टली ने इ. स. पू. २३२० वर्ष, प्रो० वायो ने इ. स. पू. २३१७ वर्ष, प्रो. बेवर ने इ. स. पू. २७८० से १८२० वर्ष, प्रो० धीबो ने १७८० से ८२० वर्ष, और लोकमान्य टिळक ने ओरायन (मराठी पृ. २५) में ईसा पूर्व २३५० वर्ष, (ओरायन पृ. १-३ के लेखानुसार) प्रो० मैक्समुल्लर ने इ. स. पू. १०० से ८०० वर्ष, डा. ही ने २००० से १५०० वर्ष, इसी काल के निकट में प्रो० गोडबोलेने कहा है। एवं पद्मराम हरी धत्ते नासिक निवासी ने वेदाध्या काळाचा इतिहास [पृ. ३३६] में इ. स. पू. २९०० वर्ष, श्री० रा० व० वैद्य ने भारत काल मीमांसा में शक पूर्व ३००० वर्ष ही कहे हैं। तदनुसार ह्यानकोप विश्वकोष व वर्तमान पत्र या मासिक पत्रादि पुस्तक व लेखों में वेद के और भारत के काल को अर्वाचीन बताया गया है। अतएव अभी तक वह जगन्मन्य कहला रहा है। किंतु सत्य के अनुरोध से नम्रता पूर्वक मैं कह सकता हूँ; कि—उक्त अनुमान प्रमाणभूत नहीं होकर अपूर्ण और समर्थन रहित है। क्योंकि न तो यहां टीक पूर्व में कृत्तिका का उदय होना कहा है; न उक्त प्रमाण से ऐसा अर्थ निकलता है। तब इस आधार पर; बताया हुआ काल सत्य कैसे हो सकता है। बरना यहां ऐसा स्पष्ट लिखा है कि जहां सदेह को स्थल ही रहता नहीं है। किंतु उसके आगे पीछे के भाग के ऊपर किसी भी विद्वान का—शोध-कृत्ययुक्त-दृष्टिपात हुआ ही नहीं है। तब उसके यथार्थ शोध के बिना इसका यथार्थ काल निश्चय कैसे हो सकता है। वस्तुतः शतपथ के प्रातुत कंडिका के ५ अनुवाक हैं। एक एक अनुवाक से यही काल निश्चित होता है कि जो अन्यान्य सभी तत्कालीन ग्रंथों के प्रमाणों से निरपवादता से समर्थित होते हुए सभी वाक्यों की त्रिमूर्ति संबंध में एक वाक्यता हो जाती है।

## विधान ७४

इसमें पहला प्रमाण ये है “कृत्तिका स्वप्नीऽआदधीव। एतावा ऽअग्नि नक्षत्रं यत्कृत्तिका  
 कास्तद्वै ‘सलोम’ योऽग्नि नक्षत्रे ऽग्नी आदधातै। तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ १-॥  
 [श. भा. २-१-२.]” । अर्थः— “कृत्तिकाओं में दोनों अग्नी का आधान करें। क्योंकि  
 यह कृत्तिका अग्नि का ही नक्षत्र है। यही (सलोम) सब नक्षत्रों का शिखा रूप है। अग्नि  
 के नक्षत्र में अग्नि का आधान करना योग्य है। इसलिये कृत्तिका नक्षत्र में आधान करे  
 ॥ १ ॥” भावार्थः— इसमें ‘सलोम’ शब्द बड़े महत्व के अर्थ में कहा गया है। व्यवहार  
 में जिस बिन्दु [स्थान या पैंट] से आगे व पीछे जाने के अर्थ में लोम और विलोम तथा  
 उत्तर दक्षिण के तर्फ चढ़ने व उतरने के अर्थ में अनुलोम और प्रतिलोम शब्द कहे जाते  
 हैं। व्युत्पत्तिशास्त्र से इस [बिन्दु] की व्याख्या ‘लोहरी त्रिज्या रूपं सीमान्तं, व्योम=  
 दिवं स्थानं तल्लोमन् संज्ञम्। (‘नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन्’ उणादिसूत्रे  
 ४।१५१ ण) ख स्वस्ति के स्थितत्वा च्छिखारूपमित्यर्थः। अतएव “शिखीवहो, पत्नी  
 ‘वर्दे’, शरे, केतुमद्दे, द्रुम ॥ मयूरे, कुक्कुटेऽपिचे” त्यग्नेःशिखास्थानीयत्वाच्छिखीति नाम  
 प्रसिद्धोऽम्बदितिभाति., द्वाप ज्ञात होता है कि ‘उस समय परमक्रांति स्थान पर कृत्तिका  
 नक्षत्र होनेसे वह शतपथ के स्थल- (अक्षांश ३५ के निकट के प्रदेश-) में स्वतः ही आता  
 था। अतएव इस समय से अग्निको शिखि और कृत्तिका नक्षत्र को सलोम=बोटी बाला कहा  
 है सो ही योग्य है। इतनाही नहीं सी इसी शतपथ [ १४-५.५ ] में “तस्माद्वेमन् (वे)  
 ग्लायन्त्योपधयः प्रवनस्पतिनां पलाशानि मुच्यन्ते, प्रतितराभिष वय्योसि-अयन्यप्रवरा-  
 मिष वय्योसिपवन्ति विपवित लोमेवपापः पुरुषो भवति.” ऐसा कहा है कि ‘हेमंत ऋतुमें  
 अति हिमके गिरने से धान्य के पाक (ओषधी) सूख जाते हैं संपूर्ण वनस्पति [ वृक्षों के ]  
 पत्ते गिर जाते हैं। कई पशु पक्षियों के रंग पलट जाते हैं। वृक्षों पर से कई पक्षी नीचे  
 भूमि पर गिर कर दृताहत हो जाते हैं। पुरुष की लंबी छाया भूमि पर गिरने से मानों  
 रोम गिर गये हों ऐसे विपवित लोमा पुरुष दिखाई देता है।” इस कथन से यथा बलता  
 है कि उस समय रवि की परमक्रांति बहुत अधिक थी क्योंकि शतपथ के स्थल के ३५  
 अक्षांश के प्रदेश में रवि परमक्रांति के ३० या ३१ के अंश बिना दक्षिण परमक्रांति हेमंत  
 ऋतु के मध्य काल में इतनी ठंड नहीं गिर सकती कि जिसका वर्णन ऊपर (शतपथ) में  
 कहा गया है।

ऐसा ही गार्ग्य ऋतु के मध्य में वर्षा आरंभ होने के संबंध में लिखा हैः— “मघं  
 दिनोऽय वर्षाः। मघ्येदिन एवादधीत चर्हि से पोऽस्य लोपरय नेदिष्ठ भवति तन्नेदिष्टा  
 दैवेनमेतन्मघ्याग्निर्मिमीते ॥ ९ ॥ छागयेव वा अयं पुरुषः। पाप्मनानुपपन्नः  
 सोऽस्याय कनिष्ठो भवत्य धरपद भिचे यग्यते तरनिष्ठ भैवे तराप्मान भवत्ययने तस्माद्  
 मघ्यान्दिनऽएवादधीत ॥ १० ॥ [श. भा. २-२-१] अर्धान् देव दिनके मध्य में वर्षा का



आरंभ होना, स्वस्तिक के निकट (नेदिष्ठ) में सूर्य आने पर आधान का करना वहीं से परिमाणों ( नतांशों ) को गिनना कहा है । वैदिक ग्रंथों में छाया को पाप कहा है । तदनुसार इस काल में पुरुष के ठीक शिर के ऊपर सूर्य के आने से मध्याह्न में पुरुष की छाया उसके पैरों में ही समा जाती है । एवं विलकुल वनिष्ठ रूप हो जाती है इसलिये प्रस्तुत काल में अग्नि का आधान करे । ” इस कथन में पूर्वोक्त अनुमान दृढ़ होता है कि शतपथ के ( ३५ अक्षांश के ) स्थल में रवि की परमक्रांति ३०।३१ अंश की दुए बिना उत्तर क्रांति के काल में पुरुषों की छाया उनके पैरों में नहीं आ सकती । और न खस्वस्तिक के निकट के नेदिष्ठ स्थान में सूर्य आ सकता है । तथा इसी काल में अग्नि का आधान करना कहा है । वाजस संहिता ( १९.६८ ) में ‘ यपते ह बीज । अ ( आ ) सन्नो नेदीयः ’ ‘ नेदीयम् काल आसन्न हो गया है कि जिस में बीज बोया जाता है तथा शतपथ [ १.५.१.११ ] में ‘ अग्निं बंदेवानां ने दिष्टम् ’ अग्नि ही देवोंका मध्यदिन दर्शक, खगोलिक के निकट का एवं बीज वपन काल का द्योतक है । इससे ज्ञात होता है कि अग्नि नक्षत्र=कृत्तिका पर सूर्य के आने पर उस काल में खेती की बे वणी शुरू होती थी ।

इसीलिये कृत्तिका के ७ तारों के नाम से उस काल में जो आहुतियाँ दी जाती थीं उनके नामों से भी यही ज्ञात होता है कि उस समय कृत्तिका पर्जन्य नक्षत्र समझा जाता था जैसे १ ( अंघा ) अंबु जल देने वाली, २ ( दुला ) दुरा = मंडल के दर्प भागवाली, ३ ( तितानि ) विद्युत् रूप वाली एवं ग्रीष्म ऋतु के मध्यकाल की दर्शक, ४ ( अघ्नयंती ) अघ्न = बादल के समान आचरण करने वाली ५ ( नेपयन्ती ) गेहों को लुटाने वाली, ६ ( वर्षयंती ) जल की वर्षा का आरंभ करने वाली, और ७ ( चुपुणीका ) पृथ्वी को पर्वोपधी से हरीमरी करने वाली” ऐसे तैत्तिरीय ब्रा० ( ३.१.४.१. ) में कृत्तिका के नाम कहे ही हैं । तथा सलोम के संबंध में:— ऋक्षा या इय मलोम कासीत् । ततो वा इपमोपवी-भिर्वनस्पतिभिः सलोमका प्रजायत ( वै. ब्रा. ३.१.४.५ ) ऐसा कहा है । अर्थात् जहाँ तक वह नक्षत्र पर्जन्यारंभ का न हुआ था वहाँ तक उसे ‘आलोम का’ नाम से तथा आगे वहाँ पर्जन्यारंभ होने पर ‘सलोमका’ नाम से कहने लगे क्योंकि उस नक्षत्र में वर्षा का आरंभ होनेसे पृथ्वी ओपधी एवं वनस्पतियों से हरी भरी रोम = ‘लोम’ सहित हो जाती थी । अतः जब कि दक्षिण परम क्रांति के काल को उक्त प्रमाण में विपत्तिवलोमा बताया है और प्रस्तुत प्रमाण में उत्तर परम क्रांति के काल को सलोमका बताया है । तथा शतपथ में कृत्तिका को ‘सलोम’ कहा है । इससे सिद्ध होता है कि जैसे वर्तमान में आर्द्रा नक्षत्र के आरंभ ( ६७°=आर्द्रा + २३ अयनांश=९० अंश यानी उत्तर परम क्रांति स्थान ) पर अर्थात् २२ जून के बाद के काल में पर्जन्य ( वर्षा ) का आरंभ समझा जाता है वैसे उस काल में कृत्तिका नक्षत्र पर पर्जन्यारंभ माना जाता था ।

## विधान ७५

दूसरा प्रमाण ये है:—“एकं द्वेत्रीणि चरवारीति वाऽअन्यानि नक्षत्राण्येता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिका स्तद्भूमान भवेत्तदुपैति तस्मात् कृत्तिका स्वाधीत ॥ २ ॥ (श. ब्रा. २.१.२) अर्थ:—“अन्यान्य नक्षत्र पुंज के बारे एक दो तीन एवं चर तक हैं। और इस कृत्तिका पुंज के बहुत यानी सात तारे हैं। इसलिये कृत्तिका में आधान करने वाले को बहुत सी बातें ज्ञात होकर श्रेयस् की प्राप्ति होता है ॥२॥ इससे स्पष्ट मालूम होता है कि; शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथों के निर्माण काल के पूर्व संहिता काल में ही १७ नक्षत्रों के तारों की संख्या व आकृतियां आदि निश्चित हो गई थीं; केवल फर्क इतना ही था कि संहिता काल में नक्षत्रों को उनके देवताओं के नाम से कहते थे। और ब्राह्मण काल में नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम से कहने लगे क्योंकि तैत्तिरीय संहिता (४.६.१०) में तथा तै. ब्राह्मण (१.५.१, २.१.१-२) में सत्तावीस नक्षत्रों के देवता व नक्षत्रों के अनुक्रम बार नामों की तारा संख्या आदि का कुल वर्णन योग्यरीति से उपलब्ध होता है। दूसरे में यद्यपि वैदिक ग्रंथों में अग्निजीतवेदा, मरताग्नि, कपिलाग्नि, वैश्वानराग्नि अदि विशेषणों युक्त कई अग्नि के नाम आये हैं वह कृत्तिका नक्षत्र देवता अग्नि के पुंज से भिन्न तार का पुंजों के उपलक्ष्य के ह। किंतु जहां एक केवल अग्नि का ही नाम आया है। वह सब वर्णन कृत्तिका नक्षत्र के संबंध का ही कहा गया है। अतः तैत्ति. ब्रा. (१.५.७.१०) में “अग्निर्मूर्धा, दिव ककुत् । पति पृथिव्याअयम् । अपारेतांसिजिन्वति । + दिविर्मूर्धानं धिपेसुवर्षाम् । ” “ककुदमितिमहन्नाम” निघं. (३,३,१९) अर्थात् “यह अग्नि यों लोक का मूर्धा=मध्य का उच्चा स्थान (ख स्वतिक) रूप। और पृथ्वीतापति = अभिमुख स्थान का रक्षक है। इसलिये पर्जन्य की वर्षा को बुलाता है। क्योंकि यह यों का मध्य स्थान सृष्टि का धारक है” इस कथन से तथा शत. ब्रा. (७,४,२,५९) के समर्पण से निश्चित होता है कि उस (ब्राह्मण) काल में अग्निदेवता= कृत्तिका नक्षत्र; उत्तर परम ऋति में स्थित होकर; शत पथ के स्थल से ख स्वतिक में उपस्थित होता हुआ दुःखः ११८५८८८. रूपियों को प्रत्यक्ष दिखता था। क्योंकि पूर्वे प्रमाण में कृत्तिका को ‘सलोम शिला रूप कहा है। और यहां अग्निदेवता को मूर्धा, पौलोंक का ककुद एवं सुवर्षा को बुलाने वाला कहा है।” सो दोनों प्रमाणों के स्वरूप एक वाक्यता से; उक्तार्थ ही निश्चित होता है।

## विधान ७६

तिसरा प्रमाण ये है:—“एता ह वै प्राच्ये दिशो न चवन्ते । सर्वाणि ह वाऽमन्यानि नक्षत्राणि प्राच्ये दिशश्चवन्ते । तत् प्राच्या भवास्त्येतदिश्यादिवौ भवतस्त्वस्मात् कृत्तिका स्वाधीत ॥ ३ ॥” [श. ब्रा. २.१.२] अन्वयार्थ:—“ (अन्यानि सर्वाणि

नक्षत्राणि) और सब छन्वीस नक्षत्र ( ६ ) प्रत्यक्ष में ( वै ) निधित रूपसे ( प्राच्य दिशः ) प्राची दिक्सूत्र से ( व्यवन्ते ) च्युत हो जाते हैं यानी दक्षिण के तर्क डल जाते हैं । ( वै ) किंतु ( एताः ) यह कृत्तिकाएं ( ८ ) प्रत्यक्ष में ( प्राच्य दिशः ) पूर्व दिक्सूत्र-सम मंडल-से ( न व्यवन्ते ) च्युत नहीं होती हैं । किंतु ( प्राच्या एव ) पूर्व में ही ( अस्य ) इसके ( एत-दिशि ) इसी प्राची दिक्सूत्र में ( तत् ) कृत्ति का और अग्नि यह दोनो ( आहितो ) एक-कालावच्छेद में उपस्थित मात्र [ भवतः ] हो जाते हैं । ” अर्थात् शतपथ के प्रस्तुत प्रमाण में ‘ कृत्तिकाओं का पूर्व दिशा में उदय होता है ’ ऐसा कहा न होकर ‘ अन्य सब छन्वीस नक्षत्र तो प्राची दिशा से व्यवित हो जाते हैं केवल एक कृत्तिका नक्षत्र व्यवित नहीं होता एवं वह ( कृत्तिका ) और अग्नि का तारा, यह दोनो एककालावच्छेद में प्राची दिशा में उपस्थित मात्र हो जाते हैं ’ ऐसा लिखा है । इससे प्राची दिशा का अर्थ ख स्वस्तिक से पूर्व दिक्सूत्र [सम मंडल] हो सकता है । पूर्वं क्षितिज बिन्दू नहीं । तथा यह निर्णय देखने ( वेध लेने ) वाले के अक्षांश के अनुसार व ज्योतिः के क्रांति के द्वारा उसके उदय से लगा कर पाम्पोत्तर अंघन ( मध्याह्न ) काळ तक हो सकता है ।

### विधान ७७

सर्व साधारण विद्वानों का ज्ञात होने के लिये निम्नांकित कोष्टक द्वारा इस विषय को स्पष्ट करके बताया है:—

अक्षांश ३५ उ० शतपथ के स्थल पर तारे आदि के दृग्गोचर होने वाले उन्नतांश और दिगंश

चारांश	नक्ष	उत्तर क्रांति ५ अंश		उ. क्रांति १५ अंश		उ. क्रांति २५ अंश		उ. क्रांति ३५ अंश	
	कालांश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश
उ =	उत्तर		दिशा		दिशा		दिशा		दिशा
द =	दक्षिण								
उदय	०° ०'	उ. १° १'	०° ०'	उ. १८° २५'	०° ०'	उ. २१° ४'	०° ०'	उ. २४° २५'	
१०	२ ५३ उ. ४ ६	८ ३३ उ. १३ ३३	१४ १	उ. २० ५५	१९ १३	उ. २१ ५			
च्युत	७५	१५ ८	६. ४ ३४	२० ४१ उ. ४ १३	२५ ४५ उ. १३ ३६	३० १०	उ. १३ ४६	१० १०	उ. १३ ४६
च्युत	६०	२७ १६	६. १३ ५६	३१ ५८ उ. ४ २५	३८ २ उ. ४ १	४१ ३९	उ. १८ २०		
च्युत	४५	३८ ४१	६. २५ ३३	४२ ४ ६. ३४ ४५	५० ४ १ ५०	५३ २१	उ. १३ ४६		
	३०	४९ १०	६. ४१ ०	५३ ११	६. ४१ १५	५५ १५	उ. १३ ४६		
	१५	५९ ५०	६. ४१ ३७	५५ ५३	६. ५३ १७	५७ ५७	उ. १३ ४६		
अच्युत	मध्याह्न	६० ०	६ २० ०	५० ०	६ १० ०	८० ०	६ २० ०	५० ०	६ २० ०

पूर्व दिगंश (०-१०) सम मंडल में अनेक समय के समशंकु और नत कालांश

पूर्वादिपद	पूर्वादिक्	समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश	
	सूत्र	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क
		८	४४	८९	५०	२६	३९	१७	३१	४७	२८	४८	१४	१०	०	०	०
सार		च्युत = ५°				च्युत = १५°				च्युत = २५°				अच्युत = ३५°			

### विधान ७८.

जबकि प्राचीन वस्तु संशोधकों ने एवं इतिहास के तत्त्वज्ञों ने वेद कालानि ऋषियोंके निवास स्थल को भारतवर्ष के उत्तर में अक्षांश ३५ के निकट का बताया है। और शतपथ ब्रा. ( १.३.३-१७ व १.६.३.६ ) में कुबक्षेत्र, कोसल व विदेह देशोंके उत्तर में उक्त अक्षांश ३५ के निम्न का स्थल कहा गया है। तब निःसंदेहतापूर्वक निश्चित होता है कि शतपथ का स्थल अक्षांश ३५ का प्रदेश था। इस स्थल से उत्तर क्रांति ५।१५।१५।३५ वाले तारों के उदयास्त के समय तथा यागोत्तर लंघन के समय; कितने उन्नतांश व दिगंश होंगे और वह कितनी उंचाई व नतकाल पर प्राची दिक्सूत्र सम मंडल-में आवेंगे सो गणित करके उपर्युक्त कोष्ठक में बता दिया है। इससे आपको मालूम हो जायगा कि उत्तराक्षांश प्रदेश में उत्तर क्रांति वाले तारों का अत्राके दिगंशोंपर उदय होकर, अक्षांश में कम क्रांति वाले तारे ऊंचे आने पर प्राची दिक्सूत्र में आए बाद दक्षिण के तर्क द्युवित हो जाते हैं अतएव वैदिक ग्रंथों में इन तारों को च्युत कहते थे। तथा जिनकी क्रांति अक्षांश से अधिक थी वह ऊंचे आने पर प्राची दिशा के तर्क आते हैं। किंतु च्युत हुए बिनाही वृत्तस्थित के उत्तर की ओरसे घूमने हुए पश्चिम के तर्क चले जाते हैं। और जिनकी क्रांति अक्षांश के बराबर है वह मध्याह्न में वृत्तस्थिक पूर्वापर दिक्सूत्र के ठीक १ मध्यमें उपस्थित मान हो जाते हैं। अतएव यह तार अच्युत कहते हैं। जैसे कि उत्तराक्षांशसे श्रवण नक्षत्र की उत्तर क्रांति अधिक होनेके कारण वैदिक ग्रंथों में श्रवण की देवता विष्णु का नाम अच्युत और अशोषज कहा गया है सो इसी आधार से है।

### विधान ७९

हालां उपो. केतकरजी प्रभृति आधुनिक विद्वानों ने अच्युत का अर्थ ठीक पूर्व दिशा में उदय होना कल्पितकर कृतिका पुंज को विषुववृत्त पर बतलाने के लिये रोहिणी नक्षत्र

[(६९°-२२° अयनांश = ४७° अंश, पर और कुछ विद्वानों ने कृत्तिका नक्षत्र पर ही अयन संपात को मानकर उपर्युक्त काठ बतला दिया है। लेकिन शतपथ में तो एक कृत्तिका को ही अच्युत बतलाकर कुल २६ नक्षत्रों को च्युत (च्युत) बताया है। और गणित में पता चलता है कि उस समय एक कृत्तिका ही नहीं और भी ५ नक्षत्र विपुवृत्त पर थे इस लिये उनका उदय भी ठीक ठीक पूर्व दिशामें होता था। इसका सही कारण:—

अयनांश+४७° व रवि परम क्रांति १४ द्वारा विपुवृत्तिय और अक्षांश ३५ के निकट में  
च्युत व अच्युत नक्षत्र

कोटक	नक्षत्र व तारों के नाम	कदंब भोग	शर	सायन भोग	विपुवांश	क्रांति
च्युत (च्युत) नक्षत्र व तारे	विपुवृत्तीय नक्षत्र पुंज	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
	कृत्तिका (ईटाटारी)	३६ ९+४	२ ३४९	१ ३४८	२७-०	४२
	रोहिणी शक्राग्रिम (टाऊटारी)	४८ ४९-०	४३ १४९	१ ५७+	०	५
	भरणी (४१ एरिस) केतकरांत	२४ २२+१०	२७ ३३७	२६ ३११	१२+	० ४१
	अनुराधा (डेल्टा एरिफि.)	२१८ ४४-१	९८ १७१	४४ १७१	४५-१	३२
	मघा (दक्षिण पुनर्वसु)	९२ ९-१९	५१ ४१	० ४६	३९-१	३३
अच्युत (अच्युत) नक्षत्र	हस्त (बीटा कास्टी)	१७३ ३२-१८	१ १२६	३२ १२४	२९-१	३३
	सं स्वस्तिक में आने वाले नक्षत्र	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
	पूर्वा फाल्गुनी (थीटालिओनिस)	१३९ ३४+९	४२ ६२	३४ ९३	३+३३	४१
	ऊर्वा फाल्गुनी (डेनियोडा)	१४७ ४७+१२	१७ १००	४७ १०३	१+३९	४७
	सं स्वस्तिक से बचती नक्षत्र	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
	श्रवाती (आर्कटयूरस)	१८० २४+३०	४९ १३३	२४ १४८	२८+४६	१२

उक्त कोटक से ज्ञात होगा कि कृत्तिका, रोहिणी की मन्त्राग्रिम, भरणी, अनुराधा, पुनर्वसु और हस्त; यहनभूत विपुवृत्त पर होने से यद्यपि पूर्व दिशा में दृश्य होने से विपु दो घंटे मिनट के बाद ही पर दक्षिण के तर्क ध्रुव हो जाते थे। यद्यपि कोई भी

तारा उदय होकर कुछ ऊंचा आये बिना क्षितिजपर दिख सकता नहीं है। इस में भी कृत्तिका पुंज के तारे सान चार वर्ग के होने से उदय हुए बाद कम से कम १२ मिनिट के ऊपर नेत्रों से दिख सकते हैं। तो इतने में ५।७ अंशों का दिगंशोंमें ऊनताशों में कर्क आना स्वभाविक है। इसलिये “कृत्तिका येद पूर्वस उगवत असत ही प्रतभ्र पाहिलेडी गोष्ट आहे.” ऐसा विधान ७३ में कहा हुआ केतकरजी का कथन और अनुमान साथ कैसे हो सकता है। शतपथ में सिर्फ एक कृत्तिका को ही अच्युत कहा है। किंतु पूर्व दिशा के उदय से अच्युत मानने में उक्त ६ नक्षत्र पुंज पूर्व में उदय होते थे सो उन सब को अच्युत मानना होगा तब इससे तो शतपथोक्त प्रणाम ही अच्युत हो जाता है।

### विधान ८०

इसलिये प्राचीदिवसूत्र-सममंडल-में आए बाद ही च्युत या अच्युत का निर्णय करना होगा। वह प्रस्तुत समय में ऐसे हो सकता है कि; अश्विनी, रोहिणी, शतभिषक, मृगशिरा, रेवती, आर्द्रा, ज्येष्ठा, मूल, व पूर्वाषाढा, इन नक्षत्रों की दक्षिणक्रांति होने से यह प्राची-दिवसूत्र में आए बिना ही च्युत हो जाते थे। तथा उत्तर पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा ध्रुवण, धनिष्ठा इनकी उत्तर क्रांति अक्षांश ३५ से कम होने से यह नक्षत्र सममंडल (प्राची दिशा) में आए बाद दक्षिण के तफ च्युत हो जाते थे। केवल पूर्वोक्ता-फल्गुनी पुज की क्रांति ३५ अक्षांश के निकट में होने से वह मघ्यान्ह के समय विधान ७७ के कौटुकोक्त कथन के अनुसार पूर्वदिवसूत्र में उपस्थित हो जाते थे। यानी च्युत नहीं होते थे। ऐसे ही शशी की क्रांति ४९ अंश उक्त अक्षांशों से उत्तर की होने से यह भी सममंडल में आए बिना ही मघ्यान्ह में भी ख स्वस्तिक से करीब ११ अंश उत्तर से ही मंडलाकार घूम जाती थी। और दक्षिण में च्युत नहीं होती थी। इससे निर्णय होता है कि इस समय सिर्फ दोनो फल्गुनी और स्वाती यह तीन नक्षत्र अच्युत थे बाकी दृष्टिकारि २४ नक्षत्र स्थित हो जाते थे। किंतु शतपथ में तो सिर्फ एक कृत्तिका को अच्युत और सब (छन्वीस) नक्षत्रों को च्युत कहे हैं। इससे प्रस्तुत काल में उक्त मगान की बिल्कुल ही संगति नहीं मिलने से स्पष्ट हो जाता है कि शतपथ का यह काल नहीं है।

## विधान ८१

प्रस्तुत प्रमाण वाक्योंका अर्थ सूक्ष्मगणितागतकालतियोंद्वारा तबतक हम सरलता से नहीं बता सकते; कि जब तक यह नबता दिया जाय कि; अन्य प्रमाणोंद्वारा शतपथका निर्माण काल क्या था। क्यों कि उसीके अनुसार नक्षत्रों की गतियों का साधन किया जा सकता है। और यह काल तत्कालीन वसंत संपात से ज्ञात हो सकता है। भेमे वेदकाल निर्णय ( पृष्ठ ४०, ५३, ५६) में शतपथ के प्रमाणों से और (पृष्ठ ३७-५७) में अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि शतपथ ब्राम्हण एवं संपूर्ण वैदिक काल में सवत्सर यज्ञों का आरम्भ वसंत संपात से ही होता था। तथा शतपथ के काल में सवत्सर यज्ञों का आरम्भ “तद्वै फाल्गुन्यामेवा एषाह संवत्सरस्य प्रथमारात्रिर्यत् फाल्गुनी पौर्णमासी ॥ १८ ॥ एतद्वै यैव प्रथमा पौर्णमासी। याप्रथमाष्ट कास्तस्यामुखा संभरति। याप्रथमा माघास्या तस्या वीक्षत एतद्वै यान्येव संवत्सरस्य प्रथमान्य हाति तान्यस्य तदारभते ॥ १॥ श० ब्रा० (६\*२\*१) इत्यादि प्रमाणों से निश्चित हो सकता है। जब कि पौर्णमान्तु फाल्गुन महाने की कृष्णअष्टमी, अमावास्या एवं पौर्णिमा में संवत्सरयज्ञ कियेजातेथे तब वसंतसंपातकी स्थिति भी फाल्गुन मास में ही थी। तथा शतभिषक् नक्षत्रपर सूर्यका संक्रमण उक्त फाल्गुन मास में ही आया करता है। तब शतभिषक् संपात काल में शतभिषय का निर्माण होना शब्द के यौगिक अर्थ से निर्णय होता है।

## विधान ८२

यहाँ और प्रश्न उपस्थित होता है कि ‘शतपथ का निर्माण काल गत शतभिषय संपात [ जो कि शक पूर्व २३००० वर्ष में हुआ था उस ] में हुआ है या उसके एक चक्र पूर्व के काल [ जो कि शक पूर्व ५४६९८ वर्ष ] में ? किंतु यह प्रश्न हिमालय की तम्राटीन बाढ़ अरण्या के और उसके निकट के उत्तर ममुद के वर्णन से ही हल हो जाना है। यह वर्णन शतपथ में इस प्रकार है।

“स औष उरियते नाव मापे दे, XXX से नैत मुचरं गिरि मति दुडाय, XXX या व वायदुदकं समयायात्, XXX वावत्तावदेवान्ववससर्पं। तदप्येत दुचरस्य गिरिर्मनो

रवसर्पण मिति श. ब्रा. [१६३६] इस कथन से ज्ञान होता है कि 'उत्तरगिरि के निकट में समुद्र का अस्तित्व था। कि जिसमें राजा मनु की नाव चलती थी। और उत्तरगिरि [हिमालय] उनका बंदरगाह था। और हिमालय इतना छोटा पर्वत था कि उस पर उस (अती शीत) काल में बर्फ नहीं गिरने के कारण उसका तब हिमालय नाम नहीं रखा गया था। तथा इस प्रकार का भी वर्णन उपलब्ध होता है कि:— "तर्हि विदेघो माधव आस सरस्वत्यां। सतत एव प्राङ् दहन्मीयायेमां पृथिवीम्, XX सङ्गाः सर्वाः नदी रविद-  
वाह सदानीरे श्युत्तराद्विरे निर्द्धावसिता है य नाति दवाह, XXX प्राचीनं भुवन मिति। संपाप्ये तर्हि कोसल विदेहानां मर्यादा तर्हि भार्यवाः ॥ श. ब्रा. [१३११०] उस समय विदेह [जनकपुर = दरभंगा] के माधव नाम के राजा थे। उन्होंने सरस्वती के तीरे पर आकर प्रत्यक्ष देखा उसका भावार्थ ये है कि; उस समय में ज्यादा सुखों का बड़ा भारी प्रकोप (परिस्फोट) हुआ था। उसीके द्वारा बहुतसी नदियां जल गई थीं सरस्वती भी जल गई थी। तब कोसल (अयोध्याप्रांत) और विदेह (जनकपुर दरभंगाप्रांत) इन दोनों देशों की सीमाकी दर्शनेवाली हिमालय से निकली हुई सदानीरा नामक नदी नहीं जमी थी। तथा इसी स्थल के और भी पूर्व कालिक वर्णन से एवं हमारे वेद काल निर्णय [पृ. ९-११] में दिये हुए प्राचीन भौगोलिक वर्णन व नकशों द्वारा पृष्ठ ३३९ में निर्णय किया है कि दो हजार ब्राह्मण ग्रंथों का काल शकपूर्व १॥ लाख वर्ष से शक पूर्व ५४ हजार वर्ष का है; इससे शतपथ का काल एक चक्र पूर्व के शतभिषक् संपात के समय [शकपूर्व ५४१९८ वर्ष] का होना चाहिये (क्योंकि शकपूर्व २३००० के करीब का तो गेड्युपनिषद् में और शकपूर्व २२०९० वर्ष में वेदांग उद्योतिष का निर्माण हुआ है। जो कि वेदकाल निर्णय [पृ. ९१८] में मैंने बता दिया है कि श्रौतसूत्रों के ११३१ ग्रंथ शकपूर्व ५४ से २३ हजार वर्षों में बने हैं। यही श्रौतसूत्र काल है। और श्रौतसूत्रों के पहिले ब्राह्मण-ग्रंथ (करीब २००० संख्या के ग्रंथ) बने हैं। अतः स्पष्ट होता है कि शतपथ का काल पहले चक्र के शतभिषक् संपात का मानी शकपूर्व ५४-५५ हजार वर्ष का है।

### विधान ८३

लेकिन यह मोटा हिसाब है। गणितागत सूक्ष्म हिमावसे इसकी एक वास्तवता करने में ही इसकी सत्यता एवं प्राप्ति सिद्ध हो सकती है; इसलिए, तथा शतपथ के प्रामुख्य प्रमाणों के भावार्थ को सरलता से समझने के लिये; 'तत्कालीन तारोंकी खगोलीय स्थिति को जानने का अवसर है। सो निम्नलिखित कोष्ठक में दोनो शतभिषक् काशीन और धानेष्टा काशीन, आकाश की स्थिति को देख करके बताते हैं।



## कोष्टक १ शतपथ ब्राह्मण द्वारा अच्युत और च्युत नक्षत्रों का तथा तारों का सापेक्षक.

नक्षत्र व तारों के नाम	शत पथ कि काल निश्चय में		(अ) शताभ्युपगम का अर्वाचीन काल				(ब) धनिष्ठाभ काल				(क) पूर्व शताभ्युपगम का काल	
	कदम भोग	घट उत्तर	सायन भोग	विषुवांश	क्रांति उत्तर	सायन भोग	विषुवांश	क्रांति उत्तर	विषुवांश	क्रांति उत्तर	अ. क.	म. क.
वसिष्ठस्तुति	१५१	५१	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
अभिजित् (बिहीमा)	२६१	२८	६१	४४	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
कृत्तिका (ईटादारी)	३६	१४	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
मरीचि स्वस्त्युप	१५३	५	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
(अश्वि नाथ) का ता.	५८	४४	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
अश्विनी (श्या. पं.)	६	४	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
उषा भाद्रपदा	३४५	१९	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
पूर्वा भाद्रपदा	३३०	४२	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
रोहिणी (आति.)	४५	५७	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
धानिष्ठा (आति.)	२९३	३३	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
मार्गशीर्ष (आति.)	२४४	४०	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
पुनर्वसु (पौलवस.)	८९	२४	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
मृगशीर्ष (लो. ओ.)	५९	५२	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
श्रवण (आति.)	२७७	५५	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
आर्द्रा (आति.)	६४	५५	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६
स्वाती (आति.)	१८०	२४	१५५	४२	४५	१५५	४२	४५	२२६	४२	२३९	३६

कोष्टक २ (क) सदस्यी प्राप्तिसे अच्युत और च्युत नक्षत्र.  
उत्तर अक्षांश ३४°५७' = शतपथ के स्थलपर दृगोच्च होनेवाले उन्नतांश और दिगंश:—

हस्त नक्षत्र		मार्गचि मसर्गि		अग्नि ( भरतोर्ध्वताप )		अश्विनी नक्षत्र		उत्तरा भाद्रपदा न.	
क्रांति ३४।५७		क्रांति ३४।९		क्रांति ३३।३४		क्रांति ३३।२० A		क्रांति ३०-१५.	
उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश
अ. क.	अ. फ.	अ. क.	अ. फ.	अ. क.	अ. फ.	अ. क.	अ. फ.	अ. क.	अ. फ.
० ०	३.४४ २०	० ०	३.४३ १४	० ०	३.४२ २५	० ०	३.४२ १६	० ०	३.४७ ५५
०५	३.१६ ८५	८ २४	३.३६ ६	८ ३	३.५ १७	७ ५४	३.५ २६	१ ३	३.२ ५७
१०	३.२९ ४९	१८ ४५	३.२९ ५	१८ २८	३.२८ ३२	१८ २१	३.२८ २०	११ ४६	२.५ ३३
१५	३.२३ ४१	२९ ४९	३.२२ ५३	२९ ३४	३.२२ १७	२९ २८	३.२२ २	२८ ९	२.८ ५१
२०	३.१८ १७	४१ २१	३.१७ १८	४१ १०	३.१६ ६	४१ ५	३.१६ १६	३१ ५९	२.२ २९
२५	३.१३ २१	५१ १५	३.१२ २	५१ ६	३.११ १७	५३ २	३.१० ४६	४२ ७	२.५ ५३
३०	३.८ ४७	६५ २२	३.६ ५४	६५ १६	३.५ १७	६५ १३	३.४ ४५	६४ २४	२.१ २६
३५	३.४ १९	७७ ३८	३.० ५१	७७ ३२	३.२ ३२	७७ २९	३.३ ५०	७६ ३२	१.६ १५
४०	३.० ०	८९ १२	३.९ ०	८८ ३७	३.९ ०	८८ २३	३.९ ०	८५ १८	३.९ ०

पूर्व दिगंश ( ०।० ) समबंधनः पूर्वदिक्स्मृतं मे आने के समय के समबंधकु और नत कालांश.									
मम	मम शंकु	नत काळांश	सम शंकु	नत काळांश	सम शंकु	नत काळांश	सम शंकु	नत काळांश	पूर्व
मंश	९०'१०'	०'०'	७८'१२०'	१३'५४'	७४'१४७'	१८'४६'	७३'३५'	१९'४८'	३३'१२७'

॥ क्षादिता पुत्र के पीडा, ग्यास, और स्मू पेरिटि इन तान तारों में कथ का ग्यामा पेरिटि लिया है ।



## विधान ८४.

उपर्युक्त पहले कोष्ठक के ( अ ), ( ब ) और ( क ) समय में प्रो० लिबरियर सारणी से रवि परम क्रांति २६°१४५', ३०°१४४' और ३०°१५५' आती है। सो ( ज ), ( क ) कालमें लिखी है। किंतु प्रो० हर्शल साहबने इसको ( २२-२४ अंशोंके अंदर ) आंशोलन गति कही होने से चाहे जिस ( ब ) ( क ) आदि चक्रमें करीबन यही परमक्रांति आती है। इसलिये ( अ ) समयकी प० क्रांति प्रो० लिबरकीन्हों लेकर प्रकारांतर के परिमाण ज्ञात होने के उद्देश से प्रो० हर्शल साहब की २४ अंश भित लेकर ( अ ) सदर के विषुवांश क्रांति इसीके द्वारा साधन किये हैं। ( अ ) और ( क ) सदर के अयनांश-५३।११ एक ही होमेसे ( अ ) सदर के सायनभोगही ( क ) सदर के सायनभोग हैं। इसलिये ( क ) में सा० भोग लिखे नहीं हैं। दूसरे कोष्ठक में ( क ) सदर के नक्षत्रों की क्रांति के अनुसार तथा शतपथ के स्थल के ( कृत्तिकाशर ( ४°।२' ) + रवि परमक्रांति = ) अक्षांश ३४।५७ लेकर उनके उन्नतांश, दिगंश और पूर्वदिशा ( सम् मंडल ) से दक्षिण के तर्क व्युत होनेके नतकालांश लिख दिये हैं। अब जब इन कोष्ठकोंमें लिखी नक्षत्रोंकी क्रांति को देखते स्पष्ट रीतिसे ज्ञात हो जाता है कि ( ब ) समय में कृत्तिकाकी क्रांति ३३°।५९' से आश्विनी, पूर्वा चराभाद्रपदा व भरणी की क्रांति अधिक होकर शतपथ स्थल के निश्चित किये हुए अक्षांश ३५ से भी अधिक है। इसलिये आश्विनादि नक्षत्र अघ्युत और कृत्तिकादि व्युत निश्चित हो जाते हैं। तथा उक्त शतपथोक्त बातोंकी संगति इसे कालमें मिलती नहीं है। इसलिये ( ब ) काल शतपथ का नहीं है। ऐसे ही ( अ ) काल में सब २७ नक्षत्रों में कृत्तिका की क्रांति २८।२ अधिक है। यानि सप्तर्षि और अभिजित् के तारे जोकि २७ नक्षत्रों में नहीं हैं उनके अतिरिक्त कोई नक्षत्र की क्रांति कृत्तिका से अधिक नहीं है तब कृत्तिका क्रांति तुल्य शतपथ के अक्षांश ( २८।२ ) मानलेनेपर “ सब नक्षत्र पूर्व दिशा से व्यवित हो जाते हैं एक कृत्तिका नक्षत्र व्यवित नहीं होवा है ” ऐसा उक्त ३ प्रमाणोंका वर्णन यद्यपि ( अ ) कालीन स्थिति से मिलता है। किंतु अक्षांश २८।२ शतपथ स्थल के हो नहीं सकते। क्योंकि कि उसमें कुरुक्षेत्र के उत्तर का वर्णन पाया जाता है। दूसरेमें आगे लिखे प्रमाणोंमेंभी इसकी संगति मिलती नहीं है। इसलिये तथा ( क ) सदरकी क्रांति को देखते सब प्रमाणोंकी संगति मिलती है। इसलिये शतपथ का स्थल ( अ ) समय न होकर ( क ) समय का है।

## विधान ८५.

येथा प्रमाण ५३ दे:— “ अय यस्मात् कृत्तिकाम्वादधीत । क्रक्षाणां २६ वा ऽप्या अमेवत्य आनुःसमः स्यात् । इम वैपुरःशो इत्याचक्षते वा मिथुनेन व्याध्यंतामो

द्युत्तराहि सप्तऽर्षय उद्यन्ति पुरएता अशामिव वै तद्यो मिथुनेन वृद्ध.म नेन मिथुनेन  
 वृद्धऽइति तस्मान्न कृत्तिका स्वादर्धीत ॥ ४ ॥ [ श, जा, २. १. २. ] अर्थः—“ यदि वह  
 कि कृत्तिकामें अग्न्या धान करना योग्य नहीं है क्योंकि ( अग्ने ) पहले ( एताः ) पट्टनीकाके  
 ७ तारे ( दृ ) प्रसिद्ध तौरसे (क्षेत्राणां ) सातों ऋषियोंके ७ तारों की ( वै ) मिथ्य  
 करके ( पत्न्यः ) यज्ञ प्रयोगमें संयोग पाने वाली पत्नियोंके रूपमें (आसु. ) हो गई थी ( उ )  
 इसीलिये ( सप्तऽर्षय ) सातों ऋषियोंके तारोंके ( हस्म ) प्राचीन कालमें ( वै ) मिथ्य  
 करके यह ( पुरऽर्क्षाः ) पूर्व दिशामें आने वाले तारे हैं ( इति ) ऐसा ( आचक्षते )  
 ज्योतिष के वेदज्ञ— तत्त्ववेत्ता—लोग कहते हैं। किंतु वर्तमान में ( ताः ) वह  
 कृत्तिकाएं ( मिथुनेन ) ऋषियोंके जोड़ेसे ( व्याध्यन्त ) बिछड़ गई हैं ( हि )  
 क्योंकि अब तो ( अमीः ) यह ( सप्तऽर्षयः ) सप्तर्षियोंके तारे ( उत्तराः ) उत्तर  
 दिशाके ( हि ) तर्क के ( उत् ) विभाग—बगल—से ( यन्ति ) जाते हैं। और ( एता. ) यह  
 कृत्तिकाएं ( पुरः ) पूर्व दिशामें उपास्थित होती हैं ( तत् ) सो यह ( वै ) तो ( अशं )  
 सुखकारक नहीं ( इव ) ऐसा होता है इसलिये ( यः ) जो मक्षत्र (मिथुनेन) जोड़ेसे ( वृद्ध )  
 युक्त रहा नहीं है ( सः ) वह ( मिथुनेन ) जोड़ेसे ( वृद्धे ) वृद्ध के लिये ( न इत् ) ठीक  
 नहीं ( इति ) ऐसे ( तस्मात् ) कारणसे ( कृत्तिकासु कृत्तराओंमें ) ( न आदर्धीत )  
 आधार नहीं करे ” ॥ ४ ॥ इस प्रकार के कथन की संगति उक्त कोष्टक १ के ( क )  
 सदर में लिखी हुई मरीचि से वसिष्ठ ऋषिकी उत्तरक्रांति ३४°१९' से ३९°३९' के अतर्गत  
 कृत्तिका क्रांति ३४°५७' आनेसे बिल्कुल बराबर मिलती है किंतु ( व ) सदर में लिखी  
 उक्त ऋषियोंकी क्रांति ३९°२६' से ४४°२५' के किन्नर परमक्रांति २६°५९' द्वारा साधित  
 क्रांति के अतर्गत आती नहीं है इसलिये स्पष्टरीतिसे ज्ञान होजाता है कि ( अ ) और ( व )  
 समय में शतपथका काल न होकर / क ) समय का है। यानीं शकपूर्व ५४६९८ वर्ष में  
 शतपथका निर्माण हुआ ऐसा निश्चित होता है।

तारी = नाथ B. Taari ) तारे को प्राचीन और सिद्धान्त ग्रंथों में अग्नि के नामसे कहा है ( उपर्युक्त को. १ देखिये ) इनके भोगों में २२. ६ अंशों का सापेक्षांतर है । इससे विषुव वृत्तिय कृत्तिका के समय में अग्नि की उत्तर क्रांति ९-१० अंश होनेसे इसकी कृत्तिका के साथ जोड़ी बनती नहीं है । यानी इसकी केतकरादि के कहे काल में संगति मिलती नहीं है; क्योंकि न तो इस समय में कृत्तिका और अग्नि की समान क्रांति होती है और न यह दोनों तारका पुंज एक कालावच्छेद से ठीक पूर्व दिक्सूत्र में आते हैं । किंतु धनिष्ठा से शतभिषक् संपात पर्यन्त में इनकी क्रांति; स्वल्पान्तर ( १°१२' ) से समानता में आती है । और उक्त ( १ कोष्टक के ) ( क ) सदर में लिखे इन दोनों के विषुवांशंतर ( २७°१९' ) के प्रस्तुत अक्षांश ३४।५७ द्वारा निम्नलिखित समीकरणोंक्त गणित करने से:—

$$\text{क्रांति को० स्पर्श रेखा} = \frac{\text{अक्ष को० स्पर्श रेखा}}{\text{नत कालाश कोज्या}} = \text{घा०} \frac{१०.२५५५८०२}{१०.२०६९३०६} = \text{समानता होने की क्रांति } ३१.३०$$

ज्ञात होता है कि उस काल में कृत्तिका के खखस्तिक में आने के समय में अग्नी का तारा भी पूर्व दिशा में आता था । यह समानता जोभी कृत्तिका की एक योग तारा से एक दो अंशान्तर की प्रतीत होती है किंतु ग्रथ में पुंज के उपलक्ष्य की वही होने से पुंज से वाग्र मिलती है । और स्थल के विस्तार में एक दो अंशान्तर के अक्षांश होने से अग्नि की क्रांति ( ३३°१४' ) प्रस्तुत गणितगत क्रांतिसे ( ३१.३० ) = ( २°१४' ) जो ऐसा स्वल्पान्तर आता है सो उपेक्षणी है । इस लिये इस ( क ) समय में दोनों प्रकार से अग्नी के साथ कृत्तिका की जोड़ी फाल्गुन मास में सायकाळ के समय प्रत्यक्ष दिखती थी । इससे तथा उपर्युक्त चारों प्रमाणों की एक वाक्यता से निःसंदेहता पूर्वक सिद्ध होता है कि 'उयो' केतकर प्रभृति आधुनिक विद्वानों का कहा हुआ ( शत पथ के ) प्रमाण का अर्थ और ( तदनुसार ) कहा हुआ काल गलत है तथा ( क ) सदर में लिखा हुआ शक पूर्व ५४६९८ वर्ष का शतपथ का काल सिद्ध होता है ।

### विधान ८७

प्रस्तुत ब्राह्मण मंथोक्त ज्योतिः शास्त्रेतिहास को, भारथ और पुराण ग्रंथकारों ने भी संग्रहीत किया है । उसमें से कुछ भाग को ज्यो. दीक्षितजी ने भारतीय ज्योतिः शास्त्र ( पृष्ठ ११० ) में उद्धृत करके उसके अर्थ के संबंध में निम्न टिप्पिग अपने मात्र प्रगट किये हैं सो इस प्रकार है:—

“अभिजित् स्पर्धमानानु रोहिण्या कन्यमी स्वमा ॥ इच्छन्ता ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तु वने गता ॥ ८ ॥ वर मूढोऽसि भद्रते नक्षत्र गगनाच्छ्रुतम् ॥ फाल्गुनं दिवं परं

स्कन्द ब्रह्मणा सह चिंतय ॥ ९ घनिष्ठा दिस्तदा कालो ब्रह्मणा परि कल्पितः ॥ रोहिणी त्वभवत्पूर्वमेवं संख्या समाभवत् ॥ १० ॥ एवमुक्ते तु शक्रेण त्रिदिवं कृत्तिकागताः ॥ नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वन्दि देवतम् ॥ ११ ॥ (भारत वन पर्व अ. २३०) "स्कन्दाख्यानांत ही वाक्यें आहेत. एकंदर वाक्यां चा सर्व भाग्यार्थ नाट ससजत नाही । अभिजित्, धनिष्ठा, रोहिणी, कृत्तिका त्या नक्षत्रां संबंधे निरनिराळ्या कथा चालू असलेल्या यांत गोंवलेल्या दिसतात. या मुळें त्यांचा पूर्ण संबंध कळत नाही. धनिष्ठादि काल ब्रह्मदेवानें कल्पिला असें झटलें आहे, त्याची उपपत्ति स्पष्ट आहे. त्या पुढेंच 'पूर्वी रोहिणी होता' असें म्हटलें आहे. या वरून रोहिण्यादि गणना कधी होती तीस अनुसरून तें झटलें आहे कीं काय नकळे. अभिजित् नक्षत्र आकाशांतून पडलें ही यांतील कथा महत्त्वाची आहे. अभिजित् नक्षत्राचा शर सुमारे ६१ अंश उत्तर आहे. तें पृथ्व स्थानी आलें म्हणजे फार खाली आलेंच. त्या संधीस तें कधी कधी क्षितिजापर्यन्त ही येऊ शकेल. X X "कृत्तिका आकाशांत गेल्या" असें झटलें आहे. त्याचा संबंध कळत नाही. " इस तरह अर्थ के संबंध में आपने गोलमाळ ही कहा है, अर्थात् मुख्यार्थ नहीं समझने से कोई भी निश्चित बात लिखी नहीं है । लेकिन यह सब श्लोक बड़े महत्त्वार्थ को लिये हुए हैं ।

### विधान ८८

इस श्लोकों के अर्थ को बताने के पहिले अभिजित् की निजगति का संस्कार देकर उसके शुद्ध परिमाणों को बनाना आवश्यक है । नक्षत्र विज्ञान ( पृ. ३२ ) में उ०० केतकर ने उ० पृथ्व से दिग्गंश ३४ पर ०.३६ विकला प्रति वर्ष अभिजित की निजगति लिखी है । उसको कदंब सूत्रीय करके प्रस्तुत काल के संबंध में निम्नलिखित परिमाण निश्चित होते हैं ।

### कोष्टक १ का परिशिष्ट.

निजगति संस्कृत अभिजित् के शुद्ध परिमाण			अभिजित् और कृत्तिका का क्रान्तिंतर			
उक्त कोष्टक १ का	(ब) घनिष्ठादि काल	(क) शतभिष-काल	परिशिष्ट	(अ)	(ब)	(क)
परिशिष्ट	अं. क.	अं. क.	को १ का परिशिष्ट	अं. क.	अं. क.	अं. क.
नाक्षत्र भोग	२६५ २०	२६५ २५	अभिजित् क्रान्ति	४१ १७	३८ ५८	३५ ४५
सायन भोग	३३२ ०	३३२ ३६	निज गति संस्कार	-३ १६	-२ ५७	-३ ०
उत्तर शर	५६ ५१	५६ ४५	अभिजित् शुद्ध क्रान्ति	४२ १	३६ १	३२ ४५
विषुवांश	३०६ ३९	३०९ २५	कृत्तिका क्रान्ति	२८ २	३३ ५६	३४ ५७
उत्तर क्रान्ति	३६ १	३२ ४५	अभिजित् क्रान्तिंतर	+१२ ५९	+३ १५	-९ ११

## विधान ८९

इससे गणित द्वारा निश्चित होता है कि शक पूर्व ५४०९२ वर्ष में अभिजित् और कृत्तिका की १४'१२' समान उत्तर क्रांति होगई थी और (ब) तथा (क) काल में करीबन दोनों की क्रांती समान दिखती थी और (अ) काल में १३ अंशांतर पर थी। तथा उपर्युक्त श्लोको का ऐसा अर्थ होता है कि:- “ (रोहिण्याः) रोहिणी नक्षत्र की (कन्यसी-स्वसा) कन्या के तुल्य कनिष्ठ प्रति के तारका पुज वाली छोटी बहिन (देवी) कृति का नक्षत्र (उपेष्टतां इच्छति) सब २७ नक्षत्रों में मैं ही एक ऊंची बड़ी हो जाऊ ऐसी इच्छा करती हुई (अभिजित् स्पर्धमाना) सब नक्षत्रों में उत्तर क्रांति वाले अभिजित् नक्षत्र को भी जीतकर उससे भी मैं बड़ी हो जाऊँ ऐसी स्पर्धा करती हुई (तपस्तप्तुं) तपसि= माघ महाने में तपने के लिये यानी सब से बड़े दिनमान का रूप धारण कर बहुत देर तक प्रकाशित रहने के लिये (वनंगता) “ व रिसालं कमलं वनं, गजवन्धनभुवपि” ‘वनं प्रसू-पेगेहे प्रवासोभसि कानन इत्यमरहेमौ’ उत्तर परम क्रांति एवं पर्जन्य नक्षत्र के स्थान पर पहुँच गई। और अभिजित् को भी लांघकर स्वस्तिक स्थान में आने लग गई (तत्र) वहाँ (भद्रते) परमापक्रम स्थान के भद्रान्त पर जाने से (मूढोऽस्मि=मूढाऽऽसीत्) उसका इरादा ढल गया। (नक्षत्रं गगनाच्युतम्) इधर अभिजित् नक्षत्र का भी गगन [स्वस्तिक] से पतन हो गया था। [कालं चिंतय] इस तरह ब्रह्मा [अभिजित्] के व्युत्पत्ति के माथ में कृत्तिका के भी स्मृति होने के आरंभ के इस कालको परमस्कंद का बाल समस्तो ॥ ५ ॥ (घनिष्ठादि सदाकाल × परिकल्पितः ॥) ब्राह्मण ग्रंथकारों ने इस काल को घनिष्ठादि (संपातका) काल कहा है ॥ (रोहिणी × समाभवत् ॥ १० ॥) इससे पूर्वकाल में इसी स्थान (मुज ९० अंश) पर रोहिणी (नक्षत्रविभाग) आई थी। अब उसी संख्या के समान कृत्तिका आई है ॥ १० ॥ (एवमुक्ते तु × कृत्तिकाभिदिबंगता) जब इन्द्र ने कहा सब कृत्तिका त्रिदिन (सम्पात से ९० अंश = तीन राशि) पर चली गई थी। [नक्षत्रं + वह्निदेवतम्] और अब भी ‘निसका देयता आग्रा है’ उस प्रकार ताँगे का ‘स्तशिर’ स्तर का [कृत्तिका और उसके उत्तर में रुद्र नामक] तारका पुंज स्वस्तिक व उत्तर ५२ प्रदेश में ही दिखाई देते हैं।

ऐसा इन श्लोकों का अर्थ है।

## विधान ९०

प्रस्तुत अर्थ की उपपत्ति और गणितागत तारों की क्रांति में इसकी संगति; किमी व किम कालकी निश्चित होती है, यह परिणित कोष्टक (नं. १) द्वारा ही स्पष्ट हो



जाती है। प्रस्तुत कोष्ठक की (अ) तथा (ब) पंक्ति देखिये; कृत्तिका की क्रांति से १३ तथा २ अंश उत्तर में अभिजित् की क्रांति होनेसे कृत्तिका की अभिजित् के साथ स्पर्धा सिद्ध होती नहीं है। तथा पूर्व पश्चिम दिक्मूत्र एवं स्व स्वस्तिक रूप गगन (आकाश) से अभिजित् का भी पतन होता नहीं है। इतना ही नहीं तो सब नक्षत्रों में कृत्तिका का बड़ा होना यानी सब नक्षत्रों में सिर्फ एक कृत्तिका की ही उत्तर क्रांति अधिक होना तथा अक्षांश ३५ के प्रदेश में स्व स्वस्तिक से पूर्व क्षितिज तक जाने वाले प्राची दिक् सूत्र (मम मंडल) से दक्षिण तर्फ च्युत नहीं होना इन दो मुख्य आधार पर उक्त प्रमाणों में कृत्तिका संबंध का इतिहास बहा गया है। सो (अ) काल में तो कृत्तिका की क्रांति अक्षांश ३५ से ७ अंश कम यानी २८ अंश मात्र होने के कारण अक्षांश २९ के प्रदेश में भी कृत्तिका ही स्वयं च्युत हो जाती है। और अभिजित् च्युत नहीं होता है। स्व स्वस्तिक (३५ अंश) से सात अंश उत्तर से ही वह मंडलाकार घूम जाता है। इससे उक्त कथन का (ग) काल यानी शक पूर्व २३१२ वर्ष का काल नहीं हो सकता। तथा (ब) काल देखिये इस समयमें जोभी कृत्तिका अभिजित् के कुछ निरुद्ध में पहुंच गई है तोभी २ अंश दक्षिण में ही है। इससे उसकी अभिजित् से स्पर्धा पूर्ण नहीं कही जा सकती। और इस काल में भी कृत्तिका च्युत होती है तथा अभिजित्, अधिनी, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाभाद्रपदा व भरणी के तारे च्युत नहीं होते हैं। इससे स्पष्ट रीतिने ज्ञात हो जाता है कि उक्त कथन का (ब) काल यानी शक पूर्व ५३७४ वर्ष का काल नहीं हो सकता है।

## विधान ९१

परिशिष्ट की (क) काल देखिये इस (क) काल में इस संबंध की प्रथोक्त कुछ बातें यथार्थ घटित होती हैं। क्योंकि कृत्तिका की क्रांति +३४।५७ होने से अक्षांश (३४ अं. ५७ क.) = ३५ अंश के प्रदेश के स्व स्वस्तिक से अल्पतर (४ अंश) वाली कृत्तिका का पतन नहीं होते हुए बहुततर (+३१-८ अंश) वाले अभिजित् नक्षत्र का गगन से पतन सिद्ध होता है। अतएव कृत्तिका की अभिजित् से स्पर्धा यही पूर्ण होती है। क्योंकि अभिजित् को त्यागकर कृत्तिका २ अंश १२ कला उत्तर में बढ़ गई है। दूसरे अभिजित् समेत २७ नक्षत्रों के - योग - तारे तो पूर्ण दिशा (मम मंडल) में च्युत होजाते हैं, सिर्फ एक कृत्तिका नक्षत्र ही च्युत नहीं होता है। इस तरह कृत्तिका की ज्येष्ठता यही पाटत होती है। तीसरा प्रश्न - (भारत के उक्त खेत्तों में "धनिष्ठादि सदा कालो मद्राणा परिस्त्वितः") - धनिष्ठादि काल कहा है। सोभी इस समय वर्तमान भारत की स्थिति धनिष्ठा नक्षत्र के १७ घंटी, ४० पत्र पर होनेसे धनिष्ठादि का १३ मिट्ट होजाता है, और उपर्युक्त शतपथ ब्रह्मगोक्त प्रमाण से इसकी एक वाक्यता निश्चित हो

जाती है। इसलिये सिद्ध होता है कि उक्त घटना अक्षांश ३५ के स्थल से (क) काल में प्रत्यक्ष देखी हुई है। जोकि शतपथदि ब्राह्मण ग्रंथों में लिखे गई है। उसी के आधार पर महाभात में उक्तलोक उद्धृत किये गए हैं। जो ० केतकर एवं जो ० दीक्षितजी को उक्त प्रमाणों का यथार्थभाव नहीं समझने से उनका बताया हुआ काल गलत है। और हमारा बताया हुआ अर्थ तथा गणितागत मान शुद्ध व सूक्ष्म है इससे तथा नीसों प्रमाणों की इस के संबंध में गणितागत एक वाक्यता होने से निर्णीत होता है कि इस खगोलीय ऐतिहासिक घटना का काल अ. पू. ५४६९८ वर्ष का है। जोकि उक्त कोष्टक के (क) कालम में प्रो. लीबेरेयर और प्रो. हानसेन प्रोक्त परम क्रांति के आधार से बताया गया है।

### विधान ९२

यदि कहें कि; जो. केतकर ने तो केवल शतपथ के एक प्रमाण द्वारा उसके काल को बताने का प्रयत्न किया था। और जो. दीक्षितजी ने भारत के लोगों द्वारा अभिजित का पतन व धनिष्ठादि काल बताया है। किंतु यही कोष्टक (नं. १) के तथा परिशिष्ट (क) कालममें बताए जातिकेअंकोंद्वारा दोनों घटनाओंका ५४ हजार वर्षका एकहीकाल बताया गया है। और भारतका काल तो (वेद काल निर्णयमें) १८ हजार वर्षके करीबका निर्णीत किया है। इन दोनों कालों में ३६ हजार वर्षोंका अंतर कुछ थोड़ा नहीं है। तब इतने कालकी प्राचीन बातें भारत में यथारिधत कैसे आसकती हैं। यदि आई हैं तो; शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथों में कहीं हुई " सप्तर्षियों की पत्निका रूप कृत्तिका ने धारण कर लिया था " इत्यादि बातें भी भारत के प्रातुत कथाभाग में विस्तृत रूप से आनी चाहिये। और ज्योतिःशास्त्रीय आधार से उसकी, और अक्षांश ३५ के स्थल की; ऐतिहासिकता सिद्ध होनी चाहिये। अन्यथा इतने हजारों वर्षों का काल; इस शास्त्रीय ज्ञानयुग में सर्वमान्य कैसे हो सकेगा।

इन प्रश्नों को हल करने के पहले इसकी ऐतिहासिकता को स्पष्ट किया जाता है कि; यद्यपि वह घटना पृथ्वी पर कोई व्यक्ति द्वारा किसी एक ( दस बीस वर्ष के ) अल्प काल में हुई न होकर आकाश में हुई है। और वह सेकड़ों हजारों वर्षोंतक संसार में निरन्तर दिखती रही है। तब उसपर सारकालीन सेकड़ों हजारों निद्रानों का दृष्टिगत होना स्वाभाविक बात है। और उनमें से खगोलीय तत्ववेत्ताओं ने अपने २ समय की प्रत्यक्ष देखी बातों की प्राचीनों की कहीं बातों से भिन्नकर उनको छद्मों के एवं गप्पों के रूप में बनाई हैं। यही ब्राह्मणादि ग्रंथों में अंकिन ( की गई ) है। वही मंत्र अध्वनेध व राजारूप आदि यज्ञों में बड़े गौरव के साथ पढ़े जाते थे। इसलिये उम समय के कई विद्वान कवियों ने उसे पुराण कथा मानी मनुष्य चरित्र का रूप देकर जनता में प्रचलन व व्याख्यानोंपदेशादि के अनेक साधनों द्वारा प्रभिन्न की है। भारतकार श्रीमान् एच. सी. नी ने

अपने ग्रंथ ( भारत ) में ऐसी बहुतसी कथाएं उद्धृत कर, रखी हैं; कि जो वस्तुतः खगोलीय ऐतिहासिक हैं। उसी भारत के वनपर्व के कथामाग में स्कंद के उपाख्यान में कृत्तिका संबंध के प्रस्तुत होकर आए हैं। यदि यह पृथ्वीपर की ऐतिहासिक बातें होती एवं किसी कोई कवियों द्वारा कही गई होती; तो इतने दीर्घ कालतक यह टिक नहीं सकती थी; किंतु यह हजारों वर्ष में धीरे २ घटित हुआ हुआ दिव्य ज्योतिषों का खगोलीय इतिहास है। तभी आजभी हम उसे शास्त्रीय कसपर लगाकर उसके सत्यसत्य का निर्णय कर सकते हैं। इतनाही नहीं तो इसी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के सिद्धांतों के आधार पर हजारों कथामागों के भिन्न भिन्न कालों को उसमें कहे हुए सैकड़ों प्रमाणों की एक वाक्यता द्वारा निश्चित करते हुए आज से ३ लाख ३९ हजार वर्ष तक के [कालानुक्रमवार] इतिहास को बता सकते हैं। यह कुछ साधारण बात नहीं है। अतः इस रिपोर्ट में इस विषय के दो चार उदाहरण बताकर पाठकों को उक्त छत्रे कालका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। तथा उनमें भी पहले हम प्रस्तुत कथामाग को और भी स्पष्ट करते हुए धनिष्ठादि काल को प्रमाणांतरों से पुन. निश्चित करके बताते हैं।

इस के लिये मैंने आगे एक छोटाका दिया है। उस में इस कथा माग से संबंध रखने वाले कई तारों के भिन्न २ (अ + व + क) कालीन गति आदि परिमाण छिछिये हैं। ताकि पूर्वोक्त घोटकों से इसका संदर्भ लगाकर प्रस्तुत कथाके भावार्थको पाठनगण को प्रत्यक्ष अर्थों से निश्चित कर सकेंगे। और इसके कालको भी साधारण भी पाठक सरलता से समझ सकेंगे क्योंकि ऐसे सिद्धान्तों को ही मैंने इसमें निश्चित किये हैं।

### विधान ९३

यह कथा भारत के वनपर्व में इसप्रकार है। “भरवो भरव स्यामिः ( अध्याय २१९ श्लोक ८ ), एतद् वं दक्ष दुहिता प्रथमं कामयवदा ॥ अहं सप्तर्षि पत्नीनां कृत्वा रूपाणि पाप कम् ( २२४।४१ ), दिव्यरूपं गृह्यत्या कर्तुं न शक्तिं तथा ( २२६।१४ ). ” अर्थात् — “मया Orion पुंजके ऊपर में जो अग्नि Noth नामक तारा प्रसिद्ध है, उसके साथ दक्ष प्रजापति ( रोहिणी Aldebaran नक्षत्र ) की स्त्राहा Deneb नामक कन्या = कृत्तिका ने विवाह करने का निश्चय किया किन्तु जब कृत्तिका ने अग्नि की प्रीति सप्तर्षियों की पत्नियों के ऊपर है ऐसा देखा तब कृत्तिका ने उन पत्नियों D, a, tt, s, c, n, u, s, s, a, o, m, a, j, a, r, i, s का यानों सप्तर्षि पुंजके तारोंके निकटके छोटे तारोंका रूप तो धारण कर लिया लेकिन वासिष्ठ ऋषि 51 ursae majoris. mag. 2. 40 की पत्नी अरुणि No 805, 3m 96(92) 15° 150° के रूप को यह धारण नहीं कर सकती थी। ” इस प्रकार के कथन में प्राप्त ऐतिहासिक घटना का आकाशीय स्थल, कथामागमें अपेक्षित व्यक्तियों का स्वरूप = अर्थात् परिचय और इनका परस्पर संबंध ब्याहरी मो सब स्पष्ट हो जाता है। तथा ज्योतिः शास्त्रीय गणित के कमीटर इतको जांचनेमें भिन्न त्रिविधानुसार इसका

भाव प्रकट होजाता है। जिसाकि :- 'उक्त अग्नि की क्रांतिका सप्तर्षिपुंजके सातों तारों की क्रांति से दोचार अंशोंके फासले तक (उत्तरमें) पहुँचजाना ही उनकी पत्तिथोंपर प्रीति हुई कही जासकती है। ऐसी स्थितिमें कृत्तिका के ७ तारों का द्युमकाभी सप्तर्षियों के निकट वर्ती तारों के आकृतिका व प्रकाश वर्गका होत हुए उन ७ क्रिदियों के क्रांति के निकट में पहुँचगया है। यही कृत्तिका का ऋषिपत्तिथोंके रूपको धारण करना है। किन्तु आगे लिखा है कि यह कृत्तिका अरुंधतिके दिव्यरूप को पहुँच न सकी थी यानी वसिष्ठ [अरुंधति] की क्रांति तक यह उत्तरमें पहुँची नहीं थी। इससे ज्ञातहोता है कि सप्तर्षिपुंजके ७ तारों की क्रांति के अंदर उस समयमें कृत्तिका पहुँचगई थी। सिर्फ वसिष्ठ [अरुंधति] की क्रांति से नीची रह गई थी।

### विधान ९४

भारत में आगे कृत्तिका का विवाह अग्नि के साथ हुआ ऐसा कहा है। अर्थात् 'पत्ति नों वक्ष संयोगे' अग्नि के साथ कृत्तिका एक कालावच्छेदमें पूर्व पश्चिम दिक्सूत्ररूप = सम मंडली वेदीमें आने लग गई थी। सिर्फ ८३ फालके अन्तरसे दोनोंकी क्रांति समान होगई थी। इसमें ऋषि पत्तिथों का अभिजाप अग्नि ने किया व कृत्तिका ने ऋषि पत्तिथों का रूप धारण कर अग्नि की अभिजापा पूर्ण की है। इस कथन से सप्तर्षि पुंज की क्रांति के अंतर्गत कृत्तिका तो पहुँच गई थी और अग्नि की क्रांति उससे कुछ कम थी। अतः इससे निम्न लिखित बातें निश्चित होती हैं। (१) ऋषियों के सात तारों में से दक्षिण क्रांति के तारों को लापकर कृत्तिका अरुंधति = वसिष्ठके क्रांतिसे कुछ अंश दक्षिणमें रहनी चाहिये, (२) कृत्तिका से अग्नि की क्रांति कुछ कम होते हुए भी यह दोनों एक कालावच्छेद में सम मंडल में आना चाहिये। और (३) पहिले अग्नि की क्रांति कृत्तिका से अधिक हो कर बाद में कृत्तिका से कम हो जाना चाहिये। ऐसे यह तीन मुद्दे (प्रश्न) निश्चित होते हैं। सो यह जिस काल में हल होते हों वही इस घटना का काल है। इस का निर्णय करने के लिये कोष्टक (नं १) देखिये उसके (अ) काल में यह बातें बिचकुल ही मिलती नहीं हैं। तथा (ब) काल में भी पूर्ण रूप से मिलती नहीं हैं। सिर्फ एक (क) काल में ही पूर्ण रीति से मिलती हैं। उस दिनाग को यहाँ उद्धृत करके बताता हूँ।

प्रमेय और तारों के नाम तथा क्रांति के अंश काल और निर्णय के कारण :-

सप्तर्षिपुंजमें (वसिष्ठ) अरुंधतिकी क्रांति = ३९ ३६ सप्तर्षिपुंजके क्रांतिकी उत्तर गर्भादा सममंडलमें आनेवाली कृत्तिका का = ३४ ५७ ऋषियोंकी क्रांतिके अंतर्गत ऋषिरनिरूप सप्तर्षिपुंजमें आरंभिक क्रांतिवाले गरीचिनी = ३४ ९ सप्तर्षि पुंजके क्रांति की दक्षिण गर्भादा सम मंडल में आने वाले अग्नि तारे की = ३३ १४ क्रांतिपुंजके बाहिर दक्षिणके तरफ निकट में अतः ऋषिरनिरूपी प्राप्ती नहीं हुई केवल अभिजाप निश्चिन होगा है।

इस तरह उक्त तीनों प्रश्न इसी (क) काल में हल होने हैं। इसमें भी यह घटना (क) कागिन ही निश्चिन होती है।

## विधान ९५.

भारत में आगे इसी कथा भाग को और भी बढ़ा दिया है। जैसा कि :-

“ तस्मिन् कुंडे प्रतिपदि कामिन्या स्थाहया तदा ” तत्स्कन्नं तेजसातत्र संवृत्तं जनय त्सुतम् ” ( अ. २२५ श्लो. १६ ) अथैनममञ्ज लोकः स्कंद. ( २२५।३९ ) तस्य पृष्ठी महा तिथिः [ २२९।५३ ] ” अर्थात् “ विवाह हुआ तब कृत्तिका ने अग्नि के तेज को प्रतिपदा के दिन धारण करते ही आपने उसे उत्तर के ( दूर के आकाश गंगा के ) छठे कुंड में फेंक दिया। तब उसी तेज का स्कंद नामक पुत्र हुआ। इसका बढ़ाव द्वितीया से ५ तिथि तक बढ़ते हुए पृष्ठी को पूर्ण हुआ, अतः छठे कुंड व पृष्ठी तिथि के कारण शुक्ल पक्ष की पृष्ठी स्कंद की महा तिथि कहाती है। यहां क्रांति वृत्त से उत्तर शर ९ अंश की एक तिथि इस हिसाब से (  $१५ \times ६ = ९०$  ) उत्तर कर्दब तक १५ तिथि होती हैं। तब कृत्तिका व अग्नि का शर + ४ तथा ५ अंश होनेसे यह प्रतिपदा तिथिमें आते हैं और स्कंद का शर + १४ अंश होने से वह पृष्ठी तिथि में आता है। ज्योतिः शास्त्रीय ग्रंथों में १।६ तिथि की देवता अग्नि व स्कंद ही माने गये हैं। आगे दिया हुआ कोटिक नंबर ३ देखिये कृत्तिका भोग ३६.२ अंश के तुल्य ही ययाति का भोग ३६.२ अंश होनेसे तथा ३६ कथा भागके पूर्वापर संबंध को और तारों के नामों के अर्थ प्राप्ति को देखने से निश्चित हो जाता है कि नक्षत्रों में प्रसिद्ध ययाति पुंज को ही यहां स्कंद नाम से कहा है। क्यों कि आगे लिखे प्रकार स्कंदोपाख्यान के लक्षण, स्वरूप व सामिध्य आदि सब ययाति पुंज से ही पूर्णतया घटित होते हैं।

जैसा कि :— “ ( अ ) लोहिताग्ने सुमहति भाति सूर्यश्चोदितः ॥ [ २२५।२० ], पद्मशिरा द्विगुणभोगोद्भादशक्षिमुजक्रमः ॥ एरुमीवैकजठरः कुमारः समपद्यत. [ २२७।१७-१८ ] ( आ ) रुद्र सुनुवतः प्राहुर्गुहम् ( २२९।२९ ), गगा सुवंच [ २३२।१९ ], शक्तिमुच्यन्ते ( २२६।३५ ), मटिपस्य शिरा हरत् ( २३।२७ ), ( इ ) कुक्कट ध्यामिना दत्तस्तस्य केतु रलंकृतः ॥ रथे समुच्छिन्नो भाति कालाग्नि रिव लोहितः ( २३०-३३, ( ई ) सप्तम माकत स्कंच रक्ष नित्य मतंद्रितः ( २३१।५५ ) ( उ ) समीपे भद्रशास्त्रश्च भवच्छाग मुखस्तदा. [ २२।३ ] [ ऊ ] पताका कर्तिव्यस्य मिशास्त्रस्य च लोहिता [ २३१।१९ ] [ ए ] शतक्रतुध्यामिपिच्य स्कंदं सेनापति तदा ॥ सप्तमार तां देवसेनां यासातेन विमोक्षिता ॥ अजाते त्वयि निर्दिष्टा सब पत्नी रथमुश ॥ गृहाण दक्षिणं देव्याः पाणिना पद्मवर्चसा. [ २२९।४४-४८ ]. ”

अर्थात् :— “ [ अ ] आकाश के इस स्थलमें “ लुब्धक छे रोहिणी आंद्रो व ब्रह्महृदय+पह सब लालरंग के तारे हैं। और ययती पुंज के निकट की आकाश गंगा के

\* लुब्धक [ मृग ध्याय ] प्राचीनकालमें लाल रंग का था वह अर्धे अर्धे होरंग का होगया है। + ब्रह्म हृदय पहले लाल रंग का था वह अर्धे अर्धे नाले रंग का होगया है। [ नक्षत्र विज्ञान पृष्ठ ३२ देखो ] A देवयानी पुंजमें तारों का जत्या [ समूह ] दीर्घवर्तुल सेनाके तुल्य छुंड में लंबी लाइन एक दिखजाती है [ आकाश सौंदर्य पृ. ११६ चित्र ८४ देखो. ]

अंतर्गत बहुत से तारे भी लाल रंगके हैं। इसलिये लाल रंगके अभ्र (बादल) रूप आकाश गंगामें स्कंद बड़ा देदीप्यमान दिखता है, ऐसा कहा है। इसके सिर में ६ तारे हैं कान आख भुजा व चरणोंमें १२।१२ तारे हैं। कंठ व पेटमें १।१ तारा है ऐसा होनेसे मानो इसका (ऐसे अवयवों का) स्वरूप ही हो ऐसा यह (अब भी) प्रत्यक्ष दिखता है। नक्षत्रों में देखिये ययाति पुंज इसी वर्णन के तुल्य है। (आ) इसकी आकृति रुद्र (भूतप Bootes) के तुल्य होने से इसे 'रुद्र सूनु' (रुद्रका अवतार), आकाश गंगाके अंदर होनेसे 'गुह' (नौका चलाने वाला), व गंगा सुतभी इसे कहते हैं। इसके दाहिने हाथ में शक्ति (आयुध) और बाएं हाथमें महिष का सिर ढालके तुल्य है, एवं इस महिष की दोनों आंखें Rho Persei Bita Persei अलगोल नामक रूप विकारी तारोंकी कम ज्यादा चमकती हुई आंखें कही गई हैं। (इ) अग्नि का दिया हुआ कुक्कुट Camelus (करभयुंज व शर्मिष्ठा पुंज) इसके रथ के उपर धजा में लाल रंग का शोभित दिखता है। (ई) इन्द्र ने इसे वायु (आकाश) के ७ वें (स्तर = विभाग) में स्थापित करके कहा कि (अतंद्रित) सदा दृश्य रहते हुए इस (इंद्र के) स्थान की रक्षा करो। (ऊ) इसने अपने तुल्य रूप वाला एक भद्रशाख नामका पुरुष निर्माण किया कि जिसके गोद में बसता है। और उसके मुंह में लाल रंग का बड़ा तारा चमकता है। (ऊ) इस कार्तिकेय (कृत्तिका का पुत्र) व विशाख के ऊपर पताका रूप बड़े तारे ४ चमकते हैं, व विशाख की पताका लाल रंग की है। (ए) इंद्र ने स्कंद को देव सेना के पति के स्थान में बैठाकर इसका अभिषेक किया, और देवसेना Andromeda (देवयानी पुंज) यह पहिले बंधी हुई दिखती थी सो स्कंद के काल में मुक्त दिखने लगी थी; सो इंद्र ने उसका उत्सव करके कहा कि ब्रह्मा ने आपके प्रदुर्भाज के पहिले ही कह दिया था कि यह आपकी पत्नी होगी। अतः अब आप इस देव सेना का दहिना हाथ प्रस्थापन करो। यानी स्कंदने देवसेना को धामांग में कर लिया व विवाह किया अब इनकी जोड़ी आकाशमें बहुत शोभायमान दिखने लगी है।' इत्यादि कहा है। [ सारधीपुंज = भद्रशाख ]

### विधान ९६

इस लेखकों आगे दिये हुये नक्षत्रा नंबर ३ से, एवं इस नामके आकाशीय प्रसिद्ध चित्रों से मिलाकर या प्रत्यक्ष देखेंगे तो आपको स्पष्टतापूर्वक मान्य होनायगा कि यह कार्तिकेय स्कंदका वर्णन कृत्तिकासे उत्तर में वर्ती रहने वाले ययाति पुंजके ही संबंधका है और देवयानी पुंजमें तारों का लंबा जत्था तारों की सेना के तुल्य होनेसे देवयानी की देव सेना के नामसे कहा है। तथा और भी इस संबंध के तारों के आकाशीय स्थान उस काल में कैसे क्या थे सो [ शुद्ध सूक्ष्म गणितागत गान ] मान्य होने के लिये कोष्टक नंबर ३ द्वारा स्पष्ट करके बताता हूँ।

कोष्टक नं. ३—'स्कंद कालीन आकाश की स्थिति दर्शक गणितांक'  
भाषवी ( मिश्रार ) देवसेना ( देव्यानी ) कुन्कुट ( शर्मिष्ठा ) स्कंद ( वयाति ) विशाख ( सारथी—असहृदय )  
गण्डव का तारा भूतप पुंज और गरुड पुंज आदि के परिमाण.

तारकापुंजा के देश बिंदु परिमाण.		कुल नाक्षत्र		अयनांश ३०६१°२२'—५३१५१ शताब्दिक आरम्भ काल में	
महाभारत में लिखे हुए तारका पुंजों के.	महाभारत में लिखे हुए तारका पुंजों के.	चित्रा तारे की क्रांति	प्रो. हर्षल सारणा से	प्रो. लोन्डेरिंग	प्रो. लोन्डेरिंग
नाम	नाम.	भोग	शर.	विषुवांश	क्रांति
कृत्तिरा	ईटादारी	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
भाषवी	मिस्तार	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
देवसेना	देव्यानी	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
कुन्कुट	शर्मिष्ठा	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
ययातकाशिर	[ग] पशुपत	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
"	(अ)	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
"	[ब]	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
महिष	असगोल	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
विशाख	महा हरय	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
मालव	(ब) सारणी	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
इंद्र [महर्षान]	भूतप १	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
"	२	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
"	३	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
अथर्व	वाल्देर	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'
गरुड	ली. पकिलव	३१° ५०' ०"	२१° २१' ५०"	५०° ०'	५०° ०'

[.....] अलगोल तारे की क्रांति कुल रथूल है वास्ते उसके विषुवांश लिखे नहीं हैं.

उक्त कोष्टक एवं विधानोक क्रांतिद्वारा देखनेवालेके स्थलके अक्षांश और उसका काल ज्ञात होसकता है। और उसके लिये दो प्रश्न खड़े होते हैं:— (१) कृत्तिका के उत्तर गमन से स्कंदित होनेके समय में जब कि प्रस्तुत स्कंदकी घटना कशीगई है इसलिये इस समय के कृत्तिका की क्रांति का घटना शुरू होना और खगोलिक से दक्षिण तर्फ उसके च्युत होनेका आरंभ होना चाहिये, तथा [२] स्कंद की आकृति पूर्णतया वायु के सातवें सदा दृश्य स्कंध (मूल पद स्थान पर यानी) ईंद्र पद में पहुँच जाना चाहिये। ऐसे यह दोनों प्रश्न कोष्टक नं. ३ के अ, ब और क पंक्तियों के अंदर लिखी क्रांति द्वारा (निम्नलिखित न्यास के अनुसार) हल होते हैं।

### भारत में का स्थल (अक्षांश) और कालदर्शक न्यास.

कोष्टक नं. ३ में लिखे हुए काल मान.	अ	ब	क
कृत्तिका की तत्कालीन क्रांति... ..९०-क्रांति= लंबांश=सदा दृश्य ईंद्रपद.	२८° २' ६१ ५८	३०° ४७' ५९ १३	३४° ५७' ५९ ३
स्कंद की सदा अदृश्य और सदा दृश्य क्रांति	सदा अदृश्य	सदा अदृश्य	सदा दृश्य
स्कंदशिर (Gamma Persei ग्यामा पर्शियम)	५८ २२	६७ ७	६९ १७
देवसेना (Andromeda देवयानी पुंज)	५६ १४	५९ ३८	६१ ४९
स्कंद मध्य (Alpha Persei आल्फा पर्शियम)	५४ १४	५६ ५८	६१ ८
स्कंद चरण (Delta Persei डेल्टा पर्शियम)	५१ १०	५३ ५४	५८ २

### विधान ९७

उक्त घटना में स्थल और (अ ब क) काल का निर्णय इस प्रकार होता है (१) यदि हम थोड़े समय के लिये मान लें कि उक्त घटना को देखने वाले क्षत्रियोंके स्थल के अक्षांश ३४°। ५७'से उत्तर में है या ध्रुव प्रदेश में है; तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ कृत्तिका को खगोलिक से अच्युत कहते हुए आगे वह च्युत (स्कंदित) होगई बताई गई है। सो अक्षांश उत्तर में बढ़ने से कृत्तिका च्युत समझी जायगी और स्कंदके सदा दृश्य के माथ और तारे सदा दृश्य में जाने से प्रमाण कथन की संगति बिगड़ जायगी। इससे अक्षांश ३४। ५७ के निकट में ही प्रेक्षक का स्थल होना चाहिये (२) यदि अक्षांश ३४। ५७ के अंदर अक्षांश २८। २ का स्थल मानते हैं तो स्कंद का आशुत भाग (५१°। १०' से ५८°। २६') सदा दृश्य (६१°। ५८') से कम रह जाता है इसमें (अ) कालम का स्थल ब काल मात नहीं हो सकता, यदि अक्षांश ३०। ४७ मानते हैं तो भी स्कंद का मध्यान्त भाग (५६। ५८



से ५३।५४ तक ) सदा दृश्य ( ५९।१३' ) से कम रह जाता है स्कंद पत्नीरूप देवसेना पुंज भी सदा दृश्य में आता नहीं है । इससे [ व ] काउम का स्थल व काल भी ग्राह्य नहीं हो सका । किंतु अब अक्षांश ३४।५७ को लीजिये स्कंद का आरंभ भाग [ ६५।१७' से ५८।२ ] सदा दृश्य [ ५९।३' ] के ऊपर होते हुए उसकी पत्नी देवसेना पुंज भी स्कंद के तुल्य कृति वाली सदा दृश्य भाग (स्वर्ग) में स्थित है एवं यह दोनों अतंद्रित पदपर आरुढ़ हो जाते हैं इससे सिद्ध हो जाता है कि स्कंद घटना को देखने वाले ऋषियों का स्थल ३४।५७ = ३५ अक्षांश क प्रदेश में था। क्योंकि (क) कालम की क्रांति द्वारा यह सब घटना पूर्णतया मिलती है वास्ते इसका (क) काल जोकि शकपूर्व ५४६९८ वर्ष का था, और यह परम क्रांति प्रो. हानसेन की सारणी के तुल्य चक्र गति साधित होने से प. क्रांति की चक्रगति सिद्ध होती है । और प्रस्तुत घटना के दृश ऋषियों का स्थल भारतवर्ष के अक्षांश ३४° ५७' के प्रदेश में था । ऐसा निश्चित होता है ।

### विधान ९८

इस प्रकार विधान ७३-९७ के अन्दर बताए हुए खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के प्रतिपादन से पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि ज्यो० केतकर व ज्यो० दीक्षित का कहा हुआ अर्थ व काल गलत है और सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों में कही हुई रवि परम क्रांति २४ अंश की सदा स्थिर प्राय किंवा प्रो० हर्शल साहब के कथनानुसार २२-२४ अंश में आंदोलन गति की क्रांति न होकर चक्रगति वाली है । क्योंकि उतनी क्रांति माने बिना २७ नक्षत्रों में एक कृत्तिका की अधिक क्रांति, मरीचि सप्तर्षि को लांघ जाना अर्धगति से कम रहना और स्कंदके संबंधकी क्रांतियाँ आसकती नहीं हैं । न वसंत संपातव फाल्गुन से मर्हाने का मेळ मिलता है । तथा अभिजित् की निज गति से भी वही काल व क्रांति निश्चित होती है । हा यह मैं स्वीकार करता हूँ कि प्रो० हानसेन कृत 'चन्द्रकोष्ठक ग्रन्थ' के आधार से शाके १८०० में (ज्यो० केतकर के ज्योतिर्गणित पृष्ठ ८४ में) कही हुई (रवि परम क्रांति=२३।२७।१८".५-०".४७६ वर्षगति) के चक्रगति की अपेक्षा-प्रो० हर्शल साहब ने ग्रहों के प्रकृत्यंश, मंदकर्ण, एवं मध्यम गति के आधार पर आकर्षण शास्त्रीय पद्धति से जो क्रांति की आंदोलन गति कही है सो-सूक्ष्म होना चाहिये और अधिक से अधिक २४ या २४।३ से क्रांति-ऊपर नहीं होनी चाहिये किंतु प्रो० लीव्हेरीयर सारणी से क्रांति शकपूर्व ५३१५३ वर्ष में २९ अंश १९ कलामित र. प. क्रांति थी ऐसा म. म. ज्यो० पं. सुधाकर द्विवेदी ने दिग्मीमांसा पुस्तक (पृ. ३२) में लिख दिया है । वहां लिखा है कि:- "अथ यदि युरोपीय बिदुषां चेपेन भोणायाः कदंब प्रोतीयः शरः सदा स्थिरः प्राक्साधितः २९।१९' उत्तरो गृह्यते तदा एतस्मिन् परम क्रांतिमान "लेवरियर" सारणीतः २९।१९' = २३।२७।३१.८३ + ०.४७५९४ का-०.००००००१४९ का'। वर्ग समीकरण विधिना, मानं कालस्य सन् १८६० ईस्वीतः पूर्व वर्षात्मकं = ५३१५३.५"। अर्थात् 'श्रवण नक्षत्र के शर २९।१९' के तुल्य रवि परम

क्रांति वताने के उद्देश्य से प्रो० टयर साहेब के कोष्ठ<sup>n</sup> के आधार से शक १८५० में '२३'१२७'३१'८३—०.४७५९४ वर्षगति व कालांतर संस्कार +०".००००० १४९ वर्ष गति' द्वारा शकपूर्व ५३१५३ ५ वर्ष में २९'११९' प. क्रांति' साधन करके बताया है। यद्यपि उक्तगति हानसेन की कई गति के तुल्य ही है किंतु इसमें जो कालान्तर संस्कार कहा है उसके द्वारा शकपूर्व—१५७९११ ४ वष मे र परम क्रांति ३४'०'४५.०" पर्यंत जाकर उधर घटने लगती है। अर्थात् वर्तमान क्रांति से १०'१३३'१२६.५' बड़े बाद घटने लगने से उधर के काल में पुनः पूर्व स्थिति पर आजाती है। और इससे चाहे इसको २१'१२२ अंश की आंदोलन गति भी मान सकते हैं। तब मेरा बताया हुआ काल भी उक्त वर्षों से करीबन पधरासी वर्ष अधिक है तथा इस सारणी से ५५७ कला कम क्रांति का की क्रांति भी पूर्वोक्त क्रांति के तुल्य ही आती है। इसलिये मैं कह सकता हूँ कि प्रो० हानसेन के ही क्या प्रो० ली-हेरियर सारणी से भी वही क्रांति आती है। और कोष्ठक में भी इनका ही नाम मैंने लिखा है अतएव मेरा किया हुआ गणित व काल दो आधुनिक विद्वानों के गणनावार से शुद्ध व प्राक्य है। इतनाही नहीं तो आज से ५६ हजार वर्ष पूर्व के सूक्ष्म गणिताभितमानों को पौराणिक कथा भाग से मिलाकर बतात हुए एक "खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के सिद्धान्तों को" निश्चित कर देना और आगे इसी पद्धति से 'गलों वर्षों के इतिहास को परिशोधित कर देना इस विषय के ऊपर ससार के विद्वान लोग अवश्यमेव ध्यान देंगे क्योंकि वह काल वधि गणित के महान को जानते हैं।

## विधान ९९

तथापि सर्व साधारण विद्वान लोगों को ज्ञात होने के लिये उद्योग शास्त्र में कालावधि गणित का कितना महत्व है एवं प्रदगति के सूक्ष्म मानों को निश्चय करने में उसका कितना उपयोग होत आया है सो मैं बताना चाहता हूँ उसमें भी पहले मैं पाश्चात्य देश के ही कुछ उदाहरण देता हूँ—

(१) टालेमी [ इ. स. १४० ] नागरु इन्ति देश के ब्राह्मिर्षि ने अस्त्राजेस्त प्रथ में बाबिलोन शहर के [ मरिडियन लोगों के देखे हुए ] तीन चन्द्रग्रहणों का उल्लेख \*

\* "(१) ता १९ मार्च इ. पू ७२० वर्ष में वर्षा सायफाद के ७३० मध्य में हुआ. (२) ता. ८ मार्च इ. पू ७१९ ग्रहण मध्य १५४ रात्रा में ग्राम ३ अगुड. और (३) ता. १ सितंबर इ. पू ७१९ ग्रहण मध्यरात्रा में ८१३० ग्राम ६ अगुड उत्तर परम से बाबिलोन के पूर्व रेखांतर २ घण ४२ मिनिट है।" इत्यादि एम विहम आदि के Theory of Astronomy By Rev R man, J Hymera and Rev S Vinco—ग्रन्थों में लिखा है.

किया है। हानसेन आदि पाश्चात्य ज्योतिर्विदों को चंद्र की मध्यम गति निश्चित करने में इन (ग्रहणों) का विशेष उपयोग हुआ है। (२) ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस ने ईसा के पूर्व १२८ वर्ष में वेध लेकर चित्रा का १७४ अंश और मघा का ११९'१०" सायन भोग निश्चिन किया था। उससे सांप्रत के अयनाश और अयनगति के निश्चय करने में इनका विशेष उपयोग हुआ है। वस्तुतः अत्यंत प्राचीन काल से ही वसु = [वसंत संपात] के नापने में "चित्रामघा रायईशे वसूनाम्" [ऋ. सं. ७।७५।१] चित्रा = राजा और मघा प्रधान के तुल्य माना गई हैं। तथा (३) पिक्लार्क नामक फ्रेंच ज्योतिषी ने इ. स. १६६९ में सूर्य और प्रश्वा Procyon तारेका अंतर नाप रखा था; इसके आगे ७१ वर्ष के बाद दूसरे लाकेल नामक ज्योतिषी ने इ. स. १७४९ में सूर्य का प्रश्वा तारे से उक्त समानांतर का नाप किया था; तब इससे नाक्षत्र सौर वर्ष के परिमाण निश्चय करने में विशेष सहायता मिली है। इत्यादि बातों से आपको मालूम हो जायगा कि आज के सूक्ष्म परिमाणों से सेकड़ों हजारों वर्ष पूर्व में चाहें कुछ स्थूल क्यों न हो दोनों घटनाओं के परिमाणों का अंतर हमें ज्ञात हो जाने से उसमें गत वर्षों का भाग देने पर वह परिमाण अत्यंत सूक्ष्म हो जाते हैं। इसीलिये ज्योतिः शास्त्र में दीर्घ कालावधि प्रोक्त परिमाणों का [बातों का] बहुत ही महत्व है। ऐसी बातें जहां और दो चार सूत्र गतियों द्वारा उसी काल में वे ही निश्चित हो जाय तो उसका विश्वास, मान्यत्व अवधित सिद्ध हो जाता है।

### विधान १००

उपर्युक्त कालावधि प्रोक्त ज्योतिष की घटनाओं को लिखकर रखने के सिर्फ धोड़े ही उपयोग को देखकर कई विद्वान इस विषय में भारतीयों पर दोष लगाते हैं और आक्षेप करते हैं कि:— "प्राचीन खलिडियन व ग्रीक लोगों ने जैसे अपने ज्योतिष के वेधों को लिखकर सुरक्षित रखे हैं, और उनकी ज्योतिष ऐतिहासिक बातें आज भी हमें इष्टका कृति के छवों में या ग्रंथ व निबंध आदि में उपलब्ध होती हैं; वैसी मरत के ज्योतिर्विदों ने रखी नहीं हैं। भारतीय ज्योतिष ग्रंथ सब जगह पिछ (तयार) अंकों से भरे हुए हैं। किंतु वह कौन काल में कितने वर्षों के वेधों पर से कैसे बनाए गए हैं। इन बातों का उल्लेख उनमें नहीं है। केवल प्राचीन अशेष्य कहकर मान्यता दी गई है। उनमें सिर्फ शके ४२१ के अर्वाचन ग्रंथकारों के ही कहे परिमाण कुछ सूक्ष्म है। और यह छिले हुए मिलते भी हैं। जैसे कि आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, ब्रह्मा, केशव और गणेश देवज्ञ आदि ने सूर्य चंद्रमण और गुरु शुक्र के अस्तोदय एवं ग्रहों के क्षरणादि परिमाण लिख रखे हैं तथा मिद्धान्त सप्ताह, सर्वमौम व यंत्रराज आदि ग्रंथों में तरकाटीन तारों के भोगशर, नगरों के अक्षांश व, रेखांश एवं परमत्रांति आदि मान वेधसिद्ध रीति से संमंशित कर रखे

हैं। लेकिन इस प्रकार प्राचीनों ने लिखे नहीं हैं। इतना ही नहीं तो कई पाश्चात्य विद्या-विशारद विद्वान यहाँ तक कहते हैं कि नक्षत्रों के नाम चीनियों के पास से और राशियों के नाम ग्रीक [ ख्रिस्टियन ] लोगों के पास से भारतियों ने सीखे हैं इत्यादि २।" लेकिन ऐसे आक्षेप व्यर्थ हैं। क्योंकि अभी तक भारतियों का तत्त्वज्ञान वस्तुतः ठीक ठीक बताया ही गया नहीं है। इसलिये ज्योतिःशास्त्रीय लेखों के संबंध में ऐसा संदेह होना स्वाभाविक ही है। परंतु जिस प्रकार इन दो तीन हजार वर्षों में पाश्चात्य देशीय शोधों से जितनी ज्योतिःशास्त्र की उन्नति हुई है। उससे कई गुना महत्व की व कई वर्षों पूर्व से भारतियों के शोधों द्वारा यथानुक्रम उन्नति होती आई है। और वही तत्त्वज्ञान ससार में सर्वत्र फैला है। इस विषय का स्पष्टीकरण प्रस्तुत रिपोर्ट (पृ. ७२-९३ कलम ३२-९१, १०६-११०) में किया गया है। और उसका काल कितना प्राचीन है यह भी बताया गया है।

### विधान १०१

वस्तुतः इस देश में ज्योतिष का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से प्रगट हुआ है और आज तक वृद्धिगत होते आया है। जैसे—स्थूलमान के ज्ञान से सूक्ष्म परिमाणों को उपयोग में लाना, अल्प कालिक भगणादि के निक्षेप से दीर्घ कालिक भगणादिकों को निश्चित करते जाना, कठिन व दीर्घ प्रयत्न साध्य प्रयोग एवं यंत्रों के स्थान में सुगम, स्पष्टांतरिक प्रयोग व यंत्रों को करना तथा उपयोग में लाना, शुद्ध परिमाणों को प्रचार में लाकर उसे चिरस्थायी करने का प्रयत्न करना। इत्यादि तात्त्विक बातों का जैसे अन्य देशों में इतिहास मिलता है। उससे कई वर्षों पूर्व भारत के कुछ प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध होता है। इस विषय का दिग्दर्शन मैंने वेदकाल निर्णय में किया है। (वे नि पृष्ठ १९५ देखिये) शक्र पूर्व ६३४२ वर्ष में यहाँ उज्जयिनी में पुलिशाचार्य ज्योतिषी ने पौलिश सिद्धान्त नामक ग्रंथ बनाया है। (पृ. १४०) उसमें उज्जैन से काशी व यवनपुर के रेखाश लिखे हैं। सूक्ष्ममान से उज्जैन काशी के रेखाश मिलते हैं। तब उस काल का यक्षपुर पूर्व कालीन बाईजट्टियम् (वैजयंतिम्) किंवा वैदि ओक नगर के भी पूर्व काल में बसा था अब वहाँ कान्गट्टिनोपल शहर बस गया है क्योंकि वहाँ के रेखाश ठीक ठीक मिलते हैं। इससे इतने प्राचीन काल में भी वहाँ में भारत का परिचय बना हुआ था। पुलिशाचार्य के समय "पुनर्वसु" के (पोलक्स=पौलस्य) तारपर अयनमपातकीस्थिति (पृ. १२०), रोमक सिद्धान्तोक्त सायनमानमे चित्र शुद्ध १५ को चित्रा नक्षत्र के स्थान में सायन पुनर्वसु नक्षत्र होता है। और चित्रा संपात के काल से आज ६८५५ वर्ष बीत चुके हैं।" ऐसा इस ग्रंथ में (तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों) स्पष्टता पूर्वक कहा है। तथा दिगुण चारखंडों के उद्घाटन से २१ परम राशि की स्थिति २४° ३०' पर बताई है। इनके पहले कर्कोपध्याय रूप है जिन्होंने भीतसूत्रमाप्य में चित्रा तारे पर वसंत संपात का उल्लेख किया है। उससे उनका काल शक्र पूर्व १३२०० वर्ष का निश्चिन किया गया

है—(वे. पृ. १७३२), पारस्कर गृह्यसूत्र और महाभारत में अयनसंपातकी स्थिति मार्गशीर्ष मास में बताई है। इत्यादि से उनका काल शक पूर्व १९ हजार वर्ष का सिद्ध किया है (वे. पृ. ३३-६३ और चिरंजीव गोपीनाथ चुलेट कृत युगपरिवर्तन पृष्ठ ९१ देखिये), वेदांग ज्योतिष में अयनसंपात की स्थिति घनिष्ठा (एवं माघ महीने) के आरंभ में कही है। उससे उसका काल शक पूर्व २२ हजार वर्ष का है—(वे. पृ. १५३-२३५), श्रौत सूत्र ग्रंथ ११११ हैं। इन सबका निर्माण श. पू. ५४-२३ हजार वर्षों में हुआ है। (य पृ. २३८-३९) \*, ब्राह्मण ग्रंथ करीबन २००० फे ऊपर हैं। उनका काल आज से १५०-५४ हजार वर्षों का है। इनमें से एक शतपथ ब्राह्मण का काल उक्त विधान (७३-९७) में करीबन ५० प्रमाणों की एक वाक्यता करके खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति द्वारा शक पूर्व ९४६९८ वर्ष का सिद्ध किया गया है।

### विधान १०२

ब्राह्मण ग्रंथ काल के पूर्व वेद संहिता काल है। वेद मंत्रों में पद्यात्मक को ऋग्वेद, गद्यपद्यात्मक को यजुर्वेद, गानात्मक को सामवेद, अर्थवान् की अवर्णनवेद कहते हैं। इस भेद से अनेक संहिताएं प्रसिद्ध हैं। इनमें हजारों ऋषियों के कहे हुए सूक्त हैं। जोफि तत्कालीन ऋषियों ने ज्योतिः पुंजों के संबंध की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंको कथाना रूप देकर कही हैं। और भारत आदि पुराण ग्रंथकारों ने उसे और भी स्पष्ट करके सुसंगतरीति से लिखी हैं। इस संहिता काल की पूर्व मर्यादा उक्त खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के अन्वेषण के अनुसार अभी ३ लाख वर्ष के पूर्व काल तक पहुँच सकी है। आगे और भी सुदूर पूर्व जासकती है। “इस प्रकार केवल ज्योतिः शास्त्र का ही नहीं; मानवज्ञान का सूर्योदय भारतवर्ष में ही हुआ है। और आगे मैं सिद्ध करके बताने वाञ्छ हूँ कि “अन्य सब देशों में वहाँ का वैदिक ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ता और धर्म फैल गया है। बहुत काल होने से लोग उसके भाव को व वास्तविकता को भूँट गए हैं। किंतु अब इस खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से अन्यान्य धर्म ग्रंथों के प्राचीन कथा भाग का अन्वेषण करने पर उसका मूल अर्थ फिर से ज्ञात हो सकता है। और हमें ज्ञात हो जायगा कि सारी मानव जाति (के धर्म) का मूल स्थान भारतवर्ष ही था। मुझे तो यहाँ तक विश्वास है कि इस ऐतिहासिक पद्धति को समझ कर तत्पश्चात् लोग जब प्राचीन कथानकों का इतिहास लिखना शुरू करेंगे तब आज जो इतिहास काल की ओर इतिहास के पूर्व काउकी मर्यादा इस के पहले १-२ हजार और ४-५ हजार वर्षों की मानी जाती है वह ३ लाख तथा १॥ लाख वर्ष पूर्व की माने जावेगी। इस प्रकार इतिहास में बड़ी क्रांति होकर लाखों वर्ष का मानवैतिहास तयार हो जायगा।

\* इन्हीं श्रौत सूत्र ग्रंथों में से ‘एक कर्मन्त सूत्र का काल आज से ५२ हजार वर्ष का था’ ऐसा ज्यो. म. म. मुवाकर द्विवेदी ने अपने दिग्दर्शना ग्रंथ में बताया है।

## विधान १०३

अर्भातक संसार के विद्वानों के मत से 'सारी मानव जाति का मूलस्थान उत्तर ध्रुव प्रदेश में था'। ऐसा माना जाता है। डॉ. वारन ( पाश्चात्य पंडित ) ने 'नंदनवनोपलब्धि' नामक पुस्तक में और लोकमान्य टिळक ( भारतीय पंडित ) ने 'आर्टिफ़ि होम दि वेदाज' नामक पुस्तक में इसी बातको पुष्ट किया है। तथापि आगे 'वेदोंका निर्माण कहा हुआ' इसके संबंध में लोकमान्य टिळक के सम्मुख नीचे लिखे प्रकार के दो प्रश्न खड़े हुए थे कि:-

(१) यदि उत्तरीय ध्रुव प्रदेश में वेदोंका निर्माण होना कहता हूं तो वेदोंमें:- कुरु, पांचाल, कोसल, विवेहादि देशोंका; गंगा, सिन्धु, सरस्वती व यमुना आदि अनेक नदियोंका, हिमालय, विंध्यादि पर्वतोंका और विनशन, नैमिषारण्य, अंतर्बेदी आदि प्रदेशों का-" अनेक जगह उल्लेख मिलता है। सो सब भारत वर्ष में ही उपलब्ध होता है। सो यह नाम ध्रुव प्रदेश में कैसे आ सकते हैं ! और (२) यदि भारतवर्ष में ही वेदों का निर्माण होना कहता हूं तो वेदों में:- " तीस ३० दिन के सतत अहोरात्र का, दीर्घकालीन संनि प्रकाश का, और उसी के अनुसार ( अतिशीत गिरने के कारण उस काष्ठ के उपयोगी ) किये जाने वाले अतिरात्र आदि यज्ञों का एव मंडलाकर घूमने वाले ज्योतिषों का " उल्लेख मिलता है सो सब उत्तर ध्रुव प्रदेश में ही उपलब्ध होता है। सो यह ज्योतिः संबंधीय आधिभौतिक वैशिष्ट्य की बातें भारतवर्ष में कैसे कही जा सकती हैं ? " इन तरह इन दोनों जटिल प्रश्नों को हल नहीं कर सके हैं। किंतु दोनों को मिला देने का प्रयत्न किया गया है, और यह इस तरह से है।

## विधान १०४

डॉ. टिळक ने उक्त पुस्तक में कहा है कि:- " वैदिक आर्यों का मूल वसतिस्थान ध्रुव प्रदेश के निकट में था। लेकिन आगे वहा हिमपात अधिक होने से वहाँ का जल वायु खराब हो गया इससे वहा के निवासी आर्यन् लोग ईसा के १।६ हजार वर्ष पूर्व के काल में उस (ध्रुव) स्थान को त्याग कर अन्यत्र देशों में चले आए हैं। उनमें से कई मध्य एशिया में रहते हुए दो चार सौ वर्षों में भारतवर्ष में आ गए हैं। और वहाँ वसाहन काको स्थिर रूप से रहने लगे तब उन्होंने वहाँ पर ईसा के पूर्व ४५००-४००० वर्षों में वेदों का निर्माण किया है। किंतु उन्हें उत्तर ध्रुव प्रदेश के ज्योतिष की व अनुमान प्रकृतिक दृष्टियों की स्मृति बनाई थी। इसीलिये वेद में उस स्थिति का यकई महीनों तक किंचित् ज्ञान पाके ' अतिरात्र ' आदि यज्ञों का उल्लेख किया गया है। इसी उद्देश्य को पुष्ट करने हुए ग. ग. निष्णु हरि यंडर पंडित ने " स्वर्गोक्त व स्वर्गप्रिय सदेह मनन " नामक छंद ( प्रिय हान विस्तार सितंबर १९२६ ) में कहा है कि:-

" My attention was however directed more & more to passages containing traces of an Arctic calendar and an Arctic Home and I have been gradually led to infer therefrom that at about 5000 or 6000 B. C. the Vedic Aryans had settled on the plains of Central Asia and that at the time the traditions about the existence of the Arctic Home and its destruction by snow and ice, as well as about the Arctic Origin of the Vedic Deities were definitely known to the bards of these races. " " These quotations are quite sufficient to convince any one that at the time when great Epic was composed Indian writers had a tolerably accurate knowledge of the meteorological and astronomical characteristics of the North Pole & this knowledge cannot be supposed to have been acquired by mere mathematical calculations. The reference to the lustre of the mountain is specially interesting, in as much as, in all probability it is a description of the Auroira Borealis visible at the North Pole. " Arctic Home in the vedas p. p. 69—70. अर्थात् " महाभारत के रचना काल में आर्यन ग्रंथकारों को उत्तर ध्रुव प्रदेश में दिखनेवाला ज्योतिष और वहाँ के आधिमौलिक वैशिष्ट्य का ज्ञान उत्तम प्रकार का था । और वह ज्ञान ऋषियों ने केवल गणित की सहायता से शोध में लाये ऐसा हम कह नहीं सकते । और पर्वत के अंग के तेज का वर्णन तो विशेष करके अलंकारिक होने के कारण वहाँ से दिखनेवाले विशिष्ट प्रकाश के संबंध का ही बहुत फुरके होना चाहिये । इससे भारतीय आर्य लोग उत्तर ध्रुव प्रदेश को ही स्वर्गलोक मानते थे । " (१) ययाति, [२] अर्जुन, (३) पांडु, (४) सगर, (५) खड्वांग, (६) मुचकुंद, (७) विशुंक (८) हरिश्चंद्र [९] रैवत-कंकुली, (१०) पुरंजय, (११) ऋतुष्वज, [१२] नहुष, (१३) लोमश ( १४ ) इला-मुचुन्न, ( १५ ) उर्वशी-पुरुखा, [ १६ ] युधिष्ठिर, [ १७ ] दुष्यन्त शकुंतला ( १८ ) नल-दमयन्ती आदि भारतीय लोग सदेह स्वर्ग लोकको गए थे और वापसमी आगये ऐसा पौराणिक वर्णन उपलब्ध होताहै. " इसतरह विस्तार पूर्वक लिखाइ ।

### विधान १०५

परन्तु पूर्वोक्त मुख्य प्रश्नों को हलकिये बिना इसतरह मिलाने से कोई अर्थ निकल नहीं सकताहै । क्योंकि इसमें सतत अहोरात्र, दौर्घ संधि प्रकाश, अति शीतातप काल और ज्योतिषों के मंडलाकार घूमने की ऐसी बातें हैं कि यह मध्य एशियामें दोचारसौवर्ष रहे बाद यानी १०१२० पीढ़ियाँ होनेपरमी यह प्रसन्न देखनेके तुल्य यथास्थित कहीं नहीं जा सकती ! और अति शीत के प्रतिकारके लिये किये जाने वाले अतिरात्र आदि यहाँका

करना यहां [ भारत में ] कदाचित्भी संभवता नहीं है। यदि कहीं [ के ] भुव प्रदेश में कुछ वेद बने हैं और भारत में वह पूर्ण हुए हैं। इस तरह दोनों जगह मिलकर वेद बने हैं तो भी जबकि वेदों में ऐसे दोनों जगह वेद बनाए गए ऐसा उल्लेख नहीं है। और ऐसा होता तो दो चार सौ वर्ष के मार्ग में भी पूरी स्वस्थता नहीं भी होती तो भी इतने वर्षों में जब कभी मिछी हो तब वेदों का कुछ तो भी निर्माण होना शुरू रहना चाहिये था। तथा उत्तर भुव प्रदेश के हिमपात का, वहां के तथा मार्ग के अनेक नदी पर्वतादिकों का वर्णन कहीं तो भी थोड़ा बहुत आना चाहिये था किंतु ऐसा वर्णन कहीं भी आया नहीं है। और यदि ऐसा होता तो लोकमान्य आदि को उक्त कोटीक्रम लगाने की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिये जबकि वेदों में ऐसे उल्लेख नहीं है तब दोनों जगह वेद बने हैं यह कथन भी निराधार अतएव अयुक्त निश्चित हो जाता है।

### विधान १०६

तथा उत्तर भुव प्रदेश में पहले चरती थी बाद में वहां हिम प्रलय शुरू होने के कारण यह उजड़ होगई यह कथन भी निराधार और असंभवित है क्योंकि " अत्यंत शीतातप का होना " यह प्रश्न ज्योतिः शास्त्र से हल हो सकता है। इसके संबंध में आर्टिकल होम दि वेदाज के प्रथम प्रकरण में आकृति देकर लोकमान्य ने उसके कुछ तत्वों को समझाये भी हैं। तथा मराठी वेद काल निर्णय ( पृ. १० ) की टिप्पणी में भी उसका दिग्दर्शन करवाया गया है। उसका संक्षिप्त वास्तविक अर्थ ये है कि ' सायन मकर व कर्क संक्रमण के समय यदि रवि के उच्च नीच स्थान जिन वर्षों में एक होते हों उन वर्षों में शीत उष्ण काल के समय सूर्य से पृथ्वी अपनी मध्यम कक्षा से करीबन १६ लाख माइल दूर में तथा निकट में हो जाती है। इससे नीचोच्चजनित पृथ्वी पर सूर्य की उष्णता के कम उत्पाद के समय ही दक्षिणोत्तर गोल में सूर्य की स्थिति द्वारा उष्णता का कम उत्पाद होना एक हो जाने से उस काल में पृथ्वी पर अत्यंत शीतातप का होना स्वाभाविक बात है। क्योंकि इस समय दोनों परिमाणों के अंतरांश द्रव्य के निकट में हो जाने से दोनों परिमाण मिलकर एक ही कार्य करते हैं। तब शीतोष्णमान जोरदार हो जति है। और जब अंतरांश ९० अंश होते हैं तब मध्यम स्थिति एवं १८० अंश पर स्थिति स्थिति हो जाती है। इसकी तुलना वर्तमान स्थिति से कर सकते हैं। शके १८०० में सायन मकर संक्रांति २५७.९— रवि उच्च ७८.७ = अंतरांश १६९.२ होने से शीतातप का स्थल स्थिति है। ऐसा होते हुए भी वर्तमान में भुव प्रदेश इतना ठंडा है कि इस वैमानिक युग में भी वहां कई गुरुपुत्र पुराणों से कोई वहां ठहराने सका है। अर्थात् बर्तमान से आधुनिक उम्र प्रदेश में आज भी कोई रह सकना नहीं है। ऐसा यह मनुष्यों के निवास के लिये अयोग्य है। तब शके पूर्व ४२०० वर्ष में तो (युग ५०.९— सायन मकर संक्रांति ३३०.५—अंतरांश ८८.५ थे। गो वर्तमान से



उसकी तुलना को देखते आज से उस समय डेढ़ निःकृष्ट स्थिति होनी चाहिये । यदि कहें कि उसके पूर्व काल में अच्छी होगी सो भी नहीं है । क्योंकि शक पूर्व ९५०९ वर्ष में तो दोनों परिमाणों के अंतरांश शून्य होने से वर्तमान से उसकी तुलना को देखते आज से उस समय द्विगुण निःकृष्ट स्थिति निश्चित होती है । ऐसी निःकृष्ट स्थिति में वहां मनुष्यों का मूलस्थान होना कोई भी शास्त्रीय आधार से सिद्ध होता नहीं है । फिर महाभारत के रचना काल तक आर्यन् ग्रन्थकारों को ध्रुव स्थान से दिखने वाला ज्योतिष तथा ध्रुव स्थान का आधिभौतिक विशिष्ट ज्ञान वरिष्ठ बिना देखे भाले व सुने वहां आयों को कैसे हो सकता है । कदापि नहीं । इसलिये उक्त दोनों प्रश्नों को जोड़ने वाला यह कोटि कम व्यर्थ है । यानी उक्त दोनों प्रश्न खड़े ही रहते हैं ।

### विधान १०७

यदि कहें कि " फिर सदेह स्वर्ग में जाकर आनेवाले—ययाति अर्जुन आदिके १८ नाम जो ऊपर बताए गए हैं । व उनके संबंध में भारत आदिके अनेक प्रमाण बताए गए हैं सो वैसी घटनाएं क्या हुई नहीं हैं ? क्या यह कथाएं ऐतिहासिक न होकर कल्पना तरंग मात्र हैं । इन प्रश्नों के उत्तर में मैं कह सकता हूं कि—उक्त घटनाएं भूमिपर न होकर आकाश में हुई हैं । तत्कालीन कवियों ने उनको आकाश में ( सेकड़ों वर्षों तक ) प्रत्यक्ष देखकर ज्योतिषके हिसाबसे यथास्थित लिख रक्की हैं । जोकि आज हमें कविता के रूपमें उपलब्ध होती हैं सो सब खगोलीय ऐतिहासिक हैं । क्योंकि इन कथाओं के संबंध की कुलघातें ज्योतिष शास्त्रीय सूक्ष्म गणित द्वारा कालक्रम बद्ध निश्चित होती हैं । अतएव विश्वमनीय एवं सत्य है । तब यहां पृथ्वीपर के उत्तर ध्रुव प्रदेश वाला ययाति आदि उक्त १८ पुरुषों का सदेह स्वर्ग में गमन न होकर उन २ नाम से प्रसिद्ध तारों के पुंजोंका अकाशके उत्तर ध्रुव प्रदेश रूप स्वर्गका गमन है । और वह सांगोपांगरी सिधे सप्रमाण सिद्ध होजाता है । फिर वहां आकाश में हिमपातके कोटी रुम लगाने की और शीतोष्ण कम ज्यादा होने के कारणोंको दूंदनेकी; आवश्यकता ही रहती नहीं है । लेकिन उस कथा भागकी प्रत्येक बातको खगोली सूक्ष्मगणितद्वारा निश्चितकर उसकी एक वाक्यता से इस घटनाको देखने वालोंका स्थिर और काठ आदिका निर्णय करने की आवश्यकता रहसी है । अन्यथा बिना इस निर्णय के इसका ऐतिहासिकत्वही सिद्ध होता नहीं है । इसलिये इस सिद्धान्त को निश्चय करने के लिये एक ययाति का उदाहरण ही पर्याप्त समझकर उसे यहां उघृत करता हूं । क्योंकि विधान १०४ में कहे हुए सदेह स्वर्गगमन करने वालों के १८ नामोंमें पहिला ययाति का ही नाम दर्शाया गया है दूसरा कारण ये है कि ( विधान ९३-९७ में कहे हुए ) स्कंद काल के एक अयन चक्र के पूर्व काल में वही स्कंद पुंज को ययाति नाम से कहते थे इनलिये इस उदाहरण द्वारा दोनों

कालों की तुलना उत्तम प्रकार से होते हुए अनेक प्रमाणों की एक वाक्यता द्वारा कालानुक्रम वद इसकी ऐतिहासिकता भी सिद्ध होजाती है ।

### विधान १०८

महाभारत उद्योग पर्व में ययाति के संबंध का निम्नलिखित वर्णन है । इससे यह स्वर्ग में कैसा गया, कितने वर्ष रहा और वहां से लौट आनेपर क्या हुआ इत्यादि तात्विक बातें निश्चित होने से इस कथा भाग का ऐतिहासिकत्व तथा घटना का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाता है । जसा कि:- “ विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ॥ अनुज्ञातो मया वरस यथेष्टं गच्छ गालव ॥ × ॥ इत्युक्तः प्रयुवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम्. [ अध्याय १०६ श्लोक १९-२० ] दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरु कर्मणि ॥ २१ ॥ असकृद्रुच्छ गच्छेति । किं ददानीति षडुशः ॥ २५ ॥ एकवः शामकर्णानां हयानां चंद्र वर्षसां ॥ अष्टौ शतानि मे वेदि गच्छ गालव माचिरम् ॥ २७ ॥ ” अर्थ:- “ गालव ऋषि विश्वामित्र का शिष्य होकर कई वर्ष तप रहा है । गमन करते समय, ‘ गुरु दक्षिणा क्या देऊँ, ’ ऐसा गालव के पूछने पर ‘ जबकि तुमारे पास कुछ ( दक्षिणा ) देने को नहीं है, फिर मैं आपसे दक्षिणा कैसे माग सकता हूँ । इसलिये बिना दक्षिणा दिये ही जुन जासकते हो । ’ ‘ नहीं गुरुवर्य मैं किसी से माग कर दक्षिणा दे सकता हूँ । ’ ऐसे गालव को बहुत आप्रह करने पर विश्वामित्र ने कहा ठीक है । ‘ देते ही हो तो चंद्र प्रमा पाछे एकतः शाम कर्ण ८०० अथ मुंशे दक्षिणा में देने चाहिये । ’ तथास्तु कह के गालव चले गए । ”

भावार्थ :- इस कथन में आएहएवारका पुर्जोंका परिचय व भावार्थ मात्रम होने के लिये विधान ९६ के कोष्टक नंबर ३ में स्कंद=ययाति का एक रूप होने से इसके तथा इसके संबंध के तारों के पुनः स्वर्गारोहण स्थिति के विपुलांत प्राप्ति आदि व स्थल के अक्षांश लिख दिये हैं । तथा आगे कोष्टक नंबर ४ में ययाति की स्वर्ग से पतन की स्थिति के तारों के परिमाण लिख दिये हैं । इनमे तथा दिये हुए नक्षत्रों मे आप ( पाठक वृंद ) घटना के तारकापुत्रोंसे परिचित हो जायंगे । तथा ययति Perseus गाउव Bita Auriga यह पुंज ( तारे ) इसी नाम से आकाशीय नक्षत्रों में लिखे जाते हैं । ( नक्षत्र विज्ञान मन्त्रालय नं. ११४१५ देखें ) ययति नक्षत्रों में नरतुरंग Centarus के स्वस्तिक Bita Crubis भाग के एक तारे का नाम विश्वामित्र B. Crur लिया है । तथापि इसके नाम के यौगिक अर्थ मे=विश्वा=वैश्याया और मित्र=अनुसूया नक्षत्रों में निवसती व्याप्ति हो वह पुंज नरतुरंग Centarus ही विश्वामित्र का पूर्ण रूप है । इसकी योग. तारा मात्र ( व स्वस्तिक ) को विश्वामित्र लिखा दे सो ठीक ही है । विश्वामित्र का तारा दीप्तिमान ( प्रति १.५० का ) है, और गालव की दीप्ति उसमे कुछ कम ( प्रति २.०७ की )

है। दोनों का रूप, तेजसा दृश्य होते हुए यह दोनों तारे आकाश गंगा के दक्षिणोत्तर तर्फ के मोड़ बाड़े तट पर स्थित हैं। अक्षांश ३५ के स्थल से देखने वालों ने इनका एक कालावच्छेद में सम मंडल में आने का दृश्य देखने से इनका गुरु शिष्यत्व का नाता बनाया गया है। किंतु ऐसी स्थिति किन वर्षों से आरंभ हुई किन्तु वर्षों तक यह सम मंडल में आते रहे हैं। ऐसा मैंने गणित करके बताया नहीं है। सिर्फ ययाति के स्वर्ग से पतन के समय इन दोनों की क्रांति दक्षिण हो जाने से यह सम मंडल में आते नहीं थे। उस काल की दिपति मात्र यहां कोष्टक ४ में बताई है।

### विधान १०९

“अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततांबरः (११४-१) निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ॥ तस्माद्विरण्यं सर्वहि हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ २ ॥ नित्यं प्रोष्ठ-पदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ॥ मनुष्येभ्यः समादत्तं शुक्रचित्ताजितं धनम् ॥ ३ ॥ अजैरूपावहिर्बुधैरक्षते धनदेन च ॥ ऋते च धनमन्यानां नावाप्तिर्विद्यते तथ ॥ ४ ॥”  
 अर्थः—जब गालव से गड मिला तब उन्होंने गुरु दक्षिणा के संबंध में सलाह दी और कहा कि—“अग्नि ने पृथ्वी में जिसका निर्माण किया और जिसके शुद्ध रूप को वायु ने बनाया इसलिये सब लोग हेमन्तऋतु के वस्तु जात मात्र को हिरण्य (सुवर्ण) कहते हैं। यह नित्य ही दोनों प्रोष्ठपदाओं के (पूर्वा भाद्रपदा के २ और उत्तर भाद्रपदा के २ ऐसे) चारों तारों से शुक्र = उच्चैश्रवा पुंज में तथा धनपतौ = धनिष्ठा पुंज में चित्ताजित (चित्ति से संप्रह किये) धन की शुक्र = उच्चैश्रवा लेकर मनुष्यों (बिशाखा अनुत्तमा पुंज के दिग्गों) को देता है। इस समय उक्त धन अजैरूपान् (पूर्वा भाद्रपदा) अहिर्बुध्न्य (उ. भाद्रपदा) और धनद = कुन्नेर के तारों से सुरक्षित हो रहा है। इसलिये धन मिलने के उक्त काल के आए बिना तुम्हें अक्षों का धन मिल नहीं सकता है। अर्थात् इस काल में उच्चैश्रवा व अश्व पुंज के निकट के ४ तारों की क्रांति नारतुरंग = अश्वकेनिफ्ट के चारों (तदा कृतिनुर्य) तारों की क्रांति के समान नहीं हो सकती है।”

### विधान ११०

“ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः ॥ तंप्रत्युपस्थितौ (११४९) ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत् (११५०) ‘एषा’ ‘चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुतामम ॥ ११ ॥ सभवाय प्रतिगृह्यन्तु मयैवां मध्वी सुताम् ॥ १४ ॥ प्रतिगृह्यन्तौ कन्यां गालवः सह पक्षिणा ॥ पुनर्दक्षावदित्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १६ ॥ ततो (१) द्युभ्यो वसुमना-दानपतिः, (२) दिवोदासात्प्रवर्दनः—शूः, (३) औशीनरानुशिविः—सत्यधर्मरतः,

कोष्ठक नं. ४

ययाति के स्वर्ण से पवन गालीन क्रांति आदि परिमाण

तारों के वेद्यमिद परिमाण				अयनांश २२८ १५५ मया नक्षत्र ( युक्त ४० घ., ८ मल ) काल में			
महाभारत में किने हुए तारों के-	पक्षम विज्ञान के तारों के लिखे हुए	गुरु नाक्षत्र परिधान के ( निरूपण )		तारकालीन सायन मानसे	श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से		श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से
		दिशि	भोग	कर	भोग	क्रांति	क्रांति
नाम	नाम	दिशि	भोग	कर	भोग	क्रांति	क्रांति
ययाति शिर	G. Perseus ग. पक्षिभस्त	३. ०८	१६ ११	+ ३३। २२	२६७ १६	२६७ १३ + १०। २३	२६७ ४४ + ५। ३७
ययाति माथ	A. Perseus अ. पक्षिभस्त	१. १०	३८ ५५	३०। १६	२७० ० २७० ० + ६। १६	२७० ० + १। २९	२७० ० - ३। ७
ययाति बाण	D. Perseus डे. पक्षिभस्त	१. १०	४० ५७	२७। १७	२७२ २२७ १ ४१ + ३। १८	२७१ ४८ - १। २९	२७१ ४८ - ६। ४
देवतामि (पुंज)	Andromeda	२. २५	१७ ४०	३४। ४४	२४८ ५२	२५२ २२ + १। २२	२५२ ३० + ७। २९
माथी पुंज	मिसार Pegasus	२. ३७	६ ०	२६। ३५	२३७ ५	२४० ४४ + ५। ५६	२४० ५४ + १। ४६
शालक नामक तारा Bita Auriga		२. ००	६६ ५	२१। ३१	२९७ १०	२९५ ८ - ०। ५	२९५ १३ - ४। २५

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

श्री. हंसल सायणा व अयाचीन प्रयोग क्रांति से

(क)	द. मा.	अ.	३. ५७	३१० ४२	१९१२७	२०१ ७७	२०७ २३	६१७	२०७ ५९	६५३ २०८	२४	४१४३
(ख)	द. मा.	अ.	३. ६१	३१५ ३७	३११८	२०६ ३९	२१६ १५	१६१२६	२५	१५३०	२०	१२७५
(ग)	द. मा.	अ.	३. १५	३४५ १९	१२१३६	२१६ २७	२१८ ११	२१९	२१७ ५६	५१८	२१७ ३२	७५१
(घ)	द. मा.	अ.	३. ८७	३५० २८	२५१४१	२२१ ३३	२२७ १३	६१४५	२२७ ३०	३१७४ २२७	३५	०१२
मरुपान् १ इन्द्र " २ " " ३	मूल्य	१	३. ००	१७३ ७९	७७१३३	७७ ५७	१३ ७७	६१५०	७ २१	६२१३७	७ ३२	६२१३३
	मूल्य	२	३. ६३	१८० २५	५४१ ९	५१ ३०	१३ ३३	६५५८	१ ४७	६२१३३	९	६८१७
	मूल्य	३	३. ५७	१८६ १८	+ ७८१५७	६० २१	३३ ३१	६५६१	२० ५७	६५६२२	१० ४८	+ ७०१७३
	(ब.) स्वस्तिक		१. ५०	११७ ४६	- ७८१३८	६८ ५७	७७ ४१	- २५१७७	७५ १३	- २१११०	७५ ३७	- १६१७२
अभिन्न	Alpina-Dolphini		३ ८६	२९३ ३३	+ १३१२२	१६७ ३८	१८१ २०	+ ३६१३३	१८४ ४८	+ ३५१७७	१८८	+ ३५१३६
इन्द्र	Dellia		२ ९८	२९९ ४८	- ३१४८	१०० ५३	१०० ८	+ ०१३३	१०० १०	+ ११२	१०० १८	+ ११७५
गुरु	Aquarius		३ ५५	२६३ ३७	+ १८११७	१३७ ३९	१४३ ७३	+ ३६१६१	१४६ ३१	+ ३६१५१	१४७ ३५	+ ३६१३७
Sota centauri Ma centauri Thela centauri Uta centauri	(क)		३. ९१	१८९ १९	- २६१ ०	६० २७	६३ ३३	- ७१४७	६३ ३९	- ०१२८	६३ ३६	+ ३१४०
	(ख)		३. २	१९३ ३७	- २८१५८	६८ ४२	७१ २१	- ६१२२	७१ २७	- १५०	७१ २७	+ २१२२
	(ग)		३. २६	१९८ २९	- २२१३	६९ ३४	७१ ३	+ ०१३४	७१ ३	+ ५१	७० ५१	+ ९१२६
	(घ)		३. ६५	१०६ २५	- ३५१३०	७७ ३०	७८ ५७	- ३१	७८ ५६	- २१७२	७८ ५२	+ ७१३

(४) विश्वामित्राच्च अष्टक. यज्वा । एवं माधव्याश्चत्वारः पुत्रा अजायन्त । ॥ विश्वामित्रः  
 सुत तच्च अश्वैस्तेः ( ८०० ) समयोजयत् ( ११९-१९ ) कौशिकोऽपि वनंययौ. ( १२०१ )  
 माधवी×घरं वृतघनी वनम् ॥ ५-९ ॥ उपवासैः × आत्मनोलघुतां कृत्वा बभूव मृग-  
 चारिणी ॥ ७॥ श्रवंतीनांच पुण्यानां × शिवंनि चारि मुख्यानि शीतानि विमलानिच ॥ ९॥  
 घरंसी हरिणैः सार्धं मृगीष वनचारिणी ॥ १०-११ ॥ ” अर्थः—“ गालव को साथ  
 लेकर गरुड प्रतिष्ठान नगर ( कुरुक्षेत्र के उत्तर में २५ अक्षांस के प्रदेश ) में ययाति के  
 यहां गए और गालव के लिये दक्षिणा की प्रार्थना की; तब ययाति बोले कि मेरे पास अश्व  
 तो नहीं हैं । किंतु चार वंशों को स्थापन करने वाली माधवी Pegava [ की मुख्य ताय  
 मिरा है सो ] मेरी लड़की को आप ले जाकर विवाह दो तो इसके चार संतान के बदले  
 में आपको ८०० अश्व मिल जायेंगे । सो तुम गुरु को दक्षिणा दे देना ॥ १४ ॥ ठीक है  
 फिर मिल्गा कहकर माधवी को साथ लेकर गालव और गरुड चले गये ॥ १५ ॥  
 दौसो दौसो अश्व में एक एक सतान ऐसे चार ठिकाने माधवी को विवाही तब इसको  
 (१) हर्यश्व से वसुमना नामक पुत्र बड़ा दानी हुआ, (२) काशी के राजा दिवोदास से  
 प्रतर्दन-शर पुत्र हुआ । (३) औशीनर से शिशि सत्य वचनी हुआ, और (४) विश्वामित्र से  
 अष्टक पुत्र बड़ा याज्ञिक हुआ । माधवी को इस प्रकार चार पुत्र हुए । इनके बदले में लिये हुए  
 ८०० अश्व विश्वामित्र को दे दिये । इसने अपने माधवी के पुत्र अष्टक के पास उक्त अश्व  
 रक्कर आप वन में चले गए । माधवी भी तप करने के लिये वन में  
 चली गई । यहां उपवासों को करने से दुर्बल होगई । और मृगों के  
 साथ विचरने लगी । पवित्र नदी के खोतों का ठंडा निमेल पानी पीती हुई हरिणदिकों के  
 साथ भ्रमण करने लगी । ” इस कथा का भावार्थः—आगे दिये हुए ययाति के स्वर्ग से  
 पतन फालीन नकशों में एवं कोष्टक नंबर ४ में ययाति गालव, गरुड विश्वामित्र=नरतुंग  
 माधवी=मिरा, देवयानी पुंन और विश्वामित्रादि चार तारों की चतुरस्त्राकृति वालों के पुत्र  
 माधवी के निकट के पूर्वोक्त भाद्रपदके चारों तारों को देखने से तथा सरठ Sacerta  
 जंघुक Vulpus पुंजों के हरिण, धनिष्ठा को धन समझने से ग्रंथोक्त का आशय स्पष्ट हो  
 जाता है । इन पुंजों के गणितागत अंकोनी तुलना कोष्टक नं. ४ द्वारा कर सकते हैं ।

### विधान १११

“ ययातिरपि × बहु वर्षं सदस्यायुं युयुजे काल घर्मेणा ( १२०। १२ ) महर्षि  
 पत्नो नृपतिः × ययातिः स्वर्गमाग्यत. ॥ १४ ॥ बहु वर्षं सदस्याख्ये काले षड् गुणे गते  
 ॥ अयमेनै नरान्मयान् देवान्पिपाणांमृता ॥ २२ ॥ पतेयं मस्त्रिवि यच्चित्रगत्वा नहुषा-  
 त्मजः ( १२१। १८ ) नैन्धिषे पार्थिवयथान् ॥ अतुरोऽपश्यत् नृपस्तेषां मध्ये पपातद् ॥  
 प्रतर्दनो वसुमना शिविरांशं नरोऽष्टक. ॥ १० ॥ याजपेयं यज्ञेन तर्पयति सुरेश्वरम् ॥

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥ भूमौ स्वर्गे च संबद्धा नदी धूममयीमिव ॥  
 गंगा गामिष गच्छन्तो गालेभ्य जगती पतिः ॥ १२ ॥ पपात मध्ये राजापर्ययातिः पुण्य  
 संक्षये ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमणम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान्पुत्रां-  
 स्तापसा वाचयमवर्षात् ॥ दौहित्रास्तव राजेन्द्र ममपुत्रा न तेषः ॥ १३ ॥ इमे त्वां  
 वारयिष्यन्ति दृष्टमेतन् पुरातने ॥ १४ ॥ मया प्युपचितो धर्मस्ततोऽर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ १६ ॥ अभिवाद्य समस्कृत्य मातामहमया-  
 म्बुयन् ॥ १७ ॥ अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ॥ तपसे मेष्ट भागेन स्वर्गमा-  
 रोहतां भवान् ॥ २८ ॥ समारुरोह नृपतिरस्पृशन् यमुधा तलम् ॥ ( १२२। १ ) न पृथ्वी-  
 मस्पृशत्पदा ॥ २ ॥ दान, औदार्य, अमृत, यज्ञानुष्ठानफलानि चतुर्भिर्दौहित्रैर्दत्तानि तदा )  
 यथा यथाहि जहन्ति दौहित्रास्तं सराधिपम् ॥ तथा तथा यमुमार्तिं त्यक्त्वा राजा दिवं  
 ययौ ॥ १५ ॥ अभिवृष्टश्च वर्षेण X जज्जाल परयाश्रिया. ( १२३। १—३ )

भारत उद्योग पर्व ।

अर्थः—“ ययाति की कई हजार वर्ष की आयु होने बाद में वह काल धर्म के योग  
 से स्वर्ग को जाते हुए पहले महर्षि लोक में गए व बाद में स्वर्ग लोक में पहुँच गए । वहाँ  
 बहुत हजारों वर्षों तक रहे अंत में जब इनका पुण्यश्रीण होगया तब इन्हें गर्व आगया तो  
 मानव, देवता, व ऋषियोंका ( उचपदाकूट होनेसे ) यह अपमान करने लगे । इस समय  
 इंद्रकी आज्ञासे इनका पतन होना शुरू हुआ । इनकी क्रांति घटने लगी । यह देख  
 ययाति तीन बार बोले कि; ‘ मेरा पतन सज्जनों में हो ’ इस लिये नैमिषारण्यमें ययाति  
 ( के तीनों तारों ) का पतन हुआ, उस समय माधवी के—प्रतदंत, यमुमना, शिव और  
 अष्टरु नामके—चारों पुत्र देवेश्वर को प्रसन्न करने के लिये वाजपेय यज्ञ कर रहे थे । इस  
 यज्ञका धूआँ स्वर्गद्वार तक पहुँच जानेसे ऐसा दिखता था कि; मानों मूर्ध्नि से स्वर्ग पर्वत  
 देदीप्यमान धूर्णकी नदी बांधी गई हो । और वह दोनों ओरने छोटती हुई दिखने लगे मानों  
 आकाशकी गंगा पृथ्वी पर बहती हुई आ रही हो । इसका आश्रय लेकर ययाति राजा ( पुण्य  
 क्षीण होनेसे ) धीरे धीरे पृथ्वी पर आगए । तब वहाँ मृग चर्याक्रमने माधवी भी आगई हो ।  
 उसने अपने पुत्रों के मस्तकों का स्पर्श किया । और वह तपस्वी के वेशमें बोले किः—  
 पिताजी मेरे यह चारों पुत्र आपके दीहित्र हैं सो पुत्रों के ही तुल्य हैं । प्राचीन इतिहास  
 को देखने से ज्ञात होता है कि यह आपको तारंगे । और मैं भी मेरे संचित पुण्य मेंसे आधा  
 अंश आपकी देती हूँ । यह सुनकर बड़ाके राजा लोग अपनी माताको शिर नवाकर  
 प्रणाम किये । और मातामह ( नाना ) को नमस्कार करके आश्रमन देने लगे । उस  
 काल में गालव ऋषि भी वहाँ आगए । और ययाति के किये हुए उपकार से उरुण होने के  
 लिये ययाति से बोले कि मेरी तपश्चर्याके आठ भाग से आप स्वर्ग में पहुँचिये । उस समय  
 ययाति राजा पृथ्वी छोड़ देता हुआ ऊपरको चढ़ने लगा है । वह इनका ऊपर आगया कि

(४) विश्वामित्राच्च अष्टक यज्या । एवं माधव्याश्चत्वारः पुत्रा अजायन्त । “ विश्वामित्रः सुत तच्च अश्वैस्तैः ( ८०० ) समयोजयत् ( ११९-१९ ) कौशिकोऽपि वनंययौ. ( १२० ) माधवी × परं वृतवती वनम् ॥ ५-६ ॥ उपवासै × आत्मनोऽलघुतां कृत्वा वभूव मृग-चारिणी ॥ ७ ॥ श्रव्येतीनांच पुण्यानां × पित्रि चारि मुख्यानि शीतानि विमलानिच ॥ ९ ॥ चरंती हरिणैः । सार्धं मृगीव धनचारिणी ॥ १०-११ ॥ ” अर्थ.—“ गालव को साथ लेकर गरुड प्रतिष्ठन नगर ( कुलक्षेत्र के उत्तर में ३५ अक्षांस के प्रदेश ) में ययाति के यहां गए और गालव के लिये दक्षिणा की प्रार्थना की; तब ययाति बोले कि मेरे पास अश्व तो नहीं हैं । किंतु चार बशों को स्थापन करने वाली माधवी Pegasus [ की मुख्य तारा मिरा है सो ] मेरी लड़की को आप ले जाकर विवाह दो तो इसके चार सतान के बदले में आपको ८०० अश्व मिल जायेंगे । सो तुम गुरु को दक्षिणा दे देना ॥ १४ ॥ ठीक है फिर मिल्का कहकर माधवी को साथ लेकर गालव और गरुड चले गये ॥ १५ ॥ दौसो दौसो अश्व में एक एक सतान ऐसे चार ठिकाने माधवी को विवाही तब इसको (१) हर्यश्व से यमुमना नामक पुत्र बड़ा दानी हुआ, (२) काशी के राजा दिवोदास से प्रतर्दन-शूर पुत्र हुआ । (३) औशीनर से शिवि सत्य बचनी हुआ, और (४) विश्वामित्र से अष्टक पुत्र बड़ा याज्ञिक हुआ । माधवी को इस प्रकार चार पुत्र हुए । इनके बदले में लिये हुए ८०० अश्व विश्वामित्र को दे दिये । इसने अपने माधवी के पुत्र अष्टक के पास उक्त अश्व रखकर आप वन में चले गए । माधवी भी तप करने के लिये वन में चली गई । यहां उपवासों को करने से दुर्बल होगई । और मृगों के साथ बिचरने लगी । पत्रि नदी के छातों का ठंडा निर्मल पानी पीती हुई हरिणादिकों के साथ भ्रमण करने लगी । ” इस कथा का भावार्थ—आगे दिये हुए ययाति के स्वर्ग से पतन कालीन नक्षत्रों में एव कोष्टक नंबर ४ में ययाति गालव, गरुड विश्वामित्र=नरतुंग माधवी=मिरा, देवपानी पुत्र और विश्वामित्रादि चार तारों की चतुरस्राकृति वालों के पुत्र माधवी के निकट के पूर्वोक्त भाद्रपदाके चारों तारों को देखने से तथा सरट Sacra जवुरु Vulpus पुंजों के हरिण, धनिष्ठा को धन समझने से भ्रंशोक्त का आशय स्पष्ट हो जाता है । इन पुंजों के गणितागत अंकोंकी तुलना कोष्टक नं. ४ द्वारा कर सकते हैं ।

### विधान १११

“ ययातिरपि × बहु वर्ष सदस्यायुं युयुजे बाल धमेणा ( १२० । १२ ) महर्षि कल्पो नृपति × ययाति. स्वर्गमारयित ॥ १४ ॥ बहु वर्ष सदस्यायुः काले बहु गुणे गते ॥ अयमेने नरांसवान् देवानृपिणास्तथा ॥ २२ ॥ पतेयं सत्स्विति यच्चिद्वत्त्वा ननुपा-त्मज ( १२१ । ८ ) नैमिष पाथियमान् ॥ चतुरोऽपत्रयत् नृपस्तेषां मध्ये पपावह ॥ प्रसर्दने वमुमना शिविराशो नरोऽष्टक ॥ १० ॥ याजपेयं यज्ञेन तर्पयति मुरेश्वरम् ॥



तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥ भूमौ स्वर्गेच संवद्धा नदी धूममयोमिव ॥  
 रागा गामिष गच्छन्तोमालेव्य जगत्तो पतिः ॥ १२ ॥ पषात मध्ये राजार्पेययातिः पुण्य  
 सक्षये ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमगताम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान्पुत्रां-  
 स्तापसा वातयमव्रवीत् ॥ दौहित्रास्तत्र राजेन्द्र समपुत्रा न तेषाः ॥ १३ ॥ इमं त्वा  
 तारयिष्यति दृष्टमेतत् पुरातने ॥ १४ ॥ मया प्युपाचतो धर्मं स्वतोऽर्घं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ १६ ॥ अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथा-  
 भुवन् ॥ १७ ॥ अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ॥ तपसे मेष्ट भागेन स्वर्गमा-  
 रोहतां भवान् ॥ २८ ॥ समारोहो नृपतिरस्पृशन् वसुधा तलम् ॥ ( १२२। १ ) न पृथ्वी-  
 मस्पृशत्पदा ॥ २ ॥ दान, औदार्य, अनृत, यज्ञानुष्ठानकलानि चतुर्भिर्दौहित्रैर्वृत्तानि तदा )  
 यथा यथाहि जहन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ॥ तथा तथा वसुभार्तिं त्यक्त्वा राजा दिवं  
 ययौ ॥ १५ ॥ अभिशृष्टश्च वपेण × जज्याल परयाश्रिया. ( १२३। १—३ )

भारत उद्योग पर्व ।

अर्थ —“ ययाति की कई हजार वर्ष की आयु होने बाद में यह काल धर्म के योग  
 से स्वर्गको जाते हुए पहले महर्षि लोक में गए व बाद में स्वर्ग लोक में पहुँच गए । वहाँ  
 बहुत हजारों वर्षोंतक रहे अंतमें जब इनका पुण्यक्षीण होगया तब इन्हें गर्व आगया तो  
 मानव, देवता, व ऋषियोंका ( उच्यदाकूढ होनेने ) यह अपमान करने लगे । इन समय  
 इंद्रकी आज्ञासे इनका पतन होना शुरू हुआ । इनकी प्राति घटने लगी । यह देख  
 ययाति तीन बार बोले कि; ‘ मेरा पतन सज्जनों में हो । ’ इस लिये नैमिषारण्यमें ययाति  
 ( के तीनू तारों ) का पतन हुआ, उस समय मावरी के—प्रतदन, समुनन, शिवि और  
 अष्टक नागके—चारों पुत्र देवेश्वर को प्रमत्त करने के लिये वाजपेय यज्ञ कर रहे थे । इस  
 यज्ञका घूँसा स्वर्गद्वार तक पहुँच जानेसे ऐसा दिव्यता था कि; मानों भूमि से स्वर्ग पर्यंत  
 देवद्वयमान घूर्णकी नदी बाधी गई हो । और वह दोनों ओरने छोटती हुई दिव्यने से मानों  
 आकाशकी गंगा पृथ्वीपर बहती हुई आ रही है । इसका आश्रय लेकर ययाति राजा ( पुण्य  
 क्षीण होनेने ) धीरे धीरे पृथ्वी पर आगर । तब वहाँ मृग चर्याके क्रमसे माधवी भी आगई है ।  
 उसने अपने पुत्रों के मस्तकों का स्पर्श किया । और वह तपस्वी के वेशमें बोला किः—  
 पिताजी मेरे यह चारों पुत्र आपके दौहित्र हैं सो पुत्रों के ही तुल्य हैं । प्राचीन इतिहास  
 को देखने से ज्ञात होता है कि यह आपको तारंगे । और मैं भी मेरे संचित पुण्य मेंमे आधा  
 अंश आपको देती हूँ । यह सुनकर वहाँके राजा लोग अपनी मन्त्रों गिर नयाकर  
 प्रणाम लिये । और मातामह ( नाना ) को नमस्कार करके आश्वामन देने लगे । उन  
 काष्ठ में गाँठन ऋषि भी वहाँ आगए । और ययाति के क्रिये हुए उपकार में उत्कृष्ट होने के  
 लिये ययाति से बोले कि मेरी तपश्चर्याके ऋण माग में आप स्वर्ग में पधारिये । उन समय  
 ययाति राजा तृती छेद देना हुआ ऊपरको चढ़ने लगा है । वह इनका ऊपर आगया कि

उसके चरणभी पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते थे तब चारों दैहिकोंने इन्हें दान, औदार्य, अनृत ( सत्यवचन ) व यज्ञोंका फल दिया । जैसे जैसे दौहित्र अपना २ पुण्य अर्पण करते थे वैसे वैसे ययाति पृथ्वी से ऊपर को चढ़ते जातेये । अन्तमें ययाति पुनः स्वर्ग लोक में चले गए हैं । सो ययाति प्रसन्न होकर प्रति वर्ष जलन्ती वर्षा का आरंभ करते हैं । और अत्यंत शोभायुक्त देदीव्यमान हो गए हैं । ”

भावार्थ.—“ तारों की क्रांति का बदलना बहुत धीरे धीरे ( हजारों वर्षों में ) दृष्टि गोचर होता है । इसलिये ययाति की आयु कई हजार वर्षों की तथा स्वर्ग में स्थिति हजारों वर्ष की कही है । आदिपर्व ( अ. ८९ श्लो. १६-१८ ) में तो इंद्रपुरी, प्रजापति ( भुव मंडल ) लोक और अन्तमें चंदन वनसे हजारों वर्षों में ययाति का लौटना लिखा है । क्रांतिका बड़ाधरुतजानाकर पुण्यक्षीण होनेसे व प्रजापति के लोक तरु पटुच जानेसे ययाति को गर्व आगया कहा है । इसी से ययाति का पतन दर्शाया है । विश्वामित्र ( नर-तुरंग ) के निकट के ( कोष्ठक नगर ४ में देखिये ) ‘ का खा गा घा ’ चार गजओं [ विष्ट व वृत्तीय तारों ] के मुख्य आकृतिरूप बाछे पूर्वोत्तरभाद्र पदाके ‘ क, ख, ग, घ ’ तारे पुनरुत्पद्ये । यानी वह एकही रेखा में दिखते थे । यह उच्चभंग पुंज के अंतर्गत होनेसे ‘ वाजपेय यज्ञ कर रहे थे ’ कहा है । साथ में दिये हुए नक्षत्रों को देखने से ज्ञात होगा कि, यही से आश्विनगंगा, यज्ञकेषुर्य के छतके मारुत ऊपर की फैली हुई और पूर्व पश्चिम दोनों बगल से दक्षिण के तर्के लौटती आती हुई दिगती है । इसके पूर्व के तर्क की आश्विन गंगा में ययाति पुंज है । इस समय भाद्रपदमास के संवातकेलाटमें यह पुंज त्रिषुव घृत के नीचे आजाने से स्वर्ग से आकाश गंगा के अरुद्ध से ययाति का भूमिपर गगन हुआ कहा है । आदि पर्व [ अ. ८८ श्लो. ९ ] में ययाति की आकृति व स्वम्बर “ शक्राकं बिष्णु प्रतिम प्रभावम् ” इन्द्र=अ्येष्ट, श्वि=हस्त, बिष्णु=भरण पुंजके तीन तीन तारों के मुख्य ही ययाति के तीन तारे कहे हैं । जोकि ‘ पतेय सत्सु निरुक्त्वा ” के तीनचर के कथन से कोष्ठक में उक्त तीनों तारे ययाति के शिर, मध्य व चरण स्थानीय माने हे सो युक्त है । और यह तीनों तारे त्रिपुरतनुत्तके नीचे ( दक्षिण क्रानि के ) हो जानेसे ‘ सूर्यपथात्पतंतम् ’ ( आदि पर्व ८८-८ ) सूर्यपथ = त्रिपुरतनुत्तने पतन करा गया है । साथ दिये हुए नक्षत्रों में और कोष्ठक ४ के (क) काटम में लिखी हुई ययानि आदि की क्रानि को देखने में स्पष्ट तथा माटम होता है कि, पूर्वोत्तरभाद्रपदा के चारोतारों की क्रानि के अंतर्गत ययाति की क्रांति आगई थी । अतएव इन दैहिकों के नीचे ययाति का पतन बताया है । ‘ मितार ’ नामक तारे की सुदृढ मानकर ( साकी ) देवशान्पुंजको यज्ञी मानवी = मनु धेनुनामीय तारका पुंज यज्ञी तथा नदीमृत्ति होनेके कारण — मृगहे गुप्त निर और चंदनकोपुष्पाकरचन्दने ययानि = मृगचर्यगत कहे गई है । इसी के निर

के नीचे चारों तारे होने से यह अपने पुत्रों के सिर का स्पर्श कर रही है। और वह चारों अपनी माता को सिर से प्रणाम कर रहे हैं। माधवी पुंज का मध्य विपुत्र वृत्त से आधा अंश नीचे हो गया है वारते माधवी पुण्य का आधा भाग पिता को दे रही है। इधर कृतज्ञता पूर्णक गालव भी आ गए हैं। क्योंकि इनकी क्रांति भी ययाति के तुल्य विपुत्रवृत्त से दक्षिण में हो गई है। वह ( द. कां. ) ८ अंश हो जाने से गालव अपने संचित पुण्य के ८ भाग देकर ययाति को विपुत्र वृत्त पर लाने को कह रहा है। माधवी और भाद्रपदा के चारों तारों के सायन भोग अयन की विलोम गति से २७० अंश के तर्क बढ़ रहे हैं। अतएव यह दक्षिण के तर्क जाते हुए और ययाति उत्तर के तर्क बढ़ते हुए हैं। वारते इन्होंने कहा कि:- “ नचे देकैरुसोराजंछोकात्रः प्रतिनंदसि ॥ सयें प्रदाय भयते गंतारो नरके धयम् ( आदि पर्व ९३ १० ) ” हगारा पुण्य आपसो देकर हम लोग नरक ( दक्षिण गोल ) में जाने को तैयार हैं। आप स्वर्ग में जाईये ऐसा स्पष्ट कहा है। इस समय ययाति का सायन भोग २७० अंश से आगे धीरे २ बढ़ने लगा है। इसी ३ तारे विपुत्र वृत्त पर आगए तब वृत्ती को स्पर्श किये बिना यह स्वर्ग में जाने लगे। भाग इसकी उत्तर क्रांति ३५ अंश के ऊपर बढ़ गई तब ( उक्त ययाति के प्रतिष्ठान नगर ) उत्तर ३५ अक्षांस के प्रदेश में यह पूर्व पश्चिम रेखा रूप भूभाग की चरण से स्पर्श किये बिना स्वर्ग में चढ़े गए हैं। धीरे २ सतत दृश्यस्थान में प्रजापति के लोक रूप [ सायन भोग ९० अंश ] पर आरुढ़ हो गए हैं। इस समय ययाति = कृति का पुंज पर सूर्य आनेमे जलकी वर्षा को वर्षाने लगे हैं। और उत्तर क्रांति पूर्ण होने से परम शोभा को एवं दीप्ति के काळ को प्राप्त हुए हैं। ” इत्यादि कहा है।

### विधान ११२ (काल निर्णय.)

अब जब इस प्रकार के महा भारत के वर्णन में ययाति की आयु और स्वर्ग में स्थिति हजारों वर्षों की संगत्या में कहा है। तथा गङ्ग, गालव, माधवी व इनके चारों पुत्र और उद्येश्वरा पुंज के निकट के अश्वों ( तारों ) की गालव स्थिति विश्वामित्र [ नृ तुरंग ] के निरुद्ध हो कथामय में बताई है। इसके अन्यत्र कथन में स्पष्ट होना है कि; यह वर्णन कोई मानव देह धारी व्यक्ति के संभव का न होकर प्रसिद्ध नाम धारी तामरा पुत्रों के पुरोपीय ऐतिहासिक पद्धति का प्रत्यक्ष निदर्शक है। जोकि कोष्ठक ३ और ४ में पृथक्-पृथक् कालीन व क्रांति मासों के ( अ + उ + क ) विभागों में लिखे विपुत्रास क्रांति आदि परिमाणों में [ क ] परिमाण में ठीक ठीक मिलते हैं। [ अ ] तथा [ व ] परिमाणों में मिलते नहीं हैं। इस से स्पष्ट होना है कि यहां मत्र बातें अब कि उपोनिषद् हानमेन प्रोक्त परम प्राप्ति से मिलती हैं मत्र उमा के अनुसार निर्णय दिया जाना है कि मत्र पूर्व ८१ द्वात्रा

वर्ष में ययाति का पहिला स्वर्गारूढ का काल था। बाद में शक्रपूर्व ७९०९४ वर्ष में उसका पतन हो गया था। इस काल में गालव और दैहित्रादिकों के उल्लेख ( कोष्ठा नं. ४ का कालम के काल ) में ऊपर बढ़ते हुए ययाति राजा पुनः (दूसरी बार) शक्र पूर्व ५४१९८ वर्ष में स्वर्गारूढ हुए हैं। परंतु इस समय इनकी क्रांति संदिग्ध [ कम हो जान से दूसरी बार के पतन को 'संदोषस्थान' के नाम से कहा है जो कि उपर्युक्त कोष्ठक ३ के ( क ) भाग की परम क्रांति से बिल्कुल ठीक २ निश्चित हो जाता है।

---

### विधान ११३ ( सिद्धांत निर्णय )

संग्रहित कर लेते थे। ऐसी भैकड़ों प्रत्यक्ष देखी हुई बातों के स्वरूप को दर्शाकर सर्व साधारण जनतामें इसकी प्रसिद्धि होजाय इसहेतुसे आगेके ऋषियोंने उसको कथाके रूपमें कही है। सो सब सत्य है। इसीलिये इसमें लिखे हुए काल के अंशों से हर एक घटना के कालका अनुक्रम बिल्कुल सुसंगत रीतिसे आजभी हमें उपलब्ध होता है। इसी तरह अर्जुन आदिके कथा भागमें कहे बर्ष, इन्द्रपथ हरितनापुर ( दिल्ली ) कुण्डेनादि के उल्लेख उन २ अंशोंसे ठीक २ मिलते हैं जोकि ऊपर के कथनमें लिखे गए हैं। अतएव इससे ऊपर विधान १०५ में लिखे हुए [ यादी लिष्टके अनुसार ] १८ व्यक्ति की ही क्या, संपूर्ण वैदिक, भारत पुराण आदिमें लिखे हुए हजारों चरित्रोंकी; तदनर्गत लाखों देखने वालों की, लाखों बातोंकी एक कालानुक्रम से सबकी एक वाक्यता होजाती है। तब इसे ऐतिहासिक नहीं ऐसा कौन कहसकता है। हा इनका अर्थ है कि अभी तो इस शैलीका प्रादुर्भाव ही हुआ है। इसलिये यह सब खगोलीय इतिहास के रूपमें ही कहाया है। किन्तु अभी इन घटनाओंके देखने वालोंका उनके वर्णित नगर व देशों में उनके नाम, प्राम, जाति सम्भ्रता, नीति, धर्म, व कर्म व्यवहार आदिका पतालगाना बाकी है। ऐसा जब होजायगा तब किंवा ऐसे औरभी एकदो उदाहरण बताए जाय तब पाठकोंको ज्ञात होजायगा कि दरअसल में वेद काल निर्णय में और युग परिवर्तन में जो मानबोका इतिहास तीनपाडे तीन लाख वर्ष तक का बताया है। वह सब सत्य है। उसी के आधारपर मान्य जातिमात्रका सूक्ष्म इतिहास कालानुक्रम बद्ध तीनलाख वर्ष तक नि सन्देह जामकता है क्योंकि वास्तविक अर्थ को बताने वाली यही शैली है। इसी के आधारपर वेद पुगणादि की कथाएँ लिखी हुई होनेसे इसके बिना कल्पित किया हुआ अर्थ ही जब कि बयबर नहा होसका है तब उसके आधारपर कहा हुआ ( उद्ये. केतकर उपो. दीधिन, लो० टिलक व श्रियुत वैद्य आदिका बताया हुआ ) कालभी सत्य कैसे होसकता है। अतएव हमने उसे प्रमाण कोठी में लिया नहीं है।

### विधान ११४ ( परम क्रांति निर्णय )

यदि कौं कि उपर्युक्त लेख से तथा कोष्ठों में ( अ, ब, क ) काल के प्रतिपादन से ये तत्त शक पूर्व ८६ हजार वर्ष का काल मोटे तौर से और ७५ व ५४ हजार वर्ष का काल सूक्ष्म रीति से निश्चित होता है। तदनुसार परम ज्ञानि भी ३३ व ३० अंश के करीब की निश्चित हुई है। और अभिज्ञित की निज गति में उक्त कथन को पुष्टि भी मिल गई है। किन्तु इतने पर से परम क्रांति की चक्रगति निश्चित होती नहीं है। क्योंकि इतनी क्रांति तो लीव्हेरियर साणी के कालान्तर सरकार देन पर भी [ करीबन ] आजाती है। तथा और आगे शक पूर्व १५८२०० वर्ष में इनके मान से परम क्रांति ३४ अंश तक जा सकती है। तब इसके भी पूर्व काल की परम क्रांतिमान इससे अधिक बतलाये बिना और उसको

वर्ष में ययाति का पहिला स्वर्गास्त का काल था। बाद में शकपूर्व ७१०९४ वर्ष में उसका पतन हो गया था। इस काल में मालव और दौहित्रादिकों के उल्लेख ( कोष्टक नं. ४ की कालम के काल ) में ऊपर बढ़ते हुए ययाति राजा पुनः 'दूमरी बार' शक पूर्व ५४९९८ वर्ष में स्वर्गास्त हुए हैं। परंतु इस समय इन ही क्रांति संदित [ कम हो जाने से दूसरी बार के पतन को 'संदोषाख्यान' के नाम से कहा है जो कि उपर्युक्त कोष्टक ३ के ( क ) भाग की परम क्रांति से बिल्कुल ठीक २ निश्चित हो जाता है।

### विधान ११३ ( सिद्धांत निर्णय )

अब जब इस प्रकार विधान १०८ से ११२ तक के खगोलीय प्रत्यक्ष नक्षत्रों व ययति: शास्त्रीय कोष्टक आदि साधनों में सम्प्रमाण निर्णीत होता है कि, " ययाति का सदैव स्वर्ग गमन का वर्णन कोई मानव देहधारी व्यक्ति के संबंध का न होकर दिव्य देहधारी ययाति नाम से प्रसिद्ध तारका पुंज के उपलक्ष्य का है। अतएव उसका स्वर्ग भी पृथ्वी पर का उत्तर ध्रुव प्रदेश न होकर सदा दृश्य रहने वाला आकाश का उत्तर ध्रुव प्रदेश है इतना ही नहीं तो इस कथा भाग में जितने व्यक्तियों के नाम आए हैं। यह तारका पुंज आकाश में विद्यमान हैं। और अपने २ नाम से अब भी प्रसिद्ध हैं। चाहे उनके शर कितने भी अल्प या दक्षिणांचर में हों तो भी घटना के [ कोष्टक ३। ४ की 'क' कालम के ] समय में उन सबकी कृतियां ययाति के समानता में आकर विदुरवृत्त से उनकी दूरी ( द. क्रांति ) भी पुण्य प्रदान के कथन के तुल्य ही सूत्र मागन में अंश साम्य आती है। इस प्रकार यहां बीना तारों की गणित स्थिति के संबंध के वर्णन की विदुर क्रांति परिमाणों से एक वाक्यता मिल गई है। और यह किननी सूत्र या है कि " अमे नर तुंग के चतुस्स पुंज में से एक तारे की दक्षिण क्रांति, यही ३ की उत्तर क्रांति है। ठीक उसी तरह का दृश्य माधर्ष के [ प्रोत्पद्य ] चतुस्स पुंज की है। तथा यह भी [ ओग दिया नक्षत्रा देविये ] भुज कंठि मानों में से एक कर्णम्बर हा गई है। मो विना के निकट के ' एकतः शमकर्ण की ' तुल्यता माता के निकट के ' एकतः शमकर्ण ' से ठीक २ मिल गई है। व ' चंद्रचंम ' कथन में यह देखिएमान तुल्य प्रतीत होते हैं। मागन देवों पुंज जो अश्व व तुंग नाम से प्रसिद्ध है। उनसे उक्त तारों की क्रांति दक्षिण शर बाचे तारों में ठीक-ठीक मिलवान में " एकतः शम कर्णनां दयानां चट पर्वतां " यह कथन पूर्ण गति में समझ मिल पाता है। इस प्रकार के मान्यिकता व सूत्रता युक्त कथा भाग को देखने में मिल जाता है कि उन वैदिक काल में तुंगिय, पाणि, धामन, उदक व शंभुधन संज्ञ ही क्या और भी सूत्र दक्षक मागन वृद्धे उपलब्ध होगएथे। कि उनके द्वारा ठीक-ठीक नारजर सब प्रत्यक्ष देवी दृष्ट बातों की संज्ञा के रूप में

संग्रहित कर लेते थे। ऐसी सैकड़ों प्रत्यक्ष देखी हुई बातों के स्वरूप को दर्शाकर सर्व साधारण जनतामें इसकी प्रसिद्धि होजाय इसहेतुसे आगेके ऋषियोंने उसको कथाके रूपमें कही है। सो सब सत्य है। इसीलिये इसमें लिखे हुए स्थल के अक्षांशों से हर एक घटना के कालका अनुक्रम बिलकुल सुसंगत रीतिसे आजभी हमें उपलब्ध होता है। इसी तरह अर्जुन आदिके कथा भागमें कहे वर, इंद्रप्रस्थ हस्तिनापुर ( दिल्ली ) कुरुक्षेत्रादि के उल्लेख उन २ अक्षांशोंसे ठीक २ मिलते हैं जोकि ऊपर के कथनमें लिखे गए हैं। अतएव हमसे ऊपर विधान १०५ में लिखे हुए [ यादी लिष्टकेअनुसार ] १८ व्यक्ति की ही क्या; संपूर्ण वैदिक, भारत पुराण आदिमें लिखे हुए हजारों चरित्रोंकी; तदन्तर्गत लाखों देवने वालों की, लाखों योत्ताओं की एक कालानुक्रम से सबकी एक वांछ्यता हांजाती है। तब इसे ऐतिहासिक नहीं ऐसा कौन कह सकता है। हा इतना अवश्य है कि अभी तो इस शैलीका प्रादुर्भाव ही हुआ है। इसलिये यह सब खगोलीय इतिहास के रूपमें ही कहा गया है। किन्तु अभी इन घटनाओंके देखने वालोंका उनके वर्णित नगर व देशों में उनके नाम, ग्राम, जाति सम्पत्ता, नीति, धर्म, व कर्म व्यवहार आदिका पतालगाना बाकी है। ऐसा जब होजायगा तब किंवा ऐसे औरभी एकदो उदाहरण बताए जाय तब पाठकों को ज्ञात होजायगा कि दरअसल में वेद काल निर्णय में और युग परिवर्तन में जो मानवोंका इतिहास तीनसाढ़े तीन लाख वर्ष तक का बताया है। वह सब सत्य है। उसी के आधारपर मानव जातिमात्रका सूक्ष्म इतिहास कालानुक्रम वरु तीनलाख वर्ष तक निःसंदेह जासकता है क्योंकि वास्तविक अर्थ को बताने वाली यही शैली है। इसी के आधारपर वेद पुराणादि की कथाएं लिखी हुई होनेसे इसके बिना कल्पित किया हुआ अर्थ ही जब कि बयबर नहीं होसका है तब उसके आधारपर कहा हुआ ( ज्यो. केतकर ज्यो. दीक्षित, लो० टिलक व प्रियुत वैद्य आदिका बताया हुआ ) कालभी सत्य कैसे होसकता है। अतएव हमने उसे प्रमाण कोटी में लिया नहीं है।

### विधान ११४ ( परम क्रांति निर्णय )

यदि ऊर्ध्व कि उपर्युक्त लेख से तथा कोष्ठों में ( अ, ब, क ) काल के प्रतिपादन से केवल शत पूर्ण ८६ हजार वर्ष का काल मोटे तौर से और ७५ व ५४ हजार वर्ष का काल सूक्ष्म रीति से निश्चित होता है। तदनुसार परम क्रांति भी ३३ व ३० अंश के करीब की निश्चित हुई है। और अभिजित की निज गति में उक्त कथन को पुष्टि भी मिल गई है। किन्तु इतने पर से परम क्रांति की चक्रगति निश्चित होती नहीं है। क्योंकि इतनी क्रांति तो लीब्रेशनर सारणी के कालान्तर संस्कार देने पर भी [ करीबन ] आजाती है। तथा और आगे शत पूर्ण १५८२०० वर्ष में इनके मान से परम क्रांति ३४ अंश तक जा सकती है। तब इसके भी पूर्व काल की परम क्रांतिमान इससे अधिक बतलाये बिना और उसको

## कोटक नंबर ५.

आजसे तीन लाख वर्ष तकके इस २ हजार वर्ष के प्राचीन अयनांश और परमांश मान.

ज्यो. वि. हलनेनके प्रयासुमार ज्यो. केतकरके ज्योतिर्गणित  
[ पृ ८१-८७ ] में लिखे गणित द्वारा सविश्व.ज्यो. वि. लीव्हेरियर टेबुल पृ १०४ के आधार पर ज्यो.  
द्विवेदी के दिग्गोमांश [पृ १२] में लिखे गणित द्वारा.

कोटक नंबर ५

शोध लाग वर्ष से.	अयनांश	अयनक्षी वर्ष गति.	अदनेक.	स्थिति	रवि परम क्रान्ति.	रवि परम कानि.	य क्रान्तिरो.	पुनश्चाष्टिक विवरण.
वर्तमान लोक प्राक. वर्ष.	अंश	क्रिया		गणन	अंश	क्रिया	वर्ष यात विहता	दक्षिणा वर्त अयन गति परम क्रान्ति काल
( शकपूर )			अमा-तमानके	बिन्दुगतेसे				प्राचीन हानवेदीय मंत्रोंका निर्माण संहिता प्रयोगका आरंभ वेद संहिता काल
१० ११,८१००	३६१	५६	अमा-तमानके	पू पाठा	६३	५२	५१८०	आदि कालक आरंभ
२० १२,८१००	३७०	११	मासार्थीय	सापण	६१	५१	३८६२	वामावर्त अयन ग- तिका आरंभ काल अदिति काल समाप्त
३० १३,८१००	३७९	१५	मास	कागुन	६०	५०	३५८६	
४० १४,८१००	३८८	१९	वैशाख	चैत्र	५९	५१	३२८६	
५० १५,८१००	३९७	२३	वैशाख	वैशाख	५७	५०	२९८६	
६० १६,८१००	४०६	२७	वैशाख	वैशाख	५६	५०	२६९०	
७० १७,८१००	४१५	३१	वैशाख	पुनर्वसु	५५	५०	२३९२	
८० १८,८१००	४२४	३५	वैशाख	पुनर्वसु	५४	५०	२१९४	
९० १९,८१००	४३३	३९	वैशाख	पुनर्वसु	५३	५०	१९९६	
१० २०,८१००	४४२	४३	वैशाख	पुनर्वसु	५२	५०	१७९८	
२० २१,८१००	४५१	४७	वैशाख	पुनर्वसु	५१	५०	१५९९	
३० २२,८१००	४६०	५१	वैशाख	पुनर्वसु	५०	५०	१३९९	
४० २३,८१००	४६९	५५	वैशाख	पुनर्वसु	५०	५०	११९९	
५० २४,८१००	४७८	५९	वैशाख	पुनर्वसु	५०	५०	९९९९	
६० २५,८१००	४८७	६३	वैशाख	पुनर्वसु	४९	५०	८७९९	
७० २६,८१००	४९६	६७	वैशाख	पुनर्वसु	४८	५०	७५९९	
८० २७,८१००	५०५	७१	वैशाख	पुनर्वसु	४७	५०	६३९९	
९० २८,८१००	५१४	७५	वैशाख	पुनर्वसु	४६	५०	५१९९	
१० २९,८१००	५२३	७९	वैशाख	पुनर्वसु	४५	५०	४०००	
२० ३०,८१००	५३२	८३	वैशाख	पुनर्वसु	४४	५०	२८००	
३० ३१,८१००	५४१	८७	वैशाख	पुनर्वसु	४३	५०	१६००	
४० ३२,८१००	५५०	९१	वैशाख	पुनर्वसु	४२	५०	४०००	
५० ३३,८१००	५५९	९५	वैशाख	पुनर्वसु	४१	५०	२८००	
६० ३४,८१००	५६८	९९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ३५,८१००	५७७	१०३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ३६,८१००	५८६	१०७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ३७,८१००	५९५	१११	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ३८,८१००	६०४	११५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ३९,८१००	६१३	११९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ४०,८१००	६२२	१२३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ४१,८१००	६३१	१२७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ४२,८१००	६४०	१३१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ४३,८१००	६४९	१३५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ४४,८१००	६५८	१३९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ४५,८१००	६६७	१४३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ४६,८१००	६७६	१४७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ४७,८१००	६८५	१५१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ४८,८१००	६९४	१५५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ४९,८१००	७०३	१५९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ५०,८१००	७१२	१६३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ५१,८१००	७२१	१६७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ५२,८१००	७३०	१७१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ५३,८१००	७३९	१७५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ५४,८१००	७४८	१७९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ५५,८१००	७५७	१८३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ५६,८१००	७६६	१८७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ५७,८१००	७७५	१९१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ५८,८१००	७८४	१९५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ५९,८१००	७९३	१९९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ६०,८१००	८०२	२०३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ६१,८१००	८११	२०७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ६२,८१००	८२०	२११	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ६३,८१००	८२९	२१५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ६४,८१००	८३८	२१९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ६५,८१००	८४७	२२३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ६६,८१००	८५६	२२७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ६७,८१००	८६५	२३१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ६८,८१००	८७४	२३५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ६९,८१००	८८३	२३९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ७०,८१००	८९२	२४३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ७१,८१००	९०१	२४७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ७२,८१००	९१०	२५१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ७३,८१००	९१९	२५५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ७४,८१००	९२८	२५९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ७५,८१००	९३७	२६३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ७६,८१००	९४६	२६७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ७७,८१००	९५५	२७१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ७८,८१००	९६४	२७५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ७९,८१००	९७३	२७९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ८०,८१००	९८२	२८३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ८१,८१००	९९१	२८७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ८२,८१००	१०००	२९१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ८३,८१००	१००९	२९५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ८४,८१००	१०१८	२९९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ८५,८१००	१०२७	३०३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ८६,८१००	१०३६	३०७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ८७,८१००	१०४५	३११	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ८८,८१००	१०५४	३१५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ८९,८१००	१०६३	३१९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ९०,८१००	१०७२	३२३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ९१,८१००	१०८१	३२७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ९२,८१००	१०९०	३३१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० ९३,८१००	१०९९	३३५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ९४,८१००	११०८	३३९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ९५,८१००	१११७	३४३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ९६,८१००	११२६	३४७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ९७,८१००	११३५	३५१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ९८,८१००	११४४	३५५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ९९,८१००	११५३	३५९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० १००,८१००	११६२	३६३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० १०१,८१००	११७१	३६७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० १०२,८१००	११८०	३७१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० १०३,८१००	११८९	३७५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० १०४,८१००	११९८	३७९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० १०५,८१००	१२०७	३८३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० १०६,८१००	१२१६	३८७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० १०७,८१००	१२२५	३९१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० १०८,८१००	१२३४	३९५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० १०९,८१००	१२४३	३९९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
१० ११०,८१००	१२५२	४०३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
२० १११,८१००	१२६१	४०७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
३० ११२,८१००	१२७०	४११	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
४० ११३,८१००	१२७९	४१५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
५० ११४,८१००	१२८८	४१९	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
६० ११५,८१००	१२९७	४२३	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	
७० ११६,८१००	१३०६	४२७	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	४०००	
८० ११७,८१००	१३१५	४३१	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	२८००	
९० ११८,८१००	१३२४	४३५	वैशाख	पुनर्वसु	४०	५०	१६००	



[illegible]

\* अवनता नामान्न साटका आरंभ तक पूर्ण २२.६९९ वर्ष में पुनर्वसु (अदिति देवता) पर हुआ है। इससे प्राचीन दक्षिण-पूर्व गङ्गा और अर्जुन नामान्नोत्पत्ति है। तथा प्रो० टेम्प्लर के संस्कार से शकपूर्व १५८०० वर्ष में परम क्रांति ३४° ०' ४३' की प्रगति में पूर्ण दोहराव के साठ में कृष्ण हो गई है।

## कोष्टक नंबर ६

परम जाति ५२° ५२' के समय की ( सूर्य पथ ) जाति  
( शरुपूर्व २२०७०० वर्ष की ) उपकरण = सायन ज्योति पुज

उप	० +	३० +	६० +	९० +	१२० +	१५० +	उप
०	०° ००	०३° ३०	०६° ४०	०९° ५२'	१३° ४०	१६° ३०	३०
१	० ४८	०४ १५	०८ १२	०९ ५१	१३ ४३	१६ ४०	०९
२	१ ३६	०५ ३०	०८ ४४	१० ४९	१४ ४३	१७ ५२	२८
३	२ २४	०६ ४४	०९ ५६	११ ५८	१५ ५८	१९ ०३	२७
४	३ १२	०७ ५९	१० ४७	१२ ४०	१६ २७	१९ २७	२६
५	४ ००	०९ १३	११ ५७	१३ ३४	१७ ४६	२० ४१	२५
६	४ ४७	०९ ५७	१२ ४५	१४ २७	१८ १०	२१ ५५	२४
७	५ ३५	१० ४०	१३ ३३	१५ १९	१९ ३३	२२ १९	२३
८	६ २३	११ २४	१४ २०	१६ १०	२० ०५	२३ ०३	२२
९	७ १०	१२ ०७	१५ ०८	१६ ५७	२० ५७	२३ ५६	२१
१०	८ ५८	१२ ५०	१६ ५१	१७ ४६	२१ ४८	२४ ५०	२०
११	९ ४६	१३ ३३	१७ ४५	१८ ३९	२२ ४०	२५ ४३	१९
१२	१० ३४	१४ १६	१८ ३८	१९ ३०	२३ ३२	२६ ३६	१८
१३	११ २०	१५ ००	१९ २०	२० २८	२४ २४	२७ ३०	१७
१४	१२ ०७	१५ ४८	२० ११	२१ २०	२५ १६	२८ २४	१६
१५	१२ ५५	१६ ३६	२० ५९	२२ १२	२६ १०	२९ १८	१५
१६	१३ ४३	१७ २४	२१ ५०	२३ ०४	२७ ०४	३० १६	१४
१७	१४ ३१	१८ १२	२२ ४०	२४ ००	२८ ००	३१ १४	१३
१८	१५ १९	१९ ००	२३ ३०	२४ ५८	२९ ५८	३२ १२	१२
१९	१६ ०७	१९ ४८	२४ २०	२५ ५६	३० ५६	३३ १०	११
२०	१६ ५०	२० ३८	२५ १०	२६ ५४	३१ ५०	३४ ०८	१०
२१	१७ ४३	२० २८	२६ ००	२७ ५२	३२ ४८	३५ ०६	०९
२२	१८ ३६	२१ १८	२६ ५०	२८ ५०	३३ ४६	३६ ०४	०८
२३	१९ २९	२२ ०८	२७ ४०	२९ ४८	३४ ४४	३७ ०२	०७
२४	२० २१	२२ ५८	२८ ३०	३० ४६	३५ ४२	३८ ००	०६
२५	२१ १३	२३ ४८	२९ २०	३१ ४४	३६ ४०	३९ ००	०५
२६	२२ ०५	२४ ३८	३० १०	३२ ४२	३७ ३८	४० ००	०४
२७	२२ ५७	२५ २८	३१ ००	३३ ४०	३८ ३६	४१ ००	०३
२८	२३ ४९	२६ १८	३१ ५०	३४ ३८	३९ ३४	४२ ००	०२
२९	२४ ४१	२७ ०८	३२ ४०	३५ ३६	४० ३२	४३ ००	०१
३०	२५ ३३	२७ ५८	३३ ३०	३६ ३४	४१ ३०	४४ ००	००
	३३०	३००	२७०	२४०	२१०	१८०	उपकरण

## कोष्टक नं. ७

शक पूर्व २२०७०० वर्ष में परम क्रांति ५२°५२' द्वारा तारका पुंजोंकी क्रांति.

तारका पुंजों के.	सायन भोग.	क्रांति:	तारका पुंजों के.	सायन भोग.	क्रांति:
नाम	अं.	अं.	नाम	अं.	अं.
पुनर्वसु	०	+ ६	बाहल	२१९	- ६०
पुष्य	१९	+ ११	पूर्वा भाद्रपदा	२४१	- २५
आश्लेषा	२१	+ २०	उत्तरा भाद्रपदा	२६१	- २६
श्रृंगः	३४	+ ३१	रेवती	२७०	- ५५
मघा	३६	+ २८	अश्विनी	२८०	- ४३
कष्यः	६३	+ ४६	मिहिरः	२८४	- ३३
पूर्वा फाल्गुनी	५०	+ ४७	भरणी	२९४	- ३६
उत्तरा फाल्गुनी	५८	+ ५५	कृत्तिका	३०६	- १६
पाणिनिः	७१	+ ५०	गर्गः	३१५	- ३७
हस्तः	८०	+ ६२	रोहिणी	३१६	- ३२
नलः	७६	+ ५३	मूल दृश्य	३२८	+ २
चित्रा	९०	+ ५३	अश्लिः	३२९	- १९
मृगश	१२०	०	मृगशीर्ष	३३०	- ३७
स्वाती	१०८	+ ८४	कपिः	३३१	- २५
व्यासः	१११	+ ४८	आर्द्रा	३३५	- ३६
विशाखा	१११	+ ४८	मनुः	३४०	- १७
अनुराधा	१२९	+ ३६	पराशर	३४२	- १६
गौतम	१२९	+ ३९	अमरव	३५१	- ८२
जैमिनिः	१३४	+ ३१	कश्यप	३४६	- ९
ज्येष्ठा	१३६	+ ३०	लुम्बक ( व्याघ )	३५०	- ४७
यमः	१४७	+ २३	शुक्र	३५४	- ५
मूल	१५१	+ ९	भ्रमा	२	- १३
शिवः	१५९	+ १८	ययाति	३०९	- ८
पूर्वाषाढा	१६१	+ २	देवयानी	२८८	- १४
मृगश्रु	१६३	+ १२	साधवी	२७६	- २६
अभिजित्	१७१	+ ७०	गालव	३३६	+ २
उत्तराषाढा	१६९	+ ५	भूतप	८४ (२६४)	+ ७८
शकलः	१७२	+ ७	विश्वामित्र	१०८	+ २
श्रवण	१८८	+ २३	स्वस्तिकचतुरस्र	९९	+ २६
भरद्वाज	१९०	- ४	"	२	+ २०
धनिष्ठा	२०३	+ १५	"	३	+ २७
कुवेर	२१०	- २६	"	४	+ २०
शतभिषक	२२८	- ३६	गरुड	१७४	+ २३

उदाहरण देकर सिद्ध किये बिना परम क्रांति की चक्रगति कैसे निश्चित हो सकती है। और चक्रगति के निश्चित हुए बिना उच्चर घट्ट प्रदेश के अतिरिक्त भारतवर्ष में वेदों का निर्माण कहने में ओषमा य तिलक के बधनानुसार दोनों जटिल प्रश्न भी पूर्णतया हल होते नहीं हैं। और एस बडे चक्रों की गति को निश्चित करने के इतिहास को देखते क्रांति की गति सब का यह बात नई नहीं है। क्योंकि अयन गति भी पहले आश्लेष रूप मानी गई थी जोकि पराशर सिद्धांत में २४ व अर्थ सिद्धांत में २७ अंश तक की वादोन्नति किंतु अब तो पुलिशाचार्यादि को यही हुई चक्रगति ही सर्वमान्य होगई है इसी प्रकार परम क्रांति के मानों का उल्लेख अर्वाचीन ग्रंथों में २७°१५' ५-२४ अंश तक का लक्ष्य समझते, पुलिशाचार्य व सूर्य सिद्धांत में तथा सिद्धांत सभाट में २३°१५', २३°३०' २३°२८' तक का किया है सो उनके वर्तमान समय का है। परम क्रांति पछे को हटता है इतनी ही गति का शोध लगा था और अब पाश्चात्य ज्योतिर्विदा ने इसकी सूक्ष्म गति को तो निश्चिन कर लिया है किंतु उसमें कालांतर संस्कार देना या नहीं यह प्रश्न अभी बाका है। और वह प्रश्न कालाबाधि गणित से हल हो सकता है। ऊपर बतए हुए उदाहरण और कोष्ठकों से प्रतिपादन किये हुए अनेक तारों की जाति द्वारा प्रो० हर्शल साहब की कही क्रांति मर्यादा के ऊपर तो जाति चली गई है। अब प्रो० लवर साहब की कही मर्यादा के ऊपर कैसे जा सकती है यह साध दिये हुए कोष्ठक नंबर ५६।७ से माख्म हो जगगी।

कोष्ठक ५ में आजसे ३ लाख वर्ष पूर्वसे आरम्भ करके शाके १८०० पर्यंत दश दश हजार वर्ष की अवधि के अयनांश और अयनगति व स्थिति बतलाई है और तुलना के लिये प्रो० हानसेन एव ज्योतिर्गणितोक्त चक्रगति की और प्रो० लिब्रेरियर प्रोक्त श्विकी परम क्रांति लिखकर वैदिक ग्रंथोंसे अजतक के ग्रंथोंका कालभी संकेत मात्र से बता दिया है। इस कोष्ठक से आपको ज्ञात होजायगा कि यद्यपि अयन की बिलोम एव चक्र गति मानी गई है किंतु प्रो० हानसेनप्रोक्तकालान्तरसंस्कार के कारण शक पूर्व २२६९९ वर्ष में उसकी गति शून्य थी व उसके पहले सपात आगे बढ़ताथा इसलिये हमने उस कालका दक्षिणा वर्तकाल नामरखा है। गतिशून्य होने के समय सपात की पुनर्वसु नक्षत्र पर बिलोम गति होने के कारण ही पहले जिसे आदिति कहते थे उसे वैदिक ग्रंथों में वसु=वसत सपात के पुन = फिर से लौटने के नक्षत्र को पुनर्वसु कहने लगे। इस नक्षत्र पर करीबन ४५ हजार वर्ष तक सपात की स्थिति रही है वास्ते इस काल का नाम आदिति काल या पुनर्वसु काळ और ज्येष्ठ मास में सपात ६० हजार वर्ष तक रहा है। उस समय सापकाळ में ज्येष्ठा रोहिणी इन्द्र नक्षत्रों का उदय होता था इसलिये सब महीनों में बड़ा महीना ज्येष्ठ मास और नक्षत्रों में बड़ा व भारमिक्त नक्षत्र इन्द्र देवता ज्येष्ठा रोहिणा ( छोहिनी=छाळ तारे वाला ) नक्षत्र और भिन्न प्रतिकृति देवता मू५

( आरंभिक ) नक्षत्र नाम से यह वैदिक ग्रंथो में प्रसिद्ध हुए हैं । पौराणिक ग्रंथो में सगर राजा के ६० हजार पुत्रों से सागर का निर्माण होना, अंत में कपिल देव ( ब्रह्म हृदय Capella. ) के शाप से यह मरम्भ होना व भगीरथ द्वारा गंगा का अवतरण होना आदि कथाएं इसी काल की पुष्टि में कही गई हैं । भारत के उत्तर में ज्वालामुखी के अनेक परिस्फोटों के कारण वहां के समुद्र का सूखना आरंभ होकर हिमालय का प्रादुर्भाव हुआ है । वैदिक ग्रंथों में इसे उत्तर गिरि कहते थे । हानसेन की चक्र गति से इस समय परम क्रांति ५३ अंश थी । इससे २७ नक्षत्र व और तारों की क्रांति ज्ञात होने के लिये कोष्टक नं ६ में क्रांति सारणी लिखकर कोष्टक नं. ७ में स्थूल मान से सवकी क्रांति बता दी है ।

### विधान ११५ ( परम क्रांति का निर्णय )

कोष्टक ७ में गालव और विश्वामित्र की क्रांति समान बनाई है । इसी से भारत आदि पुराण ग्रंथो में इसका गुरु शिष्य का संबंध बताया है । ऐसे ही एक कालवच्छेदमें सममंडल में आने वाले निवट के तारों का पति पत्नी संबंध बताया है तो इस समय के संपात की स्थिति में हजारों वर्षों में भी विशेष अंतर नहीं पड़ने से:— “ वसिष्ठ-अक्षमाला, अश्विन-सुकन्या, पुलस्त्य-प्रतीची संध्या; अगस्त-वैदर्भी-लोपामुद्रा ] सत्यवान्-नावित्री, मृग-पुलोमा, कश्यप-अदिति, जमदग्नि ऐषु का, कौशिक-हेमवती, बृहस्पति-तारा, उर्वशी-पुरूखा, ऋचीरु-सत्यवती, मनु-सरस्वती, जरकारुजरकारी, उर्ण्यु-मेनका, तुंबरु-रंभा, नारद-सत्यवती, वासुकी-वतपर्वी, दुष्यन्त-शकुंतला, नल-दमयंती, और धर्म-धृति ” इतने तारकापुंजों का पति पत्नी संबंध इस कालमें हुआ है । इसके बाद भारत काल तक में “ राम-वैदेही व रामायण, धनंजय-कुमारी व पांडव द्रौपदी व भारत, कृष्ण-राक्सिणी व कृष्ण [ ब्रह्म हृदय ] कपिवृज-पार्थ ( सारिणी पुंज ) व श्रीकृष्ण चरित्र ” इत्यादि कथाएं सब समान क्रांति आदि के संबंध से कही गई हैं व उपपत्ति युक्त हैं । इससे निःसंदेह सिद्ध होता है कि परम क्रांति की चक्र गति है । क्योंकि उक्त अदिति काल के भी बहुत पूर्व काल से प्रो० हानसेन की कही गति युक्त परम क्रांति के मान बराबर मिलने आए हैं । और प्रो० लवर साहब की गति के मान की परम क्रांति मिलती नहीं है ।

### विधान ११६ वेदों के निर्माण स्थल का निर्णय ।

वैदिक ग्रंथो में दक्षिण भाग के तारों को भी आकाश के मध्य में कहा है “ अभी ये पंचो क्षणो मय्ये तस्थुर्महो दिवः ॥ २१ ॥ सुपर्णा एत आसते मय्य आरोधने दिवः ॥ २२ ॥ ( ऋ. सं. १. ७ ) ” अर्थात् कारंडव पुंज Towcan को ग्वस्वस्तिक में और सम-

मंडल कहा है। इसी तरह कवेद में— 'पारावत [ १-६-२४ ] दक्षिण बुज्य. (१-७-२) भरत पुत्र [ १-७-३ ] त्रिहोण ( १-७-१८-२५ ) अगस्त्य ( १-८-१५ ) इत्यला= इत्यका= मृगशीर्ष ( ४-४-३१ ) एवं नौका, स्वतिक, नर तुरंग, वृद्धलब्धक, निर्मिगिल, यमुना नदी, बहुशिरा राक्षस, यम, शशक, वृक, शिखाचल, जटायु, दक्षिण मत्स्य, मधु माक्षिका इत्यदि" दूर के दक्षिण शर वाले तारों का हमारे ऊँचे दृश्य भाग में आए हुआ का उल्लेख अनेक जगह मिलता है। इससे भी परम क्रांति उस समय अधिक थी। क्योंकि उत्तर क्रांति के समय दक्षिण शर से अधिक क्रांति दूर बिना वह तारे भारत वर्ष में शिर के ऊपर दिख नहीं सकते हैं। इस प्रकार जब कि अनेक प्रमाणों के आधार पर प्रो. हानसेन की कही परम क्रांति निश्चित होती है। तब इनके द्वारा लोकान्य टिळक के उपाधित किये हुए दोनों प्रश्न भी हल होजाते हैं। क्योंकि कोष्टक ५ में पुनर्वसु काल के आरंभ होने के पहले के काल में हानसेनोक्त परम क्रांति मन ५५ अंश के ऊपर निश्चित होती है। तब भारत वर्ष में ३५ अक्षांश के उत्तरीय प्रदेश में सतत दिन व सतत रात्रि होती थी। यानी ऐसे दीर्घ दिवस के समय सूर्य सदा दृश्य भाग में मंडलाकार घूमता हुआ दिखता था जैसा कि "उदयंतममस्परिस्वः पश्यंत, उत्तम ॥ देवं देवना सूर्यं मगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ऋ. सं. ४-१-८, वाजसं. २०-२१, मूर्धे ज्योति रुत्तमं(रं), स्वर्ग एवलोके [शत. ब्रा. १२-९-२८]" अर्थात् "अंधकार वाले इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग को देखते हुए हम यहाँ स्वर्ग में देवों के रक्षण कर्ता उत्तम ज्योति रूप सूर्य को देखते हैं।"—ऐसा कहा गया है। और सतत रात्रि के समय अंतरात्र आदि यह किये जाते थे। अतएव उत्तर भुव प्रदेश का दृश्य उस समय भारत में दिखता था। इस से वेदों का निर्माण भारत वर्ष में ही हुआ है। यदि उत्तर भुव प्रदेश में होता तो उक्त दक्षिण भाग के तारों का वर्णन वेद में नहीं आमकता। क्योंकि हम जैसे २ उत्तर की ओर आते हैं वैसे वैसे हमारे शिर के ऊपर दिखने वाले तारे हों दक्षिण के तर्फ ढाँसे हुए दिखते हैं। अर्थात् अक्षांश तुरन्त भुव ऊँचा आने से उत्तर का उतना ही प्रदेश दृश्य व दक्षिण अदृश्य होता जाता है। ९० अक्षांश भुव स्थान से विषुव-वृत्त ही क्षितिज रूप हो जाने से दक्षिण क्रांति के तारे क्षितिज के नीचे रह जाने से मदा अदृश्य रहते हैं। तब इन अदृश्य तारों का उल्लेख वेद में कैसे आसकता है। हमने तथा अन्यान्य सब प्रमाणों को देखते निर्णीत होता है वेदों का निर्माण कि, उत्तर भुव प्रदेश में नहीं होकर, भारत वर्ष में ही हुआ है।

### विधान ११७.

(मंगार के धार्मिक ग्रंथ वैदिक धर्म के संप्रदायिक धर्म ग्रंथ हैं.)

उपयुक्त विधान (७१-११३) में कहे हुए अनेक प्रमाणों से निश्चित किया गया है कि वैदिक बापों का पुराण निर्णीत गई है। और वह सब अंगोपयोग्य दृश्य विषयों के

आधार पर रचित होने से, गणित द्वारा उन घटनाओं का कालानुक्रम निश्चित होकर उसके सांख्यिक अर्थ की जांच आज भी हम शास्त्रीय रीति से कर सकते हैं। इतना ही नहीं तो इससे आगे यह भी निर्णय हो सकता है कि; हमारे के धार्मिक ग्रंथ हैं तो वैदिक धर्म के सांप्रदायिक धर्म ग्रंथ हैं। क्योंकि इनमें का प्राचीन कथा भाग वेदों में ही उद्धृत किया होने से उनका वास्तविक अर्थ भी इसी प्रकार खगोलीय ऐतहासिक पद्धति परसे निश्चित हो जाता है। फरक इतनाही है कि 'संवेदावेस्ता' की बहुतसी बातें वेदमंहिता में पूर्ण तथा मिलती हैं। और वायव्य की वेद, उपनिषद् व पुराण ग्रंथों में, ग्राह्यपन लेखकों ब्राह्मण व श्रौत सूत्र ग्रंथों से, जैन संप्रदाय के और बौद्ध संप्रदाय के ग्रंथों को धर्म 'सूत्र व पुराणों से तथा कुण्डलीन की उपनिषद् ग्रंथों से बहुधा समझती हुई आती हैं। इनलिये हम (लघु) लेख में एक संवेदावेस्ता का उदाहरण वक्तव्य औरों का दिग्दर्शन मात्र बनाता हूँ कि वेद के कौन २ सूक्त इसमें पड़े गये हैं। ऋग्वेद [ ८-३-१८-१९ ] में:—“यस्ते मन्यो विदधद् असायकः सहस्रभोजः पुण्यवि विश्वमानुषक् ॥ साह्यामदा समर्थ त्वययुजा सहस्रकृतेन सहसा सहस्रता ॥ १॥ १॥ २॥ तं हि मन्यो अभिभूयो वाः स्वयंभूर्मा सोऽ अभिमातिपाहः विश्वचर्षणिः 'सहुरिः' सहाधानस्मास्रोजः पृतनामु धेहि ॥ ४ ॥ अभागः सप्तरत्नोऽ अहिं तवक्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ॥ ५ ॥ तं वा मन्योऽभक्रतुर्निहिळा ( ७ ) हंसातनूर्वद- देवाय मेहि ॥ ५ ॥ ++ प्रियंते नाम सहुरे गृगमिनि विद्यातमुर्न यऽ आभू ॥ ३१ ॥ आभूत्या सहजा वज्र सायक सशो विमर्षमिभूतऽ उत्तरं ॥ कृत्याने मन्यो सहमे धेहि महा धनस्य पुण्ड्रत संसृजि ॥ ३३ ॥ संसृष्ट धनं उनं समकृत अहमिंदसा वरुणधमन्धुः भियंवधाना हृदयेषु शत्रवः पराजिता सोऽग्रानियंताम् ॥ तथा निविदधुमे—“जल्यसुद्रे जरित इंद्रः” तथा वाजम सं. ( १६१-१६ ) में नमस्ते रुद्र मन्यो “रुद्र सूक्त” इत्यादि मंत्र हैं।

### विधान ११८ ( सांप्रदायिक एकवाक्यता ) :

उपर्युक्त सूक्त का ऋषि तापसमन्यु लिखा है। पुराणों में चौथे मनु का नाम तापसा मनु कहा है किंतु यह ऋषि अलग है। यह मनु सूक्त अंगन इन की स्मिता, एवं वायु देवता वाले स्वामी नक्षत्र विभाग के मूतप पुंज के संज्ञ में कहा गया है। और यह अंगनो नंदन, वायु पुत्र, रुद्रावतार, मारुती = हनुमान की मूर्ति प्रणिष्ठा प्रयोग में पड़ा जाता है। साथ दिये हुए नक्षत्रों में मूतप Boates को देखिये हनुमान की मूर्ति भी ऐसी ही (तापसा भिमुख, दहिना पांज ऊपर उठाये सोभे हान में मरा व बाएं ऊंचे हान में श्वेतपुंज Canes Ven को श्रोणगिरि का रूप देकर) बनाई जाती है। मनु सूक्त में साह्यामदा अग्रमन्यु, उग्रमन्यु, आम्रमन्यु, व आम्रमन्यु, नाम आए हैं। इन मूतप के पूर्व में मेदि

Hercules नाम का तारका पुंज है उसको यहां 'सहुरि', सहावान्, सहुरिदत्त, सहुरे बिष्वात्तमुस' नाम से कहा है। तथा पार्श्वी लोगों के धर्म ग्रंथ 'स्रदावस्ता' (छदावस्था) [ फर्द ८-८० ] में अग्नि सबध के वर्णन के साथ में 'अहुर' मज्द व अहुर मज्दा तथा आग्रमन्यु के नाम हैं। सूक्त में लिखे हुए घटना के वर्णन के नामों के तुल्य इसमें भी वर्णन है। सहुर= अहुर= असुर शब्द मिलते हैं। वेद में अनुरागा को 'मित्र, नमस्य, मनस्, ब्राह्मण तथा अश्विनो विभाग में 'मिहिर' कहा है। अवेस्ता के मिहिर (यस्त ३१ '२८) में मिथ्र, एवं (फर्द १९ २० में) बोहमना=बहमन्, [ रुद्र के बाण ] मिथ्र, के बाण कहे गये हैं। तथा 'इंद्र देव, सौर्व देव, नासह धंत्य दैत्य, और छरवी (तोमर) व विशूल को धारण करने वाला अइश्म (असहइश्म) आकतश देव, असत्य हिमपुत्र समीप का अट्टदययम (नर सुरग), वृद्धावस्था देव, (रूप विकारी तारका पुत्र) अरुधति केश बुद्धि देवी (अबुधती = अबाधेवी) विविश, दैविश, कसबसि, एव देवों में बड़ा = (महादेव) महोदेव-पवतीशो (पार्वतीशो देव) (फर्द १९-४३ से ४७) " ऐसे वैदिक देवों के नाम और उनके = चात्रों का वर्णन दोनों का एकसा ही मिलता है। इससे पार्श्वी संप्रदाय भी वैदिक धर्म का भेद दे।

ऐसाही सामवेद [ ऐंद्रपर्व १२ तथा ३ पृ. १९६ ] में "मव इद्र ॥ मर्द्धित्व" इद्र का नाम 'मव' 'तथा' मर्द्धित और उसका नामस - वृत्र का बुद्ध कहा है। वह खादिह्या के इष्ट का कृति के लेखों में 'मर्द्धक-तिआमस के = बुद्ध से मिलता हुआ है। इससे खादिह्यन भी संप्रदाय भेद दे। तथा शतपथब्राह्मण [ ३.३.१३ पृ. २०९ में अतिथि व पूजनाप को अर्हन्त और चरण ध्यूह पारिशिष्ट सूत्र (११) में ऋग्वेद की ८ शाखा में से एक शाखा के पढ़ने वालों का नाम श्रानव व टीकाकारने आरकोगुरु ऐसा उसका अर्थ कहा है। तथा भवण की विष्णु देवता ऋषभ (वेदीक) देवता की आद्यतीर्थर तथा भारत आदि को उनके पुत्र एव पूज्य मानते हैं। इनके सस्कार गृह्य सूत्रों से मिलते हुए हैं। और अदालतों में दावभाग हिन्दुधर्मशास्त्रनुसार ही मानते हैं। इसकी व्याप्ति भी भारतवर्ष में ही होने से इनके आचार विचार हिन्दुधर्म शास्त्रों में मिल्न नहीं हैं। तथा अशुत्तर निकाय, छलित विस्तार, चुल्ल वग, महावग, त्रिपिटप, मुचानिपाम, पयग्जा गुत्त चक्रसि मुत्ता-दि ऐसे ग्रंथ हैं कि उनमें बौद्ध व जैन सांप्रदायिक बातें और बौद्ध ग्रंथों के प्राचीन कथा भाग की बहुतसी बातें भुति स्मृति पुण्यणादि से मिलती हुई हैं। यद्यपि महाम रत में बौद्धका उल्लेख नहीं है किंतु उराणों में उसे बुद्धका अवतारमाना है। श्रीमच्छंकराचार्य ने तो इ-हें दार्शनिक संप्रदाय भेद मात्र बताया है। ऐमेही वायव्य का ज्ञान करार वैदिक व पौराणिक भाग से व पुराण में की प्राचीन कथाएं उपनिषद् भग में बहुत्य मिलती हुई हैं। सारांश सारा के सब धर्म वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं। यद्यपि दशा तर, वात्सन्तर व प्राचीन इतिहास को सरक्षण करने की धर्म धरा भेद से उनमें बहुतसा फरक पट गया है।



तथापि मातृ, पितृ आतृ आदि शब्दों का सादृश्य, व्यवहारोपयोगी कारज्ञान = उपोतिशास्त्र आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्प शास्त्र, अर्थ शास्त्र, राज्य, व्यवसाय, न्याय, नीति, सभ्यता, साधारण वैदिक धर्म के मूल तत्व सबके एकसाह मिलते हैं। और जब कि वेदों का प्रादुर्भाव भारत वर्ष में हुआ है इससे सिद्ध होता है कि मानव जाति के प्रादुर्भाव का मूल स्थान भारत वर्ष है। \* अतएव मानवों के मूल धर्म ग्रंथ वेद हैं। तब जिस प्रकार खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से वैदिक कथा भाग का इतिहास (काल स्थल आदि) निर्णीत होसकता है ऐसे ही संसारके धर्म ग्रंथोक्त प्राचीन भागके इतिहास काभी निर्णय हो सकता है। क्योंकि मानव ही क्या प्राणिमात्र को जितना नित्य परिचय दिव्य ज्योति रूप आकाश से है उतना और किसी से नहीं है। तब कितने ही कालतक प्राचीन कथा भाग की उन्हें उपस्थिति रहना व उस को अग्र्याम, अभिभूत या आधि दैविक रीति से धर्म रूप मानते रहना स्वाभाविक बात है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि अनादि काल से लाखों वर्ष के इतिहास का पता लगाना है तो इसी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से ही छग सकता है। क्योंकि सूक्ष्म गणित से इसका सत्यमत्य निर्णय को हम अब भी कर सकते हैं।

## विधान ११९.

### ( मानवेतिहास का आरंभिक काल )

अब जब उक्त ऐतिहासिक पद्धति द्वाग निश्चित होसकता है कि सुदूर द्वापान्तर निवासियों के प्राचीन कथा भाग की तुलना वैदिक कथा भाग से करने पर इन सबका इतिहास ( अधिक से अधिक ) अदिति काल के आरंभ तक पहुंच सकता है। क्योंकि ग्रंथोक्त घटना की संगति परम क्रांति ९९-९६ अंश तककी तारों के क्रांति परिमाणोंसे निश्चित होती है तब कोष्ठक ९ में कही हानसेन की गति से २॥ लाख से २॥ लाख वर्ष तक उसकी कालमर्यादा जा सकती है और वह वसंत संपात की स्थिति से एवं तारों की निज गति से पुष्ट ( समर्थित ) होजाती है। किंतु अब यह प्रश्न उपास्थित हो सकता है कि; " यदि हम इतनी अधिक भी परम क्रांति को मान लेंगे तो भी इतने परसे परम क्रांति की चक्र गति निश्चित नहीं हो सकती है। क्योंकि प. क्रांति की गति का कालान्तर संस्कार प्रो. छपर की सारणी से बहुत स्वरूप मान लिया जाय तो इतनी क्रांति में दो चार अंश का फरक पढ़ने पर भी स्वल्पान्तर से घटनाओं की बातें मिल सकती हैं। " अतः इस प्रश्न को पूर्ण हल करने के लिये अब मैं उसके भी बहुत पूर्ण काल का उदाहरण बतलाता हूं:- "यावद्-दादित्यः पुरस्ता दुदेवापश्चास्त्वमेवाद्विस्तावदक्षिणत उदेवोत्तरतोऽस्त्वमेति" यह मंत्र छान्दोग्य

\* एतद्देश प्रसूतस्य-सकाशा दमजन्मनः ॥ एवं एवं चरित्रं शिक्षेन्नृ पृथिव्या सर्वमानसः  
॥ २० ॥ मानव धर्म शास्त्र ( अ. २ ).

Hercules नाम का तारका पुंज है उसको यहां सहुरिः, सहावान्, सहुरिदत्त, सहुरे बिष्वातस्सुस' नाम से कहा है। तथा पार्शी लोगों के धर्म ग्रंथ 'संदावस्ता' (छंदावस्था) [ फर्द ८-८० ] में अग्नि संबंध के वर्णन के साथ में 'अहुर' मज्द व अहुर मज्दा तथा आग्रमन्यु के नाम हैं। सूक्त में लिखे हुए घटना के वर्णन के नामों के तुल्य इसमें भी वर्णन है। अहुर= अहुर= असुर शब्द मिलते हैं। वेद में अनुराधा को 'मित्र, नमस्य, मनस्, ब्राह्मण तथा अश्विनी विभाग में 'मिहिर' कहा है। अवेस्ता के मिहिर (यस्त ३१-१२८) में मित्र, एवं (फर्द १९-२० में) वोहमना=बहमन्, [ रुद्र के बाण ] मित्र, के बाण कहे गये हैं। तथा 'इंद्र देव, सौम्य देव, नावड घंस्य दैत्य, और सरवी (सोमर) व त्रिशूल को धारण करने वाला अहुरम (असहुरम) आकतश देव, असत्य हिमपुत्र समीप का अहुरययम (नर सुरग), वृद्धावस्था देव, (रूप विकारी तारका पुंज) अरुंधति केश बुद्धि देवी (अंबुवती = अंबादेवी) विविश, वैविश, कसवीस, एन देवों में बडा = (महादेव) महोदेव-पयशीशो (पार्वतीशोदेव) (फर्द १९-४३ से ४७) " ऐसे वैदिक देवों के नाम और उनके=चित्रों का वर्णन दोनों का एकसा ही मिलता है। इससे पार्शी संप्रदाय भी वैदिक धर्म का भेद है।

ऐसाही सामवेद [ ऐंद्रपर्व १-२ तथा ३ पृ. १२६ ] में "मद इन्द्रः ॥ मर्द्धिष्वेन्द्र" इन्द्र का नाम 'मद' तथा 'मर्द्धित' और उसका कामस-पुत्र का युद्ध कहा है। वह खालिड्या के इष्ट का कृति के लेखों में 'मर्द्धक-तिआमस के = युद्ध से मिलता हुआ है। इससे खालिडपन भी संप्रदाय भेद है। तथा शतपथ ब्राह्मण [ ३०२ २-३ पृ. २०९ ] में अतिथि व पूजनीय को अर्ह्यत और चरण ध्यूह पारिशिष्ट सूत्र (११) में ऋग्वेद की ८ शाखा में से एक शाखा के पढ़ने वालों का नाम श्रावक व टीकाकारने श्रावकोयुक् ऐसा उसका अर्थ कहा है। तथा श्रवण की विष्णु देवता रूपम (वेदोक्त) देवता को आद्यतीर्थरु तथा भारत आदि को उनके पुत्र एवं पूज्य मानते हैं। इनके संस्कार गृह्य सूत्रों से मिलते हुए हैं। और अदालतों में दायभाग हिन्दुधर्मशास्त्रनुसार ही मानते हैं। इसकी व्याप्ति भी भारतवर्ष में ही होने से इनके आचार विचार हिंदुधर्म शास्त्रों से भिन्न नहीं हैं। तथा अंगुत्तर निकाय, कलित विस्तार, चुल्ल वग, महावग, त्रिविटप, सुचनिपात, पयज्जा सुत्त चक्रवत्ति सुत्तादि ऐसे ग्रंथ हैं कि उनमें बौद्ध व जैन सांप्रदायिक बातें और बौद्ध ग्रंथों के प्राचीन कथा भाग की बहुतसी बातें श्रुति स्मृति पुराणादि से मिलती हुई हैं। यद्यपि महाभारत में बौद्धका उल्लेख नहीं है किंतु पुराणों में उसे बुद्धका अवतारमाना है। श्रीमच्छंकराचार्य ने तो इन्हें दार्शनिक संप्रदाय भेद मात्र बताया है। ऐसेही वायस्य का जूना करार वैदिक व पौराणिक भाग से व कुराण में की प्राचीन कथाएं उपनिषद् भाग में बहुधा मिलती हुई हैं। सारांश संसार के सब धर्म वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं। यद्यपि देशान्तर, कालान्तर व प्राचीन इतिहास को संरक्षण करने की धर्म श्रद्धा भेद से उनमें बहुतसा फरक पड़ गया है।

युग बीते बाद ७१ युग होजाने से इस मनु की समाप्ति और आठवें सावर्णिक मनु का आरंभ होगा। तब ऋतु चक्र के तुरन्त पूर्ण स्थिति फिर से आजाने से बलि नामका तारका पुनः सतत दृश्य (ध्रुव प्रदेश) रूप इंद्र पद में फिरसे आरुढ़ होगा।" ऐसा कहा है। वैदिक ग्रंथों में वज्रवारी पुरुष के आकार के भूतप और भरत दो पुत्र हैं दोनों की वाङ्मति मध्य (विशाख) और तेजस्वी तारों की होने से इनको मरुत्वान् इंद्र, तथा भारत इंद्र कहा है। शक पूर्व २९४००० वर्ष के अवध [विष्णु] संपात, से श. पू. २८६००० वर्ष के पू. भा. (अजैकपात्) संपात तक हानसेन की सारणी से (कोष्ठक ९ देखो) रवि की परम क्रांति ६३° से ६१° तक थी। इससे भूतप का उत्तर शर ९४ अंश तक होते हुए भी उसकी क्रांति ५० से ९४ अंश तक की और भरत का दक्षिण शर १३°-२१° होते हुये भी उत्तरी उत्तर क्रांति ३४° से ३८° तक की होगई थी।

### विधान १२१.

इस प्रकार उत्तरीय देव विभाग के तारे दक्षिण मे व दक्षिणीय असुर विभाग के तारे उत्तर में आवे हुआ को तत्कालीन ऋषियों ने देखकर इन घटना को वेद ग्रन्थों के सामवेदीयमान में देख कर संज्ञाव नाम से व्यक्त की है उसी का उल्लेख भारत काले बली के कपन रूप से किया है। यद्यपि वैदिक ज्ञान का व मानव सृष्टि का आरंभ वैवस्वत मनु के युक्त युगों के हिसाब [१८४१२०००=] से आज ३२६००० वर्ष होते हैं और हानसेन की कही गति से उस समय अयन की स्थिति पुनर्वसु के निकट में व परम क्रांति मान ६७९ अंश का आसक्ता है। किंतु अभी तक हमें इस संबंध में पुष्ट प्रमाण मिले नहीं हैं। इसलिये उत्तर का इतिहास अधुना (अस्पष्ट) है। तब अभी उपर्युक्त मधु विद्या श्रुति से भारतीय बलि के वचन से इतना ही अर्थ ले सकते हैं कि भारत के ३९ अक्षांश के प्रदेश में उस समय सतत दिन व सतत रात्रि होती थी। और ऐसी स्थिति परम क्रांति (६०-१२) में स्पष्ट तथा दिख सकती है तथा अभी तो यह शोध ही आरंभिक है। आगे ९-४ वर्ष में जब इस विषय के ऊपर संसार के अनेक विद्वानों का ध्यान पड़ेगा तब तक के अन्वेषण से यह निर्णय हो सकेगा कि परम क्रांति की चक्र गति है या ६०-६२ अंश तक जाकर वह लौट जाती है। क्योंकि उपर्युक्त विधान ७४-११९ व कोष्ठक १-७ में बताया है कि अन्वेषण से यह बात तो सिद्ध हो चुकी है कि "भारति काल के आरंभ तक तो हानसेन की गति से संपात व परम क्रांति मान ठीक ठीक निश्चित हो जाते हैं। और तारों की निज गति से उसी की पुष्टि मिलती है। तब उसी से साधित क्रांति द्वारा वेद पुराणादि में एवं अन्य धर्म, मंत्रोक्त प्राचीन भाग के वर्णन में कही हुई अनेकानेक बातों की खोजोद्योग ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। इतनाही नहीं तो इतने दार्ष्टिक्य की गणित साध्य बातों

अरण्यकं च उपनेगद् मे उभृतं स्त्रिया ह्यञ् है. क्योंकि इसी अर्थ के मंत्र ऋग्वेद ( ७-८-९-११ ) में तथा नामोद ( उत्तर पर्व ) में आये हैं । जोर उनके भाषार्थ को महाभारत कारने एव पुराण रसायनान्त्रिप्रमाणं त्रिलिखीर उज्ज्वल के सम्राट् मे स्पष्ट कर दिया है कि:-  
 "मालिङ्गनाथ- नामापुरस्तात्पतेत्तद्वत् दक्षिणादिश ॥ पश्चिमांतावदेवापि तथोदीचीं  
 दिशान्तर ॥ ३० ॥ तथा मध्यं दिने सूर्यो नास्तमेतियदावदा ॥ पुनर्देवासुरं युद्धं भावि  
 जेतासि वस्तदा ॥ ३१ ॥ सर्वलोकान्वदादित्य एकस्थस्ता पविष्यति ॥ तदा देवा सुरयुद्धं  
 जेताद् द्वां शतप्रतो ॥ ३२ ॥ शत्रुउनाच स्थापितो ह्यस्य समयं पूर्वमेवस्यं भुवा ॥ ३५ ॥  
 अतनंतरं पण्मासानुत्तरं दक्षिणं तथा ॥ येनसंयत्तिलोकेपुगीतोण्ये विस्तृजन्निधिः ॥ ३६ ॥  
 भाष्मउ०- एषमुत्तस्तु दैत्यद्वारालिङ्गिद्रेण भारत ॥ जगाम दक्षिणामाशागुदीचिं तु पुर  
 दरः ॥ ३७ ॥ " - ( भारत शांति पर्व अ० २२५ ) " इसका अर्थ टिकितारने पुराणों के  
 आधार पर लिखा है :- " एकस्यो ब्रह्मलोकस्य सचान् मेरु पृष्ठादधस्तनास्तापयति तदा  
 ब्रह्मणो मध्यमावसाने पतमानं वैरस्यत मनोरधिकारं च्युत्यौसस्यां भविष्ये सावर्णिक  
 मनौ बलिर्द्रो भविष्यति " जेमाही भागवत पु. ( स्कंद ८ अ. ११ श्लो १२ ) में तथा  
 अन्यत्र भी अनेक पुराणों में लिखा है ।

---

विधान १२०

हाथ के स्थान में है। अर्थात् रेखायन्त और अश्विनी मेघाश्रम स्थान चित्रा तारे के सम्मुख १८० में है। ऐसीही ऋग्वेद संहिता (८-६-११) में कहा है— “सचन्त यदुपमः सूर्येण चित्रामस्य केतवो राम विन्दन् ॥ यन्नश्चत्र दहोदिवोनपुनर्यतो न किरद्वातुवेद ॥” भावार्थ यह है कि चित्रा पौर्णिमान्त में जब चित्रा तारे पर चन्द्र की स्थिति रहती है तब सूर्य की स्थिति राम (स्याटिन माया में मेघ राशी को ज्याम कहा है) मेघाश्रम पर होती है। इससे सिद्ध होता है कि राशिचक्र के आरम्भ स्थान में कोई तारा न होकर दीक्षिमान चित्रा तारे के सम्मुख राशिचक्र का आरम्भ स्थान मानने की परम्परा वैदिक काल में प्रचलित है।

### उपसंहार १

इस रिपोर्ट के पूर्वार्ध में (१) आर्य अनार्य वाद, (२) दक्षप्रवय वाद, (३) धर्म शार्ङ्गव्य 'बाण वृद्धि रसक्षय वादों का निर्णय और उत्तरार्ध में अयनाश्रवाद का निर्णय बताया है। राशि चक्र के आरम्भ स्थान में रेवती या अश्विनी का कोई तारा नहीं था। शिवा पिशियम को रेवती कहते हैं सो गलत है। चित्राभिमुख त्रिन्दु में राशि चक्र का गणना होती है। चित्रा अचल तारा है दो तान लाख वर्ष पूर्व वैदिक काल में यह क्रांति वृत्त पर था अब भ्रिक् २ अंश दक्षिण पर हुआ है। तो भी आरम्भ भोग में कुछ अन्तर नहीं पड़ता है। यही एक ऐसा तारा है कि जिसके द्वारा शुद्ध नाक्षत्र गणना स्थिर प्रत्यक्ष त्रिखला-बाधित समझी जाती है। जैसे घड़ी के घटा मिनिट को रेखाएं तर्कती पर अचल अंकित रहते हैं। उनके ऊपर चल सुइयों के परिभ्रमण से जैन ठीक ठीक कालज्ञान होता है इसी प्रकार क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा को मानकर जो अन्यान्य तारों के भोग शर निश्चित हैं सा तत्र शुद्ध हैं। उन नक्षत्रों में अयन मध्याह्न के परिभ्रमण से तथा परम क्रांति जनित क्रांति भेद रूप दो सुइयों से तीन लाख वर्ष तक का किम प्रकार कालज्ञान होता है सो (पृष्ठ २०८-२०९) कोष्टक तथा टेसादि में बताया गया है। भारत वर्ष में ही एक माम के अहोरात्र (मतत दिनरात्र) कैसे होते थे सो समस्या परम क्रांति की चक्रगति द्वारा किस प्रकार हल होती है इत्यादि नए शोध इन रिपोर्ट में बताए गए हैं। इसने द्वारा पचाह्न वाद तो मिट ही जाना है किन्तु पचाह्न गणित का इतना उपयोग है कि पिना ज्योतिष के सहारे लाखों वर्ष तक इतिहास काल की पर्यक्षा नहीं जान सकती है। इसीसे इतिहासज्ञ और पुराण वस्तु संशोधकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। वीन ऋषि दिन वर्ष में हुआ है उसने ऋग्वेद सामर्थ्य के जो जो मंत्र रहे हैं उनमें यही खगोलिक स्थिति कितने वर्ष तक प्रचार मिलती है इस प्रकार हजारों ऋषियों का वागमय परलोक वद मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन कालिक ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रथ हैं। वैदिक ऋषियों ने आकाश में दिखाई देनेवाली स्थिति को नक्षत्र राशि देवताओं के रूपक लेकर मन कहे हैं। इसलिये वेद, यज्ञ, उपनिषद्, और पुराणादि एवम्

की एकवाक्यता मिटने में परम क्रांति का नया कालान्तर संस्कार निश्चित होते हुए आज से ३ लाख वर्ष का मानवोत्तिष्ठान इसी पद्धति से निश्चित हो जाने वाला है। इस तरह संस्कार के इतिहास का व मानवोत्तिष्ठान का क्षेत्र विशालरूप का व मानव धर्म विशाल व एक रूप का निश्चित होजाने से सह धार्मिता रूप विश्व बंधुत्व प्रेम बढ़ेगा। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ ही हमारे इतिहास के स्रोतक एवं प्रमाण भूत श्रद्धा ग्रंथ हैं, ऐसा सब की आरितकता बढ़ने से जीवन कलह कम होगा तथा कालावधि गणित साधित व्योतिष व गणित के एवं आरुपण के नियमों के कई तारों का शोध लगते हुए इनके परिमाण और भी सूक्ष्माति सूक्ष्म मान के निश्चित होंगे इसलिये उसार के विद्वानों के प्रति मेरी प्रार्थना है कि "इस मान वेतिहास का पूर्ण पता लगाने वाले आद्वितीय, अत्यंत पवित्र एवं परमोपयोगी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति रूप शोध को दत्त चित होकर पूर्णावस्था को पहुँचाये। क्योंकि यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं है। अतएव यह कार्य अनेक विद्वानों से पूर्ण होवेगा ऐसी उम्मीद है।

### विधान १२९.

उपर्युक्त इंद्र का चित्र नक्षत्र वही है जोकि कन्या और तुला राशि में विभक्त हुआ माना गया है। उसी के ठीक ठीक मध्य में चित्रा योग तारा है। यह विभागारमक राशि चक्र के एवं क्रांति वृत्त रूप तुला के मध्य में काटने के स्थान में है। अतएव इसी की गणना से क्रांति वृत्त की दोनों बाजू १८०-१८० अंश बराबर तोले ( नापे ) जा सकती हैं। वेद में बहुतसी जगह इस इंद्र ( चित्रा ) को त्वष्टा देव कहकर इसके द्वारा ही सब नक्षत्रों के विभागों को नापना कहा है—“ त्वष्टा नक्षत्र मध्येति चित्रा सुभंससं युवति रोचमानाम् ॥ निवेदायन्नमृतान्मृत्योश्च रूपाणि पिशन् भुवनानिविश्या ॥ ” तैत्तिरीय ब्राह्मण ( ३-१-१-९ ) अर्थात् " क्रांति वृत्त के देव और मनुष्य संग्रह पूर्वोत्तरार्ध विभागों का तथा संपूर्ण नक्षत्रों की रूप रेखा ( १३°-२०° रूप ) का निश्चय करता हुआ शोभित उरु बाढी रूप-वती देदीप्यमान युवती के हाथ में अर्घ्यत तेजस्वी प्रकाश को फेकता हुआ ( आकृति देखिये ) चित्रा तारा रूपा त्वष्टा देव अभिमुख्य योग तारा रूप से विद्यमान ( सदा स्थिर=बूटी रूप अच्छल ) होकर सबको रूप देने के लिये उदित होता है। तथा वाजसं संहिता ( अ. ३७ ) में भी " देव स्यत्वा सवितुः प्रसवेन्विनो वीहृभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥ आद दे नारिरसि ॥ १ ॥ अर्थः—( सवितुः ) हस्त नक्षत्र के अभिगमार्त [ प्रसवे ] प्रसव नामक धुंज के निकट में ( देवस्य ) त्वष्टा देव की [ नारिः ] स्त्री रूप वाली चित्रा नामक [ असि ] तुम हो। ऐसी ( त्वा ) तुम्हारे को ( अश्विनोः ) अश्विनी नक्षत्र विभाग के ( वाहृभ्यां ) वाहृस्थानीय [ अस्त्रा व वीटा एरैसि ] दोनों तरों से तथा [ पूष्णो ] रेवती नक्षत्र—

हाथ के स्थान में है। अर्थात् रेख्यन्त और अधिनी मेघारम्भ स्थान चित्रा तारे के सम्मुख १८० में है। ऐसाही ऋग्वेद संदिता (८-६-१२) में कहा है— “सचन्त यदुपमः सूर्येण चित्रामस्य केतवो राम विन्दन् ॥ यन्नक्षत्रं ददशेदिवोनपुनर्यतो न किरटानुवेद ॥” भावार्थ यह है कि चैत्री पौर्णिमान्त में जब चित्रा तारे पर चन्द्र की स्थिति रहती है तब सूर्य की स्थिति राम (व्याष्टिन भाषा में मेघ राशी को व्याम कहा है) मेघारम्भ पर होती है। इससे सिद्ध होता है कि राशिचक्र के आरम्भ स्थान में कोई तारा न होकर दीप्तिमान चित्रा तारे के सम्मुख राशिचक्र का आरम्भ स्थान मानने की परम्परा वैदिक काल में प्रचलित है।

### उपसंहार १

इस रिपोर्ट के पूर्वार्ध में (१) आर्य अनार्य वाद, (२) दक्षप्रत्यय वाद, (३) धर्म शास्त्रीय ‘बाण वृद्धि रसक्षय वादों का निर्णय और उत्तरार्ध में अपनाशयाद का निर्णय बताया है। राशि चक्र के आरम्भ स्थान में रेवती या अधिनी का कोई तारा नहीं था। शिवा पिशियम को रेवती कहते हैं सो गलत है। चित्राभिमुख बिन्दु में राशि चक्र की गणना होती है। चित्रा अच्छल तारा है दो तान लाख वर्ष पूर्व वैदिक काल में यह क्रांति वृत्त पर था अब सिर्फ २ अंश दक्षिण पर हुआ है। तो भी आरम्भ भोग में कुछ अन्तर नहीं पड़ता है। यही एक ऐसा तारा है कि जिसके द्वारा शुद्ध नाक्षत्र गणना स्थिर प्रय त्रिकाल-बाधित समझी जाती है। जैसे घड़ी के घट्टा मिनिट की रेखाएँ तफ्ती पर अच्छल अंकित रहते हैं। उनके ऊपर सब मुइयों के परिभ्रमण से जेने ठीक ठीक कालज्ञान होता है इसी प्रकार क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा को मानकर जो अन्यान्य तारों के भोग शर निश्चित हैं सा सज शुद्ध हैं। उन नक्षत्रों में अपन मर्याद के परिभ्रमण से तथा परम क्रांति जनित क्रांति भेद रूप दो मुइयों से तीन लाख वर्ष तक का किम प्रकार कालज्ञान होता है सो (वृत् १०८-२०९) कीष्टक तथा लेखादि में बताया गया है। भारत वर्ष में ही एक मास के अहोरात्र (सतत दिनरात) कैने होते थे सो समस्या परम क्रांति की चक्रगति द्वारा किस प्रकार हल होती है इत्यादि नए शोध इन रिपोर्ट में बताए गए हैं। इसके द्वारा पचाह्न वाद तो मिट ही जाता है किन्तु पचाह्न गणित का इतना उपयोग है कि त्रिना उशोत्तिय के सहारे लाखों वर्ष तक इतिहास काल की मर्यादा नहीं जा सकती है। इसीसे इतिहासज्ञ और पुराण वस्तु सशोधकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। कौन ऋषि किन वर्ष में हुआ है उसने ऋग्वेदु मागार्थर्ण के जो जो मन्त्र कहे हैं उनमें पड़ी खगोलिक स्थिति कितने वर्ष तक प्रारम्भ मिश्रतो है इस प्रकार हजारों ऋषियों का कालानुक्रम एतत्काल वेद मन्त्रों की एक वाक्यता से लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन काष्ठिक ज्ञान कोपलूप मन्त्र हैं। वैदिक ऋषियों ने आकाश में दिखाई देनेवाली स्थिति को नक्षत्र राशि देवताओं के रूपक देकर मन कहे हैं। इसलिये वेद, यज्ञ, उपासना, और पुनाणादि एकही

की एकानयता मिश्रण से परम क्रांति का नया कालान्तर संस्कार निश्चित होते हुए आज से ३ लाख वर्ष का मानवेतिहास इसी पद्धति से निश्चित हो जाने वाला है। इस तरह संसार के इतिहास का व मानवेतिहास का क्षेत्र विशालरूप का व मानव धर्म विशाल व एक रूप का निश्चित होजाने से सह धार्मिता रूप विश्व बंधुर प्रेम बढेगा। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ ही हमारे इतिहास के स्रोतक एवं प्रमाण भूत शस्त्रीय ग्रंथ हैं, ऐसा सच ही आश्चर्यकता बढने से जीवन कष्ट कम होगा तथा कालावधि गणित साधित ज्योतिष व गणित के एवं आकर्षण के नियमों के कई तत्वों का शोध लगते हुए इनके परिमाण और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म मान के निश्चित होंगे इसलिये संसार के विद्वानों के प्रति मेरी प्रार्थना है कि "इस मान वेतिहास का पूर्ण पता लगाने वाले अद्वितीय, अत्यंत पवित्र एवं परमोपयोगी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति रूप शोध को दत्त चित होकर पूर्णावस्था को पहुंचावें। क्योंकि यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं है। अतएव यह कार्य अनेक विद्वानों से पूर्ण होवेगा ऐसी उम्मीद है।

### विधान १२२.

उपर्युक्त इंद्र का चित्रा नक्षत्र वही है जोकि कन्या और तुला राशि में विभक्त हुआ माना गया है। उसी के ठीक ठीक मध्य में चित्रा योग तारा है. यह विभाग्यमक राशि चक्र के एवं क्रांति वृत्त रूप तुला के मध्य में काटे के स्थान में है। अतएव इसी की गणना से क्रांति वृत्त की दोनों बाजू १८०-१८० अंश बराबर तोले ( नापे ) जा सकती हैं। वेद में बहुतसी जगह इस इंद्र ( चित्रा ) को त्वष्टा देव कहकर इसके द्वारा ही सब नक्षत्रों के विभागों को नापना कहा है:- " त्वष्टा नक्षत्र मध्येति चित्रां शुभसंसं युवति रोचमानाम् ॥ निवेशयन्नमृतामृत्याश्च रूपाणि पिशन् युवनानिब्रिश्वा ॥ " तैत्तिरीय ब्राह्मण ( ३-१-१-५ ) अर्थात् ' क्रांति वृत्त के देव और मनुष्य संज्ञक पूर्वोत्तरार्ध विभागों का तथा संपूर्ण नक्षत्रों की रूप रेखा ( १३°-२०' रूप ) का निश्चय करता हुआ शोभित उरु बाढी रूप-वती देदीप्यमान युवती के हात में आर्यत तेजस्वी प्रकाश को फैकता हुआ ( आकृति देखिये ) चित्रा तारा रूप त्वष्टा देव अभिमुख्य योग तारा रूप से विद्यमान ( सदा स्थिर=बूटी रूप अचल ) होकर सबको रूप देने के लिये उदित होता है। तथा बाजसंहिता ( अ. ३७ ) में भी ' देव स्यत्वा सवितुः प्रसवेभ्यनो ब्राहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥ आद दे नारिरसि ॥ १ ॥ अर्थ:- ( सवितुः ) हस्त नक्षत्र के अभिगवर्ति [ प्रसवे ] प्रसव नामक पुंज के निकट में ( देवस्य ) त्वष्टा देव की [ नारिः ] स्त्री रूप बाढी चित्रा नामक [ असि ] त्रुम ही। ऐसी ( त्वा ) तुझारे को ( अधिनोः ) अधिनी नक्षत्र विभाग के ( ब्राहुभ्यां ) बाहुस्थानीय [ अत्का व बाँटा एरिटिस ] दोनों तारों से तथा [ पूष्णो ] रेवती नक्षत्र—



हाथ के स्थान में है। अर्थात् रेवत्यन्त और अधिनी मेपारंभ स्थान चित्रा तारे के सम्मुख १८० में है। ऐसाही ऋग्वेद संहिता (८-६-११) में कहा है:— “सचन्त यदुपमः सूर्येण चित्रामस्य केतवो राम विन्दन् ॥ यज्ञश्च त्रं ददशो दिशो न पुनर्यतो न किरिखानुवेद ॥” भावार्थ यह है कि चैत्री पौर्णिमान्त में जब चित्रा तारे पर चन्द्र की स्थिति रहती है तब सूर्य की स्थिति राम (ल्याटिन भाषा में मेप राशी को न्याम कहा है) मेपारंभ पर होती है। इससे सिद्ध होता है कि राशिचक्र के आरंभ स्थान में कोई तारा न होकर दीप्तिमान चित्रा तारे के सम्मुख राशिचक्र का आरंभ स्थान मानने की परम्परा वैदिक काल में प्रचलित है।

### उपसंहार १

इस रिपोर्ट के पूर्वार्ध में (१) आर्य अनार्य वाद, (२) दक्षप्रत्यय वाद, (३) धर्म-शास्त्रीय ‘बाण वृद्धि रसक्षय वादों का निर्णय और उत्तरार्ध में अयनाशवाद का निर्णय बताया है। राशि चक्र के आरंभ स्थान में रेवती या अधिनी का कोई तारा नहीं था। शिवा पिथियम को रेवती कहते हैं सो गलत है। चित्राभिमुख दिष्टु में राशि चक्र की गणना होती है। चित्रा अचल तारा है दो तांन लाख वर्ष पूर्व वैदिक काल में यह क्रांति वृत्त पर था अब भिन्न २ अंश दक्षिण पर हुआ है। तो भी आरंभ भोग में कुछ अन्तर नहीं पड़ता है। यही एक ऐसा तारा है कि जिसके द्वारा शुद्ध नाक्षत्र गणना स्थिर प्रथम त्रिकाल-बाधित समझी जाती है। जैसे घड़ी के घटा मिनिट को रेखाएं तख्ती पर अचल अंकित रहते हैं। उनके ऊपर चल सुइयों के परिभ्रमण से जेने ठीक ठीक कालज्ञान होता है इसी प्रकार क्रातिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा को मानकर जो अयनाश तारों के भोग शर निश्चित हैं सो सब शुद्ध हैं। उन नक्षत्रों में अयन मण्डल के परिभ्रमण से तथा परम क्रांति जनित क्रांति भेद रूप दो सुइयों से तीन लाख वर्ष तक का किस प्रकार कालज्ञान होता है सो (पृष्ठ २०८-२०९) कोष्टक तथा लेखादि में बताया गया है। भारत वर्ष में ही एक माम के अहोरात्र (सतत दिनरात) कैसे होते थे सो समस्या परम क्रांति की चक्रगति द्वारा किस प्रकार हल होती है इत्यादि नए शोध इन रिपोर्ट में बताए गए हैं। इनके द्वारा पंचाङ्ग बाध तो मिट ही जाता है किन्तु पञ्चाङ्ग गणित का इतना उपयोग है कि विना ज्योतिष के सहारे लाखों वर्ष तक इतिहास काल की मर्यादा नहीं जाम होती है। इमिथि इतिहासज्ञ और पुराण वस्तु सशोधकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। कौन ऋषि किस वर्ष में हुआ है उसने ऋग्यजु सामाथर्ण के जो जो मंत्र कहे हैं उनमें वही खगोलिक स्थिति कितने वर्ष तक बराबर मिलती है इस प्रकार हजारों ऋषियों का वागानुक्रम एखाल्व वेद मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन काठिक ज्ञान को प्ररूप मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन काठिक ज्ञान को प्ररूप मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन काठिक ज्ञान को प्ररूप मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन काठिक ज्ञान को प्ररूप मंत्रों की एक वाक्यता में लग सकता है।

खगोलिक ऐतिहासिक पद्धति के विभिन्न पहलू के दर्शक हैं। ( टायटल पेज पर लिखे कुडराम वाजपेय आदि के प्रमाण देखिये ) गणित, शिल्पशास्त्रभूमिति, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योति शास्त्र के ज्ञान बिना वेदकालीन सुवर्णचिंति आदि पचागों की रचना माध्यम नहीं होसकती है। इतना वेद कालीन पचाग का महत्व है।

### वेदोक्त युग प्रमाण २

ऐसे ही जो पचागों में युग प्रमाण लिखा जाता है सो मा भुति स्मृति सम्मत नहीं है। इस विषय में चिरंजीव गापीनाथ चुडेटने एक " युग परिवर्तन " नामक पुस्तक लिखी है। उसके द्वारा कुछ शकाओं का समाधान होकर " सत् १९८१ शके १८४६ से वैवस्वत मनुका २८ वा कलियुग समाप्त होकर सत युगका आरंभ होगया है " ऐसा सप्रमाण सिद्ध किया है। वस्तुतः " समाज निम समय अज्ञान की घोर निद्रामें सोता है वह कलियुग, विचार करे सो द्वापारयुग, अपने पैरों खड़ा होजाय सो त्रेतायुग और काम करने लग जावे सो कृतयुग " इस एतरेय ब्राह्मण के कवनानुसार अब यह असार में ज्ञान क्रांतिकायुग है मनु स्मृति भागवत आदि में कही युग व्यवस्था ( ४८०० वर्ष का कृत, ३६०० का त्रेता, २४०० द्वापार, १२०० कलि ) के अनुसार उस ग्रंथ में निश्चित की है इससे सकल्प में ' एकीनत्रिंशत्तमे कृत युगे कृत प्रथम चरणे कदा जाना उचित है। तर्किक मिथ्या कलियुग की आति से जो ' कलियुग मेंही दत्तक, तथा औरस नामक दो प्रकार के पुत्र मिले जाते हैं बाकी मिताक्षरा धर्म शास्त्र में लिखे द्वादशविधपुत्र दापभाग में परिगणित नहीं होसते अत आगे सतयुग के वर्ष लिखे जानसे हिन्दू लों की तरफ न्यायाधीशों का ध्यान आकृष्ट होगा और जिस कलिपूर्व प्रकरण के कारण गत १२०० वर्ष से भरत गारत होगया है यह सब बातें सतयुग के कारण त्यागी जायेंगी। इससे पचागकार भी ' सतयुग प्रवर्तक की उच्च श्रेणी में प्रत होकर बेह देगोपकारी पुण्य के मागी होंगें।

### शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान आदि ३

भुतिस्मृति ग्रंथोक्त ज्ञानको प्रत्यक्ष वेध सिद्ध गणितमानसे मित्राकर जिस वर्षमानमे इतिहास का कालानुक्रम निश्चित होता है और ज्योति शास्त्र, आरुर्पण शास्त्राय कार्य कारण जनित तर्क शास्त्र से जो पुष्ट होता है। इस प्रकार सब प्रमाणों की एक वाक्यता से शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान ३६५ दिन, १२ घंटे, २२ पल ५७ विपल मानने से उच्च गति ११" ९ मुक्त वैद्रीय वर्ष ३६५.२५९७ दिन, अयनगति ( ५०" २ विभुन सांम्यतिक वर्ष ३६५.२४२२ दिन इस प्रकार सब परिमाण निश्चित हो जाते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण ( पूर्वार्ध पृ. १००-१०२ ) किया गया है। बाकी पचाग साधन का शुद्ध सूक्ष्म दृग्गणोत्पेक्ष गणित ग्रह लाघव चालन में बताया गया है। इसलिये पचांगकारों से प्रार्थना है कि जहाँ तक प्रभाकर मिहान्त, वरण, और सारणी ग्रंथ प्रकाशित न हों वहाँ तक रिपोर्ट में लिखे

काष्ठकों से या उपलब्ध शुद्ध नाक्षत्र ग्रंथों से पचाग साधन करें, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है। मैं पूर्ण निचार कर देखलिया है कि शुद्ध नाक्षत्र पद्धति अव्यतही उपयोगी है। जिस पद्धति को कायम रखने के लिये श्रुतिस्मृति पुराणादि के बहुधा समस्त प्रमाण एवं मंत्र कहे गये हैं। समस्त धार्मिक कार्य, नक्षत्रों के ही आधार से किये जाते हैं। उसीक रक्षण का लाभ स्वरूप आज हमें तीनलाख वर्षका इतिहास ज्ञात होने लगा है। जिन लोगोंने इस पद्धति को त्याग दिया है सबसे उनका प्राचीन इतिहासही नष्ट हो गया है। वास्ते हमारा आद्य कर्तव्य है कि हमारे पूर्वजों की इस पूजा को कायम रखें। वह किस प्रकार कायम रह सकती है। वह पचाग गणित क इस पिछे में बनाया गया है। अन्वया दूसरे गणित के पचागों से वह कायम नहीं रह सकती। वास्ते उसका अंगीकार करना चाहिये, इन्नाह नहीं तो हमारे शोधोंके प्रकाश में लाख समार में श्रुतिस्मृति सम्मत सर्व निष्ठा तैवय पचाग का प्रचार करें ताकि भारत जैसे पहले समार का ज्ञानदाता गुप्त कहा गया है। वैश्वे ही अबर्ष इसका गौरव बेदोंका वास्तविक अर्थ उक्त शुद्ध नाक्षत्रपद्धति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये आप शुद्ध पचाग के प्रचार द्वारा भारत के गौरव को बढ़ावेग ऐसी मेरी आन्तम प्रार्थना है। और श्रीमन्त हुजूर सरकार का सुपश इतिहासपटलपर सुवर्णक्षों में हजारों वर्षतक अंकित रहें, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

## भारतीय नाक्षत्र मान पद्धति

अर्थात्

### वेदोक्त नक्षत्र विज्ञान

मंगलाचरण चित्रानक्षत्र देवता वाक्देवी सरस्वती की प्रार्थना के मूलमंत्र

ॐ अनन्ताम तादप्रतिनिर्मिता महीम्। यस्यादेना अटघु भोजन नि ॥ एकाक्षरा द्विपदा पदानाच वाच देवा उपजीवन्ति तन्त्र ॥ १ ॥ वाच देवा उपर्जनन्ति विश्वे वाचगधर्वा पशना मनुष्या ॥ वाचामा मिधा मुपाभ्यर्षिता सानोद्व जुगामिन्द्रवरनी ॥ २ ॥ वागक्षर प्रथम ज ऋतस्य वेदानामाता ऽमृतम्य नामि ॥ सा नो जुषाणोपयज्ञमगात् अमर्तोदेना सुहृता मे अस्तु ॥ ३ ॥ यमृपयोमन्त्रकृतोमनीपिण अन्वेच्छन्देवास्तससा श्रमण ॥ ता दनी वाच हविषायजामहे मानो ददातु सुकृतस्य अके ॥ ४ ॥ चत्वारि वाक्कारमिता पदानि तानि निदुर्ब्रह्मणायै मनीषण ॥ गुहागोणि निह्वतानेह्वयति तुलाय नाचो मनुष्या उदति ॥ ५ ॥ ( तोत्ताय ग्राम्हण २१८१४-५ ऋ स २,३,३२ ) द्वादश प्रथयक्षरमेक त्रीणिनम्यानि क उत चक्रेत ॥ तस्मिन्ताक त्रिशतानक्षरव पिता पणिर्नचला चयाम ॥ ६ ॥ योत्तन वसु निय सुदत्र सरस्वतितमिह धातेव ॥ ७ ॥ अनोपयमतमेभिर्गुणाना स्तनक्षत्रोमम्व गुममाना ॥ ८ ॥ ममानिचित्राऽअपिवातयत्तऽप्याभूत न वेदामऽऽरुतानाम् ॥ ९ ॥

खगोलिक ऐतिहासिक पद्धति के विभिन्न पहलू के दर्शक हैं। (टायटल पेज पर लिखे कुंडराम वाजपेय आदि के प्रमाण देखिये) गणित, शिल्पशास्त्रभूमिति, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिःशास्त्र के ज्ञान बिना वेदकाळीन सुपर्णचिति आदि पंचांगों की रचना ग्राह्य नहीं हो सकती है। इतना वेद काळीन पंचांग का महत्व है।

### वेदोक्त युग प्रमाण २

ऐसे हैं जो पंचांगों में युग प्रमाण लिखा जाता है सो मां भुति स्मृति सम्मत नहीं है। इस विषय में चिरंजीव गोपीनाथ चुन्नेटने एक "युग परिवर्तन" नामक पुस्तक लिखी है। उसके द्वारा कुछ शंकाओं का समाधान होकर "संवत् १९८१ शके १८४६ से वैवस्वत मनुका २८ वां कलियुग समाप्त होकर सत युगका आरंभ होगया है" ऐसा सप्रमाण सिद्ध किया है। वस्तुतः "समाज जिस समय अज्ञान की घोर निद्रामें सोता है वह कलियुग, विचार करे सो द्वापारयुग, अपने पैरों खड़ा होजाय सो त्रेतायुग और काम करने लग जाये सो कृतयुग" इस ऐतरेय ब्राह्मणक कथनानुसार अब यह संसार में ज्ञान क्रांतिकालयुग है मनु स्मृति भागवत आदि में कही युग व्यवस्था (४८०० वर्ष का कृत, ३६०० का त्रेता, २४०० द्वापार, १२०० कलि) के अनुसार उस ग्रंथ में निश्चिन् की है इससे संकल्प में 'एकोनविंशत्तम कृत युगे कृत प्रथम चरणे कदा जाना उचित है। तानि मिथ्या कलियुग की आति से जो 'कलियुग मेंही दत्तक, तथा औरस नामक दो प्रकार के पुत्र गिने जाते हैं बाकी मिताक्षरा धर्म शास्त्र में लिखे द्वादशविधपुत्र दापभाग में परिगणित नहीं होसकते अतः आगे सतयुग के वर्ष लिखे जानेसे हिन्दू लों की तरफ न्यायाधीशोंका ध्यान आकृष्ट होगा और जिस कलिद्वय प्रकरण के कारण गत १२०० वर्ष से भारत गारत होगया है वह सब बानें सतयुग के कारण त्यागी जावेंगे। इससे पंचांगकार भी सतयुग प्रवर्तक की उच्च श्रेणी में प्रस होकर वेद देशोपकारी पुण्य के मागी होंगे।

### शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान आदि ३

श्रुतिस्मृति ग्रंथोक्त ज्ञानको प्रत्यक्ष वेध सिद्ध गणितमानसे मिश्रकर जिस वर्षमानसे इतिहास का कालानुक्रम निश्चित होता है और ज्योतिः शास्त्र, आरुर्षण शास्त्रोप कार्य कारण जनित तर्क शास्त्र से जो पुष्ट होता है। इस प्रकार सब प्रमाणों की एक वाक्यता से शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान ३६५ दिन, १२ घटी, २२ पल ५७ विपल मानने से उद्य गति १।१९ युक्त कैद्रीय वर्ष ३६५.२५९७ दिन, अयनगति (५०".२ विद्युत साम्यागतिक वर्ष ३६५.२४२२ दिन इस प्रकार सब परिमाण निश्चित हो जाते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण (पूर्वार्ध पृ. १००-१०२) किया गया है। बाकी पंचांग साधन का शुद्ध सूक्ष्म दृग्गणितैक्य गणित प्रद लाघव चालन में बनाया गया है। इसलिये पंचांगकारों से प्रार्थना है कि जहाँतक प्रसारक सिद्धान्त, करण, और सारणी ग्रंथ प्रकाशित न होंगे यहाँतक रिपोर्ट में लिखे

कोणको से या उपलब्ध शुद्ध नाक्षत्र ग्रंथों से पंचांग साधन करें, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है। मैंने पूर्ण विचार कर देखलिया है कि शुद्ध नाक्षत्र पद्धति अत्यंत ही उपयोगी है। जिस पद्धति को कायम रखने के लिये श्रुतिस्मृति पुराणादि के बहुधा समस्त प्रमाण एवं मंत्र कहे गये हैं। समस्त धार्मिक कार्य; नक्षत्रों के ही आधार से किये जाते हैं। उसीके रक्षण का व्याप्त स्वरूप आज हमें तीन लाख वर्षका इतिहास ज्ञात होने लगा है। जिन लोगोंने इस पद्धति को त्याग दिया है तबसे उनका प्राचीन इतिहास ही नष्ट हो गया है। वास्तव में हमारा आद्य कर्तव्य है कि हमारे पूर्वजों की इस पूंजी को कायम रखें। यह किस प्रकार कायम रह सकती है। वह पंचांग गणित का इस विषय में बताया गया है। अन्यथा दूसरे गणित के पंचांगों से वह कायम नहीं रह सकती। वास्तव में उसका अंगीकार करना चाहिये, इन्हीं ही नहीं तो हमारे शोधोंके प्रकाश में लाखों संवार में श्रुतिस्मृति सम्मत सर्व निन्द्यतैवय पंचांग का प्रचार करें ताकि भारत जैसे पहले संवार का ज्ञानदाता गुरु कदा नय है। वेमे ही अजमी इसका गौरव वेदोंका वास्तविक अर्थ उक्त शुद्ध नाक्षत्रपद्धति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये आप शुद्ध पंचांग के प्रचार द्वारा भारत के गौरव को बढ़ावेंगे ऐसी मेरी आन्तम प्रार्थना है। और श्रीमन्त हुल्लर सरकार का सुपश इतिहासपटलपर सुवर्णक्षों में हजारों वर्षतक अंकित रहें, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

## भारतीय नाक्षत्र मान पद्धति

अर्थात्

### वेदोक्त नक्षत्र विज्ञान

मंगलाचरण चित्रानक्षत्र देवता वाक्देवी सरस्वती की प्रार्थना के मूलमंत्र

ॐ अनन्तामन्तादधिनिर्मिता महीम्। यस्यां देवा अटधु भोजनयन्ति ॥ एकाक्षरा द्विपदा पदत्रयश्च वाच देवा उपजीवन्ति विश्वे ॥ १ ॥ वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचगर्भवन्ति पशवो मनुष्याः ॥ वाचीमा विश्वा भुजनावर्षिता सानोश्च जुगतामिन्द्रपत्नी ॥ २ ॥ वागक्षरं प्रथम जाद्वयस्य वेदनामाता ऽमृतम्य नामि ॥ सा नो जुगतामिन्द्रपत्नीमात् अवन्तो देवा सुहवा मे भन्तु ॥ ३ ॥ य मृपथोमन्त्रकृतो मनीषिणः अन्वेच्छन् देवास्तपसा श्रमेण ॥ ता देवी वाच हविषाय जामहे सानो ददातु सुकृतस्य लोके ॥ ४ ॥ चत्वारि वायारमिता पदानि तानि विदुर्ब्रह्मणायै मनीषिणः ॥ गुहाशोणि निहतानेह पन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ५ ॥ ( तैत्तिरीय ब्राह्मण १।८।८।४-५ ऋ. सं. १, ३, ३२ ) द्वादश प्रथमश्चरुमेकं त्रीणि नभ्यानि क दत्तचक्रेत ॥ तस्मिन् सारं त्रिशतानक्षत्रकं परिताः पट्टिने चला चलायः ॥ ६ ॥ योऽस्मिन् वाचमु-  
नियः सुदत्रः सरस्वतितमिह धातये कः ॥ ७ ॥ अतोऽयमन्तमेभिर्गुजानाः सनक्षत्रोऽमस्तन्वः शुभमानाः ॥ ८ ॥ मन्मानि चित्राऽअपि वातयन्तऽप्याभूत न वेदामन्मन्तानाम् ॥ ९ ॥

एवायासीष्ट तन्वेवया विद्या मेपं वृत्रनंजीरदानुम् ॥ १० ॥ ( ऋक्संहिता २।३।२२-२६ )  
 इह एष्टारमपिपं विश्वरूपमुपवृद्धये अस्याक्रमस्तु केयः ( ऋक्सं. १।१।२५ ) श्रीधने लक्ष्मीश्च  
 पत्न्या वहे।एतेपार्थे नक्षत्राणि रूपमधिनी व्याचक्षुः ॥ इष्वाग्निपाणा मुष्मड्इषाण सर्वलोकेऽम् ॥ इषाण  
 ( वाजस सं. ३१-२२ ) प्रातर्युजा त्रिरोधयाऽअधिना वेह गच्छताम् ॥ अस्य सोमस्य  
 पीतये ॥ ४ ॥ त्रिमत्तारं हवामहे धमेद्विचप्रस्थ राधम् ॥ सत्रितारं नृवक्षस्म ॥ ५ ॥ अग्ने  
 पत्नी रिहायह देवाना सुशती रूपत्वष्टारं सोमपीतये ॥ ६ ॥ ( ऋक्संहिता १.२.५ )  
 इत्यतो यजुर्वेदोक्त आश्विन्यादिऋमः स्वीकृत । दृढकोक्ता यजुर्वेदी या एव मंत्र" अधर्वण  
 संहिता तैत्तिरीय ब्राह्मणोक्तमन्त्रेभ्यः राजमर्तडोक्त श्लोकेष्व सदिताऽत्रातिविताः स्फुरिति  
 जानीते ।

१ आश्विनी नक्षत्र अश्व युजो दंतता तारा ३ अश्वमुख वदूषम् । अश्विनोरश्वयुजो  
 ग्राम, परस्ताःसेवनानस्तात् ) वृष ( यातावृक्ष ) समिधा " आश्विनी " तुरगो, वार्ज,  
 तुरंगश्च तुरंगमः ॥ घोडनोऽश्वोदयोत्राहो दल्लेयुग्मं निगद्यते ॥ १ ॥ प्रार्थना मन्त्रा. ( तै.  
 ब्रा. ३-१-२-११ ) आहूतिश्च ।

ॐ आश्विनातैजसाचक्षु प्राणेन सरस्वतीव्याप्यम् ॥ अश्वेन्द्रोबलेनैन्द्रायदधुरिन्द्रियम् ( य.  
 वे सं. २० ८ ) ॥ १ ॥ तदार्धना वथयुजोपयाता, शुभ गमिष्ये सुरममिष्ये ॥ खनक्षत्र  
 ५ हविष्यजन्मौ, मघासप्तृको यजुषाममक्तौ ॥ यो देवानामिपजो हव्यत्राहौ, विश्वयदूताव  
 मृतस्यगोषी ॥ तैनक्षत्र जुजुगाणोपयता, नमोऽश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुग्मा ॥ १ ॥ ( १ )  
 अश्विभ्यां ५ स्वाहा, ( २ ) अश्वयुग्मास्वाहा । ( ३ ) श्रेत्रास्वाहा ( ४ ) ध्रुये स्वाहा  
 ( तै ब्रा. ३-१-६ )

२ भारणी नक्षत्रं धमेदेयता । तारा ३ योनिवदूषम् ( यमस्यापमरणी । अपकर्षन्त पर  
 स्तात्, अपवहन्त अवस्तात् ) सफउ ( चद्रम ) समिधा । " धमेन्तफः कृत ग्तश्च याम्नः  
 प्रेतपतिः स्मृत ॥ भारणीपल्मादेशोऽस्यो दाधिपतिस्तथा ॥ २ ॥

३ यमदेयता । भारणी प्रार्थनामन्त्रः यमायत्ताङ्गिस्त्वते पितृमतेस्वाहा ॥ स्वाहा धर्माय  
 स्वाहा धर्मोऽपिरे ॥ ( य. व सं. ३८।९ ॐ अपपाप्मानं भगण भन्तु, तथमोगाजा भगन-  
 ष्विचष्टाम् ॥ लोवग्यभजा मङ्गलोमहान्ति, सुगन पन्थामभयकृणोतु ॥ १ ॥ यास्मन्नभ्रे यम  
 एरिराचा, यास्मन्नेनमम्यापिच-नदरा ॥ तदम्यचित्र हयिषाप्रजाम, अगपाप्य न भारणीभन्तु ॥ २ ॥  
 यात्रजुहेनि यमायस्वाहा, अपमरणीभ्य स्वाहा, राव्यप्यस्वाहाऽभेजित्यस्वाहेति ॥

४ कृत्तरानक्षत्र अभिदेयता । तारा ६ क्षुरावृतिः । ( अग्ने कृत्तराशुनपुरस्ताऽप्योदि  
 रप्रसाम् उदन्नसमिद्ध ) चट्टले दहनोऽग्निः पात्रोऽग्निताशनः । द्रुतमुगनयाऽग्निं नृगेहि-  
 तश्चयत्तिका ॥ ३ ॥ उदुबरोन-तुरुगोपजागो हेमदुरग टिमिदिन्नामानि ॥ ४ ॥

५ अग्ने कृत्तराया. प्रार्थनमन्त्रा ( तै. ब्रा ८.५.७ ) धयमग्नेम-श्विगोऽराज्यम-  
 न्तिनस्पति ॥ गूर्जकर्वर्याणाम् ॥ १ ॥ ( य वे म १५-२१ ) ॐ अग्निं पातुत्तिका

नक्षत्रं देव मिन्द्रियम् ॥ इदमासा विचक्षण, हविरासंजुहोतप ॥ १ ॥ यस्यभाति रश्मयो  
यस्यकेतयः यस्यमावेशामुवनानिसर्ग ॥ मरुतिनाभिरभिमनयान अग्निर्नोदेव सुवितेदधातु ॥ २ ॥  
अत्रजुहोति अग्नयेस्वाहा, कृत्तिकाम्य, अवायै, दुलये, नितत्ये, अम्रय-ये, मेययस्य,  
चुपुणीकायै स्वाहेति, ( तै. ब्रा. पृ. ८८५ )

४ रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता ॥ तारा ५ शक्यकार ( प्रजापतेरोहिणी । अप  
परस्तादोपधयोवस्नात् ) जवुकं ( जामुनसमिध ) “ रोहिणी पञ्चयोनिश्च ब्रह्मा कमलं सभय ॥  
पितामहोऽञ्जज्जधाता विरञ्चिश्चप्रजापति ॥ १ ॥ चतुर्मुखश्चतुर्भुजः स्रष्टापञ्चासनतस्था ॥  
आत्मभू परमेष्ठिचसुरज्येष्ठोमराप्रजः ॥ २ ॥ प्रार्थनामन्त्रा — ब्रह्मज्ञानमप्रथमम्पुरस्ताद्विंसीमत्तऽ  
सुरुचाग्नेनऽभ्राय सवुध्-याउपम अस्याग्निः सतश्चयोनिमसतश्चविव [य वे स. १३१] ॥ १ ॥  
प्रजापते रोहिणीवेतुहोती, विश्वरूपानृहती चित्रमानु ॥ सानोपज्ञस्य सुविते दधातु, यज्ञ  
जायेम शरदः सवीरा ॥ २ ॥ रोहिणी द्युदगापुरस्तात् । विश्वरूपानि प्रतिमोदमान ॥  
प्रजापतिरुहयिषावर्धयन्ती । प्रियादेवानामुपपातु यज्ञम् ॥ ३ ॥ प्रजापतयेस्वाहा । रोहिण्यै  
स्वाहा । रोचमानयेस्वाहा । प्रजाभ्य स्वाहा ( प्रियमावर्तने प्रियण गच्छत इतिफल )

५ मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमोदेवता । तारा ३ हरिणमुखाकृति ( सोमस्येवका इत्युच्चा-  
विततानि परस्तात् वय तोरस्तात् ) खदिर समिध । “ सौम्यामृशिरा सोमो निश नाथा  
निशापति ॥ मृगाकः शीतरीदिमश्च शत्राशोरजनापति ॥ १ ॥ इन्दुर्निशाकरश्चन्द्र शशाच-  
रोहिणीपति ॥ प्रार्थनामन्त्रा — सोमोऽर्घ्यं तपाशु ५ मांरीरकर्मण्यददनि ॥  
सादं यन्विदध्य ५ समेयन्तिनृश्रयणयोददाशदस्मै ॥ १ ॥ (य स ३४ २१, सोमोराजा मृग  
शीर्षेण आगन् । शिवनक्षत्रं प्रियममृगधाम । आप्यायमाना बहुधाजनेषु रेतः प्रजायजमानिदृशानु  
॥ २ ॥ यत्त नक्षत्रं मृगशीर्षमभिताम्यराजन् प्रियतम प्रियाणाम् ॥ तस्मेतसोमहविशाविधेम ।  
शान्तिं द्विपदशचतुष्पदे ॥ ३ ॥ सामायस्वाहा । मृगशीर्षायस्वाहा । इवकाभ्य स्व होपधाम्य  
स्वाहा । राज्यायस्वाहाऽभिजय स्वाहेति ॥

६ आर्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता । तारा १ मागिष्णामम् ( रुद्रस्यबाहुमृगयव परस्ता  
दिक्ष रोवस्तत् ) कलिहस्त ( बेहडेकाश्च ) “ आर्द्र, रोद्र शिव, शक्र, शक्रश्च शैवः ॥  
सोममृगयवनेर्भगिष्यडीशानिगिजामति ॥ १ ॥ मन्थरा महादेव पर्वती पनिरोश्वर ॥ आकटो  
नलकठश्चगेपतिवृषाहनः ॥ २ ॥ विभोतः कर्णकठे । भूता रास कलि स्मृत ॥ ३ ॥  
प्रार्थनामन्त्रा — ॐ नमस्तेरुद्रमन्त्रऽउतातऽऽश्वनम ॥ बाहुभ्य मुत्तेनमः ॥ १ ॥ [ य स.  
१६-१ ] ॐ आर्द्रपारुद्र प्रथमानयति । श्रेते देवानापातिरग्नियानम् ॥ नक्षत्रं मध्य हविषा  
विभेम । मान प्रजा ५ रीरिष मेत वीरन् ॥ २ ॥ इतिरुद्रस्य पणिण्युगलु आर्द्रनक्षत्रजुता ५  
हवेर्न ॥ प्रमुञ्चमानौदुरितान निधा । अपावश ५ सनुदनामातिम् ॥ ३ ॥ रुद्रायस्वाहा ।  
आर्द्रायस्वाहा । विन्वमानयेस्वाहा । पशुभ्यस्वाहेति ॥

७ पुनर्वसू नक्षत्रं अदितिर्देवता । तारा ४ गृहमदृष्टम् ( अदित्यपुनर्वसूनातः परस्ता दार्द्रग्यस्तात् ) यशस्तृप्तमभिधा । “ अदितिर्देवमानाच स्मृतापुनर्वसुर्बुधैः ॥ प्रार्थनार्थम्—  
 ॐ अदितिर्योऽदिनिन्तरिक्षमदिनि र्म्यतामवितासुतः ॥ विश्वेदेवाऽ अदितिः पञ्चजनाऽ  
 अदिति जातमादिति र्जनिष्यम् ॥ १ ॥ ( य. सं. १६-१ ) ॐ पुनर्नो देव्यदितिः स्पृणेतु । पुनर्वसूतः  
 पुनर्गता यक्षम् । पुनर्नो देवा अभियन्तु सर्वे । पुनःपुनर्वहविषावजामः ॥ १ ॥ एवान देव्य  
 दितिनर्षा । विश्वस्यमर्षो जगतः प्रतिष्ठा । पुनर्वसूऽभिषावर्वयन्ती प्रियं देवता मध्येतुताथः ॥ १ ॥  
 अदित्येस्वाहा । पुनर्वसुभ्यःस्वाहा । भूयेत्याहा । प्रजायेत्याहा ।

८ पुष्यनक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता । तारा ३ बाणमदृष्ट ( बृहस्पतेर्येषः जुह्वन्तः परस्ता वज्रमनावस्तात् ) निराल सभिधा । “ गुरुःपुष्यःसुरग्रेष्ठो देवगन्त्री कविः स्मृतः ॥ बृहस्पति  
 मुराचार्यो बाणेशश्च सुगर्हितः ॥ वक्रतोः सुसूत्रोऽपि मुरेव च्छिद्राक्षार्चितः । १ प्रार्थना  
 मंत्राः । ॐ ऋषयस्तो परिस्वष्टोऽभ्युम्ना गगनैः पूतः ॥ देवोदेव्य पवस्व येषाम्भा-  
 गोसि ॥ ८ ॥ ( य. सं. ७ ) १ ॐ ऋषयस्तोः प्रथमं जायमानः तिष्ठन् नक्षत्र मभिमन्त्रमूर्येष्ठो  
 देवानां पूतनासुजिष्णुः दिशो न सर्वा अभयं नोभस्तु ॥ १ ॥ तिष्ठःपुरस्ता द्रुतमप्यतेनःबृहस्प-  
 तिनः परिपातुपश्चात् ॥ बाधेता द्वयो अभयं कृणुतां । सुवीर्यस्य पतयःस्थाम ॥ २ ॥ बृहस्पतयेस्वाहा ।  
 तिष्ठायस्वाहा ॥ प्रह्वार्चनमप्येवाहंति ॥

९ आश्लेषा नक्षत्रं सर्वोदेवता । तारा ५ चक्राकारं । ( सर्पाणामश्रेयाः । अम्प्यागच्छन्तः  
 परस्तात् । अम्प्यागच्छन्ते वस्तात् ) नागवृक्ष ( पञ्चाल ) आश्लेषाभुजगः सर्पोददृशूकोभुजगमः ॥  
 चक्रुःश्रमफणोनागां भुजगफणमृचया ॥ उरगोऽदिविपाक्षश्च विपरासोऽव पन्नगः ” प्रार्थनार्थम्—  
 ॐ नमोस्तु सर्वेभ्यो येकेचपृथिवीमनु ॥ येऽअन्तरिक्षेयेदेवितेभ्यः सर्वेभ्योनमः ॥ १ ॥ ( य.  
 सं. १३ । ६ ) ॐ इदं सर्वेभ्यो हविरस्तुबुध । आश्लेषा येषा मनु रंति चेनः ॥ येअंतरिक्षं पृथिवीं  
 त्रिपन्ति । तेनः सर्पासोहवमागमिष्ठाः । येषोचने सूर्यस्यापि सर्गाः । येदंवंदेयामनु संचरंति ।  
 येषामाश्लेषा अनुयंति काम । तेभ्यः सर्वेभ्यो मधुमञ्जुसोमि ॥ २ ॥ सर्वेभ्यःस्वाहा । अश्रेयभ्यः  
 स्वाहा । इंदसू केभ्यःस्वाहा ॥

१० मघानक्षत्रं पितरोदेवता । तारा ५ गृहसदृशं ( अग्निर्ना मघाः रुदन्त परस्तादपभं-  
 शोवस्तात् ) वटपद्मोव सभिधा । “ पितृदेवो मघा निलंतातस्तुजनकः पितरः ॥ १ ॥

ॐ पितृभ्यः स्वधाभिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधाभिभ्यः स्वधानमः प्यपितामहेभ्यः  
 स्वधाभिभ्यः स्वधानमः ॥ अक्षन्नापितरो मीमदन्तपितरोतत्पन्त पितरः पितरःगुन्धदृष्टम्  
 ॥ १० ॥ ( य. सं. १९।२६ )

ॐ उपहृतः पितरोयेमघासु । मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः ॥ तेनोहवमागमिष्ठाः स्वधा-  
 भिर्यज्ञं प्रपतंजुताम् ॥ १ ॥ ये अग्निःग्वायेऽअग्निदग्वायेऽमुलोक्तं पितरःक्षिपन्ति ॥ याँश्च  
 विप्रयाँ उचनप्रविश मघ सुपञ्च सुकृतंजुपन्ताम् ॥ २ ॥ पितृभ्यः स्वाहा । मघभ्यःस्वाहा ।  
 अनयभ्यःस्वाहा । मघाभ्यःस्वाहा । अरुन्धतीभ्यःस्वाहा ॥



११ पूर्वाहालगुनीनक्षत्रं अर्धमा देवता । तारा २ शय्याकारं समिधा । “अर्धमातु पूमान्सूर्ये पितृदेवान्तोऽपि च । इत्वेवमन्यदप्युक्तं मर्यगोत्तर फल्गुनी ।” प्रार्थना मन्त्राः

ॐ देव्यावध्वर्युऽआगत २२रथेनमूर्ध्वत्वा ॥ मध्वायज्ञ २२समउजाधे । तंप्रत्ययायनेन विचित्रदेवानाम् ११ ( य. सं. ३३।७३ )

ॐ गवापतिः फल्गुनीनामसित्वं, तदर्थमन्नरूपस्यापित्रचारु, संतयावयं सनितारं सनीनां जीवाजीवन्तमुपसंविशेम ॥ १ ॥ येनेमाविधामुवनानि सजिता, यस्य देवाभनुमयंति चेतः ॥ अर्धमाराजाऽनरास्तु विष्मान्, फल्गुनीनामृषभोपेरसीति ॥ १॥ अर्धम्याहा । फल्गुनीम्याहा । पशुभ्यः स्वाहेति

१२ उत्तरा फल्गुनीनक्षत्रं भगो देवता । तारा २ मंचकाम ( भगस्योत्तरे बहस्यः पुरस्ताद्ब्रह्मानाभवस्तात् ) पूष ( पाकर ) समिधा । “मगाव्यः पूर्वफल्गुनी ॥ उपत्येपि सस्थानोपेतिः घोषः सुखप्रदः ॥ १ ॥ गर्भनिर्गमनद्वारागर्भः पंधास्थितोबुधः ॥

ॐ भगप्रणेतो भग सत्यरात्रो भगोमाध्वय मुदवाद्दत्तः ॥ भगप्रणोजनयगोभिरर्धमर्भगप्रवृत्तिवृत्तः श्याम १३ ( य. सं. ३४।३६ )

ॐ श्रेष्ठोदेवानां भगवोभगाति । तःत्राविदुः फल्गुनीस्तस्यवितात् । अस्मभ्यंक्षत्रमजरं सुगौर्यम् गोगदश्वरदुपसन्नुदेह ॥ १ ॥ भगोहदाता भगद्विप्रदाता भगोदेवो फल्गुनीराधिवेश ॥ भगस्येत्तंप्रसवं गमेम यत्रदेवैः सधमाधंमदेम ॥ २ ॥ भगाय स्वाहा । फल्गुनीम्या स्वाहा । श्रेष्ठाय स्वाहति ॥ किंच भगोऽर्धमासवितापुंभिः [ पारस्कर गृह्यसूत्रं ] [ वर्तमानं ज्योतिर्ग्रीधोर्मे पूर्वोत्तरा फा. भग. अर्धमा देवता लिखे है ।

१२ हस्तिनक्षत्रं सविता देवता । तारा संख्या ९ हस्ताकारम् । देवस्यसवितुर्हस्तः । प्रसव परस्तात्सतिरयस्तात् । अरिष्ट वैक्रुतसमिधा । “हस्तोर्कः सवितामूर्ध्वं प्रचण्ड रुचिद्वग्गुः सरणिस्तपनोमनुर्दिननाथस्तिथीश्वरः ॥ दिवाकरः सहस्राक्षु मर्तिण्डोभेदिरोरविः ॥ १ ॥ सतः सासः स्मृतोमास्वानादित्योमद्रक्षच ॥ निशान्तकोनिशारिः स्यादिनेशोध्वान्तनाशनः ॥ २ ॥

आ धिष्ठाइष्टुह्रिबतु सोम्यम्मदद्वह्युर्दधचक्षपनावलिह्वनम् ॥ व्यातजेतायाऽआभरक्ष-  
सितमनाप्रवाः पुषोपपुरुषाविराजाति ॥ १३ ॥ ( य. सं. ३३।३० )

ॐ आयातुदेवः सवितोपयातु हिरण्ययेन सुधृतायेन ॥ बहहस्तिं सुमगं विप्रनापसम् प्रयच्छंतंपुनरिपुण्यमच्छ ॥ १ ॥ हस्तः प्रयच्छत्यमृतं वसीलः दक्षिणेन प्रतिगृण्योमर्नत् ॥ दातार मयमाविता विदेव योनो हस्ताय प्रसुनातिपञ्चम् ॥ २ ॥ सवित्रेवाहा । हस्ताय, ददते, प्रणेत, प्रयच्छते, प्रतिगृभ्यते स्वहोत ॥

१४ चित्रा नक्षत्रं ज्येष्ठादेवता । तारा १ इंद्रनीलमणि मौक्तिकाकारम् ( इंद्रस्यचित्रा ) ऋतंपरस्तत् । सत्यमस्तत् । श्रीवृक्ष ( बेलफुडकाष्ट ) समिधा । प्रार्थना मन्त्राः

ॐ त्वष्ट तुगीयेऽअद्भुत इन्द्राभो पुष्टिवर्धना ॥ द्विपदा च्छन्दऽइन्द्रिय मुक्तागोर्बन्धयोऽधुः  
( य. सं. २१।२० )

७ पुनर्वसु नक्षत्रं अदितेर्देवता । तारा ४ गृहमदृष्टम् ( अदित्येऽपुनर्वसूरात् परस्तादाश्रयत्वात् ) वराहमिथ्या । " अदितेर्देवमात्राच्च सृष्टाऽपुनर्वसुर्गुरुः ॥ प्रार्थनामंत्राः—  
 ॐ अदितेयीं दिनिन्तरिक्षमदिति र्म्यतामरितासुतः ॥ विष्णोः वाऽ अदितिः पञ्चजनाऽ  
 अदिति मातर्मादिति र्जनिवत् ॥ १ ॥ ( य. स. १६-१ ) ॐ पुनर्नो देव्यदितिः पृणेतु । पुनर्वसुनः  
 पुनर्तो यम् । पुनर्नो देवा अभियन्तु मये । पुनः पुनर्नो हविषा यजाम ॥ १ ॥ एवम् देव्य  
 दितिरनर्वा । विध्यमर्त्रो जगत्. प्रतिष्ठा । पुनर्वसून्विषा यजयन्ती प्रियं देवाना मायेनुपाथ ॥ १ ॥  
 अदित्येऽस्वाहा । पुनर्वसुभ्यः स्वाहा । भूयेऽस्वाहा । प्रजापेऽस्वाहा ।

८ पुष्यनक्षत्रं बृहस्पतेर्देवता । तारा ३ बाणमदृष्टम् ( बृहस्पतेर्येऽप्यः जुह्वन्तः परस्तादाश्रयत्वात् ) मिथ्या सम्मिथ्या । " गुरु पुंश्च मुरग्येष्टो देवमन्त्री कथिः श्रुतः ॥ बृहस्पति  
 मुताचार्यो वागीशश्च सुगर्भितः ॥ वाक्पतिः सुररूपोऽपि सुरेभ्यः स्त्रिदशार्चितः । १ प्रार्थना  
 मंत्राः । ॐ वाक्पतये परित्यज्याममुन्मत्ता गमहीत पूतः ॥ देशे देवेभ्यः पश्य येषाम्भा-  
 गोति ॥ ८ ॥ ( य. स. ७ ) १ ॐ बृहस्पतिः प्रथमं नायमान तिष्ठन् नक्षत्रं गमिष्वभूतं श्रेष्ठो  
 देवनां वृत्तनास्तु जित्यु दिशो न सर्व्यः अभयः नो भवतु ॥ १ ॥ तिष्ठः पुस्ता द्रुतमवपतेन बृहस्प-  
 तिनः परिपातु पश्चात् ॥ वाधेता द्वयोः अभयं कृणुता. सुगीर्यस्य पतयः स्वाम ॥ २ ॥ बृहस्पत्येऽस्वाहा ।  
 तिष्ठाय स्वाहा ॥ ब्रह्मन् चर्चमाय स्वाहेति ॥

९ आश्लेषा नक्षत्रं सर्पदेवता । तारा ५ चक्राकारः । ( सर्पाणां श्रेयाः । अभ्यागच्छन्तः  
 परस्तात् । अश्वावृत्त्यन्त वत्वात् ) न गृह्यते ( पङ्काल ) आश्लेषा मुजगः सर्पाददृष्टो मुजगमः ॥  
 चक्षुः श्रुतः फणीनामोः मुजगफणभृतया ॥ उरगोऽहिर्देवाभिधः विषवारोऽयं पन्नगः ॥ प्रार्थनामंत्राः  
 ॐ नमोस्तु सर्वेभ्यो ये केचपृथिवीमनु ॥ येऽन्तरिक्षे ये देवितम्भ्यः सर्वेभ्यो नमः ॥ १ ॥ ( य.  
 सं. १३ । ६ ) ॐ इदं सर्वेभ्या हरिस्तु नुष्ट । आश्लेषा येषा मनु रति च न ॥ ये अनरिक्ते पृथिवीं  
 क्षिपति । तेनः सर्पा सोहवमाणनिष्ठ । यो रचने सूर्यस्याप सर्पाः । ये ददददीमनु सचन्ति ।  
 येषामाश्लेषा अनुपति काम । तेभ्यः सर्वेभ्यो मधुमञ्जुशोभि ॥ २ ॥ सर्वेभ्यः स्वाहा । अश्रेयभ्यः  
 स्वाहा । ददसू केभ्य स्वाहा ॥

१० मघानक्षत्रं पितरोर्देवता । तारा ५ गृहमदृष्टम् ( मिना मघाः रुदन्तः परस्तादपश्च-  
 योऽस्वाहात् ) षट्-वर्गो सम्मिथ्या । " पितृदेवो मघा नित्यतातस्तुजगन्क पिता ॥ १ ॥

ॐ पितृभ्य स्वधाधियम्यः स्वधानम. पितामहेभ्यः स्वधाधियम्य स्वधानम प्रपितामहेभ्यः  
 स्वधाधियम्य स्वधानम । अक्षजपितरो भीमदन्तपितरोऽतृपन्त पितरः पितरः शुन्धद्वम्  
 ॥ १० ॥ ( य. सं. १५ । ३६ )

ॐ उपहृतः पितरो ये मघासु । मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः ॥ तेनो हारमणिष्ठा स्वधा-  
 भिर्यज्ञं प्रयजुषाम् ॥ १ ॥ मे अग्निः रायेऽनन्दस्वायेऽमुलोकः पितरः क्षयन्ति ॥ याँश्च  
 विद्यायाँ उचनप्रविका मधे सुयज्ञः सुकृतजुपन्ताम् ॥ २ ॥ पितृभ्य स्वाहा । मघभ्यः स्वाहा ।  
 अनघभ्यः स्वाहा । गदाम्य स्वाहा । अर धतीभ्यः स्वाहेति ॥

११ पूर्वाहाल्लुनीनक्षत्रे अर्यमा देवता । तारा २ शय्याकारं समिधा । " अर्यमातु  
पूमान्सूर्ये पितृदेवान्तोऽपि च । इत्येवमन्यदप्युक्ता मर्यमोत्तर फल्गुनी । " प्रार्थना मन्त्राः

ॐ देव्यावधायुऽआगत २२येनमूर्यत्वचा ॥ मध्यायज्ञ २समञ्जार्थे । तंप्रत्ययार्थेन  
विघ्नन्देवानाम् ११ ( य. सं. ३३।७३ )

ॐ गवापतिः फल्गुनीनामसित्वं, तदर्यमन्त्ररुणस्यामेत्राह, संत्वावयं सनितारं सनीनां  
जीवाजीवन्तमुपसंविधेम ॥ १ ॥ येनेमात्रिश्वाभुवनाति सजिता, यस्य देवाभुमयंति चेतः ॥  
अर्यमाराजाऽजासस्तु विष्मान्, फल्गुनीनामृषभोरोरिति ॥ १ ॥ अर्यम्याद्याहा । फल्गुनीम्याद्याहा ।  
पशुभ्यः स्वाहेति

१२ उचरा फल्गुनीनक्षत्रं मगो देवता । तारा २ मच्चक्रम् ( ममस्योत्तरे बहसयः  
पुरस्ताद्ब्रह्मानाभवस्तात् ) पृश्न ( पाकर ) ममिषा " भगाख्यः पूर्वफल्गुनी ॥ उपस्येपि सस्थानोयोनिः  
येफः सुखप्रदः ॥ १ ॥ गर्भनिर्गमनद्वारागर्भः पंधास्मृतोबुधः ॥

ॐ भगवन्नेता भग सत्पराधो भगोमाध्वय मुदवाद्दत्ते ॥ भगवन्प्रणोजनयगोभिरश्त्रे-  
र्भगप्रवृत्तिभिरुन्तः स्याम १३ ( य. सं. ३४।३६ )

ॐ श्रेष्ठोदेवानां भगवोभगासि । तत्राविदुः फल्गुनीस्तस्यविततात् । अस्मभ्यक्षत्रमजर-  
सुगीर्यम् गोगदक्षवदुपसन्नुदेह ॥ १ ॥ भगोहृदाता भगवत्प्रदाता भगोदेवी फल्गुनीराविशेता  
भगस्येत्तंप्रसवं गमेम यत्रदेवैः सधमार्धमदेम ॥ २ ॥ भगाय स्वाहा । फल्गुनीम्यां स्वाहा ।  
श्रेष्ठाय स्वाहेति ॥ किंच भगोऽर्यमासजितापुंथिः [ पारस्कर गृह्यसूत्र ] [ वर्तमानं ज्योति  
र्मध्येमे पूर्वोत्तरा का. भग. अर्यमा देवता लिखे हैं ।

१३ हसनक्षत्र सजिता देवता । तारा संख्या ५ हस्ताकारम् । देवस्यसश्रेतुहस्तः ।  
प्रसव परस्ताःसनिरवस्तात । अरिष्ट वैकंरुतसमिधा । " हस्तोर्कः सजितामूर्य. प्रचण्ड रुचिरष्णगु.  
तरणिस्तपनोभनुर्दिननाथस्तिथीश्वरः ॥ दिवाकरः सहस्रानु मार्तिपंडोनिहिरोरविः ॥ १ ॥ सतः  
मातः स्मृतोमास्वानादित्योब्रह्मरथच ॥ निशान्तकोमिशारिः स्वादिनेसोष्वान्तनाशनः ॥ २ ॥

ओ धिष्त्राद्बृहद्विषयतु सोम्यममद्वज्रमुर्दधयज्ञपताबलिह्वनम् ॥ व्यातजेतायाऽआभरक्ष-  
तिरमनाप्रजाः पुषोपपुक्राभिराजति ॥ १३ ॥ ( य. सं. ३३।३० )

ॐ आयातुदेवः सवितोपयातु हिरण्ययेन सुवृत्तारथेन ॥ बहहृस्नं सुमगं विघ्ननापसम्  
प्रयच्छंतपनुर्गुणयमच्छ ॥ १ ॥ हस्तः प्रयच्छतरमृततसीलः दक्षिणेन प्रतिगृष्णीमपनत् ॥  
दातार मयमाविता त्रिदेव योनी हस्ताय प्रसुनातियज्ञम् ॥ २ ॥ सवित्रेस्वाहा । हस्ताय, ददते,  
मणोते, प्रयच्छते, प्रतिगृभ्यते स्वहेति ॥

१४ चित्रा नक्षत्रं उष्ट्रदेवता । तारा १ इंद्रनीलमणि मोक्तिकाकारम् ( इंद्रस्यचित्रा )  
क्रतुं परस्तत् । सत्यमरस्तात् । श्रीवृक्ष ( बेलफुलफाट्ट ) समिधा । प्रार्थना मन्त्राः

ॐ त्वत्तुगीयेऽअद्भुत इन्द्रमो पुष्टिर्धना ॥ द्विपदा च्छन्दऽन्द्रिय मुष्ठागीर्जययोदधु  
( य. सं. २१ । २० )

ॐ त्वष्टानक्षत्रम्योति चित्रं सुभ २ समंयुवार्तिरोचमानां ॥ निवेशयन्नमृतात्मर्त्या २  
 स्वरूपाणि पिशन् शुवनानि विश्वा ॥ १ ॥ तन्नत्वष्टा तदुचित्रा विचष्टा, तन्नक्षत्र भूरिदा  
 अस्तुमह्यम् ॥ तन्नप्रजावीरवर्ती सनोतु गोभिनोअश्वे, समनस्तुयज्ञम् ॥ २ ॥ त्वष्टे स्वाहा ।  
 वेत्राय स्वाहा । प्रजायैस्वाहेति ॥

१५ स्वाती नक्षत्र वामुर्देवता । तारा १ प्रवाल्लोपमम् ( वायोनिष्टया । व्रतति परता  
 दासिद्विरवस्तत् । अर्जुन समिधा त्वाष्ट्रश्चित्रा य वाताख्या स्वाती परम देवतन् ॥ समी  
 श्वसनोय युमारुतोऽ२ समीरण ॥ प्रार्थना मन्त्रा

ॐ वायोऽअन्नारविद्वधः समेधा इनेत सिपाकि नियुता ममिअश्री ॥ तेव्वायवे समनसो  
 धितस्त्रुधिवश्वे नर त्वपत्त्या निचक्रु ॥ १५ ॥ ( य. स. १७ । ११

ॐ वामुर्नक्षत्र मयेति निष्टया तिग्मशृंगो वृषभो रोहवाण । समीरयन्मुनना मातरिश्वा  
 अपहेपासि नुदता मराती । ॥ १ ॥ तन्नो व युस्तदु निष्टयायै गृणोतु तन्नक्षत्र भूदि अस्तु  
 मह्यम् ॥ तन्नो देवासो अनुजानतु काम यथा तमे दुरितानि विश्वा ॥ २ ॥ वामनस्वाहा ।  
 निष्टयायै स्वाहा । कामचार य स्वाहा । अभिजित्स्वाहति ।

१६ विशाखा नक्षत्र इदाग्नी देवता । तारा ४ तोरणार्भ ( इन्द्राग्निवोर्विश्वे ।  
 युगानिपरस्ता त्वपमाणा अवस्तात् ) आहिक ( अगस्त ) सामधा “ १ द्राग्नेश्च पिशन्नो  
 विशाखश्च निगद्यते ॥ प्रार्थना मन्त्रा.

ॐ इन्द्राग्नाऽअगत २ सुतर्गाभिन्नभोर्वरेण्यम् ॥ अत्यपातन्धिवेषिता ॥ १६ ॥ ( य.  
 स. ७ । १५

ॐ दूरमस्मच्छत्रणयतुभीना तद्दिग्नोऽकृणुतात दिशाव ॥ तत्रेदेवा अनुमदन्तु यज्ञ।  
 पश्चात्पुरभ्तादभयनोअस्तु ॥ १ ॥ नक्षत्राणामविपत्तीविश्वाम्ये श्रेष्ठा मिन्द्राग्नाभुनस्यगोपी ॥  
 विषूच शत्रूनपबाधमानौ अपक्षुधनुदतामगातिम् ॥ २ ॥ पूर्णापश्चादुत पूर्णापुरस्तात् ॥  
 उन्मथ्यत पैर्गमासीजिगाय ॥ तस्यादेवाभासिस्वन्त उचमेनाकइहमादन्ताम् ॥ ३ ॥ पृथ्वी-  
 सुवर्चायुनसिः सजोधाः पैर्णमास्यु दगाच्छेभमाना ॥ अम्याय ती दुरितानि विश्वाउरुकुहा  
 यजमानायपज्ञम् ॥ ४ ॥ इन्द्राग्निम्यास्वाहा । विशाखाम्यास्वाहा । श्रेष्ठयावस्वाहा । अभिजित्ये-  
 स्वाहा । पैर्णमास्यस्वाहा । कामायस्वाहा । गत्येस्वाहेति ।

१७ अनुराधानक्षत्र मित्रोदवता । तारा ४ बल्लिसदृश [ मित्रस्थानूराधाः । अम्यारोह  
 त्परस्तात् । अम्यारुदमवस्तात् ] बकुड [ मोलसिरे ] समिधा “ अनुराधा स्मृतो मन्त्रो वैनाख-  
 स्यनुज मृत ॥ ध्यान मन्त्रा

ॐ नमो मित्रस्यचक्ष से महोदेवायतदतस्पर्शत ॥ दूदोदशेदेवजातापक्रेतवोरितस्पुत्रायध्व्या  
 यदा २सत १७ [ य. स. ४।३५]

ॐ ऋष्यास्मह्यैर्नमोपसय । मित्रेदशमित्रवेपनोअस्तु ॥ अनुराधा-विषावर्धय-त, शत-  
 जीवेमशरद, सर्वरा ॥ १ ॥ चित्रनक्षत्र मुदगश्च पुरस्तात् ॥ अनुराधास इति यद्वदन्ति ॥



२२ अभिजिन्नक्षत्रब्रह्मादेवता । तारा ३ त्रिकोणसदृशम् [ अभिजिन्नामनक्षत्रं । उपरि-  
ष्ठादशाढानाम् अवस्तात् श्रोणये । ते. ब्रा. १-५-२ ] “ ब्रह्मात्मभूः सुख्येष्ट परमेष्ठी पितामहः ॥  
हिरण्यगर्भो लोकेशः श्वयंभूश्चतुराननः ॥ १ ॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो यो नो  
प्रचोदयात् ॥ २२ ॥ [ य. सं. ३।३५ ॥ २२।९ ] ॐ यस्मिन् ब्रह्माऽऽयजयत्सर्वमेतत् ।  
अमुं चलोक्तिमिदमूचमर्षम् । तन्नो नक्षत्रमभि जिद्विजित्य त्रिदेवाः कृण्वन्पुत्राणि ॥ १ ॥ उभो  
लोकौ ब्रह्मणा संजितेभौ । तन्नो नक्षत्रमभि जिद्विजित्वा ॥ तस्मिन् स्वर्गं पृतनाः संजयेम । तन्नो  
देवासोऽनुजानन्तुकामम् ॥ २ ॥ ब्रह्मगेत्वाहा । अभिजितेत्वाहा ब्रह्मलोकायत्वाहा । अभि-  
जित्येत्वाहेति ।

२३ श्रवण नक्षत्र विष्णुदेवता । तारा ३ त्रिचरण सदृशं ( विष्णोः श्रोणा । पृच्छमाना  
परस्तात् । अथवा अवस्तात्. ) “ श्रवणो माधवो विष्णुरध्वतः केशवो हरिः ॥ आधरो दानवारिश्च  
शार्ङ्ग राणिश्च वामनः ॥ श्रेणस्त्रिचरुस्तार्क्ष्यश्चादित बालकः ॥ ” अर्क ( आक ) समिधा ।  
ध्यान मंत्राः ॐ इन्द्रं विष्णुर्वैचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समूढमस्य पा २ सुरेत्वाहा ( वा. सं. ५ । १५ )  
अप्यग्निं श्रोणाममृतस्य गोपा । पुण्यामस्या उपगुणोऽपि वचम् ॥ महीं देवीं विष्णुपत्नीमनुष्याम् ।  
प्रतीचीमेना २ हविषायजामः ॥ १ ॥ त्रेधा विष्णुरुक्षायो विचक्रमे । महीं दिव पृथिनीमस्त-  
रिक्षम् । तच्छ्रेणेति श्रव इच्छमाना । पुण्य २ श्लोक यजमानाय कृण्वती ॥ २ ॥ विष्णवेत्वाहा ।  
श्रोणायि त्वाहा । श्लोकाय त्वाहा । श्रुतायत्वाहेति ।

२४ धनिष्ठा नक्षत्रं वमवो देवता । तारा ४ मर्दलाकारं [ यस्मिन् अविष्टाः । भूत  
पुरस्ताद्भूतिरवस्तात् ] शमी [ जाड्ये ] समिधा । “ धनिष्ठावधनेनपु ॥ विनायको विघ्नराज  
द्वेमानुरगणाधिपाः ॥ अप्येकदन्तो हेरंश्च शृङ्गाकृति गजाननः ॥ ” ध्यान मंत्राः ॐ वसोः  
पवित्रमसि शतधारे वसोः पवित्रमभि सदस्त्रवारम् ॥ देवत्वा सविता पुनानु वमोः पवित्रेण  
शतधारेण सुखा कामपुष्टः ॥ [ वा. सं. १-३ ] अष्टौ देवाससः सोमशतः । चतस्रो देवी  
रजराः अविष्टाः ते यज्ञं पान्तु रजस परस्तात् । संत सरीणममृत २ स्वस्ति ॥ १ ॥ यज्ञं नः  
पान्तु वसवः पुरस्तात् । दक्षिणतोऽभिपन्तु अविष्टाः ॥ पुण्य नक्षत्रमभिमंविशाम । मानो  
अहातिरघस २ स गन् ॥ २ ॥ [ अमं ह्यै समानाना पर्येति ] वसुम्यः त्वाहा । अविष्टाम्यः  
त्वाहा । अमाप त्वाहा । परित्येत्वाहेति ।

२५ शततारका नक्षत्रं वरुणो देवता । तारा १०० वर्तुलाकारं [ इन्द्रस्य शतभिपन्तु ।  
विश्ववचाः परस्ताद्विष्वस्त्रिति रस्तात् ] कदम्ब समिधा वेतंकनी वा । “ वरुणो वारुणद्वयातः  
शतभिषा-यंशुराद मेत् ॥ ध्यानमंत्रऽ ॐ वरुणस्योत्तमवमसि वरुणस्य-कमसर्जनीस्यो वरुणस्य  
ऋतसदन्मसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतमदनमसीद ॥ [ वा. सं. ४-३६ ]  
क्षत्रस्य राजा वरुणोऽपिराज । नक्षत्राणाः ऋतभिपन्तुसिष्ट ॥ तौ देवेभ्यः कृणुतो दीर्घमायुः ।  
शानं सहस्रा भेपजनि घचः ॥ १ ॥ यज्ञं नो राजा वरुण उपपातु । तन्नो विश्वे अभिमंयन्तु  
देवाः ॥ नन्नो नक्षत्र-ऋतभिरगुणायम् । दीर्घमायुः प्रनिरद्धेपजानि ॥ २ ॥ ऋणायत्वाहा ।  
शनभिपन्तेत्वाहा । भेपजेभ्यः त्वाहेति ।

२६ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रं अजैकपात् देवता । तारा २ मंचक सदृशं । ( अजंहीकपदः पूर्वेप्रोष्ठपदाः । वैश्वानरं परस्ताद्वैश्वानवमवमवस्तात् ) आम्न ( चूतवृक्ष ) समिधा । " अजैक-पात्सृष्टोनित्यं पूर्वाभाद्रपदा बुधैः । " ध्यानमंत्राः—ॐ उतनोहि धुंध्यः गृणोत्वज एरुपात्पृथिवी समुद्रः ॥ त्रिधेदेना क्रुतामृगो हुमानाः स्तुतामंत्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ( वा. सं. ३४५३ ) अजएकदुर्गात्पुरस्तात् । विश्वा मृतानि प्रतिमोदमानः ॥ तस्य देवाः प्रमथयंति सर्वे । प्रोष्ठपदासो अमृतस्य गोपाः ॥ १ ॥ विश्वाजमानः समिधान् दग्धः । आन्तरिक्षमरुहदगं धाम् ॥ तं सूर्य देवमजमेरुपादं । प्रोष्ठपदासो अनुपन्ति सर्वे ॥ २ ॥ अजयैरुपदे स्वाहा । प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा । तेजसेस्वाहा । ब्रह्मवर्चसायस्वाहेति ।

२७ उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्रं अहिर्बुध्निर देवता । तारा २ यमलाकारं [ अहिर्बुध्नियस्योत्तरे अभिषिचन्तः परस्तादभिगृण्यन्तोऽवस्तात्. ] पिचुमंद [ नीम ] समिधा । " स्यादुरत्ताभाद्रपद स्त्वहिर्बुध्न्यध्व कथ्यते. " ॐ शिरोनामामि स्वधितित्ने पिता नमस्ते अस्तु मामाहिर्मीः ॥ निवर्तयाम्यामुपेऽन्नायाय प्रजननाय रायगोपाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ( वा. सं. ३.६३ ) अहिर्बुध्नियः प्रथमान एति । श्रेष्ठो देवानामुन मानुषाणाम् ॥ तं ब्राह्मणाः सोमपाः सोम्यासः प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे ॥ १ ॥ चत्वार एरुमभिकर्मदेवाः । प्रोष्ठपदास्त इति यान्तरदन्ति ॥ ते बुध्नियं परिषद्यन्त्युन्तः । अहिर्बुध्निर नमसोऽयमय ॥ २ ॥ अहयेतुभियायस्वाहा । प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा । प्रतिष्ठायैस्वाहेति ।

२८ रेवती नक्षत्रं पूषा देवता । तारा ३२ मृदंगाकारं । ( पूष्यो रेवती गानः परस्तात् । वत्सा अवस्तात् । मधुगृक्ष ( मुलहटी ) समिधा । " अत्यधं रेवती पौष्णं पूषाचेतीयनामतः ॥ एतानाक्षत्राः संज्ञा याने नोक्ता मया स्फुटम् " ( धनमार्तहोक्ताः ) । ध्यानमंत्राः ॐ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ॥ स्तोतारस्त इह स्मति ॥ [ वा. सं. ३४४१ ] पूषा रेवत्य-न्नेति पन्थाम् । पुष्टिपती पशुपा वाजयःस्त्यो ॥ इमानिहन्वा प्रयता जुषाणा । सुगैर्नोयाने रुपयातोषण ॥ १ ॥ क्षुद्रानरात्रक्षतु रेवतीनः । गायो नो अश्वा अन्वेतु पूषा ॥ अन्न रक्षन्ती बहुधा विकल्पं । वाजं सनुता यजमानाययज्ञम् ॥ २ ॥ पूषेस्वाहा । रेवत्येस्वाहा । पशुभ्यः स्वाहेति । इति नक्षत्र कल्पः ।

## भारतीय राशिमान अर्थात्—

### चेदोक्त राशि विज्ञान

अथ राशि कल्पः । तत्राष्टौ [ १ ] मेघराशिः । तारा ४२ पुंज तारा ६ । स्वाष्टिन अरिस्त । ईम्री न्याम [ राग ] संसृष्ट क्रिय, भोज, अज, मेद, उल्ल, उरण, ऊर्णापुः शृङ्गिः प्रथम राशिः । ॐ नेमि नमन्ति चक्षसा " मेघं " विज्ञा अभिरवराः ॥ सुरोचयो यो अद्भुदोपि कर्णे तरश्चिनः समृक्भिः ॥ १ ॥ ( अथर्व सं. २०५४-२ वृ. ७३९ )

(२) वृषभराशिः । तारा २०७ पुंज तारा २९ । त्या. टारस, ई. बुल, धुरंध, वृष, उश्ना गो, गोपति, तावुरि, द्वितीय राशिः । ॐ अनद्धाहमन्वारभासहे सौरभेयं स्वस्तये ॥ सन इन्द्र इव देवेभ्यो बहिः सन्तारणोभव ॥ ( वा. सं. १५-१३ ककुभ ५ रूपं वृषभस्य रोचते, वृष्ट्युक्तः शुक्रस्वपुरोगाः ॥ यत्ते सोमादाभ्यञ्जाम जागृवि, तस्मैत्वागृह्णामि तस्मै ते सोमसोमायस्वाहा ॥ ( वा. सं. ८.४९ )

(३) मिथुनराशिः । तारा ८३ पुंजतारा १९ त्या. जेमानाय । ई. ड्विनस । सं. नृयुग, नृयुग, वीणा, यमल, जिह्वम मन्मथ, तृतीय राशिः ॐ लोहितेन ( आर्द्रया ) स्वधितना मिथुने कर्णयोः कृधि ॥ अकर्तामश्विना लक्ष्म वदस्तु प्रजयाबहु ॥ [ अ. सं. १.१४१.२ ] अश्वत्तना भरते केतवोद्वा, अश्वत्तना, भरते केनमूदन् । क्षीरेणस्तातः कुयवस्ययोषे हते ते स्वातां प्रषणे शिफायाः ॥ युयोपनाभिरुपतस्वायोः प्रपूर्वाभित्तरते राष्टि शूरः ॥ अंजशी कुलशी वीरपत्नी पयोहिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ( क्र. सं. १.७.१८ ) ( नृमिथुने सगदं सवीणम् ) वराहः ॥

(४) कर्क राशिः । तारा ८५ पुंजतारा ६ त्या. क्यानसर, ई. कव । सं. कुलीर, कर्कट, कर्की, अञ्ज, आयुः, कारुः, जीवः चतुर्थ राशिः ॐ अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयन् कर्की वरसामिह रक्षवाजिन् ॥ इमे ते स्तोका व ल पदि-अवाङ् इयंते कर्की इहते मनः अस्तु ॥ ( अ. सं. ४.३८.६ )

(५) सिंह राशिः । तारा ९३ पुंजतारा १७ त्या. लीओ । ई. टायन । सं. हरि, मृगेन्द्र, पंचास्य, हर्षक्ष, केसरी, लेय, लेय, पंचम राशिः । ॐ रक्षो अग्निपशुपं तुर्यपाणं सिंहोदनेऽशपांसि वस्तोः ॥ ( क्र. सं. २.४.१६ ) एता व्याधे परिपश्यजानाः सिंहं हिन्वन्तिमइते सौभगाय ॥ समुद्रनः सुमुखास्तस्थिवांसं मर्भृज्यन्ते द्वीपिनमप्यत्यन्तः ॥ ( अ. सं. ४.८.७ ) उभेत्वप्युभिश्चतुर्जायमानात्मवीची सिंहं प्रतिजोषयेते ( क्र. सं. १०७.१ )

(६) कन्याराशिः । तारा ११७ पुंजतारा १५ । त्या. वर्गी । ई. वर्जिन् । सं. कन्यका, सुवति, योपित्, पृष्ठी, तारणी, नौका, तरुणी, कुमारी पंधा वहा-प्रवहा पट्टाराशिः । ॐ पावीरधी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी पियं धातु ॥ प्राभिरच्छिद्रं शरणं सजोपा दुरार्धपं गृणते शर्म यंसत् ॥ + ॥ प्रथम आजं यक्षसं वयोधो सुपाणिं देवं सगभस्ति मृभ्यम् ॥ दोषायक्ष यजन्तं परत्याना ममिस्त्वष्टरं सुदं विभाया ॥ ( क्र. सं. ४.८.६ ) उताम्रव्यंतु देव पत्नी सिन्द्राण्यप्राप्याश्विनोराट् ॥ २३ ॥ अमपति सुवति रक्षयाणा प्राचिकत्सूर्यं यक्षमग्निम् । अश्रावतीगोमतिरेऽउपासीः वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ॥ २४ ॥ ( क्र. सं. ५-५-२३, २४ ) एताऽऽत्याऽउपसः केतुमक्रत, पूर्वोऽमर्धे रजसो भानुपंजते ॥ × ॥ अर्धेन्वि नारीरपसो नविष्टिभिः समानेन योजने नापरवतः ॥ पशुजपित्रा सुभगा प्रयाना सिन्धुनेक्षोऽऽर्विया व्यश्नेत् ॥ [ क्र. सं. १.६.२५.२६ ]



(७) तुल राशिः । तारा ६६ पुंज तारा ७ ल्या० डैत्रा । इ० व्यालेनस । संस्कृत-  
तुला, वणिङ्, पथ, तौळी । जूरु, घट, मूक, वणिजाह्य, तुलाधर । तौलपात्र । सप्तमराशि ।  
ॐ आज्यस्य परमेष्ठिन् । जातवेदस्तन्ववाशिन् ॥ अग्रे तोलस्य प्राज्ञान यातुधानान्विलापय  
( अ. सं. १-७-२ ) इहेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते दिति, सरस्वती, महि, विश्रुति ॥  
एताते अद्भ्येनामानि देवेभ्यो मासुकं नूयात् ( वा. सं. ८-४३ ) एपस्य बार्जाक्षिपणिं  
तुरप्यतिपीषायां बद्धो अपि वक्ष आसनि ॥ क्रतु दधिक्राअनु संसानेप्यदत् । पथांअंक्रां-  
सिअन्वापनीकणत् ॥ ( वा. सं. ९-१४ )

( ८ ) वृश्चिक राशिः । तारा ६० पुंज तारा १७ । ल्या० रक्तार्णवो । इ० रक्तार्णवन् ।  
सं. आलि,द्रुण, कौर्प्य, कीट, किमि पृदाकुः । ॐ यस्वे सर्पो वृश्चिक रक्तृद्वमा हेमन्तजन्धो  
भृमलो गुहाशये ॥ कृमिर्जिन्वत् पृथिवियद्यदंजति प्राश्रुपदमः सर्वन्मोपस्तृपद्यच्छिषं  
तेननोमृड ॥ ( अ. सं. १०-१-४६ )

( ९ ) धन राशिः । पुंजतारा १४ । ल्या० साजिटेिअत् । इ० आर्चर । सं अर्चं,  
धनुश्च कोदंड धरश्चापश्चतौक्षिः । अधीनरोम्भजवनः धन धन्वन्तरिः । नवमराशिः । ॐ दिषो  
मूलमवततं पृथिव्या अभ्युत्ततम् ॥ परिमां परिमेप्रजां परिण. पाहियदधन्म् ॥ उदगासां  
भगवती विचृतौ नाम तारके ॥ विक्षेत्रियस्य मुंचतामधम पाशमुत्तमम् ॥ ( अ. सं. २ ।  
७-८ । ३, १ ) यौ द्याव-अथ अवयः वप्ति अथ मित्रावरुणा पुत्रमीढ अत्रिम् ॥ यौ  
विमदं अवयः सप्तऽनत्रितौनः मुञ्चतं-अंहसः ( अ. सं. ४।२९।४ )

( १० ) मकरराशिः ता. सं. ६४ पुंजतारा ७ । ल्या. वयाप्रिकान्त् । इ० गोष्ट । सं.  
मृग । नक्र । दशमराशिः । ' आकः केरो मृगश्चापि मृगास्यो मकरस्तथा ॥ हरिणश्च ॥ ॐ यद्  
क्रंदः प्रथमं जायमान उद्यंतसमुद्राद्दुतवापुरीपात् ॥ स्येनस्यपक्षा हरिणस्यबाहू उपस्तुत्य  
महिजातंतैर्बर्वन् ॥

( ११ ) कुंभराशिः । तारा ११७ पुंजतारा १५ । ल्या. अकोरिअत् । इ० वाटर ।  
सं. कुंभ ॥ ॐ एमां कुमारस्तरण आवत्सो जगतासह ॥ एमां परिस्तुतः कुंभ आदधन्तः  
फलक्षैरगुः ॥ [ अ. सं. ३।१२।७ ] पूर्णः कुंभोधिकाल आहितः X प्रत्यद् कालंतमाहुः  
परमेव्योमन् ॥ ( अ. सं. १९।५३।२ )

( १२ ) मीनराशिः । तारा ११६ पुंजतारा ११ । ल्या. पितेत इ० फिन् । सं मीन,  
मत्स्य, अंल्यमं ॐ आण्डेवमित्वा शक्रुनस्य गर्भं मुदुस्त्रियाः पर्वतस्यत्पनाजत् ॥ अश्नापि-  
नद्धं मधुपर्पपश्यन्मत्स्यं नदीने उदनिक्षिपन्तम् ॥ [ अ. सं. २०।१६।७ ८ ] इति राशि  
कल्पः समाप्तः ॥

## समर्पण और अंतिम निवेदन ।

भारतवर्ष के समस्त पञ्चाङ्गों का एकीकरण होते हुए; हमारे पूर्वजों की परिशोधित शुद्ध नाक्षत्र पद्धति का प्रचार संसार व्यापी हो और हमारे सब धार्मिक और व्यावहारिक कार्य एकही सूत्रसे चले; इस सद्देह्य से प्रेरित होकर श्रीमन्त हिज हायनेस महाराजाधिराज राज राजेश्वर संवार्ड श्री यशवन्तराम होलकर बहादुर जी. सी. आय. ई. के उदार आश्रय से, श्रीमान् वजीर-उद्दीला राय बहादुर सरहमलजी वापना सी. आय. ई., बी. ए., बी. एस. सी., एल्. एल्. बी. प्राइम मिनिस्टर साहब के करकमलों से संस्थापित, श्रीमन्त वजीर उद्दीला सरदार माधवराव विनायकराव किवे साहब रायबहादुर एम. ए., एम. आर्. ए. एस., एफ. आर्. एस. ए. एवं श्रीमान् दिगन-इन्खास बहादुर मोतीलालजी बिजावर्गी एम. ए., एल्. एल्. बी., फायनेन्स मिनिस्टर साहब द्वारा अनुवर्द्धित तथा श्रीमन्त सरदार रामचंद्रराय खेंडराव क्षनाने बी. ए. होम मिनिस्टर साहब महोदय के [ त. १८-२-३५ के ] प्रस्तावानुसार श्री होलकर गव्हर्नमेन्ट की आज्ञा से प्रकाशित यह " रिपोर्ट " ज्योतिःशास्त्र की उन्नति चाहने वालों को अत्यन्त आदर और नम्रता पूर्ण समर्पित की गई है। इमे ज्योतिर्विद्या विज्ञान, गणितज्ञ, धर्मशास्त्री, वेदार्थकर्ता, याज्ञिक, धर्माचार्य और विद्यानुगामी राजाप्रहाराज, धनीदानी, वैज्ञानिक, इतिहासक शोधप्रिय महानुभावों ने स्वीकृत करके पंचांगों के एकीकरणका प्रयत्न करना चाहिये। इसी से हमारे ज्योतिषशास्त्र की उन्नति होगी। भारत में एक भाषा एक लिपि के प्रचर से जो उन्नति समझी गई है उससे कई दर्जे अधिक दिव्य चमत्कार को बताने वाले सूक्ष्म गणित का शुद्ध नाक्षत्र पद्धति के पंचांगों के प्रचा से होसकती है। आज कल के पंचांगकार अपनी कमजोरी को छिपावे के लिये न ता अयनाश, ताराग्रइयुति काविसाम्य महापात आदि लिखते हैं; न वेध द्वारा पंचांग का दृग्गणितैक्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इससे अष्टमी के निरुद्ध भद्रा व्यतेपात आदि में १०-१५ घटी का अंतर होना फलित ज्योतिष के दृष्टिसे भी बहुत खराब बात है। इस प्रकार पंचांगों की अशुद्धि से बहुत नुकसान हो रहा है ग्रहण आदि की टाइम नाटिकल आत्मनाक (इमेजी पंचांग) से लेते हैं। और धोखे बाजी से बचने के लिये प्रार्चान ग्रंथों के धार्मिक भागको प्रगट करते हुए प्रस्तावना में असत्य प्रमाणों के बलपर दृष्ट्यादृष्ट्य गणित का कोटो काम लगा देते हैं। पूना कमेटी के पंचांग में तो अयनांश भेद से चारदिन का अन्तर पड़ता है। लेकिन ऐसे में हमारे शास्त्र की उन्नति न होते हुए दिनोदिन अवनति होती है। इसलिये संपूर्ण पंचांगकारों से मेरी प्रार्थना है कि असत्य कोटिक्रम एवं दुराग्रह को त्याग कर शुद्धस्मृति सर्व सिद्धान्तैक्य प्रतिपादित शुद्ध नाक्षत्र पद्धति के पंचांग का स्वीकार करके पंचांगों के एकीकरण का श्रेय प्राप्त करें। और इस संबंध में हमारे से जो कुछ सेवा लेना चाहें। तो मैं और मेरा मंडल सेवा करने के लिये तयार हैं। कृपया रिपोर्ट के संबंध में निजका अभिप्राय देकर हमें कृतार्थ एवं आगे कार्य करने के लिये उत्साहित करेंगे।

निवेदक,

सम्बत् १९६२.

दीनानाथशास्त्री जुलैट,  
अध्यक्ष पंचांग शोधन कमेटी इन्दौर.

# चित्रों का विवरण.

## १ सारथी किंवा गालव. Aurlga.

ययाति के दाहिनी ओर ( पूर्व के तर्फ ) मिथुन राशि के आरंभ में " सारथी " नामक ताराका पुंज है। इसमें पांच मुख्य तारे आठ सेंटे पंचकोणा कृति के हैं। यह सब मिलकर मनुष्य की भाङ्गति बनी है। इसने बाएं हात से पकड़े हुए बकरी को गोद में ले रखा है। यह पृथ्वी पर घुड़ना टेके बौरासन से बैठा हुआ दिखता है। इसके दाहिने हात में लगाम की रस्ती है। जो कि घोड़ों की लगाम हो ऐसी दिखती है। विधान ९५ ( स्कंदोपाख्यान ) में इसे विंशाख के नाम से तथा विधान [ १०९-११३ ] ययाति कथा में ' गालव ' नाम से इसका उल्लेख किया गया है। फोएक ३-४ में इसके व अंतर्गत ब्रह्म हृदय के भोग शरादि अंक लिखे गये हैं।

## २ देव यानी किंवा देवसेना व माधवी. Andromada.

ययाति के बाएं तर्फ ( पश्चिम में देवयानी पुंज है। यह पूर्वोत्तर भाद्रपदा के उत्तर में होने से पूर्वा भाद्रपदा के २ तारे व उत्तर भाद्रपदा का एक दक्षिण का तारा ऐसे ३ तारे उच्चैश्चरा पुंज में व ठ. भाद्रपदा का उत्तगिउ तारा देवयानी के मस्तक ( सिर ) में है। ऐसे भाद्रपदा के चतुष्कोणाकृति के चार तारे देवयानी के नीचे ( दक्षिण में ) हैं। बाकी और बड़े तीन तारे देवयानी के पाँठ, कमर व पाँव पर हैं। यह आङ्गति स्त्री की होकर शिरसे कमर तक खुली ( वस्त्र रहित ) है। इसके दोनों हात फैले हुए हैं। और वह जंजीर से जकड़े हुए व पथर से बंध हुए हैं। विधान ९५ [ स्कंद चरित्र ] में " इनको देवसेना के नामसे एवं स्कंद ने इन बंध मुक्त किया " ऐसा लिखा है। इसी के साथ स्कंद का विशाह हुआ है तथा विधान १०९-११३ [ ययाति चरित्र ] में इसको भिग तारे से मुक्त मान कर ययाति की कन्या माधवी के नामसे ( चार पुत्रों की माता ऐसा ) उल्लिखित किया है।

## देवयानी में तारों का जत्था ( शुनःपुंज ). Cunes Venatice.

शूरी और मृग के बड़े तीन जत्थों में से देवयानी का जत्था दूसरी प्रति का ३। इसमें असंख्य तारे निकटवर्ति होने से यह लंबी सेना के आकार का होने से विधान ९५-९७ [ स्कंद चरित्र ] में देवयानी का नाम ही देव सेना कहा है। वेद में शुनःपुंज का जो उल्लेख है सो इन तीनों जत्थों के संबंध में है।

### ४ ययाति किंचा स्कंद Perseus

देवयानी के मुख्य तीन तारों में से पंद्रह अंश की लंबी रेखा खींचने पर वह ययाति के मस्तक के ऊपर उठती है। इसके बाए हाथ में मुडाकृति की ढाल व दाहिने हात में तरवार है। सिरपे शिरस्त्राण का टोप और पावों में पाद त्राण हाते हुए बीर पुरुष के तुल्य इसकी विशाल तेजस्वी आकृति है। इसके उत्तर में करीब १० अंश पर एक बड़ा तारा है। वह मेडस (करभ) नामक तारका पुत्र इस के सिर के ऊपर है। विधान ९५ ९९ में इन दोनों को स्कंद व कुक्कुट व स्कंद को इद्र पदस्तुड लिखा है। तथा विधान १०९-११३ में इस ययाति नाम से कहा है। कोष्टक ३, ४ व ६ में इसके परिमाणों को लिखे हैं।

### ५ शर्मिष्ठा Cassiopeia

यह पुत्र ययाति के बाए तरफ कुठ उत्तर की ओर उंचे स्थान में है। इसकी आकृति स्त्री की होकर वह खुर्ची पर बैठी हुई बिल्कुल शाणा वस्त्र पहनी हुई है। हात ऊपर की हुई है। एक हात में नारियल का वनस्पति और दूसरा हात मस्तक पर रखा हुई दिखती है। विधान ९५ ९७ (स्कंद चरित्र) में इसे स्कंद के कुक्कुट की उपमा दी है। तथा विधान १०९-११३ (ययाति चरित्र) में इसे ययाति की स्त्री एवं देवयानी को भी पुराणों में स्त्री कहा है कोष्टक ३ में इसके परिमाण लिख दिये हैं।

### ६ उच्चैश्रवा Pegasus

यह पुत्र देवयानी के शिर के (पश्चिम में) ऊपर है। इस चित्रके अगाड़ी क भाग की आकृति घोड़े की है। इसके कंधे पर पंख हैं। इसका गला व मुख घोड़े के तुल्य है साथ में दूसरा अश्व पुत्र के पांजे का मुख भी इसके साथ दिखता है। विधान १०९-११३ ययाति चरित्र में इस अश्वपुत्र के चतुरस्र आदि तारों की प्राप्ति की समानता व रूपकी तुल्यता नखुरग (विश्वामित्र) के निकट के अश्वपुत्र में बताई है। (कोष्टक ३ देखिये)

### ७ धनिष्ठा, गरुड और शार्ङ्गपाणी (विष्णु) Delphin and Aquila

इन तीनों के पुत्र निकट में हान से एक शार्ङ्गपाणी पुत्र में ही इन्हें बताया है। श्रवण नक्षत्र के मध्य का नीले रंग का तारा विष्णु के मध्य में है। विधान १०९-११० में गरुड का उल्लेख गालन के साथ आया है। कोष्टक ४ में गरुड (लंडा एक्लिक्स) के परिमाण लिख दिये हैं।

## ८ कन्याराशि Virgo

यह आकृति उत्तरा फाल्गुनी से चित्र नक्षत्र तार के विभाग में स्त्री के आकार की है इसके कंधों पर पख लगे हुए, दहिने हात में लाजा ( धान का थोम ) बाए हात में अग्निस्थाली ( उपा=कलश ) है कि जिसमें देदीप्यमान इयामर्ण का अच्छा चित्रा तारा है। ज्योतिष संहिता ग्रंथों में इसे नौका में बैठी हुई कही है। और चित्रा तारे के अर्धभाग से ही मनुष्य रूपधारी तुलाराशि का आरम्भ बताया है। वेद पुराणों में कन्या के संबन्ध में " इला, उर्वशी, शकुन्तला, दमयंती, गौरी, सती, सरस्वती, शची, भी, सीता, रुक्मिणी द्रौपदी आदि की कथा और चित्रा तारे के नाम इन्द्र, वसु, त्वष्टा, विश्वकर्मा, सवितादेव आदि कहे गए हैं।

## ९ भूतप Bootes

यह पुन कन्याराशि के उत्तर में है। इसकी आकृति मनुष्य के आकार की है। यह सप्तर्षि ( बृहस्पति ) के तर्फ जाता दिखता है। इसके दहिने हात में गदा व बाए हात में सिकारी शर शबल नामक दो कुत्ते हैं। यह हात बृहत्स्पति के पुच्छ के निकट में रखा हुआ है। वेद पुराणों में इसका उल्लेख भूतेश, रुद्र पुरुषा, मरुत्, हनुमान, महानीर, मयु, मनु, जनक, शुनाशिर विश्वावसु आदि नामों से किया है।

## १० शौरी Hercules

यह तारका पुन भूतप के पूर्व तर्फ उत्तर मोलार्ध में है। इसकी लंबाई ५० अंश चौड़ाई ४५ अंश है। इसमें एक या दो प्रति के तारे न होकर तीसरे प्रति के हैं। चौथी प्रति के २० तारे हैं और छोटे छोटे तारे बहुत हैं। इसके दहिने हात में गदा है और यह वीर वेश में खड़ा है। भूतप के तर्फ इसके निकट के मुकुट में ( केरोना ) नाम का वषाणाकृति का पुन है। कई ग्रन्थकार इसे अग्नि कुंड भी कहते हैं।

## ११ शौरी में तारों का शुच्छ ( जट्या १ )

तारों के तीन शुच्छों में यह सब से बड़ा है। इसका आकार सप्तकोणाकृति व विशाल रूप का है। वेद में इसे ग्रन् पुन व जलस्थान कहा है। इसमें असंख्य तारे हैं जोकि एक छोटे विश्व रूप में दिखाई देते हैं।

## १२ भरत अथवा भृगु Orion

यह पुन सब से बड़ा होकर इसके तारे भी तेजस्वी हैं। यह भृगु के सिर के पूर्व में व थोड़ा दक्षिण के तर्फ है। यह साधारण समांतर दीर्घ चतुर्कोणाकृति का दिखाई देता।